ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

पद्मनन्दि पंचविंशति प्रवचन

भाग-३

श्रीमद् पद्मनन्दि आचार्यदेव विरचित श्री पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ के दानोपदेश, आलोचना और ऋषभजिनस्तोत्र अधिकारों पर **अध्यात्म युग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के उपलब्ध **प्रवचन**

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत १९७५, वीर संवत. २५४५, ईसवी सन् २०१९

प्राप्ति स्थान :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820
Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

श्रीमद् पद्मनन्दिदेव एक महान समर्थ योगीराज वन जंगल में विचरनेवाले अजोड़ सन्त थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प आनन्द में झूलनेवाले महान आचार्य भगवन्त को विकल्पात्मक दशा में जिनेन्द्र दर्शन, स्तुति—स्तोत्र रचना, शास्त्र रचना, इत्यादि के भाव भाते हैं। छठवें गुणस्थान में वर्तती विकल्पात्मक दशा अध्यात्म के दृष्टिकोण से मलिनदशा है, परन्तु विचारणीय विषय यह है कि जिनके विकल्पात्मक अंश के निमित्त से महान परमागमों की रचना हो और उन परमागम के निमित्त से अनेक भव्य जीवों का आत्मकल्याण सधे और शाश्वत् सुख की प्राप्ति हो, तो उनकी अन्तरंग अखण्ड अभेद स्वरूप के साथ तादात्म्य होकर वर्तनेवाली निर्विकल्प परिणति के दर्शन से तथा उनकी स्तुति वन्दना से भव्यजीवों का आत्मकल्याण न सधे, ऐसा कैसे बने ? इसलिए सदा वन्दनीय ऐसे प्रत्येक आचार्य भगवन्त पूजनीय है।

श्री पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ के रचयिता श्रीमद् पद्मनन्दि आचार्यदेव हैं। जिनशासन की परम्परा आचार्य पट्टावलि में उनका अग्रिम स्थान रहा है। आचार्य भगवान ने इस ग्रन्थ में छब्बीस अधिकार लिखे हैं परन्तु नाम पद्मनन्दि पंचविंशति दिया गया है। ग्रन्थ में उन्होंने सरल तथा रोचक शैली में श्रावकों का कर्तव्य आदि विषय को स्पष्ट किया है। मोक्षमार्ग की प्रत्येक भूमिका में वर्तते साधक जीवों को तद्भूमिका के योग्य व्यवहारिक विकल्प होता है, उसका निर्देश शास्त्र में दृष्टिगोचर होता है। यदि उस भूमिका के योग्य विकल्प न हो और निम्न प्रकार के विकल्प वर्तते हों तो वहाँ उस भूमिका में निश्चय का कोई विषय विद्यमान है, यह खोज करने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि जिसके व्यवहार में भी भूल है, उसे कोई निश्चय की भूमिका हो, यह नहीं हो सकता।

महान श्रावकों और आचार्यों को मर्यादित विकल्प कैसे होते हैं, उनके निरूपण से उनसे भी नीचे की कोटि में वर्तते मुमुक्षु को अमुक प्रकार के विकल्प और अभिप्राय नहीं होते, यह समझ सकने योग्य है। इसलिए प्रत्येक मुमुक्षु का कर्तव्य है कि ग्रन्थ का विषय व्यवहारिक है, ऐसा समझकर गौण करनेयोग्य नहीं परन्तु जितना प्रयोजनभूत विषय स्वयं को लागू पड़ता हो, उतना अंगीकार करके मोक्षमार्ग प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होना योग्य है। बाकी का उच्च कोटि का मोक्षमार्ग का विषय भावना का विषय रहता है।

दिगम्बर ग्रन्थ वर्तमान समाज में उपलब्ध थे, परन्तु वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल के नाम से प्रसिद्ध काल में उनका रहस्य उद्‌घाटन करनेवाला कोई नहीं था। सर्व जीव साम्प्रदायिक बाह्य प्रवृत्ति तथा रूढ़िगत क्रियाएँ करके, धर्म करते हैं—ऐसे मिथ्याभ्रम में रचे-पचे थे। मिथ्यात्व, वह एक ऐसा अन्धकार है कि जीव को अनन्त काल से सच्ची दिशा सूझी नहीं और मार्ग में चढ़ने का हुआ नहीं। पूज्य बहिनश्री के वचनामृत के सात नम्बर के वचनामृतानुसार जीव कहीं न कहीं अटका है और फलस्वरूप परिभ्रमण चालू रहा है। अनेक बार जिनेन्द्र भगवान, सच्चे सन्त मुनि भगवन्त तथा सत्पुरुषों का समागम हुआ है परन्तु आत्महित नहीं सधा, यह भी एक ठोस हकीकत है।

भले प्रवर्तमान काल चाहे जितना हुण्डावसर्पिणी काल गिना जाता हो और बहुत लम्बे काल परावर्तन में लम्बा समय आता हो परन्तु मिथ्यात्व अन्धकार में से हटकर सच्ची दिशा में प्रयाण करने के लिये पूज्य कहान गुरुदेवश्री—महान सन्त ने महाविदेह से भरत में पधारकर अनेक भव्य जीवों का कल्याण किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का सातिशय योग ऐसे निकृष्ट काल में हुआ, यह एक महान सौभाग्य की बात है। भावी तीर्थाधिनाथ की भेंट और दीर्घकालीन प्रवचन गंगा के स्रोत का पान करने का अवसर इस काल के मुमुक्षुओं को प्राप्त हुआ, यह महान सौभाग्य है। अनन्त काल में अनेक कारणों को अवलम्ब कर जीव परिभ्रमण टाल नहीं सका परन्तु पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय दिव्यदेशना ऐसी है कि जीव को कहीं अटकने न दे और प्रत्यक्ष वीतराग स्वसंवेदन की प्राप्ति कराकर पूर्ण सर्वज्ञ वीतरागदशा पर्यन्त पहुँचा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना का रसपान करना, वह जीवन की एक आनन्दात्मक घड़ी है। पूज्य गुरुदेवश्री कल्याणस्वरूप और मंगलस्वरूप है, उनकी वाणी भी ऐसी ही होगी न? कलिकाल सर्वज्ञ भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के आचार्यपदारोहण तथा श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, पौन्नूर के 15वें वार्षिक स्थापना दिन श्री पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है। इस पुस्तक में दान अधिकार, आलोचना अधिकार तथा ऋषभजिनस्तोत्र अधिकार के विभिन्न प्रवचन प्रकाशित किये गये हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की जितनी महिमा करें, उतनी कम है। उनकी दिव्यदेशना को ग्रन्थारूढ़ करके पूज्य गुरुदेवश्री तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री को सादर अर्पित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को टेप में उतारने का महान कार्य करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर स्मरण करते हैं। पश्चात् दिव्य वीतराग वाणी को सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने के महान कार्य का

सौभाग्य श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई को प्राप्त हुआ। उन्हीं प्रवचनों को ग्रन्थारूढ़ करने का भी विशेष सौभाग्य ट्रस्ट को प्राप्त हुआ है। इस प्रसंग में पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ के विविध समय में हुए प्रवचन उपलब्ध हैं, उन्हें एकत्रित कर पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। जिसे पद्मनन्दि पंचविंशति प्रवचन भाग-३ पुस्तक में प्रकाशित किया जा रहा है।

यद्यपि सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक भरा गया है। इन प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य गुजराती में पूजा इम्प्रेशन, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट उनका आभार व्यक्त करता है।

प्रस्तुत पद्मनन्दि पंचविंशति प्रवचन भाग - ३ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमा याचना करते हैं। पाठकों से भी अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें, जिससे उनका सुधार किया जा सके।

ये प्रवचन www.vitragvani.com पर उपलब्ध हैं।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

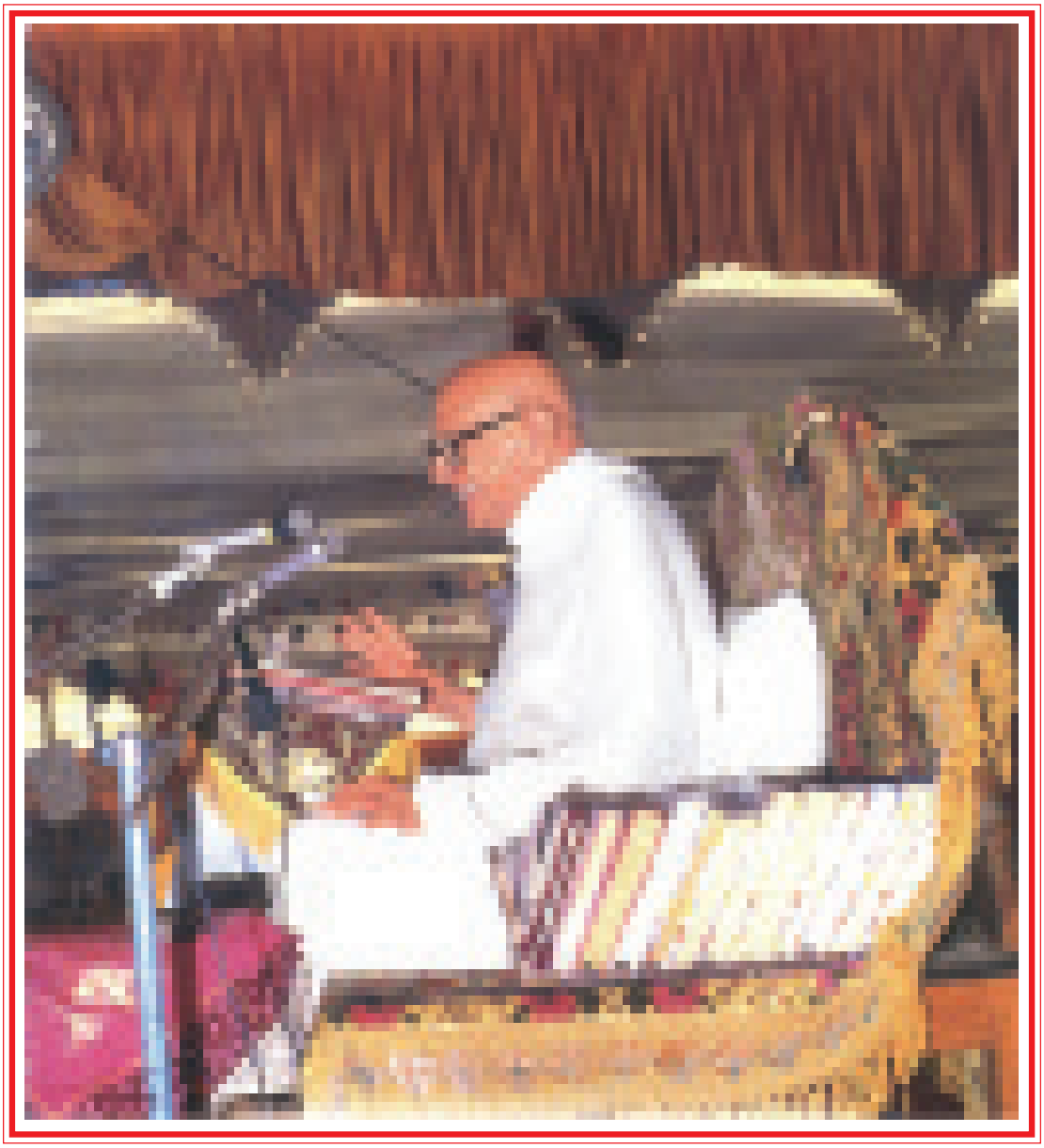

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और

न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रं.	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्रं.
०१ (७७७)	----	दान अधिकार, गाथा-६, ७	००१
०२ (७७८)	----	दान अधिकार, गाथा-७, ९	०१३
०३ (७७९)	----	दान अधिकार, गाथा-२०	०३१
०४ (७८०)	२४-८-१९६०	आलोचना अधिकार, गाथा-१ से ३३	०५०
०५ (७८१)	०४-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१	०६९
०६ (७८२)	०५-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-२	०८९
०७ (७८३)	०६-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-२ से ४	१०९
०८ (७८४)	०७-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-५ से ७	१३०
०९ (७८५)	०८-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-७ से १२	१५१
१० (७८६)	०९-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१२ से १६	१७३
११ (७८७)	१०-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१६ से १९	१९४
१२ (७८८)	११-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१९ से २२	२१४
१३ (७८९)	१२-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-२२ से २५	२३६
१४ (७९०)	१३-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-२५ से २८	२५६
१५ (७९१)	१४-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-२९ से ३०	२७७
१६ (७९२)	१५-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-३० से ३३	२८८
१७ (७९३)	१६-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-३३ से ३६	३१०
१८ (७९४)	१७-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-३६ से ४०	३३२
१९ (७९५)	१८-०५-१९६४	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-४० से ४५	३५४
२० (७९६)	१०-०२-१९६९	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१	३७८
२१ (७९८)	१४-०२-१९६९	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१३-१४	३९६
२२ (८००)	१६-०२-१९६९	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१४-१५	४१४
२३ (८०१)	१७-०२-१९६९	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१८ से २२	४२०
२४ (८०२)	-----	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-८ से १५	४३९
२५ (८०३)	-----	श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा-१९ से २०	४६०

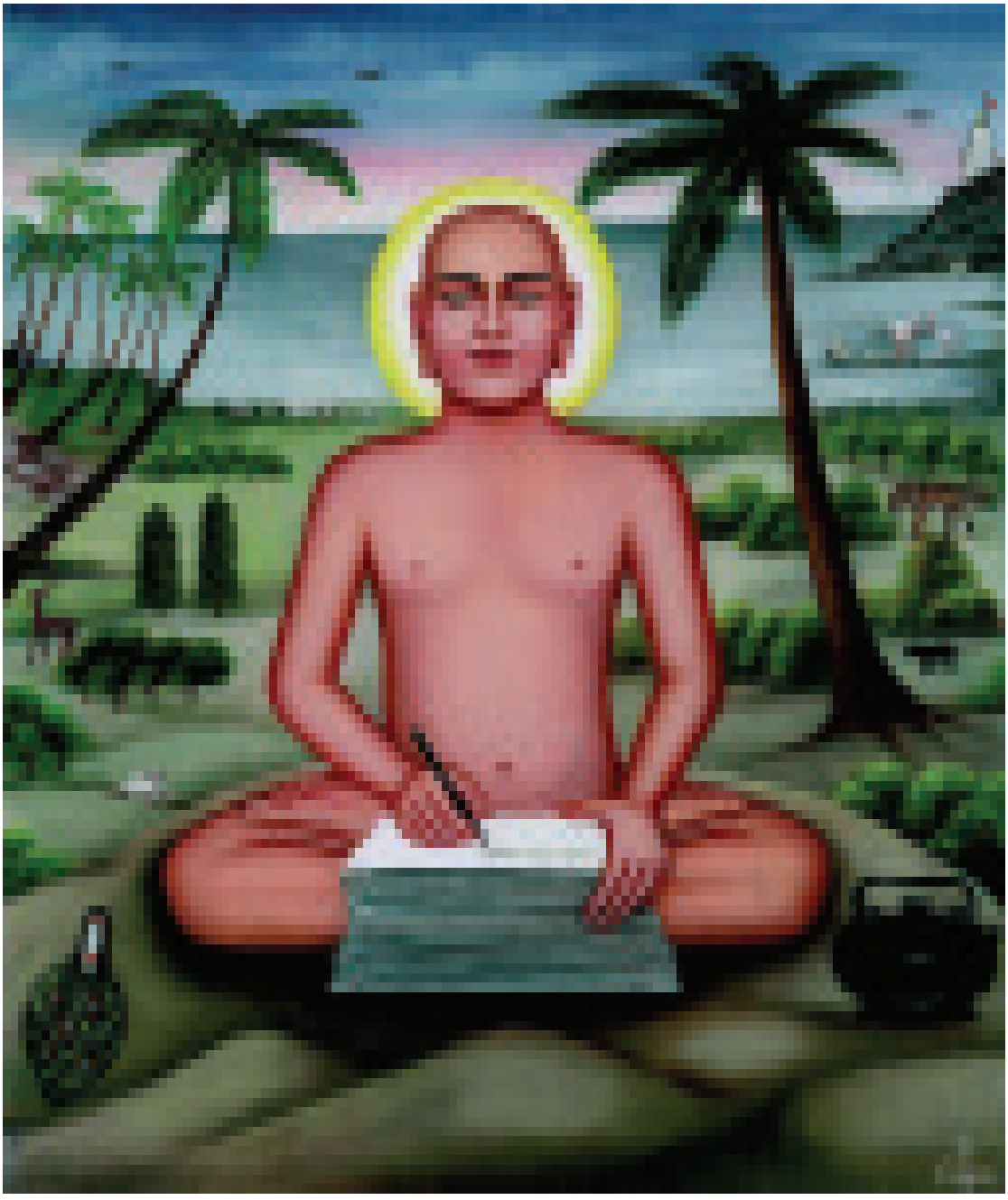

श्रीमद् भगवत्पद्मनन्दि आचार्यदेव

ॐ

श्री परमात्मने नमः

पद्मनन्दि पंचविंशति प्रवचन

(भाग-३)

(श्रीमद् पद्मनन्दि आचार्यदेव विरचित श्री पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ के दानोपदेश, आलोचना और ऋषभजिनस्तोत्र अधिकारों पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

दान अधिकार, गाथा - ६, ७, प्रवचन - ७७७

..... वनवासी सन्तों ने जंगल में, जगत के पाप के उद्धार के लिये करुणाबुद्धि से किया है। कितनों को यह बात साधारण लगती है परन्तु वास्तव में दान, दान के प्रकार और जिसे देना है, वह कौन है, देनेवाला मैं कौन हूँ, क्या चीज़ देनेयोग्य है और उस चीज़ का क्या फल है—ऐसा जिसे वास्तविक भान नहीं, उसके दान में राग की मन्दता कदाचित् (हो).... बापूजी! भाई ने दस लाख खोये हैं। देना है या नहीं? किसने .... कहा? नहीं दूँगा। वह करोड़पति है। बापू! एक बात कहूँ तुम्हें? दस लाख उसके गये या तुम्हारे गये? सुनो! तुम्हें सत्तर (वर्ष) हुए। अब तुम कहीं साथ ले जानेवाले नहीं थे। सौंपना किसे थे? लड़के को। उसे नब्बे लाख सौंपों। पैसा तुम्हारा है या उसका? बदलो न दृष्टि, व्यर्थ में किसके लगे पड़े हो? बराबर है? ऐ... नवरंगभाई! इसमें मुझे वापस दूसरा सिद्धान्त कहना है अभी। दस लाख तो गये हैं लड़के के, यह बराबर है, गये वह तो बराबर गये। अब उसको कहा, मेरे करोड़ में दस लाख गये।... भान नहीं। बापूजी! उसका मित्र कहता है, हों! वह तो आ सकता नहीं, बाप कड़क होता है न... लड़के के ऊपर सरखाई का करे।

नोध - प्रवचन नं ७७५ तथा ७७६ आवाज अस्पष्ट होने के कारण नहीं लिया गया है।

बापूजी ! अभी रहने दो, दस लाख... किसके गये ? क्योंकि तुम्हारे तो साथ में ले जाने नहीं थे। यह दो वर्ष में उसे सौंपना था न ? करोड़ सौंपना थे न ? नब्बे लाख सौंपना। दस लाख उसके गये या तुम्हारे ? बात तो तेरी सत्य, बापू ! वह दस लाख खोये, उसका जो खेद होता था, एकदम दृष्टि बदल डाली, मेरे नहीं, हों ! उसके गये। सन्तोष हो गया। वीरजीभाई ! न्याय समझ में आता है इसमें ?

जिसे प्रतिकूल संयोग आकर खड़ा है, दस लाख गये, वे दस लाख मेरे गये ऐसा मानता था, तब खेद था। परन्तु मेरे नहीं। मैं तो एक वर्ष-दो वर्ष जीनेवाला हूँ, सत्तर तो हुए हैं। ... ऐसा कहते हैं न अपने काठियावाड़ में ? ... फाडने का है। दस लाख तो उसके गये। ... ऐसा प्रतिकूल संयोग आकर खड़ा, उसमें जिसे दस लाख मेरे गये या उसके गये, ऐसा समाधान करना आत्मा को आता है, दस लाख मेरे नहीं, उसके गये। मैं तो बराबर हूँ। जिसे प्रतिकूल संयोग में-तृष्णा में समाधान करना आता है, उसके आत्मा के अन्दर प्रतिकूलता की अनन्तता हो तो समाधान करके ज्ञाता-दृष्टा रहने की उसमें ताकत है। समझ में आया ? ऐसी बात गले उतरना कठिन, हों !

इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं, भाई ! तुझे कोई पूर्व का पुण्य हो और उसके कारण लक्ष्मी मिली हो (तो) राग घटा, राग घटा, तृष्णा घटा। दानादिक में धर्म की प्रभावना, सच्चे देव, उनके परमात्मा, गुरु, शास्त्र आदि, भक्ति, पूजा में कुछ खर्च और राग शिथिल कर। राग घटा तो तुझे ख्याल में आयेगा कि राग घटने की... राग घटा सकता हूँ तो राग का अभाव करके आत्मा ज्ञाता-दृष्टा की अविकारी दशा प्राप्त कर सकता है। ऐसी तुझे दृष्टि करने का अवसर देख तो तुझे होगा। समझ में आया इसमें ?

आचार्य यह कहते हैं, अहो ! इस जगत के गृहस्थाश्रम में रहे हुए प्राणी को पूरे दिन पाप, पाप और पाप, उसमें से उभरने का अवसर हो तो धर्मदान, राग की मन्दता, वह एक पाप से बचने का उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं।

और भी आचार्य दान की महिमा को कहते हैं।

नानाजनाश्रितपरिग्रहसम्भृताया:
सत्पात्रदानविधिरेव गृहस्थताया:।

हेतुः परः शुभगतेर्विषमे भवेऽस्मिन्
नावः समुद्र इव कर्मठकर्णधारः।।६।।

संस्कृत श्लोक है। जंगल में ताड़पत्र में लिखे हुए हैं। ९०० वर्ष पहले। भाई! तू आत्मा है न। ज्ञानानन्द, सच्चिदानन्द तेरा स्वरूप है। शाश्वत् रहनेवाला ज्ञान और आनन्द तेरा अन्तर स्वभाव है। यह शरीर, वाणी, मन तो पृथक् है। अब पुण्य और पाप के तुझमें भाव होते हैं, उसमें पापभाव हो, वह तो तीव्र दुःखदायक है और पुण्यभाव जरा हो, दया-दान आदि का तो वह मन्दराग का भाव है। है तो वह भी आकुलता, परन्तु तीव्र आकुलता टालने के लिये यह मन्द आकुलता उसमें आये बिना नहीं रहती। मूल में तो वह मन्द आकुलता भी टालकर आत्मा की दृष्टि करके आत्मा की शान्ति प्राप्त करे तो उसे धर्म हो। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं, **जिसका खेवटिया चतुर है,...** खेवटिया अर्थात्? इस नाव का नाविक, नाव का नाविक जो चतुर है, **ऐसे अथाह समुद्र में पड़ी हुई नाव...** अथाह समुद्र में पड़ी हुई नाव, **जिस प्रकार मनुष्य को तत्काल पार कर देती है;...** नाविक अच्छा चाहिए, नाव अच्छी चाहिए। समुद्र के किनारे ले जाता है। **उसी प्रकार...** यह दृष्टान्त हुआ। **इस भयंकर संसार में...** अनादि काल से राग-द्वेष, विकार... यह स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, धन्धा मेरा, यह मेरा, यह मेरा—ऐसी ममता के पाप के भाव में अनेक **जनों के अधीन...** लक्ष्मी आदि, स्त्री-पुत्र आदि **जो परिग्रह, उससे सहित इस गृहस्थपने में रहे हुए मनुष्य के लिये श्रेष्ठ पात्र के लक्ष्य से हुई दान-विधि ही शुभ गति को देनेवाली होती है।** सच्चे, अच्छे धन-लक्ष्मी और सच्चे सत्पात्र को दान, यह गृहस्थाश्रम में उभरने की एक नाव है। यह यदि न हो तो आचार्य कहते हैं, उस गृहस्थाश्रम को गहरे पानी में जलांजलि देकर डुबो देना। फूलचन्दभाई!

यदि गृहस्थाश्रम के अन्दर के पापभाव में दान, दया, भक्ति, पूजा आदि में राग मन्द करके परिणाम शुभ न हों और दानादि का भाव न हो तो ऐसे गृहस्थाश्रम को गहरे पानी में श्रद्धांजलि देना कि डूब जा, भाई! उसमें कहीं उभरने का अवसर है नहीं। आचार्य ने आगे दृष्टान्त दिया है, पहले अधिकार के अन्दर।

कहते हैं, अहो! भयंकर संसार में श्रेष्ठ पात्र को दिया हुआ दान वह **शुभ गति को देनेवाली होती है। इसलिए भव्य जीवों को गृहस्थाश्रम में रहकर अवश्य दान देना चाहिए।** एक बात है कि सवेरे की सन्ध्या कहलाती है और शाम की सन्ध्या कहलाती है। सन्ध्या तो दोनों लालिमा में गिनी जाती है। सवेरे की सन्ध्या भी लालिमा में गिनी जाती है, शाम की सन्ध्या लालिमा में (गिनी जाती है)। लालिमा होती है न? परन्तु शाम की लालिमा की पीछे गहरा अन्धकार है और सवेरे की लालिमा के पश्चात् सूर्य उगता है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान चिदानन्द मूर्ति आत्मा शुद्ध भगवान स्वरूप है, ऐसा जिसे अन्दर भान हुआ, उस भानवाले को पाप के परिणाम यदि हों, पाप के-हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, कमाना और यह... ऐसा कहकर सब पाप के अभिमान (करते हैं) वह तो सायंकालीन सन्ध्या जैसी राग की सन्ध्या है। वह सन्ध्या खिली हुई तो लालिमा दिखती है, परन्तु पश्चात् सूर्य का अस्त होना है।

इसी प्रकार आत्मा को स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राजपाट की इज्जत में जो राग होता है, वह सायंकालीन लालिमा जैसा है। पीछे गहरा अन्धकार होना है। समझ में आया? परन्तु जिसे सच्चे सत्देव, गुरु और शास्त्र के प्रति प्रेम और उनकी भक्ति उछलने से जो दानादि में राग की मन्दता होती है, वह है तो लालिमा, है तो राग, परन्तु पीछे दृष्टि है कि ज्ञानियों ने राग को टालने की बात की है। ऐसे ज्ञानी की भक्ति करने से वह रागरहित की दृष्टि स्वभाव में है, वह राग है तो सही, सवेरे की सन्ध्या की लालिमा जैसा, परन्तु वह राग टलकर फिर बाद में चैतन्यसूर्य खिलने का अवसर मिलता है। चन्दुभाई! समझ में आया? भारी बात, भाई!

कहते हैं, एक बार तू सच्चिदानन्द प्रभु की बात तो सुन। तेरे घर की बातें तूने कभी कान देकर सुनी नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, उसका जिसे प्रेम हो, उसे बतलानेवाले के प्रति प्रेम आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? उस प्रेम में, कहते हैं कि दी लक्ष्मी। एक व्यक्ति दान लेने आया, दान। दान लेने आया कि भाई! तुम करोड़पति हो तो कुछ इसमें दो। अब यदि ऐसा कहे कि नहीं देना, तब तो सीधा जवाब। परन्तु नहीं देना हो वह क्या दोष निकालता है? कि तुम व्यवस्थापक बराबर अच्छे नहीं लगते। अब गाली दिये बिना देना हो तो दे न, बापू! तुमने... जो है न... यह सब है, सब देखे हैं, हों! तुम्हें देने का भाव

तो होता है, हमने शुभ खाते निकाले हुए हैं। लाख, दो लाख शुभ खाते के पड़े हैं। शुभ खाता निकालते हैं न ?... इसलिए है तो सही, देने का भाव है परन्तु तुम व्यवस्थापक सही नहीं हो। इसकी व्यवस्था सही नहीं है। हमारा एक व्यक्ति साथ में मिले तो तुम्हारी व्यवस्था (सुधरे)। भाईसाहब! गाली देकर हमारे ऊपर... इनकार करो कि नहीं देना। नहीं देना और दोष निकालकर इस प्रकार देने का भाव नहीं। समझ में आया ?

अरे! तुझे लक्ष्मी के प्रति तीव्र ममता हो, वह राग शिथिल करके, बापू! दया, दान में, भक्ति, पूजा में धर्म का लाभ, बाह्य में... प्रभावना होती हो तो देना। बस, अब इसका क्या होगा, इसने क्यों दूसरे ने किया इसके ऊपर तेरे फल की वस्तु नहीं है। है ? उसने भाव किया। मरने के अवसर पर एक मृत्यु काल होता है। लाख, दो-पाँच-पचास लाख इकट्ठे किये हों, उसे ऐसा होता है कि अरे! पूर्व का पुण्य था, वह जलकर यह पैसे मिले, हों! दुनिया ऐसा मानती है कि अपने को मिले। शास्त्रकार कहते हैं कि लोन आया था, वह जला तब मिले हैं। क्या कहते हैं ? फूलचन्दभाई! वीरजीभाई! सब बातें जगत से फेरफारवाली हैं। लोन आया हो न अन्दर दस लाख रुपये का। फिर एवज में सो... थैली आवे न ? नहीं। कोथली टली।

इसी प्रकार पैसा मिलने के काल में पूर्व के पुण्य की नोट लेकर आया है अन्दर में, वह नोट जब खिरती है, तब पैसा मिलता है। यह कहते है कि मिलता है, ज्ञानी कहते हैं कि टालता है। सुन न! तेरे हिसाब में मेल नहीं होता। समझ में आया ?

धर्मी जीव को या सच्चे दान के अर्थी को मेरी लक्ष्मी कौन कैसे... मुझे भाव है कि इस प्रमाण मैं राग मन्द करके देता हूँ। फिर व्यवस्था करनेवाले कौन हों, कौन नहीं, इसके ऊपर इसका फल नहीं है। फल तो अपने भाव में पड़ा है। राग अल्प किया, उसका पुण्य बँधा है। और वह पुण्य उसे बाहर में अनुकूल सामग्री का कारण होगा। मरने के समय उस मनुष्य को ऐसा हुआ कि लाख मेरे पास है। अरे रे! पुण्य जला और... हों! मैंने कुछ नहीं किया। मरते हुए (कहता है), भाई लखु! लखु लड़के का नाम होगा न ? लखु। यह पाँच लाख... अन्त में आवाज बन्द होने का अवसर हो। भाषा बन्द होती है न अन्तिम। तब भाईसाहब को भाव आया। लखु! यह पाँच लाख, पाँच लाख... ऐसा बोला। वह समझा

कि यह सब बैठे हैं और स्पष्ट करेंगे तो देना पड़ेंगे। बापू! अभी पैसे याद नहीं किये जाते। अभी भगवान का स्मरण करो, भगवान का स्मरण करो। वह सुनता है, अन्दर में ख्याल है, हों! आवाज बन्द हो गयी, भाषा बन्द हो गयी। जड़... जड़ मिट्टी। अभी बोला जाता है, वह आत्मा का अधिकार होवे तो उस समय भी बोलना चाहिए। आवाज बन्द हो गयी। वह जड़ है, मिट्टी है। आवाज बन्द हो गयी। ....नहीं कहते मरते हुए अन्तिम समय? यह कान के अंगारा कहते हैं न? बापू! अभी नहीं याद होता। उसे कहना है (और) आवाज बन्द हो गयी। परन्तु मैं ऐसा कहता नहीं। मैं तो कहता हूँ कि यह पाँच लाख दे दे यहाँ खर्चने में। मेरा पुण्य जल गया और मैंने कुछ किया नहीं। अब? वह भले इनकार करे, परन्तु यहाँ पाँच लाख देने का भाव राग मन्द था, उसका फल उसे है। समझ में आया? वह सुने और दे और मजाक में उड़ावे, वह उसके घर रहा। वीरजीभाई! समझ में आया इसमें?

अपने भाव के फल में अपने पास है। वह कोई दे तो फल मिले और न दे तो न मिले, ऐसा है नहीं। और उसने सुना लो न! लड़का कहे, हाँ बापू! दूँगा। तुम तुम्हारा जीव ठिकाने रखना। ऐसा कहते हैं न? जीव कहीं अटका लगता है, ऐसा कहते हैं। जीव कहीं अटका लगता है, हों! जीव निकलता नहीं। अटका क्या, आयुष्य पूरा न हुआ हो। तुझे खबर नहीं। देह की अवधि है। देह की अवधि है, कितने काल रहना, उसमें सेकेण्ड भी बढ़ता नहीं, घटता नहीं। देह की अवधि है। आत्मा को और देह को संयोग में रहने की अवधि लेकर आया है। उस अवधि का काल आवे, तब देह छूट जाती है। इन्द्र, नरेन्द्र ऊपर से उतरे तो उसे रखने में कोई समर्थ नहीं है। उस समय में छूट जायेगी, एकदम। ऐसा जहाँ छूटने का काल हो तो साथ वाले सब बातें करे। कहा था न? वहाँ कहा था न?

बनारसीदास। बनारसीदास एक पण्डित हो गये हैं। ढुंढारी। पहले बहुत शृंगार में (थे)। बनारसीदास, भाई! पण्डितजी! बनारसीदास, बहुत शृंगारी पुस्तकें बनायी, पश्चात् उन्हें सत्समागम मिला। गृहस्थाश्रम में आत्मा का भान हुआ। अहो! हम तो आनन्द हैं, ज्ञान हैं। हमारा स्वरूप ही शुद्ध है। यह रागादि उठते अवश्य हैं। हमारी कमजोरी का स्वरूप है। यह हमारे अन्तर के तत्त्व का स्वरूप नहीं। भान हुआ, आनन्द में झूले, शान्ति में। परन्तु गृहस्थाश्रम में थे। अभी स्त्री, पुत्र थे। इतना राग था। मरने का काल आया, मरने का—

देह छूटने का। देखनेवाले तो सबको देखे ऐसे इकट्ठे हुए हों न! सब मरते हों, तब इकट्ठे होते हैं, ऐसे इनके पास इकट्ठे हुए। देह छूटने में कुछ देर लगती है लोग परस्पर बातें करे, पण्डितजी का देह छूटता नहीं। जीव कहीं अटका लगता है। फूलचन्दभाई! पण्डितजी का जीव कहीं अटका लगता है, निकलता नहीं। वे सुनते हैं। आवाज बन्द हो गयी। हाथ जरा ऐसे रह गया। अरे! क्या करते हैं ये लोग? दूसरे के जीव भी आयुष्य की स्थिति प्रमाण रहते हैं। उनका जीव लगा हुआ है, इसलिए नहीं छूटता, ऐसा नहीं है। यह भी मेरे लिये खताते हैं।

मैं ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ। फिर ऐसे जरा ईशारा किया। स्लेट लाओ। आवाज नहीं। स्लेट में लिखा। बनारसीदास ३५० वर्ष पहले शृंगारी पुरुष थे। बहुत शृंगार की कविता बनायी। हिन्दुस्तान में आगरा में हुए हैं। आगरा है न आगरा? उसमें से फिर आत्मा में उतरे। ओहो! समयसार नाटक बनाया है। ऐसा बनाया काव्य और कवि। अध्यात्म दृष्टि और अध्यात्म कवि। मरने के समय यह लोग ऐसे खतौनी करते हैं। अरे रे! धर्म की ग्लानि होगी। ऐसा ईशारा करके कहते हैं 'ज्ञान कुतका हाथ, मारी अरि मोहना, चले बनारसीदास, फेर नहीं आवना।' हमने ज्ञान का हथियार अन्दर पकड़ा है। हम ज्ञानानन्दस्वरूप हैं। हम यह विकल्प और देहादि हमारा स्वभाव नहीं। हमने आनन्द के चिदानन्द प्रभु को अन्दर में पकड़ा है। 'ज्ञान कुतका हाथ, मारी अरि मोहना' भ्रमणाजाल को हमने मार डाला है। हम चिदानन्द आत्मा हैं। ज्ञाता-दृष्टा हैं, जगत के खेल-तमाशा देखनेवाले हैं। हम जगत में एकमेक होकर नहीं। राग की विकल्प वृत्ति उठे, उसमें एक नहीं। ऐसे जवान अवस्था में,... अवस्था में देह छूटने का काल। 'चले बनारसीदास...' यह संग और यह लोग। जो धर्मी जीव की अन्तर्दृष्टि कैसी होती है, उसे जानना नहीं आता। दूसरे में जीव रह जाये, ऐसा मेरे लिये कल्पना करते हैं। अरे रे! दुनिया दोरंगी है। सत् को समझती नहीं।

'ज्ञान कुतका हाथ...' हम ज्ञानस्वरूप हैं। मिट्टी के इस एक-एक परमाणु से भिन्न हैं। अन्दर पुण्य और पाप की वृत्ति उठती है, विकार की वृत्तियाँ जो कृत्रिम हमारा अपराध है। अपराधरहित हमारा निरपराध ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसके भान में हैं, उसके भान में हैं। उसकी गोद में हैं, उसकी सावधानी में हैं, उसके आश्रय में पड़े हैं। समझ में आया? यह धर्मदृष्टि। देह छूट गयी, पण्डितमरण से देह छूट गयी। समाधि-शान्ति। लोगों को धर्म क्या

है और शान्ति का मरण क्या है (इसकी खबर नहीं)। मरने के समय बहुत से कहते हैं, करो, यह ऐसा करो, ऐसा करो। समाधिमरण करो। ...रखते हैं न नीचे ? जीवित नीचे रखे, हों! पलंग पर सोवे तो क्या कहलाता है ? जीवत्व बिगड़ेगा। बिगड़ेगा नहीं, तेरा पलंग बिगड़ेगा, ऐसा कह न ? वह मैला होगा। उसका जीवत्व बिगड़ जायेगा, उसे नीचे उतारो, नीचे। अरे! परन्तु जीवित है, उसे दुःख होता है। समझ में आया ? भान तो कुछ नहीं। हम देह नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं। हम तो ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, ऐसा जिसे अन्तरभान नहीं, (वह) मरने के काल में थककर तड़पड़ाहट कर-करके मर जायेगा। अन्य भी उसे नीचे उतार डालेंगे। ... धूल में भी... सुन न! अन्तर में कर न कुछ। भगवान आत्मा ज्ञान में-आनन्द में पण्डितजी स्थित थे। उन्हें मरण काल में, लोगों की यह दशा सुनकर (ऐसा लगता है), अरे! संसार! जगत को सत्य धर्म की क्या स्थिति है, इसकी खबर नहीं और बाहर से यह सब कल्पना करके माप निकालता है।

यहाँ आचार्य कहते हैं, देखो! वहाँ इसने आत्मा का दान दिया। गजब बात, भाई! और इस काल में—मृत्यु काल में कोई राग की मन्दता से पाँच लाख, दस लाख देने का भाव हो और वह न दे, लड़के न सुना हो (और ऐसा कहे), बापू! दूँगा। फिर न दे तो भी इसके भाव में राग मन्द करके जो पुण्य बँधा, वह पुण्य बदले ऐसा नहीं है। और यह कदाचित् भाव में कुछ-कुछ लथपथ हुआ और फिर हुआ कि नहीं, नहीं। इतने सब नहीं। कहना था, वहाँ आवाज बन्द हो गयी। उसमें बाद में लड़के ने पाँच लाख दिये (तो) उसका फल उसे कुछ नहीं। क्योंकि इसका भाव वापस अन्दर बदल गया। पहले कुछ कहा। वेग में आया, सब बैठे थे और सब समय क्या कहते हैं ? तुम्हारे नहीं कहते ? अन्तिम दान, पुण्य किया ? ऐसा कहते हैं न मरने के समय ? अन्तिम स्थिति में दान, पुण्य करके छूटे हैं। उसको तो भान भी न हो। वह तो कहीं पड़ा हो असाध्य में। परन्तु साध्य हो और कान में पड़े, भाव उसका हो राग की मन्दता के-पुण्य के, दूसरे के कारण से दूसरा कहे या न करे, उसके साथ तेरे फल को सम्बन्ध नहीं है।

यहाँ कहते हैं, अरे! श्रेष्ठ पात्र में दिया हुआ दान वह आत्मा के पाप से उद्धार का एक कारण है। प्राप्त किया हुआ धन दान करने से ही सफल होता है। मुनि जंगल में बातें करते हैं। जंगल में थे। ताड़पत्र पर लिखा हुआ है, ९०० वर्ष पहले। मिला हुआ धन...

आयासकोटिभिरूपार्जितमङ्गजेभ्यो,
यज्जीवितादपि निजाद्दयितं जनानाम्।
वित्तस्य तस्य सुगति; खलु दानमेकं
अन्या विपत्तय इति प्रवदन्ति सन्तः।।७।।

कहते हैं, दूसरी एक बात, लोग ऐसा कहते हैं, यह तो अधिक हो तो किंचित् राग घटा सकते हैं। हमारे पास पाँच लाख, दस लाख (नहीं है)। अब पाँच-दस लाख क्या, पचास है या नहीं? पचास रुपये। तो उसमें से पाँच की तृष्णा घटायी जा सकती है। अधिक हो तो अधिक दे सके और तृष्णा कम कर सके, ऐसा कुछ नियम नहीं है। बराबर है? प्रेमचन्दभाई!

एक व्यक्ति बाहर में दानी था। दानी बहुत था। ऐसे गुप्त दान देनेवाला। वह लेने गये। कुछ काम होगा दो, पाँच लाख का, तो उसके पास लेने गये। पचास हजार, दस हजार भरे तो बहुत। ... लेने गये, वहाँ वह बीड़ी पीता था। बीड़ी पीता था। बीड़ी पीते-पीते वह सली रह गयी न आधी, उसे वापस खोखा में डाली। बीड़ी पीते हुए पूरी तो नहीं पी हो। उनको वहम पड़ा कि इनके पास दान लाया और यह अभी आधी जली और आधी वापस खोखा में डालता है। आधी (बढ़ी) हो और बीड़ी पीते-पीते? और दियासलाई का कुछ पड़ा हो न, क्या वह तुम्हारे बीड़ी का डालते हैं न? राख डालते हैं न? ऐश ट्रे। हाँ, वह कुछ पड़ा था उसमें ऐसे डालता था और (बड़ी हुई) उसमें डाली। यह तो अब तुम्हारे (ऐश ट्रे) हुई। ... साधारण डालता हो। वे दान लेने आये। उन्हें लगा, यह आधी सली वापस डालता है। पूछा, भाई! किस काम आये हो? भाई! इस प्रमाण जरा काम की आवश्यकता पड़ी है और दान में इतने पैसे की याचना है और आप एक पहुँचते व्यक्ति हो। मुझसे कितनी आशा रखते हो? ऐसा वह पूछता है। मुझसे कितना लेना चाहते हो? उन्हें ऐसा कि इसके पास से पचास हजार माँगेंगे तो देगा कुछ नहीं। हम आशा तो इतनी रखते हैं कि दस हजार आपसे मिले। हुकम किया कि पचास हजार का सेट दो। उनको लगा, आधी सली यहाँ रखी और यह... ? वह तो मैंने कारणवश रखी है। यहाँ कहाँ डालना, बाहर डालने बाद में जायेंगे, इसलिए इसमें डाली है।

राग और तृष्णा दान में घटानेवाले की ऐसी चेष्टाएँ देखकर उसकी ममता घटा नहीं सके, ऐसी कल्पना करना योग्य नहीं। समझ में आया? ऐसा था, हों! बहुत उदार बहुत। करोड़पति व्यक्ति। पचास हजार (इनको दो)।.... दो लाख माँगे होते न, तो दो लाख देता, हों! परन्तु तेरी दियासलाई के अनुमान ने उसके दान की वृत्ति कैसी है, वह तू कल्पित नहीं कर सका। फूलचन्दभाई!

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं, यह सब बना हुआ है, हों! यह सब बातें बनी हुई हैं। यह तो ७१ वर्ष में बहुत देखा है न जगत का। चारों ओर की स्थिति जगत में कहाँ की कहाँ भटकपट्टी, कौन आत्मा और क्या राग मन्द और क्या दान और क्या दया और क्या भक्ति, इसके विवेक बिना अवतार अनन्त काल से ऐसा का ऐसा व्यर्थ गया। आचार्य महाराज कहते हैं, **नाना प्रकार...** नाना अर्थात् हिन्दी भाषा में अनेक प्रकार के **दु:खों से (धन) पैदा किया गया है,...** कहो, पैसा दु:ख से (कमाया)। सवेरे से शाम प्रयत्न किया हो, बैठा हो वहाँ। और उसमें अच्छा ग्राहक आया हो तो चाय-पानी शाम को पीवे और सब साथ में ले जाये। सवेरे के समय भी (शाम को भोजन करे)। अच्छा ग्राहक आ गया हो। इसकी ग्राहकी बराबर ठीक हो कि तुम्हारे ऊपर हमें भरोसा और पाँच हजार का माल चाहिए। वह समझे कि पुत्र, बुआ, बहू अच्छी आयी है। पाँच सौ (रुपये) घण्टे, दो घण्टे में मिलेंगे। वह कहे, अच्छा माल देना, हों! यह कहे बुआ के लिये ऊपर के भाग में साड़ियाँ हों सस्ती, परन्तु ऊपर के भाग में है। ऊपर का वापस सस्ता हो। वह प्रसन्न हो जाये। भाई रूप से अपने को रखा और अच्छा दिया। ऐसे अवसर में दो घण्टे में पाँच सौ पैदा होते हैं, सवेरे का समय चूक जाये। दो समय इकट्ठे शाम को हो जाये। कहते हैं, ऐसी मेहनत करके... पैसा तो पुण्य से मिला परन्तु ऐसी मेहनत तूने की है, घानी के बैल जैसी। मलिन कपड़ा, यह अमुक और चार-चार, छह-छह घण्टे (मेहनत की)। नानालालभाई कहते, नानालाल कालीदास। राजकोटवाले जसाणी करोड़पति। जसाणी है न? महाराज! हमने अठारह घण्टे काम किया है, हों! अभी दो... इकट्ठे (हुए हैं)।...है न, गृहस्थ व्यक्ति है। नानालाल कालीदास जसाणी, राजकोट। जवाहरात की दुकान है न, मुम्बई में। यह ५६ के वर्ष में गया था, ... छह महीने घर की रोटियाँ खायी थीं। पश्चात् छह महीने बाद का वेतन। अभी ... दिखता है। कोई ऐसा कहता हो कि आत्मा की चतुराई से मिलता हो तो यह मेरा दृष्टान्त। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... अठारह घण्टे तक, हों! लिखना पड़ता और ऐसा करना पड़ता। उससे मिला है, ऐसा यहाँ नहीं कहना। आचार्य कहते हैं, बहुत दुःख, बापू! देखो न! देश छोड़कर परदेश में अफ्रीका में सब गये हैं। मौसी और मौसा तथा सब कुटुम्ब पड़ा हो, वहाँ जाये कमाने। उसमें से कुछ पाँच-दस लाख लावे (और माने कि) हमने पैदा किया है और हमने यह... अरे! भगवान! सुन न बापू! यह गोटी जम गयी हों! पूर्व के पुण्य के कारण। परन्तु जो खेद हुआ है दुःख का, वह क्लेशता यह कमाना और यह कमाना... ऐसे दुःखों से जो धन पैदा किया है, **जो धन, नाना प्रकार के दुःखों से पैदा किया गया है,...** अर्थात् पुण्य के कारण धन-पैसा मिला है, वह **अपने पुत्रों से तथा जीवन से भी अधिक प्यारा है,...** पुत्र से (अधिक) प्रिय है। लड़के ने दस खाये तो कहे, नहीं दूँगा। और फिर कहा, ठीक, तेरे गये, मुझे क्या है? पुत्र से प्रिय।

एक व्यक्ति को... क्या कहलाता है तुम्हारा? खोदते हैं न? नींव। नींव खोदते हुए पचास वर्ष पहले की बात है। वे काठी लोग होते थे न? सोने की मोहर... क्या कहलाता है? पचास हजार की निकली। साधारण लोग थे। यह तो ५०-६० वर्ष की बात है। नीचे से निकला। उसमें सोने के पत्र। लड़की ने सोने का पत्र लिया होगा। ... लड़के को बाँधकर मारा। निकले पचास हजार कहीं से। उसमें से उसने लिया, उसमें (मारा और) लड़का मर गया। तूने यह सोना क्यों लिया? ...लेने-देने की क्रिया उसकी उसने की। यह मिले मुफ्त के... ऐसे लोभी और कंजूस व्यक्ति। लड़के की अपेक्षा पैसे का प्रेम अधिक। ऐसा हुआ है या नहीं यह? प्रेमचन्दभाई! सुना है या नहीं? सब दृष्टान्त है। नाम, ठाम, गाँव सहित है। लकड़ी के साथ बाँधकर मारा। उसे मार डालने का तो भाव नहीं। परन्तु फिर से ऐसा करे नहीं।

कहते हैं, पुत्र की अपेक्षा लक्ष्मी प्रिय? स्त्री की अपेक्षा लक्ष्मी प्रिय? इस लक्ष्मी के लिये तूने पाप किये और खेद भोगा, **उस धन की यदि अच्छी गति है...** लक्ष्मी की यदि शुभ परिणाम और पुण्य की गति होवे तो **केवल दान ही है...** दान में खर्च करना, यही लक्ष्मी की एक शुभगति है, दूसरी कोई गति है नहीं। समझ में आया? आचार्य महाराज मुनि कहते हैं, हों! निर्ग्रन्थ मुनि जंगल में बसे हुए दिगम्बर सन्त थे। एक मोरपीच्छी और कमण्डल। भिक्षा के लिये जंगल में से आवे और हाथ में (आहार) लेते

थे। ...९०० वर्ष पहले पद्मनन्दि महासन्त मुनि दिगम्बर आत्मा के आनन्द में झूलते, झूले में झूलते थे। एक अभी सर्वज्ञ पूर्ण पद प्राप्त नहीं हुआ। जरा राग आया कि अरे! दुनिया को करुणा से .... राग मन्द करने के दान की क्रिया की बात करता हूँ। यह लिखे गये शास्त्र के पन्ने। पन्नों के कर्ता हम नहीं, हम तो आत्मा हैं। वह जड़ की क्रिया जड़ से होती है, हमारे से नहीं होती। हमारे में जो शुभराग आया, वह छूट गया। मैं तो ज्ञाता हूँ।

ऐसी अन्तरर्दृष्टि और भानवाले मुनि कहते हैं, अरे! तुझे प्राप्त हुई लक्ष्मी, उसकी गति एक होवे तो दान ही है, हों! राग घटाकर दान करना, तृष्णा घटाकर दया, दान, भक्ति, पूजा, प्रभावना (करना)। **वह धन, दान से सफल होता है, किन्तु दान के अतिरिक्त दिया हुआ वह धन, विपत्ति का ही कारण है, ऐसा सज्जन पुरुष कहते हैं। इसलिए भव्य जीवों को अपना कमाया हुआ धन, दान में ही खर्च करना चाहिए।** यह लड़के के लिये रखे, वह दान नहीं होगा? लड़के को देते हैं न? दान अर्थात् देना। दान का अर्थ देना होता है। लड़के को दे, वह दान है या नहीं? पुण्य होगा या नहीं उसमें? धूल में भी नहीं, वह तो तृष्णा से रखता है। राग घटाकर, (भले) पाँच रुपये हों, एक रुपया, आठ आना, चार आना भी जिसे ममता घटाना है, ममता घटाने का भाव है, वह चाहे जो घटा सकता है। यह दान की गति मनुष्यपने में आकर आत्मा के प्रेमी जीव को ऐसे दान का प्रेम आये बिना नहीं रहता। तो वह दान शुभगति का कारण होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

दान अधिकार, गाथा ७ से ९
प्रवचन-७७८

... राग की मन्दता से कोई उपयोग करे तो उसे पुण्यबन्धन हो और इस पुण्य के कारण स्वर्गादि के सुख अर्थात् बाह्य जगत जिसे सुख कहता है, ऐसी उसे प्राप्ति होती है। परन्तु जिसमें दृष्टि यह राग और राग के फल ऊपर पड़ी है, उसे पापानुबन्धी पुण्य बँधता है। अर्थात् ? आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, ऐसी जिसे अन्तर रुचि और दृष्टि हुई है, उसे जो यह दानादि के भाव का राग मन्द का भाव हो, उसे शास्त्रकार पुण्यानुबन्धी पुण्य कहते हैं। अर्थात् कि जिस पुण्य का फल उसे आवे परन्तु उसमें उसकी रुचि और दृष्टि न होने से उस फल में उसे मद और अहंकार नहीं होकर, स्वभाव की चैतन्यदृष्टि रहकर उस पुण्य की सामग्री को जाननेवाला-देखनेवाला रहकर कुछ रागादि मन्द आवे तो उसे भी जानता है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। इस प्रकार जो ज्ञानी को पुण्यानुबन्धी पुण्य बँधता है, उसे यहाँ दानरूप से कहा गया है।

आत्मा ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ, एक राग का कण भी मेरा कर्तव्य नहीं तो वस्तु देना-लेना, वह मेरे अधिकार की बात नहीं है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई है, उसे जो सच्चे धर्मात्मा, सच्चे सर्वज्ञदेव, सच्चे साधर्मी सम्यग्दृष्टि जीव, उसकी उस सम्यग्दृष्टि को पहिचान और पहिचान होती है। उसके कारण जो उसकी भक्ति और साधर्मी के प्रति प्रेम होकर जो दानादि का भाव होता है, वह अल्प बन्धन का कारण तो है परन्तु भविष्य में उस राग की दृष्टि उसे नहीं होने से, राग का अभाव करके वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। समझ में आया ?

यह दान सात्त्विक अर्थात् आत्मा के ज्ञान के भान की भूमिका में और वह जिसे दान देता है, वे धर्मात्मा कौन हैं, जिन्हें आहार दूँ, वे ज्ञानी किस हद अर्थात् कैसे स्वभाव को समझे हुए हों और जिसे परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मन्दिर, प्रतिमा इत्यादि का बहुमान जिसे अन्तर में हुआ हो, अन्तर में जिसे दृष्टि का विकास ज्ञान का हुआ हो, वह जो दान में... और उल्लास करके जो राग मन्द करता है, उसे भविष्य में उसके फलरूप से अनुकूल सामग्री मिलती है परन्तु उसका अभिमान नहीं होगा। और आत्मा के भान

बिना राग के अभिमान द्वारा रागादि की क्रिया में जुड़े तो पुण्य से वैभव मिलता है परन्तु वैभव से मद होकर... कोठारी ! समझ में आया ? जयचन्दभाई ! क्या यह समझ में आता है यह ? उसे मद चढ़ेगा। पूर्व के कोई पुण्य के फलरूप से शुभराग और कषाय मन्द की हो, उसका फल वैभव मिले। परन्तु यहाँ उसने राग का अभिमान किया है कि राग मेरी चीज़ है। उसके फलरूप से सामग्री मिले, उस वैभव से उसे मद चढ़ेगा। हम पैसेवाले, हम परिवारवाले, हम सुन्दर शरीरवाले, हम यह अनुकूलता की सामग्री के भोक्ता—ऐसा अभिमान करके वह नीचा पाप बाँधकर और उस दुर्गति में जायेगा। समझ में आया ? भगवानजीभाई ! यह दूसरे प्रकार का दान है।

सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, ऐसे परमात्मा को जो अन्तर्दृष्टि से पहिचाने, वह भगवान को ऐसा कहता है —हे परमात्मा ! आप तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों देनेवाले हैं। लो, दे नहीं न ? पण्डितजी ! अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव की व्याख्या की है। देव कौन ? कि जो दे, वह देव। क्या देता है ? लक्ष्मी दे, विषय दे,... समझ में आया ? पुण्य दे और मोक्ष दे। भगवानजीभाई ! और यह क्या होगा ? तदापि, वह देव। ऐई.. ! ... वहाँ क्यों बैठे ? फिर तुम्हारे... देव—दे, उसे देव कहते हैं। दे किसे ? परन्तु जो सर्वज्ञ परमात्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ, ऐसा देव, ऐसे देव के प्रति जिसे रुचि हुई है, उसे आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ, राग और जड़ से पर हूँ—ऐसी दृष्टि हुई हो तो भगवान की व्यवहार से उसे श्रद्धा कही जाती है। ऐसी दृष्टि की जिसे खबर नहीं, उसे देव निमित्तरूप से भी कुछ नहीं देते। निमित्तरूप से सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा को मोक्ष दे। अर्थात् ? वह मोक्ष समझाते हैं कि तेरा आत्मा का स्वरूप पुण्य-पाप के रागरहित है, उसे तू पहिचान। उसमें दृष्टि कर तो तुझे प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म होगा। इसके बिना धर्म की शुरुआत तीन काल में कहीं नहीं होती। समझ में आया ?

अभी वहाँ दृष्टान्त दिया था, पहले भी देते हैं। वहाँ कहा था न ? गतवर्ष हम गये थे। ... कल कहा था। ...भाई थे न ? जयचन्दभाई ! तोरी है, तोरी। वडिया के पास तोरी है। वहाँ तोरी गये और दिन में व्याख्यान हुआ। लोग बहुत। वह तो आते हैं न, नाम की प्रसिद्धि इसलिए लोग इकट्ठे तो बहुत हों। समझे, न समझे अलग बात है। उसमें किसान लोग तो

बाहर थे। दिन में तो आ नहीं सके। रात्रि में आये। एक महाराज आत्मा की बात बहुत ऊँची करते हैं और आध्यात्मिक हैं। लाओ न, हम जायें। उनके पास अगाधगति नाम की पुस्तक थी। उनके पास एक अगाधगति नाम की पुस्तक थी। उसका अर्थ उन्हें नहीं आता। वे पढ़ते, पढ़ते, पढ़ते उन्हें कुछ घड़ बैठी नहीं, इसलिए (हुआ), महाराज आये हैं, लाओ उन्हें पूछने जायें। रात्रि में आये। कहा, पढ़ो, क्या है इसमें ?

उसमें ऐसा आया कि भगवान का नाम जपे, भक्ति करे, स्मरण करे, पूजा करे, दान करे, व्यवहार करे, श्रद्धा करे देव-गुरु आदि की और व्रत पाले, तप करे, तीर्थ करे तो उसका फल यहाँ है। ऐसा लेख एकदम आया अन्दर से। यहाँ है, यहाँ है—ऐसा अन्दर से आया। कहा, क्या कहते हैं यह ? उन लोगों को अर्थ सूझे नहीं। इसलिए उसमें यह लिखा हुआ कि जितने भाव दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, पूजा भाव हो, उस भाव का यहाँ फल है। यहाँ अर्थात् संसार फलेगा, ऐसा अन्दर लिखा था। पण्डितजी ! एक अगाधगति नामक पुस्तक लिखी होगी किसी व्यक्ति ने बहुत वर्ष पहले। वे लोग बेचारे पढ़ते थे। नहीं बैठती घड़, यहाँ है, यहाँ है (अर्थात् क्या) ? उसमें फिर पीछे से स्पष्ट (आता है), यह आत्मा... 'ज्याँ लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' यह आत्मा कौन है और कौन परमात्मा सर्वज्ञदेव इस जगत में तीन काल-तीन लोक को जाननेवाले और उनका सेवक किस प्रकार हो सकूँ, इसकी जिसे खबर नहीं और जिसे आत्मा रागरहित ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर अनुभव, प्रतीति और सम्यग्दर्शन नहीं, वे जीव आत्मा के भान बिना...

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी,
क्या किया तप और जप करने से, क्या किया पूजा और दान देने से।

जयचन्दभाई ! सूक्ष्म बात तो है, बापू ! यह राग की मन्दता हो तो इसके इतने कथन में बहुत नाम थे, बहुत। व्रत, तप, जप, नाम स्मरण, भक्ति,... पुस्तक का नाम अगाधगति। बहुत से किसान रात्रि में आये। कणबी समझते हो न ? कृषिकार—किसान... किसान। खेती करते हैं न, किसान लोग। कहा, बापू ! देखो इसमें पढ़ो—इस गाथा में। करते-करते इतना कथन... कि... फाट फाट कर डाला। जितना अन्दर... इस भाव में जगत की

क्रियाओं में राग का भाव हो, वह सब इस भव में फलेगा। भव अर्थात् संसार। उसे गति मिलेगी। उसे अगाधगति आत्मा का ज्ञान और आत्मा का भान नहीं होगा। भगवानजीभाई! उसमें लिखा हुआ है, हों! उसमें।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ कहते आते हैं। परन्तु जगत को इस बात की घड़ बैठती नहीं कि यह बात ही सत्य है और दूसरी सत्य नहीं, इतनी श्रद्धा भी नहीं करता। यह श्रद्धा जो आत्मा की इस प्रकार से करे तो भगवान ने उसे मोक्ष दिया, ऐसा कहने में आता है। भगवान ने मोक्ष का दान दिया। भगवान देते नहीं, हों! भगवान दे, तब तो एक को दे तो सबको दे तो करना रहे नहीं और सबका कल्याण हो जाये। तो भगवान सबका कर दे? नहीं, नहीं। ऐसा नहीं होगा? विरजीभाई! तो भगवान किस काम के दे नहीं तो फिर? पैसेवाला पैसा दे और यह कुछ न दे बड़े भगवान होकर? दे क्या, सुन न! यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। जिसने तीन काल-तीन लोक एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जाने (और) कहा कि देख भाई! तेरी चीज़ शुद्ध आनन्द है, अन्दर ज्ञानानन्द की दृष्टि और रुचि किये बिना तेरे जितने भाव पुण्य के, दया, दान, व्रत, तप करके मर जा, तो (भी) तेरी मुक्ति और धर्म तीन काल में नहीं होता।

इस प्रकार जो भगवान ने फरमाया, तद्नुसार जो दृष्टि करे और स्थिर हो, भगवान ने उसे मोक्ष दिया—ऐसा कहने में आता है। और ऐसी दृष्टि की भूमिका में यह दान का अधिकार जो चलता है, ऐसे राग की मन्दता के पुण्य भाव करे तो उसे भगवान ने पुण्य दिया, (ऐसा कहा जाता है), क्योंकि भगवान ने बतलाया कि यदि तेरे स्वभाव की दृष्टि रखकर राग की मन्दता का भाव तुझे दया, दान, करुणा, कोमलता, प्रभावना आदि में हो तो उस भाव को हम पुण्य कहते हैं। ऐसा ज्ञान भगवान ने समझाया, इसलिए भगवान ने पुण्य दिया—ऐसा निमित्त से कहा जाता है। और उस पुण्य के कारण पैसा मिले, इसलिए पुण्य को ज्ञानी ने पहिचाना और उसके फलरूप से पैसे (मिले); इसलिए ज्ञानी ने पैसे दिये, (ऐसा) कहा जाता है। निमित्तरूप से बात है। और उस पैसे से मिले भोग। वे भोग भी मानो ज्ञानी ने दिये, ऐसा निमित्त से कहा जाता है। ऐसा कथन है, भगवानजीभाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य का, हों! अरे! भारी कठिन।

अष्टपाहुड़ में... अष्टपाहुड़—अष्टप्राभृत शास्त्र है। 'ददाति इति देव।' भगवान

आत्मा आत्मा को मोक्ष दे, पुण्य दे, लक्ष्मी दे और भोग (दे)। अर्थात्? निमित्तरूप से उन्होंने जो आत्मा को समझाया, यह समझे उसे चारों अन्दर मिलते हैं। तथापि उसे पुण्य का भाव, पुण्य के फलरूप से अर्थ—पैसा और पैसे के फलरूप से भोग, इन तीनों की रुचि सम्यग्दृष्टि धर्मी को नहीं होती। समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! पुनश्च एक ओर (कहे), भगवान कुछ नहीं देखे तथा एक ओर (कहे) भगवान सब देते हैं। यह किस प्रकार की शैली? देने की बात नहीं, यह तो स्वयं उसे समझे, तब भगवान ने दिया, ऐसा आरोप दिया जाता है। यह तो निमित्त के कथन शास्त्र में इतने अधिक आते हैं।

इसी प्रकार आत्मा... यहाँ आचार्यदेव कहते हैं, अरे! आत्मा! तुझे सच्चे दान की विधि की खबर नहीं। सच्चा दान अपने पहले परसों कहा था। शास्त्र में एक सम्प्रदान आता है। आत्मा चैतन्यज्योति है, उसकी राग और पुण्य के विकल्प से पृथक् होकर उसकी दृष्टि और अनुभव करके जो निर्मल दशा प्रगट करके निर्मल दशा आत्मा में रखना, उसे भगवान सत्य और सम्यक् दान और निश्चय दान कहते हैं। कि जिस दान का फल मोक्ष है। फूलचन्दभाई! व्याख्या ही दूसरी पूरी। उल्टा एकड़ा घोंटा हो और उसमें बात ही एकदम बैठती नहीं। अभी सत्य यह है, ऐसी श्रद्धा तो करे, विश्वास तो लावे कि दूसरी कोई चीज़ हो नहीं सकती। विश्वास कर कि आत्मा ज्ञानानन्द में एकाग्र होता है तो उसे सम्यग्दर्शन होता है और धर्म होता है। इसके बिना धर्म और दान नहीं होता। सच्चा दान प्रगट किये बिना उसे व्यवहार दान नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें? ऐसी श्रद्धा और ज्ञान पहले करे तो दूसरे रास्ते से धर्म हो सकता नहीं, शान्ति मिलती नहीं, सम्यग्दर्शन कोई दूसरे प्रकार से होगा नहीं।

ऐसा भान करने के पश्चात् उसका सात्त्विक दान देने का भाव कैसा होता है, यह उसका वर्णन चलता है। भगवानजीभाई! यह इसका चलता है। कल सब दृष्टान्त व्यवहार के दिये थे, वे सब धर्मीजीव के दिये थे। अरे! कल दृष्टान्त दिये नहीं थे सब? करोड़ में दस लाख खोये और उसमें समाधान किया। इस समाधान में ताकत आत्मा में है, ऐसा सिद्ध किया था। यह बात नहीं है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया था न कल? याद होगा। कल दिया था। याद है या नहीं? लालजीभाई! दृष्टान्त नहीं दिया था? करोड़ में दस लाख लड़के ने खोये। यह तो समझ में आये ऐसा दृष्टान्त है। घर में ले जाये—समझ में आये ऐसा

है। फूलचन्दभाई! लड़का दस लाख खोकर आया। करोड़ की पूँजी, नहीं दूँगा एक पाई, (ऐसा) कहे। खो आया। मित्र जाकर कहता है, बापू! दो न। मर जायेगा, हों! गले में फाँसी (खाकर मर जायेगा)। जिसे देना है, वह मर जायेगा तो किसे देना? तुम्हें करोड़ देना थे, नब्बे लाख देना। तुम्हारे गये या उसके? भान है तुम्हें? सत्तर वर्ष से... अभी तुम्हें अस्सी हुए, उसे तीस हुए हैं। तुम्हारे साथ नहीं जानेवाले हैं। उसे करोड़ देते थे। कोई साथ में ले जाता है कुछ? यह सब लोचा-लोचा ममता करके पड़े रहे। पिता पुत्र को दे, पुत्र पुत्र को दे, ऐसा का ऐसा रहे। मूल की पूँजी सम्हालकर रखे। उसमें कुछ घटाना और राग मन्द करके देना, वह तो कोई विरले जीव को (होता है)। तो कहते हैं कि तेरे लड़के को करोड़ देना थे, दस लाख खोये तो उसके गये या तेरे? नब्बे लाख देना। उसके गये। बदल दृष्टि। उसका मित्र (कहता है)। बात सत्य लगती है। मेरे गये थे तो मातम चलता था। उसके गये (ऐसा मानूँ) तो मुझे समाधान होता है। बराबर है? उसमें यह न्याय था। ऐसी व्यवहार की बात नहीं की थी। परन्तु पकड़ में नहीं आवे न।

आत्मा के ज्ञानस्वभाव में इतनी ताकत है कि एक प्रतिकूलता ऐसी आवे तो उस प्रतिकूलता के प्रसंग में शान्ति, ज्ञान समाधान करके रह सके, ऐसी उसमें ताकत है। प्रतिकूल संयोग तो ऐसा का ऐसा है। ऐसे शरीर में रोग आवे, निन्दा-प्रशंसा हो, एक प्रतिकूलता के सामने ज्ञाता-दृष्टा आत्मा हूँ, मुझे मेरे स्वरूप में असहनशीलता हो ही नहीं सकती। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। यह दस लाख गये उसके, ऐसा मैंने समाधान किया। वह समाधान मेरे ज्ञान की ताकत है। उस ज्ञान की ताकत में अनन्त प्रतिकूलता आवे तो भी सन्तोष रखकर ज्ञाता रह सकूँ, यह मुझमें ताकत है। ऐसी जिसे श्रद्धा (हुई है), यह श्रद्धा के लिये दृष्टान्त दिया था। ऐसे तो सभी समाधान करे लड़के का और अमुक का और अमुक का। समझ में आया?

मेरा आत्मा एक भी प्रतिकूलता के काल में ऐसा समाधान कर सकता है। मुझमें ताकत है कि शरीर में रोग आवे, शरीर सड़ जाये, छूट जाये तो मैं एक चैतन्य हूँ। उस परपदार्थ के प्रति मेरी चीज़ को मुझमें भाता नहीं, उसमें मैं भाता नहीं। ऐसी जिसे अन्तरदृष्टि (होकर) ऐसी प्रतिकूलता के (समय सन्तोष रखता है)। लौकिक सन्तोष नहीं। मेरा अन्तरस्वरूप ही ज्ञान है, जानना यह मेरा काल है। उसमें सन्तोष आ गया। किसी का करूँ

और यह करूँ और वह करूँ, यह मेरे स्वभाव में नहीं है। ऐसी दृष्टि हुई। शरीर जाने से भी अशरीरी ज्ञान का भाव रखकर शरीर छोड़ देता है। छूट जाता है। छूट जाये उसे पण्डितमरण कहा जाता है।

जैसे एक प्रतिकूलता छूटने से सन्तोष किया, (उसी प्रकार) सब प्रतिकूलता हो, मेरी चीज़ में नहीं। मैं तो एक सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। सत्... सत्... सत्... ज्ञान और आनन्दवाला मेरा आत्मा है। ऐसा जिसे भान होता है, (उसे) शरीर के छूटने के काल में भी शान्ति में मरण होकर एकावतारी होकर पण्डित होकर मरे। समझ में आया? चुन्नीभाई! सत्य होगा यह? यह पहलू इसे जँचना कठिन पड़ता है।

आचार्यदेव तो यहाँ सातवीं गाथा में कहते हैं, पैसे में राग घटाना इतनी बात यहाँ नहीं, परन्तु जो आत्मा वस्तु में राग घटाने की जिसमें ताकत है, वह आत्मा ही राग के अभावस्वभाववाला है, ऐसी दृष्टि हो और राग घटावे, उसे व्यवहारदान और पुण्य का कारण कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे तो सब बहुत राग कम करके दे, उसकी यहाँ बात नहीं है। उसके आत्मा में, अरे! मैं राग की तीव्रता लोभ, कंजुसाई घटाकर और कषाय अर्थात् लोभ की मन्दता करता हूँ तो वह मेरी चीज़ आत्मा है, वह मन्दता करता है (तो) उसका अभाव कर सकता है और अभाव कर सके, ऐसी मैं चीज़ हूँ। मैं राग नहीं, पुण्य नहीं, विकल्प नहीं, देह नहीं। उसका अभाव कर सके, ऐसा आत्मा हूँ। ऐसी सम्यक् चैतन्य की दृष्टि हो और फिर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के लिये आहार आदि दान, लक्ष्मी आदि का दान, राग की मन्दता करे, वह लोकोत्तर पुण्य, पुण्यानुबन्धी पुण्य उपार्जित करता है। उसकी उसे रुचि और आश्रय और आधार नहीं होता। यह उसकी बात चलती है। समझ में आया? समझ में आता है? डॉक्टर! डॉक्टर कहाँ, यह तो वकील है। तुम्हारे डॉक्टर तो आये नहीं न? ....चन्दजी! वकील था, वकील।

देखो! क्या कहते हैं? अपने सातवीं गाथा आ गयी। अरे... आत्मा! यह बाह्य की लक्ष्मी प्राप्त करने के खेद में तेरी दृष्टि है कि संयोग—यह वस्त्र, गहने या अमुक धूलधानी प्राप्त करने में जो तेरा राग (होता है) और तुझे खेद (होता है), यह लक्ष्मी और इस वस्तु का सदुपयोग हो तो धर्मात्मा धर्मी और ज्ञानी और ज्ञानी की प्रभावना में इसका सदुपयोग

हो तो इस लक्ष्मी की सद्गति और शुभगति कहलाती है, दूसरी कोई शुभगति नहीं कहलाती।

यहाँ अन्त में (कहते हैं), **इसलिए भव्य जीवों को अपना कमाया हुआ धन, दान में ही खर्च करना चाहिए।** यह अन्तिम लाईन। सातवीं गाथा कल आ गयी थी। आठवीं।

भुक्त्यादिभिः प्रतिदिनं गृहिणो न सम्यक्-
नष्टा रमापि पुनरेति कदाचिदत्र।
सत्पात्रदानविधिना तु गताप्युदेति,
क्षेत्रस्थ बीजमिव कोटुगुणं वटस्य।।८।।

क्या कहते हैं ? देखो ! सन्तों ने जंगल में बात की है। मुफ्त में निरर्थक बात नहीं की। आत्मा का मस्तपना ! मुनिपना अर्थात् तो ऐसे आनन्दकन्द में झूलते हैं। मुनि अर्थात् कि ऐसे आनन्द सच्चिदानन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द के रस में झूलते हैं। वह अतीन्द्रिय आनन्द का रस, वह इन्द्र के इन्द्रासन को ऐसे तृण जैसा मनवाता है। ऐसी जिसे आत्मज्ञानपूर्वक चारित्रदशा की रमणता हो, उसे शास्त्रकार मुनि (कहा जाता है), उसे मुनि कहते हैं। ऐसी भी जिसे मुनि की खबर नहीं और दूसरे प्रकार से मुनि और देव के स्वरूप को माने, उसकी दृष्टि में विपरीतता है। कान्तिभाई !

यहाँ कहते हैं, **गृहस्थ के द्वारा जिस लक्ष्मी का भोगादि से नाश होता है,...** जो लक्ष्मी का भोग, स्त्री, पुत्र, लड़के, लड़की के लिये (होता है), **वह लक्ष्मी कदापि लौटकर नहीं आती...** वह लक्ष्मी वापस लौटकर नहीं आती। वह तो भोगकर पाप हुआ, वह लक्ष्मी तो गयी—नाश हो गयी। उस लक्ष्मी का मन्द राग से... समझ में आया ? क्या कहते हैं ? धर्मी जीव को धर्म का भान, स्वभाव की दृष्टि और अनुभव होता है और पूर्व के पुण्य से लक्ष्मी मिली हो तो वह.... जिस लक्ष्मी का भोग, व्यापार, धन्धा, नुकसान में जिस लक्ष्मी का नाश, फिर से लक्ष्मी नहीं आती।

परन्तु जो लक्ष्मी, मुनि आदि उत्तम पात्रों के दान देने में खर्च होती है,... आचार्य तो यह बात करते हैं। धर्मात्मा मुनि आत्मज्ञानी, जिन्हें आनन्दकन्द का अन्दर विकास हो गया है, ऐसे सम्यग्दर्शनसहित जिसे राग के एक कण का भी अन्दर आदर

नहीं, ऐसे सम्यग्दृष्टिसहित मुनि जिसे अन्तर दशा में लीनता प्रगटी है। ऐसे मुनि अथवा श्रावक समकिती, धर्मी समकिती आत्मज्ञानी श्रावक... यह वाडा की बात नहीं है, हों! मूल तत्त्व की बात है जरा, ऐसे श्रावक को या मुनि को... श्रावक यह सम्प्रदाय की चीज़ नहीं है। अन्तर की चीज़ को राग और देह से भिन्न जानकर स्वरूप की दृष्टि की अन्दर में लीनता करे, उसे श्रवण करके, विवेक करके ज्ञान की क्रिया करे उसे श्रावक कहा जाता है। समझ में आया? .... समझ में आया? क्या कहा?

मुनि आदि उत्तम पात्रों के दान देने में खर्च होती है, वह लक्ष्मी, भूमि में स्थित वटवृक्ष के बीज के समान कोटि गुनी होती है... समझ में आया? यह लक्ष्मी दिलाने के लिये बात नहीं है। कहते हैं कि जिसने अन्तर में राग की मन्दता करके देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति में जिसने खर्च किया है, उसे राग नहीं चाहिए; इसलिए उसे राग के पुण्य में ऐसा फल मिलेगा कि जैसे वड़ का बीज करोड़ गुना बीज फलता है, एक बीज में करोड़ों (वड़ होते हैं), उसी प्रकार धर्मी का पुण्य इतना देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति या दान आदि में या उत्तम पात्र (के दान में होता है)।

भरत चक्रवर्ती थे। सुना है? भगवान ऋषभदेव के पुत्र। सम्यग्दृष्टि क्षायिक समकिती। गृहस्थाश्रम में ९६ हजार स्त्रियाँ घर में। बत्तीस हजार कन्या और चौंसठ हजार पुत्र। जिन्हें नौ निधान (होते हैं) और सोलह हजार देव जिनकी सेवा में (होते हैं)। ऋषभदेव भगवान के पहले पुत्र भरत चक्रवर्ती। दूसरे बाहुबली। जो ५७ फीट की मूर्ति श्रवणबेलगोल में पर्वत पर निराधार हजार वर्ष से बनायी हुई, राजा ने बनायी हुई है। नौवाँ आश्चर्य कहलाता है। हिन्दुस्तान के नेताओं और बाहर के देश के नेता भी वहाँ देखने आते हैं। वे बाहुबलीजी छोटे थे और बड़े थे भरत। उन भरत के घर में इतनी ऋद्धि थी कि छह खण्ड, नौ (निधान), छियानवें हजार स्त्रियाँ और बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण, एक करोड़ गाँव,... ९६ करोड़ गाँव, ९६ करोड़ गाँव। अन्तर में ऐसा भान था, अरे! यह चीज़ हम कहाँ हैं। हम होंवे तो हमारे से भिन्न कैसे पड़े? हम तो ज्ञानानन्द शुद्ध हैं न! उसे एक राग का भी अहंकार नहीं है। परपदार्थ की कुछ भी क्रिया का अहंकार नहीं है। ऐसे क्षायिक समकिती भरत एक बार आहार करते हुए भावना करते हैं। ओहो! आज यह ग्रास पेट में जाता है,... क्षायिक समकिती! भगवानजीभाई!

क्षायिक समकिती समझ में आता है ? इस भव में केवल (ज्ञान) लेनेवाले। अन्तिम देह थी। केवल (ज्ञान) लेकर मोक्ष जानेवाले। मोक्ष गये। भरत चक्रवर्ती, बाहुवली उस भव में मोक्ष गये हैं। आत्मा का भान (हुआ है)। देह के परमाणु से गोला भिन्न है, वैसे अन्तर में सम्यक्त्व का भान किया है। देह का गोला, वैसे यह कार्मण का गोला—रजकण का पिण्ड, उसका एक तैजसशरीर अन्दर दूसरा है, जो यह गर्मी होती है, उससे मेरी चीज़ ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, मैं शुद्ध निर्मलानन्द हूँ, ऐसा अन्दर भान था परन्तु अभी गृहस्थाश्रम था, इसलिए राग था।

इसलिए एक बार भोजन करते हैं तो विचार आता है, अरे! भोजन करने से पहले कोई मुनि मिले, कोई धर्मात्मा (मिले और) यह ग्रास उनके पास जाये। यह तो देह की क्रिया है, उनके विकल्प की भावना है। ऐसी भावना। यह तो बड़े चक्रवर्ती, इसलिए जिनकी सोलह हजार देव सेवा करे और जिनका शरीर अकेले... सोने की अँगूठियाँ, सोने की अँगूठी की अपेक्षा भी महा ऊँचा। सोलह हजार देव सेवा करे वे कैसे होंगे ? आहार के समय ऐसी भावना भाते हैं।

वहाँ एक मुनि ऊपर से जाते थे। उन मुनि को विचार हुआ कि लाओ न उतरूँ अयोध्या में। उस अयोध्या में भरत चक्रवर्ती का महल था। वहाँ सहज आकर बाहर खड़े रहे। ऊपर जाते (विकल्प आया)। जिन्हें लब्धिवन्त मुनि कहते हैं, बहुत लब्धि होती है। प्राब्धिक, देह ऊपर से चले। उन्हें आहार का अवसर था, राग-विकल्प उठा कि यहाँ उतरूँ। स्वयं सामने भरत चक्रवर्ती दरवाजे के निकट खड़े हैं। ओहो! कोई मुनि (पधारे)। वहाँ वे सहज ऊपर से उतरे। पधारो... पधारो... पधारो... पधारो! मुनि की दशा... होती है। सूक्ष्म बातें हैं, बापू! मुनि अर्थात् परमेश्वर! 'मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय ? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ।' सम्यग्दर्शन हुआ तो अन्दर परमात्मा का घर पा गया। आहाहा! परमात्मा के घर में अन्दर में प्रवेश किया। अखण्डानन्द प्रभु हूँ। उसे विकल्प रहित, रागरहित होकर अन्दर में प्रवेश किया और भान हुआ, वह सम्यग्दर्शन गृहस्थाश्रम में भरत चक्रवर्ती को था। उन्हें यह ९६ हजार स्त्रियों के वैभव को घटावे तो ऐसा हो और अमुक हो और अमुक (करे) तो ऐसा हो, ऐई! हेमचन्दभाई! इतनी उपाधि कुछ कम करे तो हो। यह सब था। तुम्हारे यहाँ ९६ करोड़ नलिया भी नहीं। ९६ करोड़ जिनके घर में

गाँव। भगवानजीभाई! कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह सब घटावे न (तो होता है)। घटावे... सुन न!

अन्तर के स्वभाव में मेरी चीज़ में जहाँ राग और पुण्य और पाप ही नहीं, वह चीज़ नहीं तो मेरी चीज़ में घटाना क्या? मैं तो पूर्णानन्द हूँ। ऐसी दृष्टि हुई (तो) सबका अभाव दृष्टि में हो गया। सब मुझमें नहीं। तथापि अभी राग भाग है, मानते हैं कि राग स्वभाव में नहीं है, परन्तु मेरी अपराध दशा जरा राग की होती है। उन सब चीज़ों में भी आत्मज्ञान बनाये रखते हैं। ऐसी दशा गृहस्थाश्रम में भी हो सकती है। समझ में आया?

यह दृष्टान्त आता है न एक? इन मुनि को फिर अन्दर ले जाते हैं। पधारो... पधारो... पधारो..! वे तो दैवी पुरुष हैं, दैवी पुरुष! जिनकी सोलह हजार तो देव सेवा करते हैं। दो हजार देव तो दोनों ओर खड़े होते हैं। उसे कहते हैं न? क्या कहलाता है? अंगरक्षक देव। उदास... उदास... उदास... यह हम नहीं, हों! हम तो जहाँ हैं, वहाँ जगत का प्रवेश नहीं, जगत का भाग नहीं और जहाँ जगत है, वहाँ हम नहीं। ऐसी दृष्टि पहले संसार में गृहस्थाश्रम में होती है, तब वे धर्म के पन्थ में पड़े, ऐसा कहने में आता है। उन मुनि को ले जाते हैं, आहार देते हैं। धन्य अवतार! धन्य मेरा जन्म आज (सफल हुआ)! मेरे घर में कल्पवृक्ष हुआ। भगवानजीभाई! यह समकिती। इन्हें खबर है, भगवान ने कहा है कि यह देह अन्तिम है। अब दूसरी देह, भरत! तुझे दूसरी देह धारण करना नहीं है। यही देह से चरमशरीर है, अन्तिम शरीर है। तुझे दृष्टि अन्तर में गयी है और स्वरूप की स्थिरता इस भव में आनन्दकन्द में घुसकर इस भव में तुम केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हो। ऐसे समकिती को भी दान देने का उल्लास आता है। आहाहा! धन्य अवतार! मेरे घर में आज कल्पवृक्ष आया। मुझे चिन्तामणि रत्न फला। मेरे घर में कामधेनु गाय आयी। ऐसे प्रभाव से, प्रमोद से भाव (आता है), उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य भगवान कहते हैं। समझ में आया?

संसार में ऐसी स्थिति थी। एक बार बात आती है इसमें। कथा में आती है। अपने लड़कों ने एक बार नाटक भी किया था। भरत चक्रवर्ती गाँव में घूमते थे। उसमें एक व्यक्ति होगा, उसे ऐसा लगा कि यह सब ऐसे राज और पाट और कहते हैं कि हम ज्ञानी, हम वैरागी। भरत घर में वैरागी, भरत घर में वैरागी। एक व्यक्ति गाँव में बात करता है और भरत ने सुन ली। लो, इतनी ऋद्धि, शरीर की सुन्दरता और जिसमें बैठे वह हीरा का सिंहासन।

वह बैठा हो (तब) बाघ जैसा लगे, सिंह जैसा। शरीर की सुन्दरता और पुण्य की प्रकृति। तथा वैभव का पार नहीं। उसकी एक व्यक्ति ने राज में टीका की कि भरत कहते हैं कि हम ज्ञानी और वैरागी हैं। यह सब तो है उनके घर में और (कहते हैं) वैरागी। (भरत ने) सुना। उसे बुलाया। उसे खबर नहीं कि यह सुन गये हैं। उसे बुलाया। देखो! आज तुम्हें एक तेल का कटोरा देता हूँ। भरत कहते हैं, तेल का कटोरा, हों! शीशी-बीशी छोटे मुँह की हो तो नहीं छलके। छालियुं होता है न अपना? छालिया। छालिया को क्या कहते हैं तुम्हारे? कटोरा। चौड़ा कटोरा। चौड़ा कटोरा (लिया) और उसमें तेल भरा तथा कहा कि पूरे गाँव में बड़ा शृंगार किया है और शृंगार में पूरी अयोध्या को मैंने शृंगारित किया है। यह तेल का कटोरा ले जाना और यदि बूँद (नीचे) गिरेगी तो पीछे नंगी तलवारवाला सिपाही खड़ा है, (वह) सिर काट देगा। वह कहे, भारी बात! ...ऐसे छलके नहीं। पूरे गाँव में-अयोध्या में शृंगार किया हुआ है। वह घूमकर ऐसे आया। भरत ने पूछा, क्यों भाई! क्या देखा? अरे! माँ-बाप! कुछ देखा नहीं। इस तेल पर मेरी नजर थी। गाँव को शृंगारित किया है न... गाँव में, इस जगह यह किया था। मुझे कुछ खबर नहीं। मेरी नजर तो यहाँ थी, कि तेल का कटोरा छलक न जाये। एक बूँद गिरे (नहीं)।

बापू! इसी प्रकार हमारी नजरें इस राग के अन्दर (नहीं), आत्मा के ऊपर है, भाई! तुझे खबर नहीं पड़ती। समझ में आया? भरत चक्रवर्ती। ऐसा देखते हैं। राज बड़ा, चक्रवर्ती राजा। चक्रवर्ती अर्थात्? यह तो सब भिखारी राजा हैं। राजा ही कब थे? वे तो पुण्य के पुतले और इन चक्रवर्ती की सोलह हजार देव सेवा करे। आत्मा की दृष्टि अन्दर से हटती नहीं। कहीं माहात्म्य नहीं आता। उस राग का-पुण्य का कण आवे, (उसका) माहात्म्य नहीं आता। देह के रजकणों का माहात्म्य नहीं आता, सिंहासन में बैठा है उसका माहात्म्य नहीं आता। एक ज्ञानानन्द में माहात्म्य की दृष्टि में, बापू! तुझे तेल का कटोरा छलक न जाये, ऐसी दृष्टि थी न, बापू! वीरजीभाई! उसको कहते हैं, बापू! हमारी दृष्टि कहाँ है, यह तुझे खबर नहीं पड़ती, भाई! हम संसार में रहे होने पर भी, गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी, हमारी नजर चैतन्य चिन्तामणि अन्दर है, उसके माहात्म्य में पड़ी है। इस क्रिया में और राग में हमारी माहात्म्य दृष्टि नहीं है। समझ में आया?

ऐसे धर्मात्मा को जब... कहते हैं, अहो! मुनि आदि सत्पात्रों को दान देने में जो

लक्ष्मी का खर्च होता है, **वह लक्ष्मी, भूमि में स्थित वटवृक्ष के बीज के समान कोटि गुनी होती है अर्थात् जो मनुष्य, लक्ष्मी पाकर निरभिमान होकर...** निरभिमान होकर। अभिमान नहीं। यह कहाँ मेरी चीज़ है, वह तो परवस्तु है, परवस्तु जाती है। ऐसे निरभिमानी होकर लक्ष्मी आदि, दानादि (देकर) मुनियों को सहायक होना, दान देना, औषध देना और ज्ञानदान देना। सर्वज्ञ भगवान ने त्रिलोकनाथ ने जो सम्यग्ज्ञान कहा, उसका व्याख्यान करना। उसकी पुस्तकें रचना और उन सत्य सम्यक् पुस्तकों का प्रचार कैसे हो, ऐसे विकल्प जो आवे, उसे ज्ञानदान कहा जाता है। औषध को औषधदान देने का भाव, आहारदान... समझ में आया? और चौथा अभयदान।

दान के चार प्रकार हैं। आहार। एक समयमात्र आहार का भाव। अभय-जीवनदान। किसी प्राणी को न मारना, ऐसा शुभराग। धर्मदृष्टिसहित की यहाँ सात्त्विक प्रकृति की व्याख्या है। और औषधदान। यह रोग... टाले। ज्ञानदान—जन्म, जरा, मरण अनादि काल के (होते हैं), वह सच्चा ज्ञान दे तो उसका ज्ञान होने पर उसे जन्म-मरण टल जाते हैं। ऐसे ज्ञानदान को देनेवाले, कहते हैं कि ऐसे मुनि, ऐसे धर्मात्मा को मेरा एक भी ग्रास जाये तो कहते हैं कि मेरे भाव में उसका फल करोड़ गुना फलेगा। ऐसा आचार्य निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर जंगल-वनवासी कहते हैं। वह किस भूमिका में रहकर कहते हैं? अन्तर रमणता आनन्द में हुई है। यह वाणी परमाणु मिट्टी, मिट्टी का काम करती है।

ऐसे अन्तर भान का विश्वास करनेवाला गृहस्थाश्रम में रहा हुआ भी धर्मात्मा को दानादि दे तो करोड़ गुना फलता है। **तो उसको अवश्य मुनि आदि पात्रों को दान देना चाहिए।** अब दृष्टान्त देते हैं। **जिस प्रकार कारीगर...**

यो दत्तवानिह मुमुक्षुजनाय भुक्तिं,
भक्त्याश्रितः शिवपथे न धृतः से एव।
आत्माऽपि तेन विदधत्सुरसद्म नूनं,
उच्चैः पदंव्रजति तत्सहितोऽपि शिल्पी।।९।।

क्या दृष्टान्त देते हैं? कारीगर—सुथार... सुथार। सुथार कहते हैं? क्या कहते हैं? सुथार। एक मंजिल, दो मंजिल, तीन मंजिल, चार मंजिल, पाँच मंजिल (हो), इसमें

लकड़ियाँ लगाने जाता है न ? कील। तो जितना ऊँचा, तत्प्रमाण कील लगाने जाता है, वह भी ऊँचा होता जाता है। क्या कहा ? जितनी मंजिल ऊँची हो, उसे लकड़ी लगावे न ? पाटिया या बाँस। जितनी मंजिल ऊँचा, उतना सुथार को भी ऊँचा होना पड़े। ऊँचा होता है।

जिस प्रकार कारीगर जैसे-जैसे ऊँचा मकान बनाता जाता है, वैसे-वैसे आप भी ऊँचा होता चला जाता है... ऐसा होता है या नहीं ? आठ मंजिल बाँधना हो तो पहले माले से आठवें माले की कारीगर ऊपर कर सकता होगा ? ध्यान रखना दृष्टान्त यहाँ। यहाँ तो दृष्टान्त देते हैं। जैसे-जैसे ऊँचा-ऊँचा मकान होता है, वैसे कारीगर सुतार या कोई सोनी को ऊपर सोना जड़ना हो, समझ में आया ? बड़ा राजा हो तो हाथी दाँत के ऊपर सोना घड़े। तो कहते हैं, जितना मकान ऊँचा, उतना वह ऊँचा होता है।

उसी प्रकार जो मनुष्य, मोक्ष की इच्छा करनेवाले मनुष्य को... धर्मी जीव, जिसका आत्मा ऊँचा हुआ, सम्यग्दृष्टि (हुआ), ऐसे को जो दान (देता है), और उससे ऊँचे बढ़कर चारित्र—स्वरूप की रमणता बढ़ गयी है, उन्हें जो दान देता है, जैसे वह (सुतार/ कारीगर) ऊँचा (जाता है) वैसे यह देनेवाला भी ऊँचा जाता है। ऊँची गति को प्राप्त करता है। समझ में आया ? क्या कहते हैं यह ? उसे—ज्ञानी को पात्रदान की परीक्षा होती है, ऐसा कहते हैं। यह पात्र है, यह कुपात्र है, यह अपात्र है। पात्र, अपात्र और कुपात्र की धर्मी जीव को खबर होती है। जिसे आत्मा की श्रद्धा प्रगट हुई हो, सम्यग्दर्शन हो वह पात्र है। विरुद्ध मान्यतावाले हों और त्यागी हो तो भी वह अपात्र है। और कुपात्र है, जो अत्यन्त विरुद्ध मान्यता और व्रतादि कुछ नहीं, वह एकदम कुपात्र है। ऐसी धर्मी जीव को, सत्य के शोधक को, सत्य पन्थ के प्रवाह में पड़े हुए को सत् के पन्थ में कौन है, कहाँ है, कैसे है, ऐसे शोधकर जो इसे मदद करता है, ऐसा भगवान सर्वज्ञ परमात्मा पूर्णानन्द को प्राप्त हुए, उनकी प्रभावना आदि में भाव करे, जितना ऊँचा सामने (पात्र), उसके भानवाला भी उतने ऊँचे भाव को पाता है। पण्डितजी !

मुनि दृष्टान्त देते हैं।

यो दत्तवानिह मुमुक्षुजनाय भुक्तिं,
भक्त्याश्रितः शिवपथे न धृतः से एव।

आत्माऽपि तेन विदधत्सुरसद्म नूनं,
उच्चेः पदंव्रजति तत्सहितोऽपि शिल्पी।।९।।

समझ में आया ? यहाँ तो वापस इसे विवेक बताया। दुनिया भी कहती है, 'धर्म हाथ न वेंचाय...' क्या कहते हैं ? 'धर्म वाडीये न निपजे'। बोलते हैं तो बहुत भाषा। हेमचन्दभाई ! कितने वर्ष से रट रखी होगी। 'धर्म वाडीये न निपजे, धर्म हाट न वेंचाय, धर्म विवेक से उपजे, जो करीये तो थाय।' आता है या नहीं ? नेमचन्दभाई ! पहाड़े तो आते हैं। धर्म कहीं कोई वाड का माल नहीं, धर्म किसी दुकान में बिकता नहीं। धर्म विवेक से उत्पन्न होता है। विवेक अर्थात् क्या ? सत्-असत् का भान होता है। समझ में आया ?

एक बार श्रीमद् ने मनुष्य का पाठ लिखा, मनुष्य भव का पाठ। मोक्षमाला में है। मनुष्यभव का पाठ लिखा, सोलह वर्ष में। श्रीमद् राजचन्द्र (को) सात वर्ष में जातिस्मरण (हुआ)। सोलह वर्ष में मनुष्य भव का एक पाठ लिखा। १०८ पाठ लिखकर मोक्षमाला नाम दिया। पाठ लिखते, लिखते लिखते ऐसा लिखा सोलह वर्ष में, अरे ! भाई ! तुझे यह पाँच इन्द्रियाँ मिलीं, यह हाथ-पैर मिले, इसलिए तू मनुष्य ? इसलिए तू मनुष्य ? नहीं। क्यों ? कि ऐसे पाँच इन्द्रियाँ और शरीर तथा हाथ और पैर तो बन्दर को भी मिले हैं। वानरा समझे। बन्दर। बन्दर को भी मिला है। सोलह वर्ष की उम्र। सोलह वर्ष तो देह की उम्र है, आत्मा को कहाँ उम्र है ? आत्मा झटक कर उठा अन्दर से, कोई भी... मैं आठ वर्ष में केवलज्ञान पा सकता है। आठ वर्ष में केवलज्ञान आत्मा पाये। बालक—देह। देह और आत्मा को क्या सम्बन्ध है ? सोलह वर्ष में कहते हैं कि तू मनुष्य है ? पाँच इन्द्रिय और हाथ-पैर मिले, वह तो बन्दर को भी है। तो इस प्रकार से मनुष्य कहलाये तो बन्दर को एक पूँछ अधिक है तो उसे बड़ा मनुष्य कहना चाहिए। ....भाई ! क्या कहा, समझ में आया ? यदि पाँच इन्द्रिय और इसे यदि मनुष्य कहें तो इसकी अपेक्षा बन्दर को एक लम्बी पूँछ मिली, उसे बड़ा मनुष्य कहना चाहिए। नहीं, नहीं। उसे मनुष्य नहीं कहा जाता।

मनुष्य किसे कहना ? आहाहा ! बाद में एक लाईन उसमें रखी है। सोलह वर्ष में एक पूरा बड़ा पाठ है। ऐसे-ऐसे १०८ पाठ हैं। तब मनुष्य किसे कहना ? इस सत्-असत् का विवेक करे, उसे मनुष्य कहते हैं। इतना एक टुकड़ा रखा है। भगवानजीभाई ! (मोक्षमाला में)। क्या है परन्तु इस पद में इतने में ! सत्-असत्। देह, वाणी, मन सब असत् नाशवान

हैं। एक मैं अविनाशी चैतन्य हूँ। अन्दर पुण्य और पाप का विकल्प उठे, वह भी नाशवान है। मैं शुद्ध चिदानन्द अविनाशी हूँ। ऐसे विकार और शरीर से पृथक् आत्मा का विवेक करे, सत् और असत् भिन्न जाने, उसे हम मनुष्य कहते हैं, बाकी मनुष्य नहीं कहते। मनुष्य, 'मनुष्यरूपेण मृगा चरंति', सोलह वर्ष में ऐसे कहते हैं। ऐई! कितनी बार पढ़ा होगा यह तो। हेमचन्दभाई! क्या कहा? सोलह वर्ष में कहते हैं, समझ सकता है आठ वर्ष में। यह कहते हैं कि हमें समझ में नहीं आता, हों! अभी समझ में नहीं आता, अभी बैठता नहीं। तब कब? अभी नहीं। अभी नहीं, इसमें अभी कब आवे? आयेगा किसी दिन?

आता है न? बनिये का दृष्टान्त नहीं आता? बनिया आज जीमे (भोजन करे), बारोट कल। बनिया आज और बारोट कल। बारोट कल आवे। क्या लिखा है? बनिया आज और बारोट कल। तेरा कल आयेगा नहीं और तेरा जीमण होगा नहीं। आता है, भगवानजीभाई! दुकान में ऐसा लिख रखा था। बनिया आज और बारोट कल। बनिया आज और बारोट कल। बारोट जाने, कल अपना नम्बर आयेगा। क्या लिखा है इसमें? आज के बनिया और कल के बारोट। आज का बारोट कभी होगा नहीं।

इसी प्रकार अभी नहीं, अभी नहीं, अभी नहीं। इस अभी में अभी होगा नहीं, बाद में कभी धर्म होगा नहीं। समझ में आया? ... अनुभव किया नहीं और ऐसा सब करे, उसमें कुछ होगा नहीं। बहुत कठिन बात, भाई! 'वनवास रह्यो, मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाई दियो।' पद्मासन ऐसे। यह तो जड़ की क्रिया है। उसमें राग मन्द पड़े तो पुण्यबन्धन हो जाये। धर्म होगा नहीं। 'वनवास रह्यो, मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाई दियो, मन पौन निरोध...' यह कुम्भक और रेचक और पवन को रोका तथा ऐसा किया और खींचा न। यह योग की क्रिया आती है। कुम्भक (अर्थात्) अन्दर भरना। रेचक (अर्थात्) निकालना, पूरक (अर्थात्) बराबर ठीक से भर रखना। ऐसे इसके श्वास की क्रियाएँ ऐसी बराबर (करे)। अनन्त बार की। समझ में आया?

'हठ योग प्रयोग सुतार भयो' बराबर ऐसे तार लगाकर।.... बापू! अभी तार दूसरे हैं। यह चीज़ दूसरी है। यह पूछते हैं कितने ही। पर्वतभाई है यहाँ। डॉक्टर नहीं? पर्वतभाई है। आये हैं? कहाँ है? बात तो तब परसों याद किया था। वे वहाँ पोरबन्दर में डॉक्टर थे

न! खास रस लेनेवाले। आज अभी आये या कल आये थे यहाँ? आये थे? ठीक। ... उसमें है न? पागल का हॉस्पीटल। उस पागल के हॉस्पीटल की दवा चलती है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं, अरे! भाई! यह शरीर, वाणी, मन तो मेरे परन्तु अन्दर पुण्य का, दया-दान का भाव हो अवश्य, वह भी मेरी चीज़ की अन्तर चीज़ है, (ऐसा) माने उसे भगवान पागल कहते हैं। गांडा समझते हो? तुम्हारी भाषा में पागल। हमारी भाषा में उसे गांडा कहते हैं। हिन्दुस्तानी भाषा में तुम्हारे पागल, पागल कहते हैं न? पागल। डॉक्टर! पागल हो गया है।

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, अरे! आत्मा! यह राग की क्रिया तुझे उत्पन्न होती है, तुझे भान नहीं, यह धर्म नहीं है। राग उत्पन्न होता है। 'मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ योग प्रयोग सुतार भयो। जप भेद...' जप... जप... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... बस, चौबीस घण्टे जाप (करे)। कितनों को माला फिरा ही करती हो। माला, हों! मस्तिष्क कहीं (चलता हो)। परन्तु यह तो मस्तिष्क भी कहीं न जाता हो, बराबर उसमें पिरोया हुआ हो। णमो अरिहंताणं। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... परन्तु ॐ... ॐ... का जाप भी राग है। समझ में आया? ऐसे 'जाप भेद जपे, तप त्यों ही तपे'। इतनी तपस्यायें की। शरीर ऐसे जीर्ण हो गया। बारह-बारह महीने तक रोटियाँ न खाये, पानी न पीवे। लोग मानो कि भारी तपस्वी! बापू! यह तप की व्याख्या अलग है, भाई! इसकी तुझे खबर नहीं है।

भगवान आनन्दकन्द अन्दर दृष्टि में आनन्द का रस लेकर अन्तर में लीनता हो और इच्छा उत्पन्न न हो, ऐसी दशा को तपस्या कहते हैं। वह तप और सम्यग्ज्ञान के भान बिना, ऐसे भान बिना, कहते हैं कि अनन्त बार क्या किया? यह सब किया।

मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ योग प्रयोग सुतार भयो।
जप भेद जपे, तप त्यों ही तपे, उरसे ही उदासी लही सबसे,
सब शास्त्रन के....

शास्त्र पढ़ा। वाद और विवाद (किया)। यह सच्चा और यह झूठा। कल्पना की

जाल (खड़ी की)। अरे... भगवान! यह तो कल्पना है, बापू! सत्य कोई दूसरा है। 'सब शास्त्रन के नय...' न्याय धारण किये। जैसे कोर्ट में वकील कहते हैं न कि ऐसा कायदा होता है। अमुक कोर्ट का यह नियम होता है। इस कायदे से ऐसा होता है। इसी प्रकार शास्त्र के पठन अनन्त बार कर चुका परन्तु....

सब शास्त्रन के नय धारी हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये,
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

भगवानजीभाई! कौन कहता है यह? देखो! भगवान कहते हैं, हों! श्रीमद् कहते हैं। उनके अन्तर्दृष्टि बात करते हैं। सर्वज्ञ भगवान भी ऐसा कहते हैं। भारी बातें, भाई!

वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से।

यह जितने साधन किये, उनसे कुछ दूसरा साधन अन्तर में है। सद्गुरु ज्ञानी मिले बिना उसकी कला और दृष्टि अन्तर की खबर पड़े नहीं। समझ में आया? दवायें होती हैं न, दवायें। वह सब दवा होती है न? डॉक्टर! रोगी हो बहुत और दवायें बहुत। रोगी अपने आप से रोग को परखे बिना दवा पीने लगे (तो) मर जाये। कौन सी दवा इसे लागू पड़े और किस प्रकार का तुझे रोग है? उस रोग की खबर न हो और यह ऊपर कोई दवा (लेना), इसकी खबर न हो। वह दवा का पीनेवाला मर जाता है।

इसी प्रकार अनादि काल का अज्ञान-रोग क्या है? और उस अज्ञान-रोग पर किस ज्ञान कला की दवा लागू पड़ती है, वह ज्ञानी डॉक्टर बिना अपनी आप करने जाये (तो) मर जाये। समझ में आया? ऐसा होगा न? पर्वतभाई! वह कहे, मुझे रोग है, साहेब! जा ले दवा। ऐसे कहते होंगे? ले लो इसमें से। शीशियाँ पड़ी हैं, गोलियाँ पड़ी हैं, प्रवाह पड़ा है। प्रवाह अर्थात् वह प्रवाही दवा होती है न अन्दर? देखो! जो इस प्रकार का तुझे रोग है, हों! इस प्रकार की दवा और इस प्रकार की दवा होती है।

इसी प्रकार इसे धर्मी ज्ञानी मिले बिना, अज्ञानी अनन्त बार मिले और इसे चढ़ाया दूसरे रास्ते कि तुझे इसमें धर्म होगा। भाई! यह रास्ता न्यारा है, प्रभु!

(प्रवचन अपूर्ण है....)

दान अधिकार, गाथा-२०
प्रवचन - ७७९

भगवान आत्मा का सर्वज्ञपद पार्श्वनाथ भगवान को हुआ। तब उसके एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक ज्ञान में ज्ञात हुए, उसे सर्वज्ञ कहते हैं। सर्व-ज्ञ। यह ज्ञानकल्याणक का दिन है। यह आत्मा अकेला ज्ञानपुंज अन्दर ध्रुव तत्त्व है। उसकी अन्दर की एकाग्रता द्वारा जिसने सम्पूर्ण एकाग्र होकर केवलज्ञान ज्योति एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक ज्ञान—दर्पण में स्व-पर पर पूर्ण ज्ञात हुए, उन सर्वज्ञ भगवान ने जगत के तत्त्व देखकर, जानकर जगत के हित के लिये तत्त्व का उपदेश किया।

आचार्य महाराज कहते हैं,... परन्तु वह सर्वज्ञपद ही अभी बैठना कठिन। जगत के प्राणी को यह आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है? साधारण प्राणी हो पाँच हजार की पूँजीवाला, तो पाँच लाख, दस लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच-दस करोड़ हो सके, ऐसा माने। ...भाई! पाँच हजार की पूँजीवाला दस करोड़ और पचास करोड़ और अरब रुपयेवाला माने। ...भाई! यह पूर्व के पुण्य के फलरूप से अधिक पद है, ऐसे पद को तो दुनिया मान रही है। परन्तु आत्मा के अन्तर के पवित्रता के स्वभाव की लीनता द्वारा जो पूर्ण पवित्रता और पूर्ण ज्ञान प्रगट हो, उसे अन्तर में—कलेजे में यह बात बैठती नहीं। समझ में आया?

शास्त्र में एक दृष्टान्त आता है कि कोई स्पष्ट आँखवाला मनुष्य १०८ सफेद बगुले ऊपर आकाश में चलते हों। वह अच्छी आँखवाला (देखता है)। वे भी बगुले उड़ते। उड़ते बगुले की संख्या को प्रमाण को आँख की स्पष्टतावाला उसे गिनता भी है, वर्ण को देखता है, गिनता है, संख्या और आकाश में उड़ते क्रम-क्रम से गति करते भी जानता है और १०८ हैं, ऐसा उसमें निर्णय होता है। समझ में आया? परन्तु उस देखते मनुष्य को अन्धा मनुष्य—जन्मान्ध ऐसा कहे कि तू कहता है ऐसे १०८ बगुले आकाश में उडते हैं, वह सत्य नहीं है। परन्तु सत्य नहीं, इसका कुछ प्रमाण है तेरे पास? आकाश में उड़ते (बगुले को) तेरा हाथ स्पर्श नहीं करता—स्पर्श-छुए तब तो खबर पड़े। समझ में आया? अन्धा था, उसने कहा कि यह चावल और दूध तुझे खाने को देते हैं। दूध कैसा? दूध सफेद (है, ऐसा) दूसरा कहता है। सफेद कैसा? बगुले के पंख जैसा। बगुला कैसा?

फिर उसे आड़ा हाथ रखकर बताया कि देख, ऐसा। तब अन्धा हाथ छुआकर कहता है, यह बगुला मेरे गले नहीं उतरेगा, हों! हिम्मतलालभाई! परन्तु तूने सफेद बगुले का आकार पूछा उसे मैंने कहा। परन्तु सफेद रंग तेरे अन्ध को खबर नहीं पड़ती। सफेद दूध कैसा? कि बगुले के पंख जैसा, हमने तुझे कहा। अब तूने पूछा कि बगुला कैसा? कि बगुला ऐसा कहा। वह कहीं तेरी आँख का विषय नहीं है। तुझे तो आँख नहीं है। और तू कहता है कि ऐसा बगुला मेरे गले नहीं उतरेगा। परन्तु यह गले उतारने की बात यहाँ कहाँ है? उसका सफेद रंग हमें बताना था। इसमें तूने बगुले का पूछा। शामजीभाई!

इसी प्रकार कितने ही अन्धे, आँख की स्पष्टतावाले आकाश में उड़ते पक्षी को-बगुले को ऐसा गिनते हैं। अच्छी आँख हो तो गिनती से बराबर गिने। एक, दो, तीन, चार... अन्धा कहे कि तेरी बात मिथ्या है। मिथ्या का कोई कारण? तू बगुले के रंग को देखता नहीं। आकाश में तेरा हाथ छूता नहीं और उड़ते की संख्या में तेरी नजर स्थिर होती नहीं। नजर ही नहीं, तब स्थिर कहाँ से है? अब... आँख की स्पष्टतावाले के पास जैसे अन्धा दौड़ करता है और होड़ करता है और सन्देह करता है; उसी प्रकार जिसे आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक सर्वज्ञपने की दशा से ज्ञात हुए, उसने जाना और जो कहा, वह जिसे यह आँख उघड़ी नहीं, ऐसा अज्ञानी उनके साथ होड़ करता है कि तुमने देखा, वह सच्चा नहीं। शान्तिभाई! तुझे खबर नहीं, बगुला कहाँ जाता है, कितना उड़ता है और तू मेरे साथ—सूझती आँखवाले के साथ होड़ करता है?

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा देह के अन्दर में विराजता प्रभु चैतन्य, अन्तर के स्वभाव से झबक उठता है। ऐसे तो एक बार बात नहीं की थी? कि पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष की बात एक सेकेण्ड में याद आवे, कल की बात जैसे याद आवे, वैसे साठ वर्ष की बात याद आवे। यह किसकी ताकत है? जड़ की ताकत है? अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प-राग उठे, उसकी ताकत है? यह ताकत ज्ञानस्वभाव की वर्तमान प्रगट दशा के अंश की है। प्रगट दशा के अंश की है। उसका त्रिकाली ज्ञानस्वरूप जो है, वह तो सर्वज्ञपद से भरपूर अन्दर तत्त्व है।

इस एक समय की अवस्था में पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष की बात ऐसे याद करने से एकदम याद आवे कि ऐसा होता है। अरे! जिसे पचास-पचास, साठ वर्ष की बात

याद आवे, वह जरा यदि राग और पुण्य का विकल्प और विकार का भाव दूर करके आत्मा के ज्ञान ध्रुव स्वभाव में एकाग्र हो तो उसे तीन काल-तीन लोक का सर्वज्ञपद प्राप्त हो। समझ में आया?

एक मनुष्य दस-दस हजार पुस्तक पढ़ा हो। दस-दस हजार। लालन (पण्डित) थे न? अपने यहाँ लालन नहीं थे? क्या नाम था? ... नाम था। पण्डित लालन। नाम दूसरा था। लालन तो... था। ... लालन हमारे बारह-बारह महीने सोनगढ़ रहते थे। ९५ वर्ष में (संवत्) २००९ के वर्ष में मगसिर शुक्ल १ यहाँ इस गाँव में गुजरे। इस गाँव में। खबर है न, सब खबर है। तिथि की खबर है, मगसिर शुक्ल-१, २००९ के वर्ष। समझ में आया? वे सोलह वर्ष की उम्र से अभ्यास करते थे। ९५ वर्ष तक अभ्यास (किया)। मुझे दूसरा सिद्धान्त कहना है, हों! दस-दस हजार पुस्तकें पढ़े हुए। आत्मा में कुछ उसका तोल लगता होगा? दरबार! यह तुम्हारे पत्थर का तोल लगे, हों! उठाने में, उस मजदूर को। दस-दस हजार। परन्तु पढ़ा बहुत, हों! वह था खिंचड़ा, यह अलग बात है। परन्तु उसने पढ़ा हुआ बहुत, बहुत पढ़ा हुआ। यहाँ बहुत रहते थे। फिर कहा कि, परन्तु यह तुमने धारण किया उसमें अन्तर है। फिर रोवे। और खिंचड़ा। खिंचड़ा समझ में आया? अपने पौष महीने में खिंचड़ा नहीं बनाते? मूँग, चावल और बाजरा... वह तो चावल का होता है। परन्तु यह तो दाना और जरा कंकड़ इकट्ठा डाला। फिर बात समझे... मेरी बहुत भूल हुई। मुझे दूसरा कहना है।

दस-दस शास्त्र और पुस्तकें पढ़े, तथापि एक मक्खी के पैर जितना भार नहीं होता। वह चीज़ कौन सी है? समझ में आया? भगवान आत्मा अरूपी है। दस-दस हजार पुस्तकें... यह तो अभी ९५ वर्ष की उम्र थी, परन्तु जहाँ करोड़ो वर्ष का, अरबों वर्ष का आयुष्य था, तब उसकी धारण में इतना होता है कि जगत के पदार्थ, उनका क्षेत्र, उनकी अवस्था, उनका काल, उनके भाव इतना ख्याल होने पर भी उसका वजन होता होगा आत्मा में? मनसुखभाई! बस! यह आत्मा अरूपी है। इतना ज्ञान का विकास होने पर भी मक्खी के पैर जितना वजन नहीं होता। और यह सौ-सौ वर्ष की बात याद करने की ताकत वर्तमान प्रगट दशा में संग्रह कर पड़ा है, तथापि उसका वजन नहीं होता। समझ में आया?

और वह आत्मा जो विकार करता है, ध्यान रखना जरा, पहली बात यादगिरी की सिद्ध की। दूसरी अरूपी है, उसमें वजन नहीं, ऐसा सिद्ध किया। तीसरी, आत्मा विकाररहित है, उसका स्वरूप सिद्ध होता है। विकार जवान अवस्था में पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस, चालीस वर्ष की उम्र में साँढ जैसा शरीर और उसमें कुछ पाँच-पच्चीस लाख पैसे हों, पाँच-पचास हजार (होवे तो) मैं चौड़ा और गली सकड़ी। उस समय कुछ... ...भाई! मैं चौड़ा और गली सकड़ी, समझ में आता है या नहीं? हमारे गुजरात में-काठियावाड़ में कहावत है। ओहोहो! हाथ ऐसे लम्बे हो जाये और आसपास के गरीब गरबों को (कहे), खाली करो। क्यों? हमारे आठ लड़के हैं। और उसकी सिफारिश पहुँचे। कोर्ट में कहीं गरीब की सिफारिश पहुँचती होगी। खाली करो, हम चौड़े हो गये अब। एक लड़का... आठ। अब आठ कमरे चाहिए, आठ मकान चाहिए। मैं चौड़ा, गली हो गयी सकड़ी। ऐसे अभिमान (गरूर) में जो पाप किये हों, विषयभोग वासना के लम्पटीरूप से काले कुकर्म किये हों, वह जहाँ वृद्धावस्था आवे, (तब) यह बात याद आती है, बात याद आवे परन्तु वह विकार किया हो, वह अभी नहीं आता। समझ में आया? क्योंकि विकार उसका मूल स्वरूप नहीं है। विकार तो नया करे तो होता है। इसके स्वभाव में विकार नहीं है। अस्सी वर्ष की उम्र में भूतकल के विकार को ऐसे याद करता... आहाहा! देह का अन्त का अवसर आया। भूतकाल में काले कुकर्म पाप किये। आँखें बन्द होने का अवसर (आया)। आहाहा! विकार... ऐसा किया था, ऐसा किया था। उसका स्मरण आवे, ज्ञान आवे परन्तु वह विकार नहीं आता। क्योंकि विकार करे तो आवे और न करे तो न आवे। ...भाई! बराबर होगा? क्या तीन बातें सिद्ध की?

एक तो आत्मा याददाश्त अल्प काल में सौ-सौ वर्ष को याद करे और वह लाख-लाख पुस्तकें पढ़ा होने पर भी वजन नहीं हो, इसलिए अरूपी है। तीसरा, यह विकार हुआ हो जवानी अवस्था में, वृद्धावस्था के समय याद करे—स्मरण करे (कि) ऐसा था, ऐसा था, ऐसा था। परन्तु अभी विकार का प्रसंग नहीं। शरीर जवान नहीं। समझ में आया? इसलिए उसमें तीन बातें सिद्ध हुई कि आत्मा अरूपी है, आत्मा वजनरहित है, आत्मा अल्प काल में स्मृति को कर सके ऐसा है। और वह आत्मा विकार के काल में विकार करता था और अभी अब याद करे, आहाहा! अरे! जिन्दगी पूरी (हो गयी), कहाँ जाऊँगा

अब ? हम आत्मा तो हैं। देह छूटने का भणकार बजी है।

आता है न ? उस भजन में भी आता है। 'हंसलो नानो ने देवण जूनुं थयुं' दरबार! सुना है भजन ? 'मारो हंसलो नानो ने देवण जूनुं थयुं,' यह देह अब जीर्ण हुई। ६०-६५-७०-८० हुए परन्तु हंस छोटा का छोटा। वह तो मेरा बाल और बाल। राग और द्वेष और विकार किया ही करे बालक रूप से। परन्तु इस वृद्धावस्था के काल में जवानी में विकार याद आने पर बीती जवानी के विकार नहीं आते अभी। क्यों ? कि विकार तो नया करे तो होता है। विकार इसके स्वभाव की खान में नहीं है। अर्थात् कि आत्मा का अन्तर स्वभाव अरूपी सब याद करे ऐसा और विकार रहित ऐसा है। न्याय समझ में आया इसमें कुछ ?

ऐसे आत्मा में अन्दर में एकाग्र होकर जिसमें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक देखे, उसके पास अन्ध अज्ञानी होड़ करते हैं। जैसे देखता मनुष्य बगुले की पंक्ति को देखकर १०८ है, ऐसा कहता है। अन्ध कहता है कि तू कहता है, ऐसा नहीं है। तू किस प्रकार कहता है ऐसा नहीं है ? तेरी नजर भी नहीं पहुँचती, हाथ भी नहीं पहुँचता, स्पर्श नहीं पहुँचता। अन्धे को स्वप्न भी अन्ध आते हैं। पूछ देखना किसी अन्धे को। सपना में कुछ रंग देखा ? रंग देखा सपने में ? भाई साहब! जैसा दिन में देखते हैं, वैसा स्वप्न आता है। ऐसे देखते हैं। रंग के सपने अन्ध को नहीं होते। उसे गन्ध और स्पर्श के सपने होते हैं। रंग के नहीं होते।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण याद और ताकतवाला और पूर्ण स्वभाव की सम्पदावाला, उसका जिसे अन्दर रंग लगा और रंग लगकर जिसने सर्वज्ञपद प्राप्त किया, उस सर्वज्ञ ने जगत के तत्त्व देखकर कहे। अज्ञानी उसके साथ होड़ करे, ऐसा नहीं होता। परन्तु तूने रंग देखा नहीं न कभी, अंध! जगत के तत्त्व क्या हैं, तेरे ज्ञान की विकास दशा क्या है, इसकी तो तुझे खबर नहीं और सर्वज्ञ कहते हैं, उसका तू इनकार करता है। अन्ध, सूझते के साथ होड़ करने जैसी बात है। समझ में आया ? मेघजीभाई!

सर्वज्ञ परमात्मा... यह तो पार्श्वनाथ भगवान के ज्ञानकल्याणक का दिन है। सर्वज्ञ हुए हैं आज। पूर्ण त्रिकाल ज्ञान (प्रगट हुआ है)। कल मोक्ष (कल्याणक का) दिन होकर

प्रतिष्ठा है। पंच कल्याणक की विधि स्वर्ग के इन्द्र भी मनुष्यपने में जब मनाते हैं, तब इन्द्र भी उपस्थित होता है। यहाँ तो पुण्य नहीं होता तो इन्द्र कहाँ से आवे ? एक अच्छा राजा भी पुण्य के बिना घर में नहीं आ सकता। इतना पुण्य नहीं कि बड़ा राजा घर में आवे, इसका वास्तु होता हो तो। यह तो और बड़ा पुण्य हो .... दो-पाँच लाख का मकान बनाया हो और पाँच-दस हजार वास्तु में खर्च करता हो तो राजा को बुलावे। परन्तु वह पुण्य हो तो आवे। इतना पुण्य नहीं कि इन्द्र ऊपर से उतरे। पहले के काल में मनुष्य भगवान सर्वज्ञदेव की पूजा और महिमा तथा उनकी भक्ति करते, उस पूजा के काल में इन्द्र भी आकर उपस्थित रहते।

यहाँ कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान ने तीन काल तीन लोक देखे, वाणी में आया, अरे... आत्मा! तेरा स्वभाव ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य आनन्द है। एक बात। तुझसे शरीर, वाणी, मन भिन्न, वे जड़ हैं—अजीव हैं। तू जीव स्वभाव है, यह तुझमें पूर्ण सर्वज्ञ और आनन्द की प्राप्ति करने की ताकत है। उसे हम जीव कहते हैं और शरीर, वाणी और कर्म को अजीव कहा जाता है। तुझमें राग की-लोभ की मन्दता में दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप के भाव हों, उन्हें सर्वज्ञ परमात्मा (द्वारा) पुण्यतत्त्व कहा गया है और जीव की दशा में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना तत्त्व होता है, उसे सर्वज्ञ परमात्मा पापतत्त्व कहते हैं। जीव हुआ, अजीव हुए, पुण्य और पाप।

सर्वज्ञ भगवान ने पुण्य और पाप के दो तत्त्व को मिलाकर उसे आस्रवतत्त्व (कहा) है। आस्रव अर्थात् जिसके द्वारा नये आवरण आवे, ऐसे भाव की दशा को भगवान आस्रव कहते हैं। उस आस्रवरहित स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करने से शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की एकाग्रता होने से उस आनन्द और शान्ति की दशा का अविकारी अंश प्रगट होता है, उसे सर्वज्ञ भगवान संवर और निर्जरा कहते हैं। संवर, निर्जरा शास्त्र भाषा है। तुम्हारी भाषा से कहें तो शुद्धि को—राग के अभाव की शुद्धि को कर्म के अभाव का कारण कहा जाता है और निर्जरा अर्थात् आत्मा का भान होकर जो शुद्धि चैतन्य की शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हुई, उस शुद्धि की वृद्धि हो, उसे भगवान निर्जरा कहते हैं। निर्जरा अर्थात् राग का खिरना और कर्म का झरना, ऐसी अन्तर की दशा को भगवान निर्जरा कहते हैं। यह आत्मा अपने

स्वभाव को जितना भूलकर पुण्य-पाप में अटकता है, उसे भगवान बन्धतत्त्व कहते हैं और उस बन्ध का अभाव करके आत्मा पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करे, उसे सर्वज्ञ परमात्मा मोक्षतत्त्व कहते हैं। समझ में आया? यह नव तत्त्व।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वरूप प्रगट हुआ। अन्दर में चैतन्य सूर्य प्रगट हो गया है, उन्होंने यह नव भाव का स्वरूप वर्णन किया। तत्त्व कहो या भाव कहो। समझ में आया इसमें कुछ? अब इन नव के कार्य अलग, मार्ग अलग, फल अलग। बात तो बहुत सूक्ष्म, हों! दरबार! उस मार्ग की अपेक्षा यह मार्ग ही अलग लगता है। वे रुपया-बुपिया पुण्य के कारण बाहर से इकट्ठे हो जायें, हों! परन्तु यह... कहते हैं, ऐसे पैसे पैदा हुए और अमुक यह किया और मेघजीभाई ने यहाँ से किया और अमुक ने यहाँ से किया। कहाँ गये भगवानजीभाई? है न, यहाँ बैठे हैं। इकट्ठा-बिकट्ठा किया नहीं किसी ने, हों! हराम। इसमें इसका रागतत्त्व है न? पाप का विकल्प, वह किया था। उसे भगवान पापतत्त्व कहते हैं। आया उसे अजीवतत्त्व कहते हैं। वह तो जड़ है, अजीव है। और उस पापतत्त्व में राग घटाकर दान, दया आदि में धर्म के शुभ खाते में भाव करना, उसे भगवान पुण्यतत्त्व कहते हैं। इस पुण्य और पापतत्त्व की रुचि छोड़कर अन्तर के सच्चिदानन्दस्वरूप की प्रतीति और अनुभव करना, इसे भगवान कर्म के अभाव के कारणरूप कहते हैं। आंशिक शुद्धि और आंशिक शुद्धि की वृद्धि कहते हैं और पूर्ण एकाग्र होकर पूर्ण अरागी दशा प्रगट होना, उसे भगवान आत्मा की पूर्ण शुद्ध मोक्षदशा कहते हैं।

'मोक्ष कहा निज शुद्धता'। श्रीमद् ने २९ वर्ष में १४२ श्लोक बनाये हैं। श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं न? ववाणिया। सात वर्ष की उम्र में जातिस्मरण था। पूर्व भव का भान सात वर्ष की उम्र में, हों! ववाणिया में एक मुर्दा जलाने ले जा रहे थे, साथ के पड़ोसी को। बालक को प्रेम होता है न साधारण रीति से। पड़ोसी ऊपर और पड़ोसी को उनके ऊपर प्रेम था। पड़ोसी मर गया। छोटी सात वर्ष की उम्र। ऐसा पूछा, बापूजी! इनके (श्रीमद् के) दादा थे। बड़े पिता के पिता। यह क्या है? लड़के को भूलाने के लिये कहा, चला जा यहाँ से, तेरा काम नहीं। वह मर गया, ऐसा कहने से इसे त्रास होगा तो? है न तुम्हारी सब? छोटे

लड़कों को नहीं शामिल होने दिया जाता। निकल जा यहाँ से। बड़ों की सब... बाहर निकल गये, परन्तु विचक्षण व्यक्ति थे। पूर्व के संस्कार लेकर आये थे। यह मुर्दा बाँधा। यह क्या करते हैं ? ले गये ववाणिया में बाहर श्मशान में। छोटा लड़का। वहाँ तो जाया नहीं जाए, पिता ने इनकार किया था। एक छोटा वड़ था। उसमें एक डाली निकली हुई वड़ में से आधे हाथ ऊँची। डाल पर पग रखकर ऐसे देखते हैं। क्या है यह ? देखते हैं तो यह क्या ? उसमें से कोई तत्त्व निकल गया। ... जलाते हैं। ऐसे सात वर्ष की उम्र में विचार आने पर अन्दर में राग मन्द होकर इस भव से पहले कहाँ था, इसका भान वड़ की डाल पर चढ़ते सात वर्ष की उम्र में अर्थात् संवत् १९३१ के वर्ष में जातिस्मरण हुआ और फिर सोलह वर्ष में पूरी मोक्षमाला—१०८ पाठ बनाये। समझ में आया ? और जब उनकी २९ वर्ष की उम्र हुई, तब एक यह आत्मसिद्धि बनायी। १४२ गुजराती (पद लिखे)। उसमें यह एक श्लोक रखा है।

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ,
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ॥

निर्ग्रन्थ भगवान वीतरागी; ग्रन्थ अर्थात् जिनके राग-द्वेष गल गये हैं और अविकारी दशा जिनकी पूर्ण सर्वज्ञपदरूप से प्रगट हुई है, ऐसे निर्ग्रन्थ परमात्मा ने ऐसा कहा है कि इस आत्मा की पूर्ण शुद्धता प्रगट हो, उसे भगवान मोक्ष कहते हैं। समझ में आया ? समझ में आता है हिन्दी लोगों को ? आत्मा की परम शुद्धता शक्तिरूप से परिपूर्ण पड़ी है। उसकी पूर्ण प्रगटता तो भगवान मोक्ष कहते हैं। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ।' ऐसी पूर्ण शुद्ध दशा की जिस कारण से प्राप्ति होती है, वैसा अन्तर कारणस्वभाव की दृष्टि, लीनता होना, वह पूर्ण शुद्धता का कारण मोक्षमार्ग कहा जाता है।

'समझाया संक्षेप में...' मनसुखभाई ! .... है न ? यह तो २९ वर्ष की बात है, हों ! समझाया। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने वाणी में समझाया। 'सकल मार्ग निर्ग्रन्थ...' सकल निर्ग्रन्थ राग-द्वेष रहित अपने श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में रमणता करने से पूर्ण दशा हुई तो पूर्ण दशा द्वारा भगवान ने उपदेश दिया। आज केवलज्ञान का दिन है। भगवान केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, तब इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। इच्छा नहीं, ॐ ध्वनि अन्दर (उठती है)। अपन बोलते हैं, वैसी वाणी उन्हें नहीं होती। समझ में आया ? समझ में आता है ?

पूर्ण दशा हुई। ॐ ध्वनि (खिरी)। इच्छा बिना पूरे अंग में से निकलती है।

उस उपदेश में ऐसा आया कि छह पदार्थ जगत में अनादि-अनन्त हैं और नौ तत्त्व उसका विभाग होता है और नौ तत्त्व का कार्य कहो, मार्ग भिन्न-भिन्न है। अजीव का कार्य अजीव से होता है। जीव स्वभाव का कार्य ज्ञाता-दृष्टा होकर उसका कार्य होता है। पापतत्त्व का कार्य दु:खरूप दशा तीव्र होती है। पुण्यकार्य की पुण्यभाव की दशा मन्द रागरूप, मन्द दु:खरूपी दशा होती है। दोनों मिलकर आस्रव है, वह दु:ख की दशा है और आत्मा उसमें रुकता है, (वह) बन्धदशा भी दु:ख का कारण है और आत्मा अन्तरस्वभाव में एकाकार होकर जो शान्ति अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि की प्राप्ति होती है, उसको भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं। उसका कार्य निर्मल दशा प्रगट होना, वह उसका कार्य है। नेमचन्दभाई! नौ का कार्य कहा। यह खिंचड़ा करते हैं न, खिंचड़ा? नौ तत्त्व की खबर नहीं होती।

भगवान त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक सेकेण्ड अके असंख्य भाग में प्रत्येक पदार्थ की अवस्था समय-समय में उत्पन्न होती है, पुरानी नाश होती है, और हमेशा ध्रुवपने रहता है, ऐसा बोध भगवान को हुआ। एक बार आनन्दघनजी का पद कहा था।

थिरता एक समय में ठाने, उपजे-विणसे तब ही,
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कब ही,
अवधु नटनागर की बाजी, जाणे न बामण काजी रे... आतम
नटनागर की बाजी...

शामजीभाई! आनन्दघनजी हो गये हैं न? 'थिरता एक समय में ठाने, उपजे विणसे तब ही,' प्रत्येक पदार्थ आत्मा और परमाणु / एक रजकण-पॉइन्ट अन्तिम टुकड़ा है, भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा है, फरमाया है, ऐसा है। देखा है, फरमाया है, ऐसा है। जैसे शक्कर हो। तो शक्कर को देखनेवाला, शक्कर देखता है, शक्कर, शक्कर में है और शक्कर वाणी निकलती है कि यह शक्कर है। वाणी, ज्ञान और शक्कर तीन पदार्थ हैं। ऐसे जगत में जैसा पदार्थ था, वैसा ज्ञान हुआ, ऐसी वाणी निकली। मनसुखभाई! वाणी। बहीखातों में मिलान करते हैं या नहीं बनिये? शाम को नामा लिखते हैं न नामा? ७३७.५० यहाँ निकलते हैं। देखो देखा थैली मैं। थैली में ७३५.५० है। दो (रुपये) कहाँ गये? कौन ले

गया ? लड़के को पूछा। चार आना टूटता हो तो बनिया आठ आने का कैरोसीन जलाये। मिलान क्यों नहीं मिलता ? थैली में इतने, यहाँ लिखा ७३७.५० है, यहाँ हाथ में ७३५.५० कैसे ? इस प्रकार बिना मिलान का हो तो मिलान करते हैं कि कोई ले गया है इसमें से।

इसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड की थैली में से नौ तत्त्व और षट् द्रव्य भगवान सर्वज्ञ देव ने देखे हैं, ऐसे देखे हैं। देखा है, ऐसा कहा है, उसमें फेरफार हो तो थैली में ऐसा नामा में नहीं है और नामा है, वैसा थैली में नहीं है तो उसकी दृष्टि में फर्क है। कान्तिभाई ! कहाँ मिलान करना है ? दिवाला निकालना हो, वह मिलान नहीं करता... ले ले, ...बहियाँ रख दे।... नहीं, बापू ! लो, दरबार ! ऐसा करते हैं न ? पहुँचता नहीं। कौन नामा मिलावे यहाँ। क्योंकि फिर देखेंगे बहियाँ। साहूकार को दरकार है कि कितनी पूँजी है, कितना लेना है, कितना देना है, कितना अपने आप जमता है, मिलान करके सावधानीपना रखना है।

इसी प्रकार जगत में सर्वज्ञ परमात्मा ने नौ पदार्थ / नौ तत्त्व—दो पदार्थ और उनकी सात अवस्थायें (देखी है)। जीव और जड़ दो पदार्थ हैं। है तो अनन्त, जाति से दो हैं। उसमें सात अवस्था है। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। बीच में नौ की बात कर गये हैं। हैं नौ। नौ तत्त्व जैसे हैं, वैसे अन्तर की दृष्टि से मान ले तो आत्मा में सम्यग्दर्शन हो जाता है। समझ में आया ? खबर नहीं होती (कि) नौ किसे कहना ? नौ के आँकड़े की खबर...

श्रीमद् ने लिखा है। मोक्षमाला बनायी है न सोलह वर्ष में (कहते हैं), नौ तत्त्व के नामवाले भी कोई थोड़े होंगे। ऐसे अँगुली के पोर में लिखा है उसमें। सोलह वर्ष की उम्र में। नौ तत्त्व के अर्थ समझनेवाले तो अँगुली के पोर पर गिने इतने होंगे। एक भाई ने इनकार किया कि इतने भी नहीं होंगे। बात सत्य, हों ! कहीं खबर नहीं होती। किसे कहना आत्मा, किसे कहना जड़, किसे कहना पुण्य और कहाँ रहता होगा पाप। और वह पुण्य-पाप क्या है और उसका अभाव अन्तर में कैसे हो और धर्मदशा कैसे हो, इसके नाम और अर्थ की भी खबर नहीं होती। कान्तिभाई ! मोक्षमाला में यह पाठ लिखा है।

नौ तत्त्व के नाम कोई आते हों तो ठीक से और उनके अर्थ तो अँगुली के पोर पर गिने इतनों को आते हों और उनका भावभासन अन्दर में विरल... विरल... विरल भरतक्षेत्र

में हो गया है। क्यों बराबर है ? वकील ! इन्दौर के वकील हैं। कहो, समझ में आया ?

ये नौ तत्त्व सर्वज्ञ भगवान ने कहे, उसमें एक-एक द्रव्य जड़ और चैतन्य एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में स्थिरता—पदार्थ ध्रुव रहता है। 'थिरता एक समय में ठाने, उपजे विणसे तब ही', नयी-नयी अवस्था से प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होता है और उसी समय मे पूर्व की अवस्था का नाश होता है। अन्धेरे का नाश, प्रकाश की उत्पत्ति। लोहा होता है, लोहा। जंग का जिस समय में नाश, उस समय में प्रकाश की उत्पत्ति। उसी समय लोहे का ध्रुवपना (रहता है)।

इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु और आत्मा, सर्वज्ञ भगवान की वाणी में निकला कि प्रत्येक वस्तु अपनी जाति रखकर, ध्रुवता रखकर नयी-नयी अवस्था उत्पन्न होती है और पुरानी नाश होती है। दूसरा तत्त्व दूसरे को कुछ अन्दर कर सके, ऐसा वस्तु का स्वभाव तीन काल-तीन लोक में नहीं है। शामजीभाई ! बराबर होगा यह ?

यहाँ आचार्य महाराज... अपने जरा दान का अधिकार है। यह दान भगवान ने कहा है। सर्वज्ञ परमात्मा ने दान का अधिकार लिया है। क्या कहते हैं ? देखो !

सत्पात्रदान-जनितोन्नत-पुण्यराशिः
एकत्र वा परजने नरनाथलक्ष्मीः।
आद्यात्परस्तदपि दुर्गत एव यस्मात्,
आगामिकालफलदायीन तस्य किंचित्।।२०।।

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा के स्वरूप को शुद्ध अखण्डानन्द की दृष्टि के धर्म की भूमिका में भानवाले को राग की मन्दता में जो लक्ष्मी आदि का उपयोग और शुभखाते में उपयोग जो राग की मन्दता का करता है, उसे भगवान (द्वारा) व्यवहारधर्म कहा जाता है। व्यवहारधर्म। निश्चयधर्म—राग और पुण्य के विकल्परहित की अन्तर्दृष्टि और लीनता में आनन्द का स्वाद आवे, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (आवे)। वह स्वाद कैसा होगा ? ...भाई ! लड्डू का स्वाद सुना है, दूधपाक का सुना है। दूधपाक होता है न ? तुम्हारे क्या कहते हैं ? खीर कहते हैं ? हाँ, तुम्हारे खीर कहते हैं, हमारे यहाँ दूधपाक कहते हैं। खीर में चावल बहुत होते हैं, दूध थोड़ा होता है और दूधपाक में दूध बहुत होता है और चावल

एक सेर में एक रुपया भार (होता है)। ऐसा सुना है, हों! अपने को कुछ खबर नहीं, यहाँ बहुत वर्ष हो गये। इतना सुना है कि एक सेर दूध में एक रुपया (भार) के चावल (हो) तो उसे दूधपाक कहा जाता है। और दूध में चावल अधिक हो तो खीर कहलाती है। अभी दूधपाक खाये तो ले। खाया। फिर कड़ाही को... कड़ाही को... कलछी होती है न लोहे की, यह स्वाद बहुत लगता है। वह कस तो... उसमें... धूल में वह स्वाद उसका नहीं, प्रभु! तुझे वहाँ राग आता है, बहुत अच्छा, उस राग का स्वाद तुझे आता है। मानता है कि इसका (खीर आदि का) स्वाद (आता है)।

इसी प्रकार आत्मा राग और पुण्य के विकल्प की रुचि छोड़कर आत्मा के स्वभाव की दृष्टि का स्वाद ले, तब उसे रागरहित का (अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है)। वह राग का स्वाद है दूधपाक में। यह रागरहित अनाकुलता का स्वाद अन्दर में आनन्द का अनुभव आना, उसे भगवान (द्वारा) सच्चा निश्चय—परमार्थ धर्म कहा जाता है। बराबर है? उस धर्म की भूमिका के काल में कहते हैं कि राग की मन्दता का पुण्यधर्म होता है। धर्म-धर्म शुभ खाते। शुभ खाता तो बहुत... व्यापार के लिये नहीं करते? शुभ खाता निकालते हैं। और वह भी शुभ खाते का अंक रखते हैं और अवसर आवे उसमें खर्च करे। वे मानो कि कछु ... में से दिया है। होवे शुभ खाता, उसमें से देना हो, हों! ...भाई! बनियों की सब आदत है न। ...अन्दर ठहराना, बाहर में ऐसा मनाना, दूसरे को ऐसा मनवाना।

यहाँ तो आचार्य आगे कहेंगे, जो कोई प्राणी लक्ष्मी और जो कुछ उसे साधन मिले, उन्हें देव के प्रसंग के कार्य में कदाचित् लोभ करे नहीं और कम करे तो उसमें पाप कम हो गया। परन्तु शुभ खाते के प्रसंग में जो लोभ को खींचे कि इतना नहीं, इतना करूँ और इतना (करूँ), मुश्किल करे, हों! बनिया पचास-पचास लाख पड़े हों तो मुश्किल से गिने। दो हजार दूँगा या पाँच हजार दूँगा? तेरे ब्याज में... शास्त्र तो ऐसा कहता है, जितनी सम्पत्ति की उसे बारह महीने की आवक हो, उसे भगवान शास्त्रकार ऐसा कहते हैं कि कम से कम दसवाँ भाग तो इसे दान में बारह महीने में खर्च करना चाहिए। मणिभाई! कठिन पड़े, हों! लोगों को। चार लाख की आमदनी हो तो उसका दसवाँ भाग कितना होता होगा? चालीस हजार! चालीस हजार! चालीस हजार खर्च करना कठिन पड़ता है।

शास्त्रकार स्वामी कार्तिक के अन्दर संस्कृत टीका है। जो कोई धर्मी नाम धरावे...

धर्म नाम धराने में सामने प्रमुख (रहे) और धर्म खाते में राग और तृष्ण घटाने के प्रसंग मिले तो विचारकर गिन-गिनकर गणना गिने। उसको पूछे, कैसे होगा? तुम्हें कितना खर्च करना है? इसके पश्चात् गिनकर मिलान खाये कि इतना भी... गिन जाये, अधिक भी न लिख जाये, वह कम लिखावे और अधिक (लिख न जाये), ऐसे तो मुश्किल से सब (गिने)। लड़के और लड़की का विवाह करना हो तो जल्दी से कुछ गिने नहीं। बराबर (खर्च करे)। और उसमें समधी मिला हो सत्ताप्रिय प्रकृतिवाला सरीखा। सत्ताप्रिय समझते हो? सत्तावाला बराबर मिला हो। ठीक से न दे तो.... इसके साथ सम्बन्ध किया, कुछ मिला नहीं,... यह सब बनियों में बातें चलती हैं, हों!

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं, धर्म खाते में जो लोभ करे, उसे पुण्य का धर्म प्रगट नहीं होता। '**जिस मनुष्य के पास तीनों जगत को वश करने में मन्त्र स्वरूप दान, व्रतादि से उत्पन्न हुआ धर्म मौजूद है...**' यहाँ तो व्यवहारधर्म—पुण्यधर्म की बात है, हों! निश्चय की बात तो की। रागरहित दृष्टि हुई है, पश्चात् उसे पुण्यधर्म होता है। उस मनुष्य को उत्तमोत्तम गुण, उत्तमोत्तम सुख, बाहर का, उत्तमोत्तम ऐश्वर्य अर्थात् बड़प्पन, '**सब अपने आप आकर वश हो जाते हैं। इसलिए उत्तमोत्तम गुण के अभिलाषियों को दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान के नाम स्मरण भक्ति में अपनी लक्ष्मी और शरीर में भी राग घटाकर ममता घटाना चाहिए** कि जिसके कारण पुण्य होकर उसे भविष्य में पाथेय कहलाये, बाहर का पाथेय। शामजीभाई! जाते हैं न? पाथेय नहीं ले जाते? एक गाँव से दूसरे गाँव जाये तो पाथेय ले जाते हैं थोड़ा। रोटी और दाल (ले जाते हैं)। दाल तो नहीं लेकर आवे, रोटी और अचार (ले जाते हैं)। अन्त में ढेबरा अच्छे, उसकी अपेक्षा अच्छे हों तो पेड़ा और गाठिया (ले जाते हैं), परन्तु साथ में कुछ पाथेय तो ले जाते हैं। यहाँ से कहीं जाना है? कि है यहाँ पड़ाव? तम्बू ताने लगते हैं यहीं के यहीं सदा शाश्वत रहने के।....भाई! तम्बू होते हैं न तम्बू? उसमें एक सल कम पड़े तो सुहावे नहीं।... करते हैं न? खेत में। ऐसी कील खींचकर किया हो, उसमें कील कुछ ढीली पड़ गयी हो, दाहिनी ढीली होवे तो यह सल कैसे पड़ा? सल समझ में आता है? सल। करचली पड़े, करचली पड़े। सल कैसे पड़ा? कुछ कील में ढिलाई हुई होगी। एक सल सुहाता नहीं।

इस शरीर के परमाणु पलट जायेंगे। सल क्या, पूरा ऐं... ऐं... हो जायेगा। पच्चीस

वर्ष में हार्ट फेल ! साठ वर्षवाले को हो, सत्तरवाले को हो। इसका तो पतला शरीर था, ... स्थूलवाले को हो। फिर ऐसी बातें करे। ... अभी कुछ सुना था। छोटी उम्र का बेचारा, चालीस वर्ष का। हार्टफेल। ऐसे निरोगी। ... यह तो आयुष्य की पूर्णता हो (तो) इन्द्र को ऊपर से उतारकर देव-देवला की मान्यता करके मर जा (तो भी) एक समयमात्र भी आयुष्य बढ़े, ऐसा नहीं है। जहाँ-तहाँ सिर फोड़ते हैं न ! भगवान यह दे दे और अमुक यह दे दे और कोई बाबा आकर दे दे कुछ मन्त्र-जन्त्र और या डोरा-धागा (करे)। मूढ़ को कुछ खबर है ? एक पाई भी तेरे पुण्य के बिना मिले ऐसी नहीं है। मर जाये तो भी मिले, ऐसी नहीं है। वे कहते हैं मेरा नाम लेना, तुझे पैसा मिलेगा। धूल भी नहीं मिलता, सुन न ! यह सब स्वार्थ के पुतले अपनी जेब भरने और मान बढ़ाने को बातें कर रहे हैं। वीरजीभाई !

यहाँ भगवान कहते हैं, अरे... भाई ! तुझे यह सम्पदा मिली, उसमें यदि राग की मन्दता न करे और ऐसे दान के अधिकार सुनकर यदि तुझे ठीक न लगे... उल्लू को सूर्य का प्रकाश अच्छा नहीं लगता। क्या कहा ? यह उल्लू नहीं होते ? उल्लू। ... उसे उजाला अच्छा नहीं लगता। ... पड़ गया उसे सूर्य की किरण लगी। उसके पास चमगादड़ आये, चमगादड़। चमगादड़ होती है न ? पीपल में उल्टे सिर लटकती है। चमगादड़, कानकडिया और उल्लू, तीन समान होते हैं रात्रि के लिये। दिन कभी देखा न हो। एक बार चमगादड़ आकर कहती है, इस दुनिया में कहते हैं कि सूरज है। नीचे पड़ा था और कुछ गर्म-गर्म लगता था। ... गर्म-गर्म होवे तो ना नहीं। परन्तु सूरज गर्म नहीं होता, सूरज तो श्वेत / सफेद होता है। गर्म लगे न पंख में ? आँख से तो देखा नहीं ऐसा कि सूर्य कैसा होता है ? वागोल कहती है, कुछ न कुछ लगता है। लोग कहते हैं (ऐसा)। मुझे भी लगता है। मेरी पंख गर्म होते थे। गर्म-गर्म होता है तो ना नहीं। नेमचन्दभाई ! अन्ध के अन्ध तीनों। वागोल भी अन्ध, कानकडिया भी अन्ध और उल्लू भी अन्ध। उस उल्लू को जैसे सूर्य का प्रकाश अच्छा नहीं लगता। मनसुखभाई ! समझ में आया ? इसमें कहा है। आगे गाथा में कहा है।

इसी प्रकार हम राग और तृष्णा घटाने के लिये पुण्य खाते के शुभधर्म की बात करते हैं, वह कंजूस को—उस उल्लू को सूर्य प्रकाश अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार इसे अच्छा नहीं लगता। भगवान पुण्यतत्त्व का वर्णन करे तो इस प्रकार का करते हैं। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में आया हुआ है कि इसका नाम पुण्य कहते हैं। राग मन्द करके शुभ खाते में भाव

करे तो उसे पुण्यतत्त्व कहने में आता है। समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में यह नयी दशा करे, पुरानी दशा जाये, ध्रुवपने रहे। प्रत्येक तत्त्व का—जड़ और चैतन्य का ऐसा स्वरूप है। ऐसे दृष्टि में यदि आवे तो उसे राग मन्द करके, आत्मा अत्यन्त रागरहित चीज़ है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई, उसे सम्यग्दृष्टि बैठी। उसे राग तृष्णा घटाने का भाव हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

कहते हैं, **एक मनुष्य तो उत्तम पात्रदान से पैदा हुए श्रेष्ठ पुण्य का संचय करता है और दूसरा राज्य-लक्ष्मी का अच्छी तरह भोग करता है,...** खा-पीकर मौज करता है। भोग। और एक लक्ष्मी का दया, दान, भक्ति, प्रभावना, पूजा में उपयोग करता है। दोनों उपयोग तो करते हैं। **परन्तु उन दोनों में राज्य-लक्ष्मी का भोग करनेवाला दूसरा पुरुष ही दरिद्री है...** भिखारी है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि पूर्व के पुण्य खा जाता है। भविष्य में भिखारी होनेवाला है। और जो आत्मा दान, दया, भक्ति के लिये राग मन्द करके पुण्य का भाव करता है, वह वर्तमान भले दरिद्र हो परन्तु भविष्य में वह लक्ष्मीपति और राजपति होनेवाला है। वह रंक होगा और यह राजा होगा। बराबर होगा? कान्तिभाई!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **आगामी काल में उसको किसी प्रकार की सम्पत्ति आदि का फल नहीं मिल सकता,...** जो कोई दान, पूजा, भक्ति, भगवान सर्वज्ञ परमात्मा की मूर्ति, उसकी पूजा, उसकी भक्ति, उसके मन्दिर खाते जो कुछ देते... आगे सब लेख हैं। आपने तो यहाँ थोड़ा है न। रात थोड़ी और वेष अधिक, ऐसा कहते हैं न? कथन तो बहुत प्रकार के होते हैं, कुछ पूरा हो ऐसा है इसमें? यह दान, पूजा, भगवान की भक्ति में और राग घटाते हैं, कहते हैं कि उसकी सम्पत्ति उसने वास्ते लगायी है। और भोग के लिये खा-पीकर मौज करता है, वह भविष्य में भिखारी होनेवाला है।

आगे दूसरी एक बात करते हैं। एक बार नानालालभाई थे। गिरनार। पालीताणा नहीं वह कारीगरी? गिरनार, गिरनार। पहली बार (संवत्) १९९६ के वर्ष में गिरनार गये। नानालालभाई साथ में थे। ऊपर कारीगरी बहुत (थी)। कारीगरी ऐसी कि उसने उस समय की कारीगरी में... ऐसी बारीक धूल निकालकर दे, उतनी चाँदी उसे दे। पत्थर की कारीगरी में से उसे निकालकर चाँदी दे। फिर वहाँ १९९६ में बात हुई थी।

मुमुक्षु : आबू में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आबू में तो है, मैं तो यहाँ गिरनार की बात करता हूँ। आबू में तो है, हमने सब देखा है। आबू में तो बहुत है। वह तो बहुत करोड़ की है। यहाँ तो गिरनार में थोड़ी कारीगरी है। आबू में तो बड़ी है। बहुत है। गोखला करे न ? देवरानी-जेठानी के। वह तो गोखला बड़े होते हैं। करोड़-करोड़ के। सब देखा है। हिन्दुस्तान में अठारह हजार मील देखा है। समझ में आया ? क्या कहना है ?

तब मैंने ऐसा कहा था, यह पैसा खर्च करने से कम नहीं होते। बिना खर्च करने से पुण्य समाप्त हो तो समाप्त हो जाते हैं। चन्दुभाई ! समझ में आया इसमें कुछ ? समझ में आता है ? प्रवीणचन्द्रजी ! क्या कहते हैं ? लक्ष्मी खर्च करने से कम नहीं होती। खूटते नहीं को क्या कहते हैं ? खत्म नहीं होती। खर्च करने से खत्म नहीं होती। परन्तु बिना खर्च किये हुए भी पूर्व का पुण्य क्षय हो गया, बिना खर्च किये भी खत्म हो जायेगी। समझ में आया ? लक्ष्मी खर्च करने से खत्म नहीं होती, बापू ! यह तो पूर्व का पुण्य हो, मिलती ही है। कुँए का पानी होता है न ? पानी कुँआ निकालता है। यहाँ बोटाद के पास जनडा का कुँआ है। बोटाद के पास। ...सोळ समझे ? चार बाजू चार, ऐसे सोलह। अगाध पानी। इतना अगाध पानी कि एक कुँए की... थी इतना कुँआ खोदा था। पानी निकला नहीं। एक थोड़ा पत्थर रह गया चार अंगुल। उस कुँए में चार अंगुल पत्थर रह गया। बहुत खोदा, कायर हो गये। बहुत रुपये खर्च किये। खाली छोड़कर चले गये। उसमें कोई एक बारात निकली, बारात—यह विवाह। सवेरे पानी पीने के लिये जल्दी... अंधेरा था। डाला घड़ा और पानी। पानी नहीं मिलता। खाली कुँआ था। फिर ऊपर पत्थर पड़े थे दस-दस मण के, बीस-बीस मण के। अन्दर जातो हैं, पानी नहीं आता। बारातवाले अन्धेरे में एक पत्थर मारा, अन्दर डाला। चार-छह अंगुल का एक पत्थर रह गया था, नीचे अगाध पानी। ऊपर से जहाँ पत्थर गिरा, उस पत्थर के टुकड़े हो गये। इतना पानी निकला कि... परन्तु पानी खत्म नहीं होता। समझ में आया ? मनसुखभाई ! यह तो दृष्टान्त है। बोटाद के पास जनडा, जनडा। जनडा का कुँआ। ऐसा कहा जाता है।

यह भगवान आत्मा अन्दर ज्ञानजल और आनन्द से इतना भरा है। राग को मन्द करते, करते, करते हाथ नहीं आता। थकने कि यह तो आत्मा में कुछ लगता नहीं।

मोहनभाई! यह तो प्रत्यक्ष बनी हुई बात है, हों! प्रत्यक्ष बनी हुई बात है। ... पत्थर की वह रह गयी। बारातवालों ने डाला पत्थर। ... बारात थी न, बड़ा पत्थर पड़ा, दरार पड़ गयी। एकदम पानी उछला। इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञपद के स्वभाव से पूर्ण भरा है। उसे यह राग को मन्द करते, मन्द-तीव्र करते-करते घटाये परन्तु आत्मा हाथ नहीं आता। सूझ नहीं पड़ती, इसमें कुछ आत्मा हाथ नहीं आता। एकबार अन्दर में राग और पुण्य के विकल्प से पार होकर अन्दर की एकाकार देख ... जनडा का कुँआ है। यह १९८५ के वर्ष की बात नाग्नेश में की थी। हरजीवन मास्टर थे। ... कहा, यह जनडा का कुँआ आत्मा है। अन्दर बेहद चैतन्य-जल पड़ा है, उसे रोकता कौन है? शुभ पुण्य... नहीं, शुभभाव की भी दरकार नहीं, उसे तो आत्मा का पता लगता नहीं परन्तु शुभभाव करके उसकी रुचि में पड़ा है, शल्य पड़ा है अन्तर चैतन्य में प्रवेश करने में।

एक बार करेडिया (पुरुषार्थ) करके... करेडिया को क्या कहते हैं? करेडिया समझते हो? नहीं समझते? पुरुषार्थ करके। तुम्हारी भाषा हमें काठियावाड़ी में आती नहीं। ... थोड़ा हिन्दी और थोड़ा गुजराती, इसमें कुछ सरीखा नहीं आता। कमर कसकर। कमर कसकर। करेडिया होकर, ऐसा कहते हैं न? एकबार चैतन्यमूर्ति प्रभु, राग की तीव्रता हो तो पाप है। ऐसा धर्म जो भगवान की पूजा, भक्ति में राग की मन्दता (होवे वह) पुण्य है। और पुण्य से पार होकर, दृष्टि में से निकाल डालकर ... हो, उसका प्रेम छोड़कर भगवान ज्ञान-जल निधि चिदानन्द पड़ा है, उसमें प्रवेश करे तो उसे शान्ति के जल का स्वाद आता है और ख्याल में आता है कि इस पूर्ण शान्ति का पिण्ड ही आता है। शामजीभाई!

वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।

हीजड़ा-पवैया जैसे लड़ने जाये, वे वापस मुड़ते हैं। ... बापू तेरे। खबर है न? ... कहाँ गये? भाई नहीं? वीरजीभाई कहाँ बैठे हैं? समझ में आया? जामनगर में पावैया थे। बड़ी पुलिस रखे हुए। साहेब! तुमने पुलिस को रखा, खर्च देना पड़ेगा। इसलिए हमें रखो न। लट्ठ जैसा पावैया हो। हो हीजड़ा। ताकत कैसी अन्दर शरीर में। तुम नहीं कर सकते हो। परन्तु हम करेंगे? बराबर पुलिस के वस्त्र पहनाये। उसमें राजा ने आकर गायें घुसायीं। उस समय ऐसा था। गायें घुसाये। गाय को लेने जाना चाहिए। सामने लड़ना चाहिए, नहीं

तो हार जाये। गायें घुसायीं और गाय लेकर जहाँ आये, परन्तु यह गायें जाती हैं। वह सामने लूट करने आये। तैयार होओ, हीजड़ों को कहता है। पुलिस रखी थी। लट्ठ जैसे बड़े। वे सामनेवाले तो बौने। आहाहा! यह तो भारी जब्बर। उसमें कोई नदी का खड़ आया। खड़ उतरने पर उन पावैया की भाषा बोले। उनकी भाषा। ... यह तो हीजड़े लगते हैं। वापस मुड़ो, वापस मुडे और भागे। ... तेरे... गीत गाते हैं, बापू! पुरुष में हमारा काम नहीं, हों! कहाँ गये ? वीरजीभाई हैं या नहीं ? वीरजीभाई ने कहा था। यह बैठे। इन वीरजीभाई ने ही कहा था। समझ में आया ?

इसी प्रकार जिसे आत्मा... शास्त्रकार कहते हैं, वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा कहते हैं, पुण्य-पाप, ऐसी विकार की रुचि पड़ी, वह अन्तर में जाने के लिये नपुंसक और हीजड़ा है। आहाहा! कनुभाई! आता है कहीं ? समयसार में आता है। समयसार में दो जगह आता है। लालचन्दभाई! समयसार में अजीव अधिकार में दो जगह आता है। एक पुण्य-पाप के अधिकार में, एक अजीव में।

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा फरमाते हैं, अरे! तेरा चैतन्यधन अन्दर आनन्दकन्द पड़ा है। परन्तु पुण्य के, पाप के प्रेम के प्रेमीपन की दृष्टि में वह धन तुझे नजर नहीं पड़ता। इसलिए कहते हैं कि जिसे... अभी पाप घटाकर पुण्य करना इसके भाव की ताकत नहीं, उसे पुण्य के भाव की रुचि छोड़कर अन्दर में जाये, कहते हैं कि बड़े-बड़े सामायिक के व्रत ले, महाव्रत धारण करे, नाम ले, परन्तु इसे विकार से पार जाकर चैतन्यमूर्ति में दृष्टि करना (यह नहीं हो तो)। उसे शास्त्रभाषा में संस्कृत में क्लीव कहते हैं। क्लीव-नपुंसक-पावैया है। उसे वीर्य नहीं होता। ... हो ऐसा वीर्य नहीं होता। उसे इन्द्रिय जागृत नहीं होती।

इसी प्रकार जिसे चैतन्यस्वभाव अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यमूर्ति है, वह विकार की रुचि छोड़कर अन्दर में नहीं जाता, उसे आत्मा का वीर्य... नहीं होता। उसे आत्मप्रजा, प्रजा अर्थात् आत्मा की शान्ति ऐसी प्रजा, उसे—हीजड़े को प्रगट नहीं होती। ऐ... जयन्तीभाई! यह बड़े-बड़े धारासभा के मेम्बर ऐसे होंगे ? करोड़पति, दस-दस हजार के वेतन महीने-महीने में हों। ऐसे कोई को कम्पित करते हों, इस कायदे से यह और इस कानून से ऐसा है। सुन रे... सुन! क्यों वकील! कहते हैं या नहीं कोर्ट में ? इस कलम का यह है, ३१० की कलम यहाँ लागू पड़ती है। ३१६ की यहाँ लागू पड़ती है और अमुक की यहाँ लागू

पड़ती है। अपने को कुछ खबर नहीं। ऐसी सब बातें हैं।

अफीम का गुनाह हुआ था हमारे (ऊपर)। झूठा। झूठा हुआ था, सोलह वर्ष की उम्र में। ७०० रुपये का खर्च (हुआ था)। आधे (रुपया) नहीं दिया तो ७०० का खर्च (हुआ)। (संवत्) १९६३ के वर्ष की बात है। झूठा-झूठा। उसके पश्चात् कुछ बात करते थे, यह कलम लागू पड़े तो इतनी (सजा हो)। अर र! इस बनिया ने... कभी सुना नहीं हो, झूठा-झूठा, हों! बड़ोदरा का बड़ा... था। तीन हजार का वेतनदार। तब १९६६ के वर्ष में। तीन हजार। उसने ऐसे मुँह देखा और कहा कि यह लोग गुनेहगार नहीं लगते। किसने किया है यह? ... फिर वहाँ आया था। केस नोंध किया था, उस जगह कोर्ट आयी। वड़ोदरा से पालेज। हम पालेज में रहते थे। यह लोग... किसने ऐसा किया है? यह ६३ के वर्ष की बात है। सत्रह वर्ष की उम्र थी।... न्याय करते हैं।

यहाँ भगवान कहते हैं, अरे! तुझे न्याय करना आता है? भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकार-गुनाह रहित चीज़ अन्दर है, उसकी दृष्टि अन्दर में-कोर्ट में जा तो तुझे खबर पड़े कि आत्मा ओहो! पूर्ण शान्तरस से भरपूर है, पूर्ण निर्विकारी है। ऐसी दृष्टि हो, उसे ऐसे पुण्यधर्म के भाव हुए बिना नहीं रहते। समझ में आया? कहते हैं, जो पात्र के लिये लक्ष्मी का उपयोग करता है,...

जिस मनुष्य का धन दान के लिये नहीं है,... शरीर, इन्द्रिय दमन आदि के लिये बल के लिये नहीं है, **व्रत के लिये नहीं है और शास्त्र, उत्तम शान्ति को प्राप्त करने के लिये नहीं है, उस मनुष्य का जन्म संसार के जन्म-मरण आदि अनेक दुःखों को भोगने का कारण मरण के लिये ही है।** मर जाता है वहाँ जाकर। आता है न बड़ा? नहीं? सिकन्दर। सिकन्दर का नहीं आता? 'मारा मरण पाछळ हकीमोने उपडावजो...' अच्छा वरखासन बहुत खाया है इसने। आता है उसमें। यह गायन है बड़ा, भाई! सिकन्दर ने? खाली हाथ रखना, जनाजे में। 'मारो जनाजो अे हकीमोने कंधे उपडावजो।' वरखासन खाया परन्तु अवसर आया तब रख नहीं सके। (प्रवचन अपूर्ण है।)

भाद्र शुक्ल २, बुधवार, दिनांक - २४-०८-१९६०
आलोचना अधिकार, गाथा - १ से ३३, प्रवचन-७८०

.... आचार्य दिगम्बर सन्त जंगलवासी वनवासी थे। भगवान के समीप यह एक आलोचना की है, आलोचना। आलोचना अर्थात्? आत्मस्वभाव को देखने से दोष का त्याग होता है, उसे आलोचना कहा जाता है। समझ में आया? दोष और निर्दोषता, दो के अवलोकन में दोष का त्याग और स्वभाव का आदर, ऐसी स्थिति को आलोचना कहा जाता है। अध्यात्म आलोचना है। नौवाँ अधिकार है। २६ अधिकार है, उसमें यह नौवाँ अधिकार है। गाथायें ३३ हैं।

श्री पद्मनन्दी आचार्यदेव आदि मंगल से आलोचना अधिकार की शुरुआत करते हैं।

अर्थ :- हे जिनेश! हे प्रभु! यदि सज्जनों का मन, अन्तर और बाह्य मलरहित होकर तत्त्वस्वरूप तथा वास्तविक आनन्द के निधान ऐसे आपका आश्रय करे, यदि उनके चित्त में आपके नाम के स्मरणरूप अनन्त प्रभावशाली महामन्त्र मौजूद हो और आप द्वारा प्रगट हुआ,... आप द्वारा प्रगट हुए **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग में यदि उनका आचरण हो तो उन सज्जनों को इच्छित विषय की प्राप्ति में विघ्न किसका होगा?** निर्विघ्न शुरुआत करते हुए पूर्ण प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। मांगलिक किया, मांगलिक।

दूसरी गाथा। कुदेव को माना हो तो देव की पहिचान द्वारा उसका आलोचन करते हैं। **आचार्यदेव स्तुति द्वारा 'देव कौन हो सकता है तथा केवलज्ञान प्राप्ति का क्रम कैसा होता है,' यह वर्णन करते हैं।**

अर्थ :- हे जिनेन्द्रदेव! संसार के त्याग के लिये परिग्रहरहितपना, रागरहितपना... अस्ति से वीतरागभावरूप। पहले दो नास्ति से और यह अस्ति से, **सर्वथा कर्मों का नाश और अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य सहित समस्त लोकालोक को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान, ऐसा क्रम आपको ही प्राप्त हुआ था।** यह देवपदवी प्राप्ति की क्रमशः दशा बतायी। इसके अतिरिक्त दूसरे को

देवपना नहीं हो सकता। **परन्तु आपसे अन्य किसी देव को यह क्रम प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए आप ही शुद्ध हो और आपके चरणों की सेवा सज्जन पुरुषों को करनेयोग्य है।** तीसरा।

सेवा का दृढ़ निश्चय और प्रभु-सेवा का माहात्म्य :-

अर्थ :- हे त्रैलोक्यपते! आपकी सेवा में यदि मेरा दृढ़ निश्चय है तो मुझे अत्यन्त बलवान संसाररूप वैरी को जीतना कुछ मुश्किल नहीं है, क्योंकि जिस मनुष्य को जलवृष्टि से हर्षजनक उत्तम फुब्बारेसहित घर प्राप्त होता है तो उस पुरुष को ज्येष्ठ महीने का प्रखर मध्याह्न ताप कुछ कर सके, ऐसा है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता।' सब अध्यात्म उतारा है। विस्तार से तो एक बार उतर गया है। यह तो एक घण्टे में पूरा करना है न।

चौथा बोल—चौथी गाथा। **भेदज्ञान द्वारा साधकदशा -**

अर्थ :- यह पदार्थ... चैतन्य आदि **साररूप है और यह पदार्थ...** विकार आदि **असाररूप है। इस प्रकार सारासार की परीक्षा में एकचित्त होकर, जो कोई बुद्धिमान मनुष्य तीनों लोक के समस्त पदार्थों का, अबाधित और गम्भीर दृष्टि से विचार करता है, तो उस पुरुष की दृष्टि में हे भगवान! आप ही एक सारभूत पदार्थ हो...** आप और वीतरागी निर्विकल्प स्वरूप एक ही सारभूत है, इसके अतिरिक्त दूसरा सारभूत नहीं है। **और आप से भिन्न समस्त पदार्थ असारभूत ही है। अतः आपके आश्रय से ही मुझे परम सन्तोष हुआ है।**

अब आचार्यदेव 'पूर्ण साध्य' वर्णन करते हैं:-यह साधकपने का वर्णन किया। साधक। सिद्ध मेरा स्वरूप, वही मुझे आदरणीय है और दूसरा आदरणीय नहीं। अब साध्य (वर्णन करते हैं)।

अर्थ :- हे जिनेश्वर! समस्त लोकालोक को एक साथ जाननेवाला आपका ज्ञान है, समस्त लोकालोक को एक साथ देखनेवाला आपका दर्शन है, आपको अनन्त सुख और अनन्त बल है तथा आपकी प्रभुता निर्मलतर है, और आपका शरीर... तीर्थंकर का शरीर वर्णन करना है न। परम औदारिक होता है, परम औदारिक।

दैदीप्यमान है;... परमात्म स्वभाव आपको दैदीप्यमान है और आपका शरीर भी दैदीप्यमान है। ऐसी स्थिति देव को होती है, ऐसे देव के अतिरिक्त दूसरे को नहीं हो सकती। **इसलिए यदि योगीश्वरों ने सम्यक् योगरूपी नेत्र द्वारा आपको प्राप्त कर लिया तो उन्होंने क्या नहीं जान लिया? क्या नहीं देख लिया? तथा उन्होंने क्या नहीं प्राप्त कर लिया? अर्थात् सर्व कर लिया।**

छठवाँ। **पूर्ण की प्राप्ति का प्रयोजन :–** पूर्ण की प्राप्ति का प्रयोजन।

अर्थ :– हे जिनेन्द्र! आपको जो मैं तीन लोक के स्वामी मानता हूँ। आपको ही जिन अर्थात् अष्ट कर्म के विजेता तथा मेरे स्वामी मानता हूँ। मात्र आपको ही भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। सदा आपका ही ध्यान करता हूँ, आपकी ही सेवा और स्तुति करता हूँ तथा केवल आपको ही मेरा शरण मानता हूँ। अधिक क्या कहना? यदि कुछ संसार में प्राप्त होओ तो यह होओ कि आपके अतिरिक्त अन्य किसी के साथ मुझे प्रयोजन न रहे। अध्यात्म आलोचना (है)। यह तो सन्त मुनि जंगल में थे। दिगम्बर मुनि भावलिंगी सन्त... विचरते थे। उन्होंने यह भगवान को साक्षी रखकर (आलोचना की है।)

अब आचार्यदेव 'आलोचना' का आरम्भ करते हैं:– यह तो अभी भूमिका बाँधी। सर्वज्ञ ऐसे होते हैं और सर्वज्ञ प्राप्ति का क्रम ऐसा होता है। अब आलोचना शुरु करते हैं।

अर्थ :– हे जिनेश्वर! मैंने भ्रान्ति से मन, वचन और काया द्वारा भूतकाल में अन्य से पाप कराये हैं, स्वयं किये हैं और पाप करनेवाले अन्यों को अनुमोदन किया है तथा उसमें मेरी सम्मति दी है। तथा वर्तमान में मैं मन, वचन और काया द्वारा अन्य से पाप कराता हूँ, स्वयं पाप करता हूँ और पाप करनेवाले अन्यों को अनुमोदन करता हूँ, तथा भविष्यकाल में मैं मन, वचन और काया द्वारा अन्य से... ...अन्य से पाप कराऊँगा, स्वयं पाप करूँगा और पाप करनेवाले अन्यों को अनुमोदन करूँगा—उस समस्त पाप की आपके समक्ष... चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा के पास—समीप बैठकर **निन्दा-गर्हा करनेवाला ऐसा मैं, उसके सर्व पाप सर्वथा मिथ्या**

होओ। चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा के समीप में सब पापों का... होता है। इसका नाम यहाँ आलोचना कहा जाता है।

आठवीं। **आचार्यदेव 'प्रभु की अनन्त ज्ञान-दर्शन शक्ति वर्णन करते हुए आत्म-शुद्धि के लिये आत्मनिन्दा करते हैं :-**

अर्थ :- हे जिनेन्द्र! यदि आप भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंयुक्त लोकालोक को सर्वत्र एक साथ जानते हो तथा देखते हो, तो हे स्वामिन! मेरे एक जन्म के पापों को क्या आप नहीं जानते? अर्थात् अवश्यमेव आप जानते हो... लो, पाप को भगवान जानते होंगे? पुण्य-पाप पर्याय सबकी? दोषी जानते होंगे सबको? **इसलिए मैं आत्मनिन्दा करते-करते...** स्वभाव सन्मुख विकार के अभाव को करते-करते **आपके समक्ष स्वदोषों का कथन (आलोचन)...** दोष का त्याग **करता हूँ, और वह केवल शुद्ध के लिये ही करता हूँ।**

अब आचार्यदेव भव्य जीवों को उनके आत्मा को तीन शल्यरहित रखने का बोध देते हैं :-

अर्थ :- हे प्रभो! व्यवहारनय का आश्रय करनेवाला अथवा मूलगुण तथा उत्तरगुणों को धारण करनेवाले मेरे जैसे मुनि को... भावलिंगी सन्त हैं। **जिन दूषणों का सम्पूर्ण रीति से स्मरण है,...** ख्याल में है **उन दूषण की शुद्धि के लिये आलोचना करने को आपके सामने सावधानीपूर्वक बैठा हूँ। क्योंकि ज्ञानवान भव्य जीवों को सदा अपने मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यात्वशल्य—इन तीन शल्य रहित ही रखना चाहिए।** यह तीन शल्य का आलोचन।

स्वभाव की सावधानी :- यह नया आया है, इसमें उपोद्घात बाँधा है। नौवाँ है यह? ... अभी खबर पड़ी।

अर्थ :- हे भगवान! इस संसार में सर्व जीव बारम्बार असंख्यात लोकप्रमाण प्रगट तथा अप्रगट नाना प्रकार के विकल्पों सहित होते हैं। विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, शुभाशुभभाव। **और वे जीव जितने प्रकार के (शुभाशुभ) विकल्प सहित हैं। उतने ही विविध प्रकार के दुःख सहित भी हैं। परन्तु जितने विकल्प हैं,**

उतने प्रायश्चित्त शास्त्र में नहीं हैं। इसलिए उन समस्त असंख्यात लोकप्रमाण विकल्पों की शुद्धि आपके समीप ही होती है। ज्ञाता-दृष्टा में ढलने से ही इन सब पुण्य-पाप के विकल्पों का नाश होता है। गिन-गिनकर नाश नहीं किया जाता, ऐसा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के... छोड़ता हूँ। स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा में ढलने से असंख्य प्रकार के विकल्पों का नाश होता है।

पर से पराङ्मुख होकर स्व की प्राप्ति :- ग्यारहवाँ श्लोक।

अर्थ :- हे देव! सर्व प्रकार के परिग्रहरहित, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, क्रोधादि कषायरहित, शान्त, एकान्तवासी भव्य जीव, सभी बाह्य पदार्थों से मन तथा इन्द्रियों को विमुख करके और अखण्ड निर्मल सम्यग्ज्ञान की मूर्तिरूप आप में स्थिर होकर, आपको ही देखता है, वह मनुष्य आपके सान्निध्य (समीपता को) प्राप्त करता है। विकाररहित स्वभाव के समीप आलोचन करते हुए अन्तर में समीपता होने से विकार का नाश होता है।

स्वभाव की एकाग्रता से उत्तम पद-मोक्ष की प्राप्ति :-

अर्थ :- हे अर्हत प्रभु! पूर्व भव में कष्ट से संचय किये गये महापुण्य से जो मनुष्य, तीन लोक के पूजार्थ (पूजनेयोग्य) आपको प्राप्त हुआ है, उस मनुष्य को, ब्रह्मा, विष्णु आदि को भी निश्चयपूर्वक अलभ्य ऐसा उत्तम पद प्राप्त होता है। हे नाथ! मैं क्या करूँ? आपमें एक चित्त किया होने पर भी मेरा मन प्रबलरूप से बाह्य पदार्थों के प्रति दौड़ता है, यह बड़ा खेद है। अन्तर जहाँ एकाग्रता करने जाता हूँ, वहाँ पर्याय में जरा अस्थिरता होती है। यह उसका आलोचन और उसका त्याग करना चाहता हूँ।

मोक्षार्थ वीर्य का वेग :-

अर्थ :- हे जिनेश! इस संसार नाना प्रकार के... नाना अर्थात् अनेक प्रकार के। **दुःख देनेवाले हैं। जबकि वास्तविक सुख का देनेवाला तो मोक्ष है,...** सम्पूर्ण .... स्पष्टीकरण किया। **इसलिए उस मोक्ष की प्राप्ति के लिये हम...** मुनि स्वयं कहते हैं **समस्त धन, धान्य आदि परिग्रहों का त्याग किया, तपोवन (तप से पवित्र हुई**

भूमि) में वास किया, सर्व प्रकार के संशय भी छोड़े और अत्यन्त कठिन व्रत भी धारण किये, अभी तक ऐसे दुष्कर व्रत धारण किये, तथापि सिद्धि (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं हुई, क्योंकि प्रबल पवन से कम्पित पत्रों की भाँति हमारा मन रात्रि-दिवस बाह्य पदार्थों में भ्रमण करता रहता है। इसलिए केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य में रमता नहीं। जितना बाह्य पदार्थ के लक्ष्य से विकल्प (उठते) हैं, जहाँ-तहाँ भटका करता है, वह जीव ज्ञानस्वरूपी आत्मा का... आत्मा का क्या स्वरूप, यह वर्णन किया।

ज्ञानस्वरूपी आत्मा को बिना प्रयोजन सदा अत्यन्त व्याकुल किया करता है, जिस इन्द्रियरूपी गाँव को बसाता है (अर्थात् इस मन की कृपा से इन्द्रिय के विषयों में स्थिति होती है और जो संसार उत्पादक कर्मों का परम मित्र है, अर्थात् मन आत्मारूप गृह में कर्मों को सदा लाता है), वह मन जब तक जीवित रहता है, तब तक मुनियों को भी कहाँ से कल्याण की प्राप्ति हो सकती है! अर्थात् कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती। मनातीत होकर स्थिर हो, तब कल्याण होता है। मन का जितना सम्बन्ध है, उतना बन्ध का कारण है। मुनियों को भी होता है।

पन्द्रहवीं। **मोह के नाश के लिये प्रार्थना :-**

अर्थ :- मेरा मन, निर्मल तथा शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वरूप आप में... यहाँ तो बात आत्मा की अन्दर है, हों! भगवान का निमित्त से कथन है। दिगम्बर सन्तों के कथन सब अध्यात्म और स्वआश्रय है। व्यवहार का कहीं विकल्प उठे, उसका कथन करे परन्तु अन्तर में चैतन्य आनन्दकन्द की बातें मुख्यरूप से सर्वत्र वर्णन की है। इस पंचम काल के मुनि वन में-जंगल में बसते थे परन्तु मानो भगवान सामने बैठे हों, (इस प्रकार से वर्णन करते हैं)। आत्मा सामने है न, दृष्टि में सामने (है)। मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि के समीप में आत्मा है। उसके दोष का आलोचन करके दोष का अभाव करना चाहते हैं।

प्रभु! **मेरा मन, निर्मल तथा शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मा में लगाया होने पर भी, मृत्यु तो आनेवाली ही है, ऐसे विकल्प द्वारा, आप से अन्य बाह्य समस्त पदार्थों की ओर निरन्तर घूमा करता है।** मन घूमा करता है। मन को ऐसा है कि यदि अन्दर में जाऊँगा तो मुझे मार डालेंगे। अन्तर में जाऊँगा तो मन को मार डालेंगे। इसलिए

बाहर भ्रमूँ तो जीवित तो रहूँ। नवनीतभाई! विकल्प जो बाहर में भ्रमता है, वहाँ टिका तो रहूँ। अन्दर में (जायेगा) तो विकल्प को मार डालेंगे। इसलिए मुझे जीना है, इसलिए घूम रहा हूँ। **समस्त बाह्य पदार्थों की ओर निरन्तर घूमा करता है।**

हे स्वामिन्! तो क्या करना? क्योंकि इस जगत में, मोहवशात् किसे मृत्यु का भय नहीं है? सर्व को है। इसलिए सविनय प्रार्थना है कि समस्त प्रकार के अनर्थ करनेवाले तथा अहित करनेवाले मेरे मोह को नष्ट करो। स्वभाव सन्मुख होकर उसका नाश करूँ। उसे भगवान नष्ट करो, ऐसा कहना चाहते हैं।

सर्व कर्मों में मोह ही बलवान है। ऐसा आचार्य दर्शाते हैं :-

अर्थ :- ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मों में मोहकर्म ही अत्यन्त बलवान कर्म है। द्रव्य से बात ली है। **इस मोह के प्रभाव से...** मेरी पर्याय इसकी ओर ढलती है, वह मोह का प्रभाव है, ऐसा आरोप से कहने में आता है। समझ में आया? कथन की शैली किस नय की होती है, यह समझे नहीं, (फिर) उल्टे (अर्थ) करते हैं। कर्म द्रव्य कुछ आत्मा को प्रभाव डालता होगा? जड़ कर्म की पर्याय आत्मा को प्रभाव डालती है? दोनों के बीच तो अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? लिया है जड़ कर्म, हों! **इस मोह के प्रभाव से...** मेरे प्रभाव से हो कहीं विकार, ऐसा कहते हैं? ... सहजानन्द की मूर्ति है, उसके प्रभाव से विकार नहीं हो सकता। यह तो निमित्त के लक्ष्य से हुआ, निमित्त के प्रभाव से हुआ, ऐसा कहने में आता है। **अत्यन्त बलवान कर्म है। इस मोह के प्रभाव से यह मन जहाँ-तहाँ चंचल बनकर भ्रमण करता है और मरण से डरता है।**

यदि यह मोह न हो तो निश्चयनय प्रमाण न तो कोई जीवे या न तो कोई मरे, क्योंकि आपने इस जगत को जो अनेक प्रकार से देखा है, वह पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से ही देखा है। पर्याय की अपेक्षा से अनेक प्रकार हैं, वस्तु अपेक्षा से तो एक ही स्वरूप है। **द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से नहीं...** द्रव्य की अपेक्षा से वस्तु एकरूप है, पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप आपने देखी है। **इसलिए हे जिनेन्द्र! मेरे इस मोह को ही सर्वथा नष्ट करो।** लो, भगवान नष्ट करे, ऐसा कहते हैं। अर्थात् मैं नष्ट करूँ, ऐसा भगवान को कहते हैं। कथन की शैली-वाणी ऐसी होती है, व्यवहारनय की प्रधानता से।

मुमुक्षु : भगवान के पास....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की स्तुति में ऐसा ही कहे न, हे नाथ! आप उद्धार करो, तारो प्रभु! अब तारो।... आवाज तो आत्मा के ऊपर है। हे आत्मा! अब राग को टालकर तिर जा। इसके बिना तेरा कोई उपाय नहीं है।

पर संयोग अध्रुव जानकर, उनसे हटकर, एक ध्रुव आत्मस्वभाव में स्थित होने की भावना :-

अर्थ :- वायु से व्याप्त समुद्र की क्षणिक जल लहरियों के समूह समान, सर्व काल में तथा सर्व क्षेत्र में यह जगत क्षणमात्र में विनाशी है। ऐसा सम्यक् प्रकार से विचार करके, यह मेरा मन समस्त संसार को उत्पन्न करनेवाले व्यापार (प्रवृत्ति) से रहित होकर, हे जिनेन्द्र! आपके निर्विकार परमानन्दमय परमब्रह्मस्वरूप में स्थित होना चाहता है। चाहता है। स्वरूप में स्थिरता की इच्छा—भावना करता है। राग में रहने की मेरी भावना नहीं है। अल्प अस्थिरता आ जाये, (परन्तु) इसकी भावना नहीं है। चैतन्य ज्ञाता आनन्द में स्थिर होऊँ, यह मेरी भावना है।

शुभ-अशुभ उपयोग से हटकर शुद्ध उपयोग में निवास की भावना :-

अर्थ :- जिस समय अशुभ उपयोग वर्तता है, उस समय तो पाप की उत्पत्ति होती है और उस पाप से जीव नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करता है, जिस समय शुभ उपयोग वर्तता है, उस समय पुण्य की उत्पत्ति होती है... यह स्पष्ट आलोचना में कहते हैं। यह सम्यग्दृष्टि मुनि छठवें गुणस्थान में यह भी कह रहे हैं। **जिस समय शुभ उपयोग वर्तता है, उस समय पुण्य की उत्पत्ति होती है और उस पुण्य से जीव को सुख...** अनुकूल संयोग की प्राप्ति **होती है।** ऐसा। सुख अर्थात् अनुकूल संयोग। अन्दर सुख की नहीं। समझ में आया?

ये दोनों पुण्य-पापरूप द्वन्द्व संसार का ही कारण है। अर्थात् इन दोनों से सदा संसार ही उत्पन्न होता है। शुभ और अशुभ, दोनों परिणाम से—उदयभाव से संसार ही उत्पन्न होता है। ऐसी बात सीधी परन्तु अभी श्रद्धा में बैठाने में देरी लगती है, कठिन पड़ती है कि यह नहीं। पुण्य तो अवश्य, पुण्य तो अवश्य। शुभभाव तो संवर और निर्जरा परम्परा का कारण है। कहते हैं, कर प्रायश्चित अब यह समझकर। शुभ और अशुभभाव

से तो संसार की उत्पत्ति है। भगवान चैतन्य के आनन्द की उत्पत्ति से शान्ति की प्राप्ति है। **अर्थात् इन दोनों से सदा संसार ही उत्पन्न होता है किन्तु शुद्धोपयोग से...** लो, शुद्धोपयोग से—चैतन्य परमानन्द के शुद्ध व्यापार से .... **अविनाशी और आनन्दस्वरूप पद की प्राप्ति होती है।**

हे अर्हत् प्रभो! आप तो उस पद में निवास कर रहे हो, परन्तु मैं उस शुद्धोपयोगरूप पद में निवास करना चाहता हूँ। स्वरूप में जो दृष्टि में आत्मा आया, उसमें मैं स्थिर होना चाहता हूँ और जो रागादि होते हैं, उनका अभाव करके स्वरूप में स्थिर होना चाहता हूँ, निवास करना चाहता हूँ। देखो! इस आलोचना में यह बात ली है—सत्य बात।

१९। **आत्मस्वरूप का नास्ति से और अस्ति से वर्णन :–**

अर्थ :– जो आत्मस्वरूप–ज्योति,... जो आत्मस्वरूप-ज्योति **नहीं तो स्थित अन्दर...** अर्थात् नहीं वह मन में, कर्म, शरीर में **अथवा नहीं स्थित बाह्य में...** अथवा नहीं बाह्य में। **तथा नहीं तो स्थित दिशा में...** किसी दिशा में आत्मा नहीं है, वह तो उसके असंख्य प्रदेश के समूह में है। **नहीं स्थित विदिशा में तथा नहीं स्थूल या नहीं सूक्ष्म...** भगवान आत्मा स्थूल भी नहीं और सूक्ष्म भी नहीं। यह परमाणु को लागू पड़ता है। **वह आत्मज्योति नहीं पुल्लिंग**' यह चैतन्यज्योति नहीं पुरुषलिंग, **नहीं स्त्रीलिंग अथवा नहीं नपुंसकलिंग परन्तु...** यह वेद के विकार की आलोचना करते हैं। वेद का विकार जो उदय होता है, प्रभु! वह मेरे स्वभाव में नहीं है, हों! वह मेरा स्वरूप नहीं है। क्योंकि आत्मा में तीन लिंग और वेद के विकार का ही अभाव है।

और वह नहीं भारी अथवा नहीं हल्का... आत्मस्वरूप-ज्योति। **वह ज्योति कर्म, स्पर्श, शरीर, गन्ध, संख्या...** यह संख्या एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, (नौ), दस। ऐसी संख्या भी आत्मा में नहीं है। **वचन...** आत्मा में वचन नहीं है।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात चलती है, कब से क्या ? वाणी आत्मा में कैसी ? आत्मा की खान में तो अनन्त ज्ञान, आनन्द पड़ा है। वाणी तो जड़ है, इसकी खान में है नहीं।

वर्ण से रहित है, निर्मल है और सम्यग्ज्ञानदर्शनस्वरूप मूर्ति है... सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनस्वरूप प्रभु आत्मा है। **वह उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप मैं हूँ...** वह उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप मैं हूँ। **किन्तु उस उत्कृष्ट आत्मस्वरूप ज्योति से मैं भिन्न नहीं हूँ।** उससे मैं भिन्न नहीं हूँ। पहले कहा उनसे भिन्न हूँ। कर्म, शरीर, वाणी, मन, विकल्प आदि से। परन्तु चैतन्यस्वरूप ज्योति से मैं भिन्न नहीं हूँ। अस्ति-नास्ति से बात की है। पर से भिन्न और मेरे स्वभाव से अभिन्न। सबसे आत्मा भिन्न। ... आदि त्रिकाल स्वभाव से नहीं। ... भिन्न। देखो! यह भेदज्ञान। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्रवन्त मुनि इस प्रकार से आत्मा की अन्दर आलोचना कर रहे हैं।

त्रिकाली आत्मा की शक्ति :-

अर्थ :- हे भगवान! चैतन्य की उन्नति का नाश करनेवाले और बिना कारण सदा वैरी ऐसे दुष्ट कर्म ने आप में और मुझमें भेद डाला है... मेरे स्वरूप में और आपके स्वरूप में भेद नहीं है, परन्तु कर्म के निमित्त के लक्ष्य से उपाधि,... आप और मुझमें भेद डाला है। दुश्मन के संग में चढ़ा तो आत्मा सज्जन से भिन्न पड़ गया, ऐसा कहते हैं। **परन्तु कर्मशून्य अवस्था में जैसा आपका आत्मा है, वैसा ही मेरा आत्मा है। इस समय वह कर्म और मैं आपके सामने खड़े हैं,...** यह कर्म और आत्मा, दोनों द्रव्य भिन्न मेरे ज्ञान में आते हैं, ऐसा कहते हैं। खड़े हैं। यह चैतन्यप्रभु और यह जड़ दूसरी चीज़, जो मुझमें नहीं। दोनों खड़े हैं।

इसलिए उस दुष्ट कर्म को हटाकर दूर करो, क्योंकि नीतिमान प्रभुओं का तो यह धर्म है कि वे सज्जनों की रक्षा करें और दुष्टों का नाश करें। प्रभु अवतरित होते हैं, तब कहते हैं न, राक्षसों को मारते हैं और भक्तों की सहायता करते हैं। यह नहीं। यह आत्मा सज्जन है, इसकी बात है। आत्मा का ऐसा स्वभाव है। सज्जन अर्थात् सत् जन अन्तर के अनन्त गुणों का समाज, उसकी रक्षा करे और दुष्ट अर्थात् विकार का वह नाश करे, यह सज्जनों का कर्तव्य है। कहो, समझ में आया इसमें? वे कहते हैं न, भगवान आकर भक्तों की पीड़ा मिटाते हैं और राक्षसों को (मारते हैं)। यह राक्षस और भगवान स्वयं का स्वयं है। हे सत् जन आत्मा! तेरे अनन्त गुण का समाज, उसकी रक्षा तू कर और

विकार, वह राक्षस समान है, उसका नाश कर। यह सज्जनों के ऐसे लक्षण और कर्तव्य हैं। कहो, समझ में आया ?

२१, **आत्मा का अविकारी स्वरूप :-**

अर्थ :- हे भगवन! विविध प्रकार के आकार और विकार करनेवाले बादल आकाश में होने पर भी, जैसे आकाश के स्वरूप का कुछ भी फेरफार नहीं कर सकते... देखो! आत्मा के स्वरूप के साथ आकाश को मिलान करते हैं। **उसी प्रकार आधि,...** मन के विकल्प; **व्याधि,...** शरीर का रोग; **जरा, मरण आदि...** शरीर की अवस्था आदि **भी मेरे स्वरूप का कुछ भी फेरफार नहीं कर सकती...** बादल, उनके आकार और विकार आकाश को कुछ नहीं कर सकते; उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप पूर्ण कारणप्रभु को यह विकार और आधि, व्याधि कुछ भी दूषण नहीं कर सकते। **कुछ भी फेरफार कर सके, ऐसा नहीं है, क्योंकि वे सर्व शरीर के विकार हैं।** यह आधि, व्याधि और सब शरीर के विकार हैं। मन के संकल्प, विकल्प भी सब कार्मणशरीर का विकार है। मेरा नहीं। मेरे चैतन्य का यह फल नहीं। दोनों को भिन्न करके मैं मेरे आत्मा में ढलना चाहता हूँ। **जड़ है, जबकि मेरा आत्मा ज्ञानवान और शरीर से भिन्न है।**

२२, **अर्थ :- जैसे मछली पानी रहित भूमि पर गिरने से तड़प कर दुःखी होती है, उसी प्रकार मैं भी (आपकी शीतल छाया बिना)...** अन्दर के निर्विकल्प शान्ति और आनन्द बिना **नाना प्रकार के दुःखों से भरपूर संसार में सदा जल-सुलग रहा हूँ।** राग में आता हूँ तो जल-सुलग रहता हूँ, ऐसा कहते हैं। शीतल भगवान आत्मा में रहता हूँ, तब शीतलता है। बाहर आया और पुण्य-पाप का विकल्प उठा, (उसमें) सुलग रहा हूँ, कहते हैं। **जल-सुलग रहा हूँ।**

जैसे वह मछली जब जल में रहती है, तब सुखी रहती है; उसी प्रकार जब तक मेरा मन आपके करुणारसपूर्ण... आत्मा का करुणारसपूर्ण वीतरागीभाव... **अत्यन्त शीतल चरणों में प्रविष्ट (प्रवेशित) रहता है, तब तक मैं भी सुखी रहता हूँ।** देखो! आत्मा निर्विकल्प शान्ति में रहता है तब तक सुखी और विकल्प उठा दया, दान या काम, क्रोध का, वह दुःखी। वे कहें, यह सब साधन है। शुभभाव वह साधन है। यहाँ कहते हैं, नहीं, नहीं। बाहर निकलता हूँ, वहाँ दुःखी होता हूँ। जैसे वह मछली पानी में से

बाहर निकले (तो) तड़पती है। रेत में आवे तो तड़पती है तो अग्नि में तो क्या होगा? इसी प्रकार शुभभाव में आवे तो दुःख होता है, तो अशुभ की क्या बात करना? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ परिणाम हों तो भी आकुलता है, तो अशुभ परिणाम, जैसे वह मछली रेत में आवे—यह शुभभाव में आयी, और अग्नि में आवे—यह अशुभ में आयी, ऐसी उपमा। इसी प्रकार चैतन्य प्रभु वीतरागी विज्ञानघन शुभ में आवे (तो) तड़पता हूँ, दुःखी हूँ। अशुभ में अधिक दुःखी है। समझ में आया?

हे नाथ! मेरा मन आपके चरण-कमल छोड़कर अन्य स्थल में कि जहाँ मैं दुःखी होऊँ, वहाँ प्रवेश न करे, यह मेरी प्रार्थना है। शुभभाव में जलता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मजा नहीं। ... कौन करता था? कहाँ? कहाँ जाये और कहाँ आवे? चैतन्य भगवान शान्तरस का फब्बारा, वह फब्बारा है। आ गया न? शीतल घर में एक तो फब्बारा होता है और शीतल घर हो। सर्दी, सर्दी। उसे ज्येष्ठ का ताप नहीं लगता। उसी प्रकार भगवान आत्मा शीतलस्वरूप और उसमें आश्रय करके स्थिर हुआ, उसे कषाय के उदय आताप नहीं दे सकते। शीतलता...

हे भगवान! मेरा मन, इन्द्रियों के समूह द्वारा बाह्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध करता है। देखो! यहाँ सब सिद्ध करते जाते हैं। मन होता है, इन्द्रियाँ होती हैं, चैतन्य है परन्तु यहाँ सम्बन्ध करता है, यह सब वीतरागमार्ग में ही होता है, अन्यत्र नहीं हो सकता। **इसलिए नाना प्रकार के कर्म आकर...** और कर्म आकर, वापस। विकार... **मेरे आत्मा के साथ बँधते हैं परन्तु वास्तविक रूप से मैं उन कर्मों से सदाकाल सर्व क्षेत्र में भिन्न ही हूँ तथा वे कर्म आपके चैतन्य से भिन्न ही है अथवा तो चैतन्य से इन कर्मों को भिन्न करने में आप ही कारण हो...** राग और आत्मा को भिन्न करने में भेदज्ञान ही कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं। रागादि, शुभादि, निमित्त कोई कारण नहीं। **इसलिए हे शुद्धात्मन्! हे जिनेन्द्र! मेरी स्थिति निश्चयपूर्वक आप में ही है।** आप में ही है। चैतन्य में ही वास्तव में मेरी स्थिति जम गयी है।

२४। **धर्मी की अन्तरभावना :–**

अर्थ :– हे आत्मन्! तुझे नहीं तो लोक से काम, नहीं तो अन्य के आश्रय से काम; तुझे नहीं तो द्रव्य से (लक्ष्मी से) प्रयोजन, नहीं तो शरीर से प्रयोजन, तुझे वचन तथा इन्द्रियों से भी कुछ काम नहीं। तथा (दस) प्राणों से भी प्रयोजन नहीं है... दस प्राण हैं न नीचे ? मन की भी मुझे जरूरत नहीं, ऐसा कहते हैं। .... **नाना प्रकार के विकल्पों से भी कुछ काम नहीं, क्योंकि वे सर्व पुद्गलद्रव्य की ही पर्यायें हैं।** विकल्प पुण्य-पाप सब जड़द्रव्य की दशा है। आत्मा के मूल स्वरूप में वे हैं नहीं।

और तुझसे भिन्न है तो भी बहुत खेद की बात यह है कि तू उन्हें अपना मानकर उनका आश्रय करता है, इससे क्या तू दृढ़ बन्धन से नहीं बँधेगा? अवश्य बँधेगा। पुण्य-पाप का आश्रय लेगा तो नवीन बन्धन हुए बिना नहीं रहेगा। अबन्ध -स्वभावी भगवान का आश्रय लेगा तो अबन्ध परिणाम उत्पन्न होंगे।

२५। **भेदविज्ञान द्वारा आत्मा में से विकार का नाश :–**

अर्थ :– धर्मद्रव्य,... धर्मद्रव्य अर्थात् एक धर्मास्तिकाय पदार्थ है, हों! **अधर्मद्रव्य...** अर्थात् अधर्मास्ति नाम का पदार्थ चौदह ब्रह्माण्ड में है। **आकाशद्रव्य...** लोकालोक व्यापक है। **कालद्रव्य...** लोक में असंख्य प्रदेशी एक-एक द्रव्य असंख्य पड़े हैं। **ये चारों द्रव्य किसी भी प्रकार से मेरा अहित नहीं करते किन्तु ये चारों द्रव्य, गति, स्थिति आदि कार्यों में मुझे सहकारी है, इसलिए मेरे सहायक होकर ही रहते हैं...** मुझे सहायक होकर रहते हैं। ... मैं गति, स्थिति करूँ तो मुझे सहायता देते हैं, ऐसा कहते हैं।

परन्तु नोकर्म (तीन शरीर, छह पर्याप्ति)... आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, मन। **और कर्म जिसका स्वरूप है, ऐसा तथा समीप रहनेवाले और बन्ध को करनेवाला एक पुद्गलद्रव्य ही मेरा वैरी है...** निश्चय से तो वैरी विकार है। परन्तु विकार और निमित्त को इकट्ठा गिनकर कर्म को वैरी कहा जाता है। चिद्विलास में आता है न ? भाई! निश्चय से जो जिसका वैरी उसमें होता है, पर में हो नहीं सकता। परन्तु यहाँ तो दो द्रव्यदृष्टि से कथन है न। दोनों को एकदम भिन्न किया। मैं वैरी नहीं, इसलिए कर्म वैरी है, प्रभु! अब उसे मारने को तैयार... **बन्ध को करनेवाला एक पुद्गलद्रव्य ही मेरा**

वैरी है, इसलिए इस समय में उसके भेदविज्ञानरूप तलवार से... लो, यह वैरी है। **खण्ड-खण्ड कर दिये हैं। (वास्तविक वैरी तो अपना अशुद्धभाव है)।** यह तो अपने लिखा है। भाई! अशुद्धभाव, इसका नाम निमित्त है, उसका नाश हुआ तो कर्म नाश हुए बिना नहीं रहते। २५ हुई।

२६। **अर्थ :- जीवों के नाना प्रकार के राग-द्वेष करनेवाले परिणामों से जिस प्रकार पुद्गलद्रव्य परिणमता है, उस प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश और काल- ये चार अमूर्त द्रव्य राग-द्वेष करनेवाले परिणामों से नहीं परिणमते, उन राग-द्वेष द्वारा प्रबल कर्मों की उत्पत्ति होती है और उन कर्मों से संसार खड़ा होता है। इसलिए संसार में अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। इसलिए कल्याण की इच्छा रखनेवाले सज्जनों को...** सत् जनों को, सत् के जनों को **उन राग-द्वेष को सर्वथा छोड़ना चाहिए।**

२७। **आनन्दस्वरूप शुद्धात्मा का ध्यान और मनन :-** आनन्दस्वरूप शुद्धात्मा का ध्यान और मनन।

अर्थ :- हे मन! बाह्य तथा तुझसे भिन्न जो स्त्री, पुत्र आदि पदार्थ हैं, उनमें राग-द्वेष स्वरूप अनेक प्रकार के विकल्प करके तू किसलिए दुःखद अशुभकर्म व्यर्थ बाँधता है? यदि तू आनन्दरूप जल के समुद्र में शुद्धात्मा को पाकर उसमें निवास करेगा, तो तू निर्वाणरूप विस्तीर्ण सुख को अवश्य प्राप्त करेगा। अवश्य प्राप्त करेगा। **इसलिए तुझे आनन्दस्वरूप शुद्ध आत्मा में ही निवास करना चाहिए और उसका ही ध्यान तथा मनन करना चाहिए।**

२८। **अर्थ :- हे जिनेन्द्र! आपके चरणकमल की कृपा से...** आपके चरणकमल की कृपा अर्थात् वीतराग के चरणकमल, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह उनके चरण कमल हैं। **पूर्वोक्त बातों को सम्यक् प्रकार से मन में विचार कर...** पूर्व में कहा, तद्नुसार, **जिस समय यह जीव शुद्धि के लिये अध्यात्मरूप तराजू में पैर रखता है, उसी समय, उसे दोषित बनाने को भयंकर वैरी सामने पलड़े में उपस्थित होता है।** दो पलड़े। एक पलड़े में जहाँ ऐसे तौलने जाऊँ—अन्दर में स्थिर (होने जाता

हूँ), वहाँ दूसरे पलड़े में विकल्प-राग उठता है। **हे भगवान! ऐसे प्रसंग में आप ही मध्यस्थ साक्षी हो।** ज्ञाता-दृष्टा एक साक्षी है कि यह राग पर और मेरा स्वरूप भिन्न है। ऐसे उसका साक्षी तो भगवान आत्मा ही है। उसे साक्षीरूप से दोनों को भिन्न भासकर दोनों भिन्न पड़ जाते हैं।

२९, **अब विकल्पस्वरूप ध्यान तो संसारस्वरूप है...** देखो! विकल्परूप ध्यान भी संसारस्वरूप है। विकल्परूप (अर्थात्) राग-द्वेषयुक्त, विकारयुक्त। निर्विकारी आत्मा का... क्या लिखा है? कहाँ लिखा है? दूसरा है। विकल्परूप ध्यान संसार है। दूसरी बात तो क्या करना? आत्मा के गुण-गुणी के भेदरूप विकल्प में पड़ा, वह भी संसार है। आहाहा! **और निर्वकल्प ध्यान मोक्षस्वरूप है, ऐसा आचार्य दर्शाते हैं :-**

अर्थ :- द्वैत (सविकल्प ध्यान) तो वास्तविक रीति से संसारस्वरूप है और अद्वैत... चैतन्यमूर्ति में गुण-गुणी का भेद उठे। मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, आनन्द हूँ— ऐसा विकल्प उठे, वह संसार है-उदयभाव है। **और अद्वैत (निर्विकल्प ध्यान)...** स्वरूप के अन्दर में ज्ञान की एकाग्रता की लीनता, वह **मोक्षस्वरूप है।** मोक्षस्वरूप ही है, ऐसा उसे कहा है। ज्ञान को मोक्षस्वरूप कह दिया।

संसार तथा मोक्ष में प्राप्त होती अन्त (उत्कृष्ट) दशा का यह संक्षेप से कथन है। क्या कहा? यह सर्वज्ञ को सार में सार कहना हो तो यह बात है। जितना विकल्प... दया, दान की तो बात भी नहीं, परन्तु गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है वह संसार है। ... स्वरूप में निर्विकल्प दृष्टि करके स्थिर होना, वह मोक्ष है। पूरे बारह अंग में कहते हैं संक्षेप में... है न? **मोक्ष में प्राप्त होती अन्त (उत्कृष्ट) दशा का यह संक्षेप से कथन है।** (संक्षिप्त में) कथन करना हो तो यह ... है। **जो मनुष्य, पूर्वोक्त दोनों में से प्रथम द्वैतपद से धीरे-धीरे विमुख होकर...** द्वैत अर्थात् विकल्प से हटकर और **अद्वैतपद का अवलम्बन स्वीकार करता है...** अद्वैत अर्थात् निर्विकल्प आत्मा का, ऐसा। नीचे लिखा है न? **अद्वैतपद का अवलम्बन स्वीकार करता है, वह पुरुष निश्चयनय से नामरहित हो जाता है...** लो, एक ही मोक्ष का मार्ग कहा, इसमें दो नहीं कहे। विकल्प भी मोक्षमार्ग है और निर्विकल्प भी मोक्षमार्ग है, (ऐसा नहीं कहा)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे किसी शास्त्र में... आवे वह कथन की पद्धति है। वस्तु स्वरूप में नहीं है। इतना तो आलोचना में आचार्य ने वन में-तपोवन में बैठे हुए (लिखा है)। अहो! चैतन्यस्वरूप में डोले, वह निर्विकल्पदशा एक ही मोक्षस्वरूप है, वह मोक्ष का कारण है। और जितना विकल्प उठे, व्रत का तो कहीं रह गया, अन्दर में मन के संग से भेदरूप विकल्प उठे, संसार है। यह संक्षेप में अन्तिम में अन्तिम भगवान का यह कथन है। समझ में आया? **वह पुरुष व्यवहारनय से ब्रह्मा, विधाता आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है।** ऐसा स्वरूप निर्विकल्प होकर परमात्मा हो, उसे चाहे जिस नाम से उसे बुलाया जाता है।

३०। **अर्थ :- हे केवलज्ञानरूप नेत्रों के धारक जिनेश्वर! मोक्ष प्राप्त करने के लिये आपने जो चारित्र का वर्णन किया है...** अब अन्तिम अपनी दशा का वर्णन (करते हैं)। **वह चारित्र तो इस विषम कलिकाल में (दुषम पंचम काल में) मेरे जैसे मनुष्य बहुत कठिनता से धारण कर सकते हैं,...** मुनि आचार्य हैं, हों! परन्तु कहते हैं कि हे नाथ! आपने कही वह निरतिचार चारित्र की दशा बहुत कठिनता से धारण कर सकता हूँ। हजार वर्ष पहले की बात मुनि कहते हैं। **परन्तु पूर्वोपार्जित पुण्यों से आप में मेरी जो दृढ़ भक्ति है...** अखण्ड शुद्ध लाख, करोड़ ... रखकर अन्तर से विनय किया है। मेरा स्वभाव अत्यन्त निर्विकल्प वीतरागी विज्ञानघन है। हे प्रभु! यह मेरी दृढ़ भक्ति है।

वह भक्ति ही, हे जिन! मुझे संसाररूप समुद्र से पार उतारने में नौका समान होओ। चारित्र तो आपने कहा उतना इस काल में मुझसे... ...चारित्रवन्त हैं, तथापि (ऐसा कहते हैं)। **हे जिन! मुझे संसाररूप समुद्र से पार उतारने में नौका समान होओ। मुझे संसारसमुद्र से यह भक्ति ही पार उतार सकेगी।** दूसरे में ताकत नहीं है।

मोक्षपद की प्राप्ति के लिये प्रार्थना :-

अर्थ :- इस संसार में भ्रमण करके मैंने इन्द्रपना, निगोदपना... इन्द्रपना अर्थात् ऐश्वर्यपना। यह इन्द्र नहीं। **और दोनों के बीच की समस्त प्रकार की योनियाँ...** उपजने के स्थान भी **अनन्त बार प्राप्त की है, इसलिए उन पदवियों में से कोई भी**

पदवी मेरे लिये अपूर्व नहीं है... क्या कहते हैं ? अन्तिम स्थिति मरण के अवसर में भी स्वर्ग में तो उपजेंगे, ख्याल है। मैं पंचम काल का साधू हूँ, मुझे इस भव में केवलज्ञान होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए विकल्प तो है, पुण्य बन्धन होगा, स्वर्ग में जायेंगे, परन्तु प्रभु! यह पद मेरे लिये कोई नये नहीं हैं। समझ में आया ? यह अपूर्व नहीं है। पूर्व में नहीं प्राप्त ये नहीं हैं। मुझे भले मिले परन्तु मुझे चाहिए नहीं। यहाँ से पुकार करते जाते हैं स्वर्ग में। पंचम काल के सन्त हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधक हैं। परन्तु जानते हैं कि मुझे पूर्णता नहीं होगी और विकल्प द्वारा पुण्य बँधकर स्वर्ग में जाऊँगा। प्रभु! परन्तु वह पद हमें कोई अपूर्व नहीं है, हों! नाथ! इसकी आलोचना अभी से करते जाते हैं।

किन्तु मोक्षपद को देनेवाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के ऐक्य की पदवी जो अपूर्व है... तीन की एकता, पूर्ण एकता। देखा! स्वर्ग नहीं, इन्द्र नहीं, कुछ नहीं। हमारे दर्शन, ज्ञान, चारित्र की तीन की एकता वह अभी तक प्राप्त नहीं हुई। एकता होने से मोक्ष हुए बिना नहीं रहता। इतनी टूट पड़ती है, एकता नहीं है, प्रभु! **इसलिए हे देव! मेरी सविनय प्रार्थना है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की पदवी ही पूर्ण करो।** मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। अन्तर में चारित्र से लीन होकर तीन की एकता प्राप्त करना, यह मेरी भावना है। बाकी कोई स्वर्ग में जाऊँ और यह जाऊँ और इन्द्रपद मिले... समझ में आया ? और वहाँ से वापस कोई बड़ी राज की पदवी मिले, यह सब हमारे प्रभु! नया नहीं है, हों! अन्तर में मेरे स्वरूप की एकता होना, वही हमारे लिये नयी है। वह हमें पूर्ण करो, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

मुमुक्षु की मोक्षप्राप्ति के लिये दृढ़ता :-

अर्थ :- बाह्य (अतिशय आदि) तथा अभ्यन्तर (केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि) लक्ष्मी से शोभित श्री वीरनाथ भगवान को... ऐसे उनके गुरु भी वीर हैं और ऐसे वीर भगवान—महावीर परमात्मा को **अपने प्रसन्नचित्त से...** अहो! देखो! क्या कहते हैं ? भगवान ने, मेरे गुरु ने और तीर्थंकरों ने... पाँचवीं गाथा में आता है न ? समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे गुरु ने प्रसन्नचित्त होकर हम पर अनुग्रह किया। हम पात्र थे, ऐसा वे नहीं बोले। हमारे ऊपर हमारे गुरु ने प्रसन्नचित्त से शुद्धात्मा का हमें उपदेश दिया। अनुग्रहपूर्वक उपदेश दिया। ऐसा यहाँ कहते हैं। हमारे गुरु अथवा भगवान अपने

प्रसन्नचित्त से सर्वोच्च पदवी की प्राप्ति के लिये मेरे चित्त में उपदेश की जो जमावट की है... शुद्धात्मा का मेरे गुरु ने मुझे उपदेश देकर, जो हृदय में बैठा है, **उस उपदेश के समक्ष क्षणमात्र में विनाशी ऐसा पृथ्वी का राज्य मुझे प्रिय नहीं है।** जानते हैं कि स्वर्ग में जायेंगे, वहाँ से उत्तम कुल में अवतार होगा। परन्तु प्रभु मुझे यह नहीं चाहिए, हों! धर्म के आराधक स्वर्ग में वैमानिक में जाते हैं और वहाँ से निकलकर बड़े चक्रवर्ती, बलदेव, तीर्थंकर या बड़ी पदवी में अवतरित होते हैं। उसे लक्ष्य कर कहते हैं, प्रभु! परन्तु वह हमें नहीं चाहिए, हों!

विनाशी ऐसा पृथ्वी का राज्य मुझे प्रिय नहीं है। यह बात तो दूर रही, परन्तु हे प्रभो! हे जिनेश! उस उपदेश के समक्ष... उपदेश के समक्ष, कहते हैं। अर्थात् वास्तव में तो उपदेश में वर्णन किया ऐसे भाव के समक्ष। भगवान ने हमें उपदेश किया और हमने धारण किया, हम ज्ञाता-दृष्टा अखण्ड पूर्ण आनन्द हैं। ऐसे भाव के समक्ष प्रभु! पृथ्वी का राज्य तो क्या, परन्तु यह **तीन लोक का राज्य भी मुझे प्रिय नहीं है।** लोक में अवतरित हों, यह हमें प्रिय नहीं है। हम तो हमारी दशा में जन्म पाकर केवलज्ञान पायेंगे। इसके अतिरिक्त, प्रभु! हमारी दूसरी प्रार्थना नहीं है। कहो, समझ में आया? लिखा है न?

भावार्थ :- यद्यपि संसार में पृथ्वी का राज्य और तीनों लोक के राज्य की प्राप्ति एक उत्तम बात गिनी जाती है, परन्तु हे प्रभो! श्री वीरनाथ भगवान ने (वीरनन्दी गुरु ने) प्रसन्नचित्त से मुझे जो... मेरा चित्त प्रसन्न था न, इसलिए भगवान ने प्रसन्नचित्त से कहा। **मुझे जो उपदेश दिया है, उस उपदेश के प्रति प्रेम के समक्ष यह दोनों बातें मुझे इष्ट नहीं लगती, इसलिए मैं ऐसे उपदेश का ही प्रेमी हूँ।** ऐसे उपदेश में कहे हुए वीतरागभाव का मैं प्रेमी हूँ। मुझे कोई भाव और जड़ के फल मिलें, इसका मैं प्रेमी नहीं हूँ।

अन्तिम ३३। नौवाँ अध्याय और ३३ गाथा। यह नववाँ (अधिकार) है। २६ अधिकार में। दो तिकड़े इकट्ठे हों। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तथा उत्कृष्ट आराधना। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आराधना है न? यह तीन।

कहते हैं, अहो! यह आलोचना **श्रद्धा से जिसका शरीर नम्रीभूत (नमा हुआ)**

है... अक्कड़-बक्कड़ नहीं, कहते हैं। ऐसे नम गया है। विनय... विनय... विनय... विनय। ओ प्रभु! ओ सर्वज्ञ परमात्मा! आपकी शक्ति की व्यक्तता आपको हुई, हमारी शक्ति पर हमारी नजर पड़ी परन्तु व्यक्तता हुई नहीं। ऐसे नम गया है अन्दर में, ऐसा कहते हैं। **श्रद्धा से जिसका शरीर नम्रीभूत (नमा हुआ) है...** अन्दर नम्रता है तो शरीर में भी कोमलता दिखती है।

ऐसा जो मनुष्य, श्री पद्मनन्दि आचार्य रचित आलोचना नाम की कृति को... इस आलोचना नाम के अध्ययन को **तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) काल, श्री अरहन्त प्रभु के समक्ष...** अरहन्त अर्थात् अरिहन्त प्रभु के समीप अर्थात् अपने स्वभाव की दृष्टि के समीप जो **पढ़ता है, वह बुद्धिमान मनुष्य ऐसे उच्च पद को प्राप्त होता है...** देखो! इस स्तुति के विकल्प से प्राप्त होता है। सवेरे, शाम कहा या नहीं? यह सवेरे, शाम विकल्प नहीं, अन्दर की एकाग्रता सवेरे, शाम किया करता है। **ऐसे उच्च पद को प्राप्त होता है कि जो पद बड़े-बड़े मुनि चिरकालपर्यन्त...** बहुत काल तक **तप द्वारा घोर प्रयत्न से पा सकते हैं।** सवेरे, शाम और मध्याह्न आत्मा की इस प्रकार की आलोचना करे और अल्प काल में महामुनियों को मोक्ष की पदवी दुर्लभ (हो), उस पदवी को पायेगा। अन्त में स्वभाव मोक्ष को पायेगा, यह ले लिया।

भावार्थ :- जो मनुष्य (स्वभाव के भानसहित) प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायं काल—तीनों काल श्री अरिहन्तदेव के समक्ष आलोचना का पाठ करता है, वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है। अल्प काल में मोक्ष को प्राप्त करता है। प्रभु! परन्तु पहले तो आपने इनकार किया कि पंचम काल में मोक्ष नहीं है। मोक्ष है, सुन न अब। अन्तर्दृष्टि और स्थिरता क्रम से करके एकावतारी करके मोक्ष प्राप्त करायेगा।

इसलिए मोक्षाभिलाषियों को श्री अरिहन्तदेव के सामने श्री पद्मनन्दि आचार्य द्वारा रचित इस आलोचना नाम की कृति का पाठ तीनों काल अन्तर में अवश्यमेव करना चाहिए। जिससे उसकी निर्मलता होकर पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति हो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - ८, सोमवार, दिनांक - ०४-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १, प्रवचन-७८१

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। जिसे पद्मनन्दी एक आचार्य महामुनि सन्त आत्मज्ञानी-ध्यानी दिगम्बर मुनि जंगलवासी हुए। ९०० वर्ष पहले (हुए)। उन्होंने यह अधिकार २६ है, परन्तु इसका नाम पंचविंशति रखा—पद्मनन्दि पंचविंशति। श्रीमद् राजचन्द्र इसे वनशास्त्र कहते हैं। वनशास्त्र। वन में लिखा हुआ ताड़पत्र पर। अन्तर में आनन्द में डुबो-डुबोकर जैसे लिखते हैं, वैसे यह बात अन्तर के आनन्द के ऊफान में जो कुछ विकल्प जगत के हित के लिये आया, उसमें दान अधिकार और भक्ति अधिकार आदि का बहुत वर्णन किया। आत्मा का अधिकार निश्चय का तो सवेरे चलता है, यह अधिकार भी इसमें बहुत वर्णन किया है। समझ में आया?

आत्मा... यहाँ यह अधिकार है, तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान अनन्त हो गये। क्योंकि अनन्त काल में जो काल अनन्त है, संसार अनादि है और धर्म के साधक जीव भी अनादि के हैं। भव में साधक पूर्व में नहीं थे, ऐसा नहीं है, परन्तु पूर्व में जो आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, उसे शरीर-वाणी-मन और पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा का अनुभव करके और सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, पश्चात् स्वरूप में स्थिर होकर और चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता प्राप्त करके जिसने सर्वज्ञपद अर्थात् आत्मा की पूर्णानन्द की प्राप्ति की है, ऐसे उन्हें अरिहन्त कहा जाता है, सर्वज्ञ कहा जाता है। उसमें जिसे पुण्य प्रकृति बहुत हो और पवित्रता बहुत हो, उसे तीर्थंकर कहा जाता है। समझ में आया? पुण्य प्रकृति बहुत न हो, तथापि आत्मा आनन्द में परिपूर्ण रमणता करके जिसने आत्मा के आनन्द को हस्तगत किया है। अर्थात् आत्मा की दशा में पूर्णानन्द की प्राप्ति की, ऐसे केवलियों को भी अरिहन्त कहा जाता है। परन्तु उसमें दूसरे को कितनों को पुण्य कम होता है, परन्तु पवित्रता में पूर्ण होते हैं। तब तीर्थंकर जो आत्मा हो, वह तो पुण्य में भी पूरा और पवित्रता में भी पूरा (होता है)।

ऐसे पवित्र आत्मा अनन्त काल में अनन्त हो गये। इस चौबीसी में पहले ऋषभदेव भगवान तीर्थंकररूप से हुए। उन्हें लक्ष्य कर भगवान मुनि पद्मनन्दि आचार्य जंगल में

भक्ति और स्तुति के ६१ श्लोक बनाये हैं। पूरी पुस्तक बनायी परन्तु इस एक भक्ति के ६१ श्लोक बनाये हैं। इसका नाम ऋषभस्तोत्र है। यह तेरहवाँ अधिकार है। २६ अधिकार हैं, उसमें १३वाँ। इसमें ऋषभदेव भगवान की स्तुति को शुरु करते हैं।

प्रवचनसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, हे आत्मा! जिसने सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय जाने... '**जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयतेहिं। सो जाणदि अप्पाणं**' जिसने सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य और पूर्ण दर्शन, ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे आत्मा में क्या स्वरूप उनका द्रव्य है? द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसके गुण अर्थात् शक्तियों का स्वभाव कितना है और कैसा है, और उनकी प्रगट दशायें पवित्र कैसे और कितनी हैं, ऐसा जिसने अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय (जाने)... जगत को भाषा भी जरा कठिन पड़ती है।

द्रव्य अर्थात् वस्तु। गुण अर्थात् उसकी शक्तियाँ और पर्याय अर्थात् उसकी हालत-दशा। जिसने अरिहन्त के आत्मा को द्रव्य, गुण और पर्याय जाने, वह आत्मा अपने आत्मा की ओर अपने को मिलान करता है, उस आत्मा को सम्यग्दर्शन प्राप्त होकर आत्मा को ही जानता है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? अरिहन्त के आत्मा के जिसने द्रव्य, गुण और पर्याय जाने, वह आत्मा अपने आत्मा की ओर अपने को मिलाता है, उनके जैसी जाति का मैं हूँ, ऐसे अन्तर्मुख करने से '**अप्पाणं जाणहि**' उस आत्मा को सम्यग्दर्शन होकर आत्मा को ही जानता है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? ...भाई! द्रव्य, गुण और पर्याय क्या? यह अब अभी और सुना थोड़ा-थोड़ा। नहीं तो अभी तक तो रुपये और दुनिया को कर दे... देखो! हमारे ... भाई कहते हैं। इनने भी बहुत सिरपच्ची की है। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जिसने सर्वज्ञ परमात्मा के द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय को जाना वह '**अप्पाणं जाणहि**'। ऐसा मैं आत्मा हूँ, ऐसे अपने स्वभाव सन्मुख होकर और अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय के साथ आत्मा को मिलान करे, तब उसका आत्मा पुण्य और पाप के रागरहित मेरा स्वरूप है, ऐसा उसे सम्यग्दर्शन में आत्मा हस्तगत होता है। सम्यग्दर्शन में आत्मा का भान होता है। उसे समकिती और उसे धर्म की शुरुआतवाला धर्मी कहते हैं। परन्तु जिसे अरिहन्त क्या है,

उनके गुण क्या हैं, उनकी अवस्था क्या है - इसकी खबर नहीं, उसे आत्मा की खबर नहीं हो सकती।

यहाँ उसकी स्तुति ली है, जिसने अरिहन्त के परमात्मा के पदार्थ, गुण और पर्याय का भान होकर जिसे आत्मज्ञान हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है, साक्षात्कार आत्मा का (हुआ है), राग और विकल्परहित मेरा स्वरूप है, उसका अन्तर में सम्यक् साक्षात्कार दर्शन हुआ है। वह अब ऋषभदेव भगवान की स्तुति करता है। ऐसा अधिकार है। ज्ञानी को भी परमात्मा के प्रति प्रेम उल्लसित हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

सवेरे तो ऐसा कहना था कि शुभ और अशुभराग का प्रेम है, उसे आत्मा के स्वभाव का प्रेम नहीं है। परन्तु उसका भान होने पर भी आत्मा आनन्द और पूर्णानन्द और अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा भान होने पर भी धर्मी को परमात्मा के प्रति प्रेम विकल्प और शुभराग आये बिना नहीं रहता। उसे भक्ति का राग उल्लसित होता है। धर्मी को दान का भी राग-शुभभाव उल्लसित होता है। समझ में आया? जानता है ज्ञानी कि यह भाग पुण्य है। उसे परमार्थ से आत्मा का भान ज्ञानानन्द हूँ, ऐसा होने से ऐसे दया, दान, भक्ति के भाव से व्यवहारधर्मरूप से कहा जाता है। व्यवहारधर्म कहो, पुण्य कहो, शुभभाव कहो, पुण्यास्रव कहो।

अरे! चिल्लाहट मचावे, अरे! शुभयोग को व्यवहारधर्म नहीं कहते। भाई! बहुत बार किया, सुन न अब। आहाहा! जगत को यह क्या चीज़ है, (उसकी खबर नहीं है)। भाई! तेरे भान बिना तूने इतने भव किये... क्या कहें? भगवान कहते हैं, क्या कहें? तब कहते हैं, जो उपदेश चौथे काल में केवली को देना चाहिए, (वह उपदेश) मिथ्यादृष्टि को देते हैं, ऐसा कहते हैं। केवली को उपदेश होता होगा? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु! यह बात है कि भाई! राग और आत्मा का स्वभाव, दोनों को एक माने, तब तक मिथ्यात्व की गाँठ है। और मिथ्यात्व की गाँठ को गलाने, छेदने, जलाने, मैं एक ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसे स्वभाव में एकत्व होकर राग को पृथक् करके जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और मिथ्यात्व की ग्रन्थिभेद जिसने की है, ऐसे जीव को भाव भक्ति का, दया का, दान का आये बिना नहीं रहता। पूर्ण परमात्मदशा न हो तो उसे भगवान के प्रति भक्ति उल्लसित होती है। भक्ति उल्लसित होती है। समझ में आया? प्रभु... प्रभु...

स्तुति में एक गाथा आयेगी। (संवत्) २०१३ के वर्ष में थोड़ा पढ़ा था। पहले जब २०१३ में आये न तब। २०१५ में तो दान का अधिकार पढ़ा था।

यह भक्ति का अधिकार है। जिसे, ज्ञानानन्द मेरी चीज़ है - ऐसी निश्चयभक्ति कहो या निश्चय समकित कहो, ऐसा भान होता है, उसे परमात्मा सर्वज्ञदेव के प्रति व्यवहार भक्ति-शुभराग हुए बिना नहीं रहता। मनसुखभाई! परन्तु उसे धर्मी जानता है कि यह पुण्य आस्रव का कारण है। परन्तु वह आस्रव मैं अभी छोड़ नहीं सकता। मुझमें निर्बलता है, इसलिए पाप से बचने को धर्मी जीवों को दान का, दया का, भक्ति का ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? परन्तु उस भाव को धर्मी व्यवहार धर्म अर्थात् पुण्यरूप से पहिचानता है।

मेरा स्वरूप तो रागरहित जितना स्थिर हूँ, उतनी मेरी शान्ति और संवर, निर्जरा अर्थात् शुद्धि है। जितना स्वरूप के आनन्द में झूलता स्थिर हूँ, उतना मेरा निश्चय और सच्चा मार्ग है। उसमें टिक नहीं सकता, इसलिए उसे पाप से बचने के लिये भगवान (की) भक्ति, दान और दया के परिणाम आये बिना नहीं रहते।

हिंसा से बचने के लिये दया के भाव आवे। झूठ बोलने के भाव से बचने के लिये सत्य बोलने के भाव आवे। चोरी से बचने के लिये अचोरी के-अदत्त के शुभभाव आवे। और परस्त्री का त्याग धर्मी को तो होता है। इतनी तो सज्जनता होती है। समझ में आया? उसे परस्त्री का त्याग और स्वस्त्री में भी मर्यादित राग (होता है)। उसे ब्रह्मचर्य पालने के लिये व्यवहार शुभराग आये बिना नहीं रहता। और अपरिग्रह अर्थात् परिग्रह की त्यागवृत्ति आगे बढ़े, इसलिए उसे अपरिग्रह का शुभराग त्याग का आये बिना नहीं रहता परन्तु इन पाँचों ही परिणाम को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच प्रकार के परिणाम ज्ञानी को होते हैं परन्तु उसे वह पुण्यरूप से व्यवहार धर्मरूप से जानता है। नवनीतभाई!

ज्ञानी स्वच्छन्दी नहीं होगा। ज्ञानी ऐसा समझता है कि राग छोड़ने योग्य है, इसलिए शुभ छोड़कर अशुभ करे, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? यह तो व्यवहार के उपदेश में (कहा जाता है)। बाकी तो ज्ञानी को भी जिस काल में शुभ आनेवाला है, वह आये बिना रहनेवाला नहीं है। उस समय उसे परमात्मा के प्रति भक्ति उछलती है, वह यहाँ पद्मनन्दि आचार्य मानो कि भगवान मेरे समीप बैठे हैं, (ऐसे स्तुति करते हैं)। ऊपर सिद्ध

है। ऋषभदेव तो सिद्ध हो गये। सिद्ध समझ में आता है ? अभी अरिहन्त पद में नहीं हैं। अरिहन्त पद में होवे उन्हें शरीर होता है। उन्हें धर्मसभा होती है। उनकी सभा में इन्द्र आते हैं, वाणी निकलती है, चार कर्म नाश हुए और चार कर्म बाकी हों। ऐसी निजपद की प्राप्ति और पूर्णतावाले तथा शरीरसहित हों, उन्हें अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। और शरीर छूट जाये और अकेला आत्मा रहे, उन्हें विदेहमुक्त सिद्ध कहा जाता है। पहले पद को जीवन्मुक्त और दूसरे पद को विदेहमुक्त (कहते हैं।)

ये पाँचों पद गुणवाचक हैं कोई पक्षपातक नहीं। समझ में आया ? अरिहन्त, सिद्ध ये सब गुणवाचक हैं। जिसने इस विकार के अरि रूपी दुश्मन को हन्ता अर्थात् आत्मा के स्वभाव की शरण में जाकर मानो घात किया है और पूर्णानन्द की प्राप्ति की है, उन्हें देह और आयुष्य होने पर भी जीवनमुक्त केवलज्ञान पाये, ऐसे पद को अरिहन्त पद कहा जाता है। और जो छूटकर चार कर्म बाकी (हैं वे भी) छूटकर अकेला आत्मा पूर्णानन्द के अनुभव की दशा में रमण करनेवाला, ऐसे आत्मा को सिद्धपद—विदेहमुक्त पद—दूसरे पद में गिनने में आया है।

यह तीन पद, तीसरे भी ऐसे हैं, हों! आचार्य, उपाध्याय और साधु। वे भी आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को साधते-साधते जो कुछ पूर्णानन्द को प्राप्त नहीं हुए और उन्हें भी अभी पंच महाव्रत के शुभराग आये बिना नहीं रहते। ऐसे पद को आचार्य कहा जाता है। दीक्षा-शिक्षा देनेवाले को। परन्तु है आत्मा के आनन्द के झरने अन्दर में झरते होते हैं। उपाध्याय भी, जिनके समीप आत्मा का अध्ययन हो, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। साधु—स्वरूप को साधे, आनन्दकन्द का साधन अन्तर में करे, ऐसी दशावान को साधु कहते हैं। ये पाँचों पद आत्मा के गुणवाचक हैं।

इसमें आदिनाथ भगवान को लक्ष्य करके पद्मनन्दि महाराज स्तुति और भक्ति करते हैं। श्रीमद् में एक वाक्य है। भाई! 'हरता फरता प्रगट प्रभु देखूँ,' ज्ञानी धर्मी को परमात्मा के प्रति ऐसा प्रेम है कि उसे परमात्मा बारम्बार याद आते हैं। क्योंकि स्वयं को परमात्मा होना है और परमात्मा स्वयं वर्तमान में नहीं, इसलिए हुए हैं, उन्हें बारम्बार स्मृति में, प्रेम में लाता है।

हरता फरता प्रगट प्रभु देखूँ, मारुँ जीववुं रे सफल तब लेखुं।
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे, ओघा जीवनडोरी अमारी रे...

ज्ञानी को आत्मा के प्रेम में, आत्मा के आनन्द के प्रेम में उन्हें पूर्णानन्द को प्राप्त

परमात्मा बारम्बार याद आते हैं। समझ में आया ? दुनिया में भी लिखते हैं स्त्री के प्रति। पुरुष जब परदेश में हो, दस वर्ष से बाहर हो। स्त्री को पत्र लिखे कि दस वर्ष से हम अलग हैं, मेरा जीव वहाँ लगा है। दोनों देह अलग है, ऐसा लिखते हैं। भोगीभाई ! लिखते हैं या नहीं ? मेरा जीव वहाँ लगा है। मात्र देह से भिन्न अलग हैं। तू वहाँ और मैं यहाँ। मेरा जीव वहाँ लगा है। दस वर्ष से अलग हो न।

इसी प्रकार यहाँ अरिहन्त परमात्मा को धर्मी जीव (कहता है), हे नाथ ! तुम्हारी देह और तुम्हारी आत्मा कहीं है। अरिहन्त पद में महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ विराजते हैं। ऋषभदेव भगवान सिद्धपद में विराजते हैं। उन्हें अब अरिहन्तपद है नहीं। परन्तु धर्मी कहते हैं, प्रभु ! मैं यहाँ हूँ, आप वहाँ हो। मेरा आत्मा, आपके ज्ञान और आनन्द में मेरा लक्ष्य वर्तता है। मेरे जीवन में प्रभु ! आप बारम्बार याद आते हो। जैसे प्रिय पुत्र बारम्बार याद आवे राग के प्रेम में।

इसी प्रकार परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ निर्दोष दशा प्राप्त, रागरहित निर्दोष दशा प्राप्त, उन्हें सम्यग्ज्ञानी-धर्मी को अथवा धर्म न पाया (हो), ऐसे जीव को भी ऐसे देव के प्रति प्रेम और भक्ति आये बिना नहीं रहती। समझ में आया ? मनसुखभाई ! तब वे कहते हैं, उनके प्रति भक्ति करे, उस भाग को तुम धर्म कहो। भगवान ! भाई ! यह बात... उनकी ओर का लक्ष्य और जो राग है, उसे चैतन्य के ऊपर लक्ष्य किये बिना आत्मा की शान्ति और निर्मलता प्रगट नहीं होगी। जितना परसन्मुख में राग है, वह पुण्य का कारण है। उस पुण्य के फल में भविष्य में उसे अनुकूल सामग्रियाँ—धर्म श्रवण की, तीर्थंकर के योग की, सन्तों के योग की सामग्री मिलेगी। ऐसा उसे पुण्यास्रव हुए बिना नहीं रहता। परन्तु कोई उसे ऐसा मान बैठे कि यह शुद्धता और आनन्दकन्द का, यह संवर और निर्जरा शास्त्रभाषा है, तुम्हारी सादी भाषा में कहें तो वह शुद्धता है- ऐसा नहीं है। समझ में आया ? तथापि वह आये बिना नहीं रहता।

धर्मी जीव को चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, यह मुनि है—छठे गुणस्थान में विराजमान सन्त हैं। परमेश्वर पद अन्दर आत्मा है। ऐसे आनन्दकन्द के गोला को पृथक पाड़कर रमते हैं, तथापि उन्हें भक्ति का विकल्प भी आता है। वह अब भक्ति करते हैं, देखो ! यह उपोद्घात किया।

ऋषभस्तोत्र। यह अध्याय २६ है, उसका १३वाँ (अध्याय) है।

गाथा १

जय उसह णाहिणंदण तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर।
जय सयलजीववच्छल णिम्मलगुणरयणणिहि णाह।।१।।

अर्थ :– श्रीमान् नाभिराजा के पुत्र; ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकरूपी घर के लिये दीपक तथा धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करनेवाले, हे ऋषभदेव भगवान! आप सदा इस लोक में जयवन्त रहो। समस्त जीवों पर वात्सल्य को धारण करनेवाले और निर्मल गुणोंरूपी रत्नों के आकर (खजाना) – ऐसे हे नाथ! आप सदा इस लोक में जयवन्त रहो।

गाथा - १ पर प्रवचन

यह तो अध्यात्म दृष्टि की, भक्ति भी अध्यात्म सहित की भक्ति अलौकिक है।

अर्थ – हे ऋषभ जिनेन्द्र! इसका अध्यात्म अर्थ तो यह है, 'ऋषति गच्छति इति परमपद इति ऋषभः।' आत्मा अपने परमपद के आनन्द में पवित्रता में परिणमन करे, उस आत्मा को ऋषभदेव कहा जाता है और वे तीर्थंकर हुए, वे भी अपने आनन्द में, ज्ञान में ... अन्तर में पाये। 'ऋषति गच्छति परमपद इति ऋषभ।' ऐसी ज्ञानी को खबर है कि किस पद द्वारा आप परमात्म पद पाये, किस मार्ग द्वारा आप परमात्म पद को प्राप्त हुए। धर्मी को ऐसा दृष्टि में होता है, तथापि वह भगवान के प्रति कहता है, प्रभु! आपके कारण ही हमें मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसा व्यवहार से उपचार से कथन किये बिना ज्ञानी रहता नहीं। आवे उसे, तथापि समझता है कि मुक्ति तो मेरे स्वभाव के आश्रय से होती है। उसमें भगवान का तो निमित्तमात्र कहने में आता है।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! देखो! पद्मनन्दि आचार्य मुनि सन्त जंगल में बसनेवाले, वे भी ऐसे भगवान मानो सामने खड़े हों, (इस प्रकार से भक्ति करते हैं)। '**जय उसह**' ऐसा पहला शब्द पड़ा है। पहला शब्द— '**जय उसह**' हे ऋषभदेव नाथ! आपकी जय हो! अर्थात्? उनकी तो जय हो गयी है। कहनेवाले के कारण जय होती है? परन्तु कहते

हैं, हे नाथ! आपने परमानन्द पद प्राप्त किया, वह ऐसा का ऐसा रहो। जय होओ! अर्थात् कि मेरे आत्मा के आनन्द पद की प्राप्ति की दृष्टि मुझे हुई है, वह मुझे पूर्णानन्द में ले जाओ। अर्थात् जय होओ, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? जय शब्द पहला पड़ा है।

'**जय उसह**' हे ऋषभप्रभु! आपकी जय हो! इसके अर्थ दो हैं। पूर्णानन्द केवलज्ञान पाये, वह ऐसा का ऐसा रहो और उसका उपाय भी जगत में हो, वह रहो। क्या कहा? इस आत्मा में आत्मा का आनन्द जो पुण्य और पाप के रागरहित की श्रद्धा और ज्ञान साधन है, वह भी रहो और उसके फलरूप से केवलज्ञान जगत में शाश्वत् रहो। बाधकभाव न रहो और साधकभाव और साध्यभाव रहो। ऐसे विकल्प में प्रमोद करके भावना करते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें कुछ? भाई! यह तो भक्ति है, वह अलग प्रकार की भक्ति है।

मीराबाई में नहीं आता? उनकी भक्ति में। 'परणी मारा पियुजीने साथ रे, बीजाना मींढोल नहि रे बांधु।' राणा आता है और कहता है, विषय ले। अरे... राणा!

परणी मारा पियुजीने साथ रे, बीजाना मींढोल नहि रे बांधु,
नहि रे बांधु रे राणा, नहि रे बांधुं...
परणी मारा पियुजीने साथ रे, बीजाना मींढोल नहि रे बांधु,

उसी प्रकार धर्मी कहता है 'साथ है मेरे स्वभाव का साथ रे, विकार का संग अब नहीं रे करूँ...' समझ में आया? तथापि उसे प्रेम में भगवान का प्रेम उल्लसित हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी स्तुति करते हुए देवचन्दजी भी कहते हैं न?

ऋषभ जिणंदसुं प्रीतडी, किम कीजे हो कहो चतुर विचार
.....
ऋषभ जिणंदसुं प्रीतडी, किम कीजे हो कहो चतुर विचार

हे प्रभु! आपके साथ प्रीति कैसे करना? आपके हो गये वीतराग, हम रहे रागी। समझ में आया? आप निर्दोष वीतराग (हुए), आप को तो एक राग का विकल्प नहीं। और हमें आपकी प्रीति करना। 'ऋषभ जिणंदसुं प्रीतडी, कहो किम कीजे हो कहो चतुर विचार।' कैसे बने? 'कागल पण...' चिट्ठी परमात्मा के पास नहीं पहुँचती। चिट्ठी अर्थात् मेरा विकल्प उन्हें नहीं पहुँचता। 'न पहोंचे कोनी...' और आपके पास जाये, वह तो

आपके ही जैसा वह हो जाता है। आपकी बात प्रभु! आपको कैसे कहें? नवनीतभाई! अरे... प्रभु! आप वहाँ विराजे, वहाँ रहे। मैं यहाँ रह गया। इस भरतक्षेत्र में प्रभु! आपका हमें विरह पड़ा।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज जब संवत ४९ में होते हैं। आत्मा के आनन्द के धाम में रमनेवाले। उन्हें भी एक विकल्प आया। पोन्नूरहिल, जहाँ अभी गये थे। मद्रास से इस ओर अस्सी मील है। वन्देवास। लगभग दस हजार की आबादी। वहाँ से पाँच मील (दूर) पोन्नूरहिल है। ध्यान में रहते थे। उसमें उन्हें विरह लगा। हे नाथ! 'भरतक्षेत्र मां नव पणुं जी... लाध्यो दुषमकाण।' प्रभु! हम भरतक्षेत्र में इस दुषमकाल में, इसमें प्रभु! तीर्थंकर का हमें विरह पड़ा। हमें भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ पिताजी का विरह पड़ा। यहाँ विरह पड़ा, वह आत्मा के साथ किस प्रकार लेना? ऐसा अन्दर में विकल्प आया। डाह्याभाई! किसे? कुन्दकुन्दाचार्य को। आहाहा!

हे नाथ! पूर्णानन्द को प्राप्त। प्रभु! नहीं भरतक्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकर, नहीं महाविदेहक्षेत्र के यहाँ हों। हमें विरह पड़ा। ऐसा अन्दर विकल्प आया और सहज कोई पुण्य का योग। वहाँ आगे भगवान के पास गये। सब बात अभी सिद्ध करने जायें तो लम्बा नहीं चलता। सब सिद्ध हो गयी बात है। संवत् ४९ में साक्षात् भगवान महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। ५०० धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, बारह प्रकार की सभा है, इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की इच्छा बिना वाणी अभी निकलती है। समझ में आया? ऐसे तीर्थंकर के पास उस पोन्नूरहिल से साक्षात् सदेह गये। जाकर आठ दिन वहाँ रहे। वे महाविदेहक्षेत्र के भगवान, उनसे भेंट की। यहाँ भरतक्षेत्र के मानव और वे मुनि, ऐसा कोई पवित्रता का योग और पुण्य का योग, दोनों का मिलान हो गया। साक्षात् भगवान के पास जाकर आठ दिन रहे। बात सुनी। आकर यह समयसार आदि रचे हैं। यह पोन्नूरहिल (पर) ताड़पत्र पर लिखे हैं। अभी वहाँ लाखों ताड़ी हैं। अभी लाखों ताड़ी हैं। यह तो दो हजार वर्ष पहले की बात है। तब तो बहुत ताड़ के वृक्ष थे, उनके पत्र पर लिखे। भगवान के पास जाकर, (वापस) आकर आठ दिन साक्षात् तीर्थंकर अरिहन्त त्रिलोक के नाथ वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में है। वहाँ विराजमान हैं। विशुद्ध आँखों से देखा? परन्तु इसका अनुमान तो करना पड़ेगा या नहीं?

कोई मेरे पहले आत्मा का भान करके साधकपना प्रगट करके पूर्णानन्द की प्राप्ति हुए जीव होना चाहिए। क्यों ? कि आत्मा स्वरूप से... जैसे भटकते हुए इसे अनन्त काल गया, वैसे स्वरूप के साधन के लिये अनन्त काल नहीं हो सकता। ध्यान रखना। आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति का सम्यग्दर्शन और पश्चात् केवलज्ञान। इतने समय में बीच में असंख्य समय ही होते हैं। साधक जीव को अनन्त काल केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये किसी जीव को नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें ? इसलिए उनके ज्ञान में धर्मी को भी आता है कि इससे पहले जीव आत्मा के अन्तरस्वरूप का साधन करके और असंख्य समय में केवल (ज्ञान) की प्राप्ति करके, जिन्हें अभी दूसरा देह, देह का आयुष्य और संस्कार बाकी हैं, ऐसे जीव मुझसे पहले हुए हैं। हैं तो किस क्षेत्र में हैं, वह इसे निर्णय करना चाहिए। मनसुखभाई ! यह महाविदेहक्षेत्र में हैं। और जो शरीररहित हो गये, वे सिद्धक्षेत्र में हैं।

इस प्रकार ज्ञान के भान में अरिहन्त और सिद्ध के पद को लक्ष्य में लेकर महाविदेह क्षेत्र में ये कुन्दकुन्दाचार्य गये, आठ दिन रहे। भगवान की साक्षात् ध्वनि सुनी। (यहाँ आकर) शास्त्र रचे। उन्हीं कुन्दकुन्दाचार्य के बाद हुए पद्मनन्दि, वे भगवान की स्तुति करते हैं। उन्होंने भी स्तुति बहुत की है।

यहाँ कहते हैं कि हे नाभिराजा के पुत्र ! पहले क्या कहते हैं ? जय नाभिराजा के पुत्र, ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? अध्धर से कोई परमेश्वर नहीं हुए और ऐसे के ऐसे अनादि के यह तीर्थंकर वर्तते हैं, (ऐसा नहीं है)। तीर्थंकररूप से। सिद्धरूप से भले अनादि हो। अरिहन्त पद में। परन्तु यह तीर्थंकर अनादि के थे, ऐसा नहीं है। ऐसा कहकर (कहते हैं), कैसे थे ? कि नाभिराजा के पुत्र थे। ऊपर से पड़े हैं, ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया ? आत्मा का साधन करते-करते उन्नति क्रम में वे जब अन्तिम देह में केवल (ज्ञान) प्राप्त होनेवाला हो, तब उन्हें माता और पिता होते हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। अर्थात् कि श्रीमान् नाभिराजा के पुत्र। मरुदेवी को बाद में लेंगे। पहले पुत्ररूप से वर्णन किया है। व्यवहाररूप से वर्णन (किया है)।

आप एक नाभिराजा के पुत्र थे। अध्धर से लखितंग और मफतलाल की सही नहीं थे। समझ में आया ? बहुत से कहते हैं न ? ईश्वर का अवतार और ईश्वर का पुत्र, ऐसा

कहते हैं। ऐसा नहीं होता। ईश्वर को ऐसे अध्धर में पुत्र नहीं हो सकता। वह किसी भी माता के गर्भ में आया हो और पूर्ण की प्राप्ति इस देह में करनी हो, तब उसके माता-पिता होते हैं, तब कहते हैं, हे राजा नाभि के पुत्र! अर्थात् पिता सिद्ध किये। यह व्यवहार सिद्ध किया। माता का बाद में कहेंगे।

इन्द्र भक्ति करते हैं, भाई! जब तीर्थंकर जन्मते हैं न, पूर्ण... इसकी बात अभी (नहीं जँचती)। अभी पुण्य कम, उनकी पवित्रता और पुण्य किस प्रकार बतलाना? जगत के पुण्य बहुत कम। पहले के राजा अरबोंपति। एक-एक दिन के अरबों पैदा करे, सहज, हों! अमुक कर और पूछडा कर और... कर (टैक्स) और उत्तराधिकार कर... ऐसा करके नहीं। पूर्व के राजा ऐसा ही कोई पुण्य लेकर आते थे कि वे जहाँ जन्में वहाँ पत्थर भी नीलमणि हो जाये। वे जहाँ जन्में, वहाँ समुद्र में मछलियों में मोती पके, ऐसे लाखों पके। सहज पूर्व के पुण्य आत्मा के भान की भूमिका में बाँधे हुए होते हैं। ऐसे पुण्यवन्त जहाँ जन्मते हैं वहाँ कुदरत की लक्ष्मी, उनके पास आकर पड़ती है। उनका उत्तराधिकार कर और ढीकणा कर (उगहाना नहीं पड़ता)। देखो न, अभी तो सरीखा कर डालना है न! बहुत सुनते हैं। कोई-कोई कहते हैं, हम कहाँ देखने गये हैं। कोई कहे, उत्तराधिकार कर और फलाणा कर और ने पूछडा कर और... कर और झाजिया कर और अमुक कर, ऐसा करके सरीखा कर डाले। वह तो इतना पुण्य लेकर आये कि आहाहा! उनका शरीर ऐसे देखो तो पुण्य का पुतला हो। उन्हें लोग कहते आवें कि यह महापुण्यवन्त है। यह पकने के पश्चात् हमारी जमीन में अनाज बहुत पकता है। इसके जन्मने के बाद पत्थर नीलमणि हो गये। यह जन्मने के बाद मछलियों के मोती, मछलियों के पेट में करोड़ों सच्चे मोती पकने लगे। राजा का राजपन प्रजा कहती आवे, प्रभु! आप हमारे राजा हो। ऐसे पुण्य लेकर आवे।

ऐसे तीर्थंकर पुण्य लेकर आये हुए, वे माता के गर्भ में जब आते हैं, तब तो इन्द्र महोत्सव करते हैं, परन्तु जब उनका जन्म होता है... आगे कहेंगे, तब इन्द्र आकर कहते हैं, इन्द्र, हों! इन्द्र और इन्द्राणियाँ हैं, स्वर्ग है, हों! यह सब कल्पना नहीं है, हों! यह सब लॉजिक-युक्ति से सिद्ध होता है परन्तु घर के नलिया की इसे खबर होती है, कितने सलिया कितने? इस जगत में क्या हुआ, कैसे होता है और मैं कौन हूँ, इसकी इसे खबर नहीं है।

यह माता और पिता... जब माता जन्म देती है, तब इन्द्र माता के पास आता है। तब उसकी ऐसे स्तुति करता है, हों! इन्द्र एकावतारी होता है।

एकावतारी समझ में आता है? वर्तमान एक सौधर्म देवलोक है। उसकी रानी है— शचि। वह भी एक भव करनेवाली है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाली है और इन्द्र भी अभी सौधर्म देवलोक में है, वह भी मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला समकिती है। वे भी जब माता तीर्थंकर को जन्म देती है, (तब) आकर कहता है,

पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे...
माता यत्न करके रखना इसको, तुम सुत हम आधार रे...

देखो! यह समकिती-ज्ञानी, क्षायिक समकिती! एक भव करनेवाला भी भक्ति में उछलता है तब भाव (आते हैं), नमो रत्नकूखधारिणी! माता को पहले नमस्कार करता है। ऐसा रत्न तूने गर्भ में रखा। इसे जन्म देकर... जगत के उद्धार में निमित्त होगा और इस देह से केवलज्ञान लेगा। इसलिए हे माता! रत्नकूखधारिणी! जननी! तुमने रत्न को गर्भ में रखा, तुम्हें पहला हमारा नमस्कार! आहाहा! समझ में आया? फिर ऐसा कहते हैं, 'पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा,' समकिती है, हों! व्यवहार से स्वामी, निश्चय स्वामी तो आत्मा है। व्यवहार में... समझ में आया?

पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे...
माता यत्न करके रखना इसको,

भक्ति के भाव तो ऐसे आवे न! आयुष्य प्रमाण रहेगा, दूसरे से कुछ होता नहीं, हों! परन्तु व्यवहार में ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता।

माता यत्न करके रखना इसको, तुम सुत हम आधार रे...

लो, आधार। एक ओर फिर कहे कि निश्चय में कोई किसी का आधार नहीं है। सुन न, भाई! यह तो आत्मा का निश्चय आधार मैं और आधेय मेरा स्वभाव। ऐसा निर्णय करने के पश्चात् व्यवहार से तीन लोक के नाथ परमात्मा भी मुझे व्यवहार से आधार है। ऐसा उपचार से... इसे जानना चाहिए। निश्चय से तो अपना आत्मा आधार है। किसी का आधार नहीं। समझ में आया?

आनन्दघनजी कहते हैं न ? 'दु:ख दोहग दूरे टल्या रे, सुखसम्पद शुं भेट' आता है न ? लालभाई ! 'ढिंग धणी माथे कियो जी, दु:ख दोहग दूरे अल्या जी,' प्रभु ! हमारे दु:ख और दुर्भाग्य तो नष्ट हो गये। आप सर्वज्ञ परमात्मा जिस भव में होनेवाले हो, वे हुए उनके हम भक्त हुए। 'दु:ख दोहग...' दु:ख और दुर्भाग्य। दु:ख अर्थात्... और दुर्भाग अर्थात पाप... 'दु:ख दोहग दूरे टल्या जी, सुख संपद शुं भेट।' आनन्दमूर्ति का सुख और सम्पत्ति पूर्व के पुण्य के कारण ढ़ेर पुण्य के भविष्य में होनेवाले हैं। अभी कहेंगे। प्रभु ! हम पुण्यवन्त ऐसे हैं, भविष्य में इतना पुण्य आयेगा कि हमारी आज्ञा माँगेगा कि क्या चाहिए है ? कौन सी लक्ष्मी चाहिए है ? क्या राज चाहिए ? ऐसी आज्ञा माँगेगा, ऐसा अभी कहेंगे, प्रभु ! तेरी भक्ति करनेवाले को भविष्य में पवित्रता की कमी नहीं और पुण्य की भी कमी नहीं हो सकती। समझ में आया ?

दु:ख दोहग दूरे टल्या जी, सुखसंपद शुं भेट।
धिंग धणी माथे कियो जी, कुण गंजे नर खेट।

अब कोई नर अर्थात् अधम जीवों का हमारे क्या काम है ? प्रभु ! आपके जैसे महा सर्वज्ञ परमात्मा के गोद में हम बैठे हैं। समझ में आया ? माता की गोद में बैठे उसे जगत का भय नहीं होता। माता मरे तो मरने दे बालक को ? ऐसा जिसे विश्वास है, हे नाथ ! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोक वीतरागी देव, आपके शरण आये, आपकी गोद में बैठे हों अब। समझ में आया ? 'धिंग धणी माथे कियो जी, कुण गंजे नर खेट।' दूसरे नर अधम पुरुष अब कौन हम गिने उन्हें ? आपकी गोद में बैठे... 'मोटाने उछंग बेठोने शी चिंता ? अेम प्रभुचरण पसाय, सेवक थया निश्चिन्ता...' डाह्याभाई ! 'मोटाने उछंग बेठोने शी चिंता ?' ... भाई ! आता है या नहीं ? देवचन्दजी ! 'तेम प्रभुचरण पसाय, सेवक थया निश्चिन्ता।' हम सर्वज्ञ और पूर्णानन्द की प्राप्ति के प्रेमी, हमें जिसकी दृष्टि हुई, बड़े की गोद में बैठे हैं। अब कोई अधम और हल्के की गोद में नहीं बैठे। प्रभु ! तुझे मिला, ऐसा उत्तराधिकार हमें मिलनेवाला है, ऐसी गोद में बैठे हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

अपनी चैतन्य सम्पदा की प्रीति के प्रेम में पूर्णानन्द की प्रीति के प्रति जो प्रेम हुआ है, वह कहता है, प्रभु ! हम बड़े की गोद में बैठे हैं, हम कहीं भिखारी की गोद में बैठे हैं ? अरे ! कल्पवृक्ष के नीचे जाये तो कल्पवृक्ष ... गिरता है। यह तुम्हारी गोद में आये और

तुम्हारी शरण में आये, हमें केवलज्ञान और आनन्द की प्राप्ति हुए बिना रहनेवाली नहीं है। समझ में आया ?

कहते हैं, पहला नाम दिया। जय नाभिराजा के पुत्र ! यह व्यवहार किया। पश्चात् ? '**तिहुवणणिलएक्कदीव**' अब निश्चय कहते हैं। प्रभु ! हम आपके पहिचानते हैं, हों ! कैसे हैं आप ? तीन लोक में निलय अर्थात् स्थान में एक दीपक आप हैं। क्या कहते हैं ? '**तिहुवणणिलय**'। तीन भुवन—अधो, मध्य और ऊर्ध्व। तीन लोकरूपी घर के आप एक दीपक हो। क्या कहा ? तीन काल-तीन लोक को प्रकाशित करने में सामर्थ्य होवे तो प्रभु ! आपके ज्ञान के दीपक में है। तीन लोक और तीन काल के आप दीपक एक ही हो। यह .... की व्याख्या की।

पहले पिता की व्याख्या की (कि) वह अध्धर से नहीं जन्मे थे। पिता थे। और तत्पश्चात् कहा—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोकरूपी जो घर, निलय अर्थात् घर, उसके दीपक—एक दीपक। समझ में आया ? पाठ में ऐसा है, '**णिलएक्कदीव**' हों ! एक ... रह गया है इसमें—अर्थ में। आप एक ही दीपक हो। आप ही हो। केवलज्ञानरूपी दीपक, यह तो एक दीपक है। तीन लोक और तीन काल को प्रकाशित करनेवाले, ऐसी जिसे प्रतीति (आयी) आहाहा ! जिसके ज्ञान में एक समय में तीन काल तीन लोक ज्ञात हो, ऐसे परमात्मा का ज्ञान जिसे अन्दर बैठे, उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया ? बैठे किस प्रकार ? इसे शंका... शंका... शंका... शंका... एक समय का ज्ञान तीन काल को जाने ? तीन लोक को जाने ? इतने सब तो गाड़ा किस प्रकार भरते होंगे ? अरे.. भगवान ! सुन न, भाई ! तेरे ज्ञान की पर्याय का स्वभाव इतना अनन्त है कि इतने लोक तो क्या ? तीन काल से अनन्त गुणा काल दूसरा हो और लोक से अनन्तगुणे लोक हों तो भी एक समय में जानने की ताकत ज्ञान की पर्याय रखती है। आहाहा ! भारी बात, भाई !

भगवान ! आत्मा वस्तु, उसका ज्ञानगुण और उसकी एक समय की केवलज्ञानरूपी पर्याय। पर्याय है, वह अवस्था है। वह तीन काल-तीन लोक को जानने का एक दीपक है। ऐसा कहकर इसने पूर्ण ज्ञान को अन्दर भरोसे में लिया है और पूर्ण ज्ञान स्व और तीन काल को जानता है, वैसा ज्ञान का सामर्थ्य है, ऐसा ज्ञानी ने प्रतीति में लिया है। समझ में

आया इसमें ? लो, यह भक्ति आयी। भक्ति में भी वापस यह (आया)। परन्तु होवे वह आवे न। यह धर्मी की भक्ति है। यह कहीं पागल की भक्ति नहीं है।

छोटी उम्र में वहाँ पालेज में थे न, भाई! फिर वे भक्ति करने जाये। छोटी उम्र में रस तो था न सब। छोटी उम्र में बहुत भक्ति (करते)। पश्चात् वे बोलते, रात्रि में भजन करे उसमें। हमारे भोगावाले लक्ष्मीचन्द कानजी, वैष्णव थे। सगे-सम्बन्धी इसलिए वहाँ जायें, हमारा भी ... आवे। रात्रि में भजन करते। उसमें उस समय बोलते, हों! (संवत्) १९६४-६५ की बात है। संवत् १९६४।

जगतडा कहे छे रे भगतडा घेला छे,
पण घेला न जाणशो रे, प्रभुने त्यां अे पहेलां छे।

नवनीतभाई! यह तो ६४-६५ की बात है। सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र थी, तब वहाँ सुनते। 'जगतडा कहे छे...' यह क्या परन्तु पागल भक्ति लगायी है यह ? किसकी लगायी यह ? सुन न अब। सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में तीन काल और तीन लोक के जाननेवाले, उनकी भक्ति करनेवाला पागल हुआ है अब, गहल हुआ है। किस प्रकार ?

जगतडा कहे छे रे भगतडा घेला छे,
पण घेला न जाणशो रे, प्रभुना पंथ में अे पहेलां छे।
जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे,...

यह काला जैसी बातें। यह सब सुधरे हुए बड़े-बड़े... करे। क्या यह तो केवलज्ञान और उसे फिर ऐसा हो।

जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे,...
पण काला न जाणशो रे, प्रभु ने अे व्हाला छे।

यहाँ कहेंगे, '**सयलजीववच्छल**' भाई! इसमें शब्द पड़ा है। सर्व जीव ... भगवान है। आहाहा! वीतराग है न! सुन न! वह तो सर्वज्ञ वीतराग है। परन्तु भक्त समकिती... यहाँ तो सर्व जीवों को वात्सल्य करनेवाले भगवान हैं, ऐसा कहेंगे। सभी जीवों के प्रति वात्सल्य। वात्सल्य अर्थात् केवलज्ञान हुआ, अकषायदशा प्रगट हुई, अकषाय की करुणा कही और उसे वात्सल्य कहने में आया है। यह ठीक और यह अठीक, (ऐसा) भाग

निकल गया। अकेलो वीतरागभाव रह गया। सर्व जीवों के प्रति भगवान को वात्सल्य-प्रेम वर्तता है, ऐसा कहने में आता है। विकल्प नहीं, हों! राग नहीं। समझ में आया इसमें?

पहला भाग ऐसा रखा, '**तिहुवणणिलएक्कदीव**' हे नाथ! आहाहा! जिसके ज्ञान में आप—अरिहन्त की दशा तैरती है, सर्वज्ञ प्रभु की दशा। जिसका ज्ञान सामर्थ्य एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक को जाने। अरे! इतना क्या, इससे अनन्तगुणा होवे तो जाने। ऐसा जिसे-धर्मी को, केवलज्ञान के ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्यता बैठी है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। राग और पर्याय पर नहीं होती। समझ में आया? वह यह सच्ची भक्ति करता है। निश्चय भी सच्चा और व्यवहार का विकल्प उठा तीन का, वह भी सच्चा। सच्चा अर्थात् व्यवहार से व्यवहार बराबर होता है। व्यवहार आये बिना नहीं रहता।

कहते हैं, हे नाथ! '**तिहुवणणिलएक्कदीव**' वेल है... मण्डप होता है न? मण्डप। वेल नहीं करते गर्मी में? वेल। जहाँ तक मण्डप है, वहाँ तक वेल पसरती है, बाँस के ऊपर। परन्तु फिर आगे नहीं जा सकती। परन्तु इतने और इतने में फैलती है। परन्तु वेल में आगे जाने की ताकत नहीं है, ऐसा नहीं है। मण्डप करते हैं न? मण्डप। वेलडी के ऊपर। जब तक उसका छोर हो, वहाँ तक जाती है। फिर नहीं तो कहाँ जाये? परन्तु उसमें आगे जाने की ताकत नहीं है, ऐसा नहीं है।

उसी प्रकार हे नाथ! आपके ज्ञान की दशा में तीन काल-तीन लोक का मण्डप है, उतना आपने जान लिया है। परन्तु इससे अनन्त गुना नहीं जानने की ताकत, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं यह? समझ में आया या नहीं इसमें? जयन्तीभाई! यह गज ही अलग प्रकार के हैं। सर्वज्ञ को मापने के, सर्वज्ञ के प्रेम के, सर्वज्ञ की भक्ति के गज ही अलग प्रकार के हैं। हे नाथ! तीन लोक हैं और इससे अनन्त गुणा लोक होता, तीन काल है, इससे अधिक किसका हो? परन्तु आपके ज्ञान में... आहाहा! देखो! इतना उसे भान और प्रतीति आयी है तो उसका बहुमान करते हैं। जिसे इस ज्ञान के सामर्थ्य का भान नहीं होता, उसे सर्वज्ञ के प्रति सच्चा बहुमान नहीं हो सकता। सच्चा नहीं होता, ऊपर-ऊपर से किया करे। पुण्य बाँधे और भक्ति... परन्तु सच्चा (नहीं होता)। आहाहा! एक आत्मा, उसका एक ज्ञानगुण, ऐसे अनन्त गुण; उसकी एक समय की पर्याय—अवस्था। तीन

लोक और तीन काल का दीपक प्रभु आप। मेरे और तुम्हारे और सबके भाव प्रभु! आपके ज्ञान में वर्तते हैं। बराबर होगा? यह दूसरी बात की।

'तित्थयर'। अब क्या कहते हैं? आप तीर्थ को स्थापित करनेवाले हैं। नाभिराजा के पुत्र वर्णन किया। जय हो नाथ! आपकी जय हो! ऐसा कहकर मांगलिक किया है। तीन लोक के एक दीपक हों तो आप एक ही हो। हम भी अभी अधूरे ज्ञानवाले (हैं)। पूर्ण ज्ञान है, वह जगत का एक दीपक है। समझ में आया? 'दीवो ताणं सरण गई पईट्ठा।' नहीं आता? नमोत्थुणं में आता है। परन्तु अर्थ नहीं आता। नमोत्थुणं है न? नमोत्थुणं। उसमें आता है। आता है? जेठालालभाई! 'दीवो ताणं सरण गई पईट्ठा।' अर्थ न समझे तो (ऐसा बोले), दीवा टाणे संघवी पीट्या। ऐसा अर्थ किया। खबर नहीं होती।

दसा-वीसा को विवाद हुआ। अर्थ आता नहीं। अभी अर्थ भी आता नहीं, क्या है? उसके भाव और उसके अनुभव की बातें तो (कहाँ से खबर हो)। ''दीवो ताणं सरण गई पईट्ठा।' दीपक के समय संघवी पीट्या। उसे दोनों को विवाद उठा होगा। अरे! परन्तु यह शास्त्र में कहाँ से आया ऐसा? अर्थ देखा तो, यह तो दूसरी बात है। प्रभु! आप तो द्वीप समान हैं। आप द्वीप समान हैं। बड़े समुद्र में द्वीप हो ऐसे उद्धार के लिये। उसी प्रकार जगत के समुद्र-सिन्धु अनन्त अपार परिभ्रमण की अटवी, उसमें आप द्वीप समान हो। आपकी शरण आवे, अर्थात् आपका ज्ञान जो लक्ष्य में ले, उसे शरण मिले और उसका अशरण टले बिना रहे नहीं। जेठालालभाई! इस प्रकार होना चाहिए। समझकर बात है।

'तित्थयर'—धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करनेवाले। अर्थात् क्या? सर्वज्ञ परमात्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, तब इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती है। 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' ॐ ध्वनि खिरती है। उसके कारण योग्यतावाले जीव धर्म को पाते हैं, उसकी प्रवृत्ति करनेवाले आप हो, ऐसा निमित्त और व्यवहार से कहा (जाता है)। भक्ति में तो व्यवहार ही होता है न। मैं मुझसे तिरूँगा, ऐसा कहा जाता है भक्ति में? इसलिए निमित्त के कथन हैं। उनका ज्ञान ज्ञानी को यथार्थ वर्तता है।

'धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करनेवाले...' आहाहा! जिसने आपकी वाणी सुनी और जिसने अन्दर में आत्मा के ज्ञान, आनन्द को साधा, उसके तीर्थ के—तिरने के उपाय जिसने प्रगट किये, प्रभु! आपने जो यह किया, ऐसा हम तो कहते हैं। **हे ऋषभदेव**

भगवान! आप इस लोक में सदा जयवन्त रहो! यह पहिचान करके कहा है, हों! जयवन्त रहो, नाथ! ऐसा केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला ऐसा का ऐसा आपको अनन्त काल रहनेवाला है। हम कहते हैं, जयवन्त रहो! बाधकभाव रहो नहीं, साधकभाव रहो और उसके साध्यभाव अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहो। इसमें विवेक हुआ, पर का आदर नहीं और स्व का आदर। आत्मा पवित्रता शुद्ध, उसकी श्रद्धा-ज्ञान का आदर; और राग का आदर नहीं। बाधक का नहीं। पूर्णानन्द की प्राप्ति, वह मुझे आदरणीय है, बाकी दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। कहते हैं, जयवन्त रहो। तथा...

'**सयलजीववच्छल**' देखो! अब यह एक शब्द मुनि कहते हैं। पंच महाव्रतधारी जंगलवासी (कहते हैं)। आप कैसे हो? प्रभु! सकल जीव में वात्सल्य करनेवाले हो। **समस्त जीवों पर वात्सल्य को धारण करनेवाले...** क्या होगा? भगवान को प्रेम होगा? प्रेम होवे तो राग कहलाये। राग हो तो वीतराग नहीं। वीतराग न हो तो केवलज्ञान नहीं हो सकता। लोगस्स में आता है न? तित्थयरा मेपसियंतु। हे भगवान! मुझे प्रसन्न होना। प्रसन्न होते होंगे न वे? यह कथन, बापू! निमित्त के ऐसे कथन भक्ति में होते हैं कि उसका अर्थ समझे बिना करे तो कुछ का कुछ करे। भाई! शास्त्रों के अर्थ उसकी विधि से—रीति से समझना चाहिए। उसकी विधि बिना अर्थ करने जाये तो कुछ का कुछ हो जाये।

हमारे एक व्यक्ति था ... कर डाला। वहाँ सोनगढ़। नवनीतभाई! एक व्यक्ति था। पाँच सौ रुपये आये संस्था में। वह कहे कि यहाँ लिखना या यहाँ लिखना। लिखना है न? थे शास्त्र के पढ़नेवाले, हों! परन्तु उसकी खबर नहीं। आये वे यहाँ लिखे, आये वे ऐसे नहीं लिखे। जहाँ-तहाँ लिखना है न? परन्तु पाँच सौ ऐसे लिखे तो हजार का दिवाला (होगा)। .... कहो, समझ में आया? समझे बिना... इस प्रकार की कला खबर नहीं होती, इसलिए दूसरा भले जानपना हो, परन्तु इसकी कला खबर नहीं। लिखना इस ओर चाहिए और लिखे इस ओर। लिखना है न कहीं।

इसी प्रकार भगवान की वाणी के न्याय से सत्य पहलू है, सच्चा व्यवहार पहलू है, इसकी इसे खतौनी करना न आवे तो कुछ का .... कुछ कर डालेगा। समझ में आया?

कहते हैं, हे भगवान! आप सर्व जीव के वात्सल्य हो। अर्थात्? प्रभु! आपका

केवलज्ञान ..... आपके ज्ञान में मेरी गति ... यह आपके ज्ञान में आ गयी है। आहाहा! क्या कहते हैं? श्रीमद् भी कहते हैं,

करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरुगम की,
पल में प्रगटे मुख आगल है,

पल में प्रगटे—भगवान चैतन्यदीपक अन्दर पड़ा है। परन्तु गुरुगम से मिले ऐसा है। कहते हैं, हे नाथ! 'करुणा हम पावत है तुमकी' हे परमात्मा! आपकी करुणा प्राप्त की। अर्थात्? आपके ज्ञान में मेरा इस काल में केवल और अनुभव और स्थिरता है, यह आपने जानी है। यह जानी, वही प्रभु! आपकी हमारे प्रति करुणा है। समझ में आया? क्या हो? जिसका जो अर्थ न समझे और कुछ का कुछ खतौनी करे। व्यवहार का खातवे निश्चय में और निश्चय का खतावे व्यवहार में। ऐसे जमा का खतावे उधार में और उधार का खतावे जमा में। दुनिया उसे ठीक सा पागल कहती है। इसी प्रकार जो व्यवहार की बात है, वह व्यवहार की भूमिका में खतायी जाती है। निश्चय की सत्य बात हो, वह सत्य में खतायी जाती है। ऐसा न समझे तो गड़बड़ होती है। अनादि की गड़बड़ हुई, कभी निश्चय और व्यवहार के साधन-साध्य क्या, इसे समझा नहीं।

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! **समस्त जीवों पर वात्सल्य को धारण करनेवाले...** शब्द यह लिया है। '**सयलजीववच्छल**' शब्द पड़ा है न? इसका अर्थ एक पण्डित दूसरा करते हैं। सर्व जीवों में वात्सल्य के धारण करनेवाले। इसका अर्थ—मुझे तुम्हारे ऊपर प्रेम है न, इसलिए तुम्हें हमारे ऊपर प्रेम है।... हमारा विकल्प है, प्रभु! आप तीन लोक के नाथ हो, हमें आपमें प्रेम वर्तता है। आपकी करुणा वर्तती है, प्रभु! अकषाय करुणा। वह हमारे प्रति उन्हें करुणा और वात्सल्य है, ऐसा हम कहते हैं। ओहोहो!...भाई! इसमें भक्ति को समझना पड़ेगा।

'**णिम्मलगुणरयणणिहि णाह**'। एक अन्तिम पद है। क्या कहते हैं? हे नाथ! आपकी भगवान परमात्मा की दशा निर्मल गुण। गुण तो सबके निर्मल ही होते हैं। प्रत्येक आत्मा के, परन्तु जिसकी दशा निर्मल हुई, उसे निर्मल गुण के धारण करनेवाले, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? '**णिम्मलगुणरयण**' देखो! इसे रत्न कहा, धूल को नहीं। आहाहा! प्रभु! तीन लोक के नाथ अर्थात् आपके ज्ञान में तीन लोक और तीन काल

जलहल उठे—ज्ञात होते हैं। इसलिए आप निर्मल गुण के रत्न के धारक हैं। गुण शब्द से यहाँ पर्याय है, हों! पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था अर्थात् दशा। गुण तो निगोद के जीव में भी अनन्त निर्मल हैं, सिद्ध के भी अनन्त हैं। परन्तु पर्याय में प्रगट हुए, वे परमात्मा तो होते हैं। इसलिए कहते हैं कि '**णिम्मलगुणरयण**' गुण के रत्न की निधि, खान हो, खजाना हो। अनन्त-अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्त प्रगट हुए हैं, ऐसे अनन्त काल नये-नये प्रगट हुआ ही करेंगे। यह और क्या कहा?

जो सर्वज्ञ पद होता है न? केवलज्ञान, वह पर्याय है; वह गुण नहीं है। गुण त्रिकाल होते हैं। जो एक समय की पर्याय प्रगट हुई, वह व्यय होकर दूसरे समय नयी प्रगट होती है। केवलज्ञान भी एक समय ही रहता है, दो समय नहीं रहता। वह नहीं, परन्तु वैसा। यह क्या? पूर्णानन्द की प्राप्ति और केवल (ज्ञान) और आनन्द ऐसा का ऐसा दूसरे समय में (प्रगट होता है), वह नहीं। ऐसी गुण के रत्न की निधि, हे नाथ! ऐसा करके शब्द प्रयोग किया है। नाथ अर्थात्? हमें प्राप्त भाव को रक्षणहार, अप्राप्त को आप प्राप्त करानेवाले हो। निमित्तरूप से। उसे यहाँ नाथ कहा जाता है।

ऐसा करके पहले श्लोक में भक्ति समझपूर्वक भक्ति के ज्ञान के भान में यह भक्ति की है। घण्टा भर हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - ९, मंगलवार, दिनांक - ०५-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - २, प्रवचन-७८२

पद्मनन्दि आचार्य एक महामुनि वनवासी सन्त हुए। उन्होंने जंगल में भगवान की वर्तमान में अनुपस्थिति होने पर भी लक्ष्य में परमात्मा मानो समवसरण में विराजते हों, (इस प्रकार से भक्ति की है)। समवसरण अर्थात् आत्मा की पूर्ण शान्ति और पूर्णानन्द की प्राप्ति होने से पूर्व के तीर्थंकरपने के पुण्य के कारण इन्द्र आकर एक धर्मसभा रचते हैं। धर्मसभा। उस सभा में वे विराजमान होते हैं। वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में भी इस प्रकार परमात्मा विराजमान हैं।

ऐसे समवसरण स्थित। यद्यपि ऋषभदेव भगवान वर्तमान में तो सिद्धपद में हैं। यह तीर्थंकरदेव देहरहित होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति, अशरीरी आनन्द के अनुभवरूप सिद्धदशा में हैं। तथापि मानो भगवान मेरे समीप में हों, ऐसे शिष्य-भक्त उनकी स्तुति करते हैं। मेरे समीप में मानो भगवान हों, ऐसे स्तुति करते हैं। समवसरण में रहे की स्तुति इसमें है, सिद्ध की नहीं। क्या कहा? तीर्थंकर भगवान अनन्त हुए ऐसे एक और एक ऐसे अनन्त। यहाँ पहले तीर्थंकर को लक्ष्यकर स्तवन है। परन्तु उसके प्रमाण में सब तीर्थंकर पूर्ण पवित्रता और पूर्ण पुण्यवाले हैं, उनकी स्तुति इकट्ठी आ जाती है परन्तु यहाँ खास एक ऋषभदेव इस चौबीसी में पहले तीर्थंकर आद्य (तीर्थंकर) थे, उन्हें लक्ष्य कर यह सब कथन जन्म से इस मोक्ष पद का वर्णन किया है। अथवा पूर्व भव में से आये, तब से यह सब वर्णन किया है। उसमें पहला श्लोक अपने कल आ गया है।

देखो! ज्ञानी को भी आत्मा आनन्द और शुद्ध का भान होने पर भी, भक्त को भगवान की भक्ति का भाव आये बिना नहीं रहता। है वह भाव शुभ—पुण्य, परन्तु वह भाव पूर्णानन्द की प्राप्ति आत्मा की न हो, तब तक पूर्णानन्द को प्राप्त परमेश्वर के स्मरण और जाप, ध्यान उसे होता है। अर्थात् यहाँ पूर्णानन्द की प्राप्ति अनाकुल शान्तरस जिसे पूर्ण परिणम गया है और पूर्व के पुण्य के कारण जिसे धर्मसभा—समवसरण आदि हैं, उनका लक्ष्य करके यहाँ आचार्य स्तुति करना चाहते हैं। एक श्लोक तो कल हुआ था।

हे नाथ! आप नाभिराजा के पुत्र हो, ऐसा कहकर पहिचान करायी। तीन लोक में

एक दीपक, केवलज्ञानरूपी दीपक से तीन काल-तीन लोक को आप जानते हो, ऐसा कहकर उनकी ज्ञान की सम्पदा की प्रतीति बतायी। भगवान का ज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। ऐसे आत्मा के ज्ञान की एक समय की दशा ऐसा जिसका सामर्थ्य है, ऐसी जिसे प्रतीति हुई है, वह इन भगवान की स्तुति करता है। उसकी अभी खबर नहीं हो कि ... केवलज्ञान क्या ? तीन काल-तीन लोक को जाने क्या ? नव तत्त्व में मोक्षतत्त्व की श्रद्धा पहले आती है। वह मोक्ष अर्थात् क्या ?

केवलज्ञान प्राप्त हुए आत्मा को मोक्षतत्त्व कहा जाता है। ऐसी जिसे मोक्षतत्त्व की श्रद्धा है और मोक्षतत्त्व की भावना में उठा है। पूर्णानन्द की प्राप्ति की सावधानी में आया है, उसे ऐसे भगवान की स्तुति का भाव पुण्य का आये बिना नहीं रहता।...भाई ! स्तुति... सब कहेंगे यहाँ।

अब यहाँ जरा दूसरा श्लोक। भगवान जब समवसरण—धर्मसभा में विराजमान थे, उन्हें लक्ष्य करके यह स्तवन शुरु किया है।

गाथा २

सयलसुरासुरमणिमउडकिरणकब्बुरियपायपीढ तुमं।
धण्णा पेच्छंति थुणंति जवंति झायंति जिणणाह।।२।।

अर्थ :- समस्त जो सुर तथा असुर, उनके जो चित्र-विचित्र मणियों से सहित मुकुट, उनकी जो किरणों, उनसे कुर्वरित, अर्थात् चित्र-विचित्र हैं सिंहासन जिनका - ऐसे हे जिननाथ! जो मनुष्य आपको देखते हैं, आपकी स्तुति करते हैं तथा आपका जप और ध्यान करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।

भावार्थ :- हे जिनेन्द्र! आपको बड़े-बड़े सुर-असुर भी आकर नमस्कार करते हैं, इसीलिए प्रत्येक मनुष्य को आपके दर्शन का, आपकी स्तुति का, आपके जप तथा ध्यान का सुलभ रीति से अवसर नहीं मिल सकता, किन्तु जो मनुष्य ऐसे पुण्यवान हैं, जिनको आपका दर्शन मिलता है; आपकी स्तुति, जप और ध्यान का भी अवसर मिलता है, वे मनुष्य, संसार में धन्य हैं, अर्थात् उन मनुष्यों को धन्यवाद है।

गाथा - २ पर प्रवचन

सयलसुरासुरमणिमउडकिरणकब्बुरियपायपीढ तुमं।
धण्णा पेच्छंति थुणंति जवंति झायंति जिणणाह।।२।।

क्या कहते हैं ? हे नाथ ! नाथ की व्याख्या कल थोड़ी की थी। नाथ उसे कहते हैं, कल नाथ आया था न ? भाई ! पहले में अन्तिम शब्द आया था। अन्तिम। हे नाथ ! नाथ अर्थात् ? कि जिसे केवलज्ञान पूर्णानन्द की दशा प्राप्त है, उनकी जिसने प्रतीति और भान अन्तर में किया है, उसे जो प्राप्त हुई धर्मदशा, उसके रक्षक निमित्तरूप से कहलाते हैं और अप्राप्त चारित्र और केवलज्ञान को प्राप्त होने में वे निमित्त हैं। इसलिए अप्राप्त को प्राप्त करने में वे कारण हैं, ऐसा गिनकर भगवान को नाथ कहने में आता है। नाथ की व्याख्या— योगक्षेम के करनेवाले, उन्हें नाथ कहने में आता है। पत्नी का पति नाथ कहलाता है, इसका कारण, उसके पास प्राप्त चीज़ का रक्षण करने में निमित्त और जो माँगे, अप्राप्त को प्राप्त करने में निमित्त है, इसलिए वह पत्नी का पति नाथ कहने में आता है। समझ में आया ?

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग निर्दोष दशा प्राप्त, पूर्ण... एक बार तो ऐसा कहा था, एक स्तुति आती है न ? भाई ! एक परमाणु के अनन्तवें भाग का भी दोष प्रभु आपके पास नहीं है। अभी आया था न करणानुयोग का ग्रन्थ ? नौवा या कैसा आया था ? जयधवल, धवल। एक परमाणु है न ? परमाणु-पॉइन्ट। यह रजकण। इस रजकण में कर्म होने की योग्यतावाला एक रजकण लिया है कि जिस परमाणु में कर्म-विकार होने की योग्यता है। वह विकार जो परमाणु में होता है... सूक्ष्म बात है। ध्यान रखना ! यह तो सर्वज्ञ क्या है और सर्वज्ञ की निर्दोष दशा क्या है ? (यह बात है)।

आत्मा जितने प्रमाण में शुभ और अशुभभाव करे, उतने प्रमाण में वहाँ कर्म के रजकण में फोटो पड़ता है। कर्म के रजकण में ऐसी विकारी अवस्था अपने परमाणु के कारण से होती है। समझ में आया इसमें कुछ ? यहाँ जितने प्रमाण में शुभ और अशुभभाव जीव करे, उतने प्रमाण में सामने कर्म के रजकण स्वयं के कारण से विकाररूप होकर कर्मरूप होते हैं। समझ में आया इसमें ? जैसे इस शरीर का फोटो खिंचता है न ? शरीर का।

यह शरीर है और सामने फोटो खिंचता है। वे फोटो के रजकण इस शरीर में से नहीं आते। क्या कहा ? ऐसे बैठा हो और फोटो खिंचता है यहाँ। वे यहाँ के रजकण उस आकाररूप परिणमते हैं। वहाँ से नहीं आते। वहाँ से यदि आवे तो हजार, लाख, दो लाख कोई खींचे तो वहाँ के रजकण यहाँ आवे तो शरीर सूख जाये। इसमें कुछ बात समझ में आयी ? सामने का यहाँ आकार पड़े, वहाँ से रजकण नहीं आते। यहाँ के रजकणों में उस प्रकार की आकृति होने की योग्यतावाले फोटोरूप परिणमते हैं।

इसी प्रकार आत्मा जितने प्रमाण में शुभ और अशुभभाव, पुण्य और पाप के करे, उतने ही प्रमाण में रजकणों में रजकण में फोटो रजकण के कारण से रजकण में होता है। समझ में आया ? उस एक-एक रजकण में ऐसी विकार होने की योग्यता होती है कि जिसके विकार के अंशों को शास्त्रकार अनन्त-अनन्त कहते हैं। आहाहा ! एक रजकण का अन्तर विकार का भाव अनन्त गुणा है, उसके अनन्तवाँ भाग भी, हे नाथ ! आपमें दोष रहा नहीं। समझ में आया ? परमात्मा को पहिचानकर भक्ति, स्तुति करे। समझे बिना स्तुति करे, उसका कुछ फल है नहीं। साधारण राग होता है। यह तो आत्मभान करके (स्तुति करते हैं)।

हे नाथ ! हमारे में तो अनादि काल के अनन्त-अनन्त दोष थे। उनका हम दोषरहित हमारा आनन्दस्वरूप है, उसका हमने भान किया, इतनी तो हमारी निर्मल दशा हुई परन्तु आपको पूर्ण निर्मल दशा एक समय में जलहल ज्योति चैतन्य तीन काल-तीन लोक को जानने का ज्ञान, देखने का दर्शन, स्वरूप के आचरण का चारित्र और सभी गुणों की निर्मल दशा को रचने का वीर्य—आत्मबल, ऐसा आपको हे नाथ ! पूर्ण रीति से प्रगट हुआ है। आपमें एक रजकण का जो विकारी अनन्त गुण का भाव... शास्त्रभाषा में उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं, उसका एक भाग भी प्रभु ! आपमें दोष रहा नहीं। अनन्त-अनन्त गुणों की खिलावट, जैसे कमल खिल जाये, वैसे आत्मा की शक्तियाँ जो थी, (उसकी) अनन्त आत्मा की दशा खिल गयी है। हे नाथ ! अब आपको वन्दन करनेवाले कैसे हैं और आप किस स्थान में हो, यह बात वर्णन करते हैं। क्या कहा ?

अर्थ :- समस्त सुर-असुरों के चित्र-विचित्र मणिओं से युक्त... महान देव, जिनके देव के नेता, वे भी परमात्मा की भक्ति करते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव धर्मात्मा आत्मभान

लेकर स्वर्ग में गये हैं। अधूरा रहा है, इसलिए स्वर्ग में जाना पड़ा है। आत्मा का ज्ञान किया हुआ है। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति आत्मा आनन्दकन्द है, ऐसा भान हुआ है। परन्तु राग सर्वथा टला नहीं था, इसलिए उन्हें राग का पुण्य बँध गया। उस पुण्य के कारण उन्हें स्वर्ग मिला। उस स्वर्ग के देव...

एक व्यक्ति भाई! प्रश्न करता था। (संवत्) १९९२ में। कहा था न एक व्यक्ति ने? कि यह सब तुम बात करते हो कि ऐसा पुण्य करे तो स्वर्ग में इन्द्राणी मिले। यहाँ पालन करे ब्रह्मचर्य और वहाँ मिले इन्द्राणी। भाई! एक पण्डित बात करता था। खबर है। १९९२ में प्रश्न किया। खबर नहीं होती। शास्त्र क्या कहते हैं? उसका तत्त्व क्या है? यहाँ पाले ब्रह्मचर्य, यहाँ पाले आनन्दमूर्ति की दृष्टि, ज्ञान और वहाँ जाये तो इन्द्राणी मिले। यह कैसे शास्त्र के कथन? मिलान नहीं खाते। मनसुखभाई! पढ़े हुए भी बड़े दीवार भूलते हैं।

तब उसे मैंने इतना कहा, १९९२ में, देख भाई! यह आत्मा अनन्त-अनन्त पवित्र का धाम है। उसका अन्तर में भान हुआ। पवित्र हूँ। सम्यक् हुआ—सम्यग्दर्शन हुआ और स्वरूप का आचरण भी आंशिक प्रगट हुआ, परन्तु पूर्णानन्द की प्राप्ति नहीं हुई, तब उसे रागभाग तो रहता है। भक्ति का, पूजा का, दया का, दान का—ऐसा भाव रहता है। उस भाव में वह क्या बाँधेगा? उस भाव में गधापना बाँधेगा या उस भाव में स्वर्गपना बाँधेगा? समझ में आया? जहाँ सौ गाड़ा अनाज हो, वहाँ सौ भरोटा घास होती है, होती है और होती है। अभी अनाज न हो और अकेली घास हो, ऐसा छप्पनिया में बना था। छप्पन का दुष्काल था। पाँच-सात इंच वर्षा आयी थी। तब दस वर्ष की उम्र थी। सब छप्पनिया का ख्याल है। दस वर्ष की उम्र थी। पाँच-सात इंच (वर्षा गिरी), इसलिए बाटा (घास-फूंस हुआ था)। बाटा समझ में आता है? हमारी काठियावाड़ी वहाँ की भाषा है। बाटा अर्थात् इतने-इतने कच्चे थोर हुए थे। कच्चे थोर, कच्चे थोर हुए थे। परन्तु कणहेला दाने नहीं आये थे। दाने आवे और घास न हो परन्तु घास हो और दाना न हो, यह तो बनता है।

इसी प्रकार अज्ञानी अनादि का आत्मा का जिसे भान नहीं, वह तो राग की मन्दता से मिथ्यादृष्टि पुण्य तो बाँधे। परन्तु ज्ञानी को, इसको इतना घास (पके), और धर्मी को आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान के जोर में निर्बलता के कारण पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं हुई, इसलिए राग का भाग व्रत का, दया का, दान का, पूजा का आये बिना नहीं रहता। ऐसे राग में उसे

पुण्य ऐसा बँध जाता है कि उसके फलरूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह घास है। यह कहा न ? राग, राग रहा—ऐसा कहा न ! चारित्र शब्द कहाँ (कहा) ? राग रहा, ऐसा कहा न ? राग बाकी रहे। राग बाकी न रहे तो पूर्ण केवलज्ञान हो जाये। तब तो वीतराग हो जाये, निर्दोष हो जाये।

इसलिए आत्मा के भानवाले जीव भी... सम्यग्दृष्टि आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ। मैं आनन्दमूर्ति हूँ, अनाकुल शान्तरस हूँ। ऐसी सम्यग्दर्शन में प्रतीति और आनन्द का अनुभव हुआ, तथापि पूर्णानन्द का अनुभव नहीं है; इसलिए उसे शुभराग पुण्य का हुए बिना नहीं रहता। तब अब उस पुण्य में क्या बाँधे ? कहा। इसमें प्रश्न किया कि इस शास्त्र के (कथन का) मिलान नहीं खाता।

बापू ! ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसका स्वरूप, उसका चरण अर्थात् चरना—यह चर्या यदि पूर्ण हो जाये तब तो केवलज्ञान होता है। परन्तु ब्रह्म अर्थात् आत्मा के स्वरूप में जिसकी दृष्टि होकर लीनता कम रही, लीनता कम रही, वहाँ रागभाग आये बिना नहीं रहता। उस राग में उसे पुण्य बँधता है, उस पुण्य में कहाँ जाये ? उस पुण्य में स्वर्ग में ही जाता है। लोगों को प्रतीति नहीं होती, क्या फल, क्या कारण ? ऐसे पुण्य में स्वर्ग में जाये। स्वर्ग में जाने पर भी उसके फल और उसके कारण (रूप) ऐसे भाव का उसे श्रद्धा में आदर नहीं होता। आहाहा ! कठिन बात ! समझ में आया ?

धर्मी जीव को, अच्छे किसान को घास के लिये खेती नहीं होती। क्या कहा ? अच्छे किसान को कहा, हों ! साधारण ... तो अकेली घास करे। अच्छे किसान को अकेली घास के लिये खेती नहीं होती। वह अनाज के लिये खेत बोता है उसमें घास हो जाती है।

इसी प्रकार धर्मी जीव को आत्मा शुद्ध चिदानन्द की रुचि और दृष्टि का भान हुआ है कि राग और पुण्य बिना की मेरी चीज़, उसका अनुभव हुआ है। उस अनुभवी को आत्मा के अनुभव के झरना और शान्ति की ही भावना होती है, तथापि उसमें भक्ति, पूजा, दया, दान, व्रतादि का विकल्प आवे, उसका उसे पुण्य बँधता है। उस पुण्य के फल में स्वर्ग में ही जाता है। तथापि स्वर्ग में इन्द्राणी आदि होने पर भी धर्मी की दृष्टि में उसके कारणरूप पुण्यभाव का भी आदर नहीं है और उसके फल का भी वहाँ आदर नहीं है। आहाहा ! परन्तु यह बात कहाँ किसके जेब में डालना ? किसके कालजे कि यह क्या है ?

इन नौ तत्त्व में एक-एक तत्त्व स्वतन्त्र के फल और कारण को समझे बिना उसे सच्चा सम्यग्दर्शन नहीं होता।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे नाथ! आप जब सिंहासन में केवलज्ञानरूप से सूर्यरूप विराजते थे, तब इन्द्र... कैसे? कि सुर और असुर देव स्वर्ग के, बड़े शकेन्द्र इन्द्र आदि। असुर—नीचे नाग के इन्द्र हैं। **चित्र-विचित्र मणिओं से युक्त...** इनके मुकुट में मणिरत्न जड़े होते हैं। जिनके शरीर के की ज्योति हजारों सूर्य जैसी होती हैं। अन्दर आत्मा का भान होता है परन्तु बाह्य में पूर्व के पुण्य के कारण शरीर का प्रकाश महा मणिरत्न जिसके मुकुट में, ऐसे आपको जब प्रभु! नमते हैं,... ऐसा कहकर (कहते हैं), हम तो मनुष्य हैं, साधारण तो नमन करे परन्तु ऐसे इन्द्र भी आपको नमन करते हैं। अर्थात्? ऐसे इन्द्रों को भी ऐसे पुण्य के फल में होने पर भी, प्रभु! आपके केवलज्ञान के प्रति उन्हें बहुमान है। आहाहा!

यह पुण्य और पुण्य के फल में वहाँ पड़े हैं तो भी केवली का आदर करने आते हैं। स्वर्ग में से उतरकर त्यागियों का आदर करते हैं, इसका अर्थ क्या? त्यागी अर्थात् सम्यग्दर्शन के भानसहित। जिन्हें आत्मा का अन्दर सम्यक् अनुभव हुआ और राग घटाकर जिन्हें चारित्र हुआ, ऐसे काले शरीर हों, बबूल के नीचे बैठे हों, इन्द्र आकर नमन करते हैं। क्या कामी है उनके पास? किसलिए नमन करते हैं? उनकी दृष्टि में आत्मा तैरता है इन्द्रों को। यह शुद्ध चिदानन्द है, उसकी इन मुनि को बहुत ही आनन्द की प्राप्ति हुई है। और इन्हें राग बहुत घट गया है। हमारे राग और राग के फलरूप से सामग्री भले इनके पास दिखाई न दे और हमारे पास है, परन्तु हमारी अपेक्षा इन्हें आत्मा के आनन्द की सम्पदा अधिक प्रगट हुई है। ऐसे आनन्द की सम्पदा के कारण वहाँ आकर नम जाते हैं। यह त्याग, वह त्याग। हमें रागरहित होना है और रागरहित होकर बैठे, उनका यह बहुमान विनय और सत्कार करते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि इन्द्र भी आकर... चित्र-विचित्र मणियों... अभी पुण्य कम, उसे पुण्य बतलाना किस प्रकार? वे इन्द्र स्वर्ग में हैं। उनके शरीर के ललाट को महा हजारों सूर्य की अपेक्षा प्रकाशवाले होते हैं। उनके मुकुट में मणिरत्न, भगवान के निकट आकर नम पड़ते हैं, नम पड़ते हैं। जैसे पिल्ला हाथ-पैर समेटकर उसकी माँ के पास जाये और

नमता है, इसी प्रकार इन्द्र आकर भगवान के निकट आकर नम जाते हैं। इतना विनय! इतने पुण्य के फलवाले, तथापि... कहते हैं, ऐसे मुकुट, उसकी किरणें। मुकुट की किरणें निकलती हैं न? वे रत्न के।

कुर्वरित चित्र-विचित्र है सिंहासन... भगवान सिंहासन पर नहीं विराजते। सिंहासन से चार अँगुल ऊँचे होते हैं। सब बात अभी सिद्ध करने नहीं जाते। पूर्णानन्द को प्राप्त हुए परमात्मदशा को सिंहासन होता है। परन्तु सिंहासन से चार अँगुल ऊँची उनकी देह रहती है। चार अँगुल ऊँची देह रहती है और सर्वथा कर्मरहित हो, तब ऊर्ध्व लोक में पूर्णानन्द की प्राप्ति सिद्धपद में ऊर्ध्व लोक में विराजते हैं। यहाँ कहते हैं, हे नाथ! सिंहासन सिद्ध करते हैं। सिंहासन नीचे है, उसके ऊपर आप विराजमान हो। चार अँगुल ऊँचे आप विराजमान हो। वर्तमान भगवान विराजमान महाविदेहक्षेत्र में है। इस प्रकार से ऋषभदेव भगवान थे।

ऐसे हे जिननाथ! आपके सिंहासन में जब वे वन्दन करते थे न, तब उनके मुकुट की रत्नों का चित्र-विचित्रपना सिंहासन की सफेद और स्वच्छता में झलकता था। उसमें झलकता था। ऐसे आपको, **जो मनुष्य, आपको देखते हैं,...** ऐसे परमात्मा के स्वरूप को जो देखते हैं, वे अन्तर्दृष्टि से देखे और बाहर से देखते हैं। अन्तर्दृष्टि से भगवान वीतरागस्वरूप अपना देखते हैं। बाह्यदृष्टि से ऐसे वीतराग हैं, ऐसे शुभभाव से भगवान को देखते हैं। आहाहा! कितने ही कहते हैं, इस शुभभाव को तुम धर्म कहो न! अरे... भगवान! व्यवहारधर्म कहा जाता है, प्रभु! क्या हो? जगत लुटने में पड़ गया है।

ऐसे शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति प्रभु है न, उसकी जितनी दृष्टि और स्थिरता की निर्मलता प्रगट हुई, उतना धर्म है। बाकी ऐसा भाव आवे, (उसे) व्यवहारधर्म कहा जाता है। व्यवहारधर्म कहो, पुण्य कहो, मन्द राग कहो या मन्द विकार कहो, उसे पुण्यास्रव कहो। समझ में आया? परन्तु उसे कोई ऐसा कहता है कि यह पुण्यास्रव करते-करते कल्याण होगा, उस वस्तु में माल नहीं है। राग करते-करते अरागी दशा और आत्मा का भान हो, (ऐसा वस्तु में नहीं है)। क्यों?—कि राग है, वह बहिर्मुख वृत्ति है। भगवान आत्मा अन्तर्मुख अनन्त गुण का कन्द है। उस अनन्त गुण के कन्द पर ढलने से बहिर्मुखता के राग की रुचि छूटे बिना अन्तर्मुख नहीं जाया जा सकता। चिमनभाई! समझ में आया?

यह भक्ति का विषय चलता है। भक्ति भी महँगी। बापू! यथार्थ भक्ति इसे कहा जाता है। समझे बिना भक्ति करे, उसे भक्ति व्यवहार भी सच्चा नहीं कहते। जिसे यह उछलता है, तीन लोक के नाथ परमात्मा... 'हरता फरता प्रगट प्रभु देखुं।' ज्ञानी का मन सर्वज्ञ के पद पर बारम्बार जाता है। सर्वज्ञ पद पर बारम्बार जाता है। सर्वज्ञ पद पर बारम्बार जाता है। इसलिए सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति उसे बारम्बार भक्ति उछलती है। परन्तु इस भाव का फल पुण्य है। वह पुण्यवन्त भी आकर परमात्मा को वन्दन करते हैं।

प्रभु! **आपको देखते हैं, आपकी स्तुति करते हैं...** देखते हैं आँख से—अन्तर और बाह्य। स्तुति करते हैं वाणी से। स्तवन, स्तवन, स्तवन, स्तवन। समन्तभद्राचार्य भी महान स्तुतिकार हो गये हैं। उन्होंने भी भगवान की स्तुति में रेलमछेल वर्णन की है। जिसे इतिहासकार कहते हैं कि भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। ऐसा किसी कथा में आता है। समन्तभद्र एक आचार्य हुए हैं। वे भी ऐसे भगवान की स्तुति में रेलमछेल... मानो पिता के पास पुत्र बैठा हो, वैसे सर्वज्ञपिता का समकिती पुत्र है, लघुनन्दन है। सम्यग्दृष्टि आत्मा की श्रद्धा, राग और देह की क्रिया से पार हूँ, मेरा स्वरूप अखण्डानन्द शुद्ध है—ऐसा जहाँ अन्तर भान हुआ, भगवान कहते हैं कि लघुनन्दन (है)। वह तीर्थंकर जिनेश्वर का छोटा पुत्र हुआ। बड़े पुत्र साधु हैं। समझ में आया? आत्मा के आनन्द में रमता हो, बहुत आनन्द में (हो)। इतनी अतीन्द्रिय आनन्द की रेलमछेल (हो)। और किसी समय जरा विकल्प उठे—अहिंसा, सत्य महाव्रत का। ऐसे आनन्द के उग्ररूप से झूलनेवाले वे परमात्मा के बड़े पुत्र हैं। यहाँ तो निमित्त से भक्ति है न।

लघुनन्दन। लघु अर्थात् छोटे नन्दन हैं। परमात्मा पूर्णानन्द को प्राप्त हुए, वीतराग। उनके समकिती छोटे पुत्र हैं। वे धीरे-धीरे बड़े होकर स्वयं भगवान हो जानेवाले हैं। यह यहाँ स्तुति करते हैं। मुनि स्तुति करते हैं परन्तु ली है इन्द्र की। हे नाथ! साथ ही सब आस्था कराते हैं, हों! ऐसे भगवान हों, उन्हें सिंहासन होता है। उन्हें इन्द्र आकर नमन करता है। यह सब है, हों! कल्पना नहीं है। यह सब आस्था भी कराते हैं और उसमें भक्ति का भाव कैसा होता है, यह भी बतलाते हैं।

कहते हैं, हे नाथ! आपकी जो स्तुति करता है तथा आपका जाप (करता है)। भगवान... भगवान... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ, ऐसा जप करता है। और ध्यान

करता है। अन्तिम यह लिया। आप सर्वज्ञ पूर्णानन्द परमात्मा का जो अन्तर में ध्यान करता है, उस मनुष्य को धन्य है। ऐसा पाठ में लिया है। पाठ में है, भाई! **'धण्णा' 'धण्णा'।** दूसरी लाईन में पहला शब्द। धीर धन्य! मुनि कहते हैं कि उसे हम धन्य कहते हैं। आहाहा! देखो! व्यवहार को धन्य कहा। व्यवहार से व्यवहार वह आदरणीय व्यवहार से कहलाता है। परमार्थ से वह व्यवहार जाननेयोग्य है। आहा!

हे नाथ! पूर्णानन्द को प्राप्त प्रभु, एक समय में जिन्हें ज्ञान की सामर्थ्य दशा पूर्ण हो गयी, ऐसे केवली प्रभु, आपको वन्दन करे, आपको देखे, आपकी स्तुति करे, आपका जप करे, आपका ध्यान करे, धन्य है वह मनुष्य! अर्थात् कि उसे आत्मा का ज्ञान और ध्यान हुआ हो और इस प्रकार से करे अर्थात् उस विकल्प के भाव में अल्प काल में निर्विकल्प होकर परमानन्द को प्राप्त होगा। यह राग है, परन्तु राग के दो प्रकार हैं—एक सवेरे की सन्ध्या की लालिमा है। सन्ध्या, सन्ध्या नहीं होती? यह लालिमा होती है न सवेरे? एक सूर्योदय की लालिमा और एक सायंकाल की लालिमा। सायंकाल की सन्ध्या और सवेरे की सन्ध्या। कहलाती है दोनों सन्ध्या, कहलाती है दोनों लालिमा। लालिमा होती है न? लाल... जैसी। परन्तु एक लाल जैसी जो शाम को है, उसके पीछे अन्धेरा है और सवेरे की लाल की लालिमा के पीछे सूर्य है। समझ में आया? इसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार जिसे स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, यह धूल मिट्टी, इज्जत-कीर्ति का प्रेम वह राग, आत्मा के भान बिना का राग वह शाम की सन्ध्या जैसा है। नमो नमाः पीछे हो जानेवाला है। समझ में आया? पैसे का प्रेम, स्त्री का प्रेम, भोग का प्रेम, इज्जत का प्रेम, कीर्ति का प्रेम, धूल-शरीर, माँस का हड्डियों का प्रेम, वह प्रेम अशुभराग है। उसके पीछे चैतन्य का भान नहीं है। इसलिए धबो नमाः उसका ज्ञान आवृत्त होकर चार गति में भटकेगा। परन्तु जिसे देव-गुरु और शास्त्र का प्रेम है, है तो लालिमा, है तो राग, परन्तु दृष्टि में वह राग अशुभ से बचने के लिये आया हुआ है और दृष्टि में उसे छोड़कर मुझे स्थिर होना है, ऐसी दृष्टि ज्ञानी की है, इसलिए भक्ति का राग आने पर भी उस राग के पीछे हेय की दृष्टि है, इसलिए वह राग छूटकर केवलज्ञान का सूर्य प्रगट होगा। वह सवेरे की सन्ध्या का फल है। समझ में आया?

यह सब दृष्टान्त शास्त्र में दिये हैं, हों! घर के नहीं हैं। सच्चे घर के। यह तो अनुभव

प्रकाश में दृष्टान्त दिया है। वह हेतु यह है। दीपचन्दजी अनुभवी हो गये हैं, उन्होंने यह दृष्टान्त दिया है। भाई! जिसने भगवान को अन्तर में पहिचाना, उसे भगवान की भक्ति आती है। उसका राग स्वभाव की दृष्टि में हेय वर्तता है। उसके पश्चात् स्थिरता हो केवलज्ञान का सूर्य प्रगट होगा परन्तु अज्ञानी का अकेला राग, जिसे भान नहीं आत्मा क्या है और अकेला स्त्री, पुत्र, परिवार, राजपाट, भोग, विषय और पैसा... मनसुखभाई! वह धूलधमाके का राग आत्मा को अन्ध कर डालेगा। आवृत्त हो जायेगा। चिदानन्द भगवान की शक्ति का विकास न करके, विकास न करके आवरण हो जायेगा। यह भगवान के प्रति की भक्ति के राग में भान है कि यह भक्ति का राग है, पुण्यास्रव है, मेरी पवित्रता इससे भिन्न है। इस राग को छोड़कर मुझे पवित्र में स्थिर होना है। इसलिए राग के पीछे दृष्टि के कारण से केवलज्ञान का प्राप्त होना है। समझ में आया?

भावार्थ :– हे जिनेन्द्र! आपको बड़े–बड़े सुर–असुर आकर नमस्कार करते हैं, इसलिए हर एक मनुष्य को आपके दर्शन का, आपकी स्तुति का, आपके जाप और ध्यान का सुलभ रीति से अवसर नहीं मिल सकता... हिन्दी है। **किन्तु जो मनुष्य पुण्यवान हैं, जिन्हें आपका दर्शन,...** ओहो! बड़े राजा से मिलना हो तो पुण्य चाहिए। इस धर्मसभा में तीन लोक के नाथ परमात्मा के दर्शन होना, वह भी महा पवित्रता और पुण्य के योग बिना मिलान नहीं खाता। समझ में आया? कहते हैं, प्रभु! एक राजा के पास जाना हो तो भी कितना (करता है), किसे मिलना? किसके पास जाना? क्या होता है? कैसे मिला जाता है? सर्वज्ञ परमात्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति प्रभु, अहो! उनकी सभा में जाना, प्रभु वहाँ विराजते हों, उनके समीप जाना, उनकी महा पवित्रता की दृष्टि हुई हो, नहीं तो उसका पुण्य तो ऐसा होता है तो उन भगवान के समीप में जा सकता है, नहीं तो नहीं जा सकता।

आपका दर्शन, आपकी स्तुति, जप और ध्यान का सुअवसर मिलता है; वे मनुष्य ही संसार में... ऐसे परमात्मा के जाप, ध्यान, भक्ति करनेवालों को आचार्य कहते हैं, हम उन्हें धन्य कहते हैं। जगत के पाप करनेवाले, उनकी अपेक्षा पाप छोड़कर ऐसे पुण्यभाव करे और जिसकी दृष्टि धर्म के ऊपर है, ऐसे जीव को हम धन्य–धन्य कहते हैं। धनवाले को धन्य नहीं, भक्तिवाले को धन्य (कहा है)। धनवाले को धन्य नहीं। यह

दो-पाँच करोड़ धूल मिली, इसलिए धन्य। धूल में अनन्त बार आया, सुन न! ऐसी धूल अनन्त बार आयी और अनन्त बार गयी। भगवान परमात्मा के अनन्त गुण की सम्पदा ऐसा आत्मा, उसकी रुचि और अनुभव हुआ और भगवान की भक्ति-पूर्णानन्द प्राप्त हुए की भक्ति उछली (तो) धन्य है! कहते हैं। जा! तेरा निश्चय भी सच्चा और तेरा व्यवहार भी सच्चा। समझ में आया? कोई कहता था कि इसमें दान का अधिकार आयेगा या नहीं? कोई कहे, दान का पढ़ना। दान का उस समय पढ़ा था। दान का न्याय किसी समय आ जायेगा।

इस श्लोक के तात्पर्य को लेकर अन्यत्र कहीं पर कहा भी है :- एक दूसरा श्लोक आधार में रखा है।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुर, -स्त्रीलोचनैः सोर्च्यते;
यस्तं वन्दति एकशस्त्रिजगता, सोऽहर्निशं वन्द्यते।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्तदमन, -स्तोमेन संस्तूयते;
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः, स ध्यायते योगिभिः।।

अर्थ :- जो मनुष्य, जिनेन्द्र भगवान... पूर्ण निर्दोष प्रभु परमात्मा, जिनमें एक रजकण के अनन्तवें भाग का विकल्प, अविभाग दोष भी जिन्हें रहा नहीं। ऐसे वीतराग... आहा! जिसे ज्ञान में रुचे और राग तथा संसार के प्रेम की रुचि उसे खोटी लगे, ऐसा भगवान आत्मा अपना ऐसा भगवान जिसे प्रगट हुआ है, कहते हैं कि जो उनकी पूजा करे, **वह मनुष्य, परभव में मन्द-हास्यसहित देवांगना...** देखो! आया यह। उसे इन्द्र और इन्द्राणियाँ वहाँ मन्द हास्यसहित देवांगना के, उसके **नेत्रों से पूजित होता है।** कहते हैं कि उसे ऐसा पुण्य बँधता है कि इन्द्राणियों के नेत्रों का वल्लभ होता है। आमन्त्रण करके कुछ कहते होंगे? उसका फल ऐसा है, इतना समझाते हैं। पुण्य का फल बताते हैं।

जो भगवान की पूजा करे, भक्ति करे... यहाँ तो **जिनेन्द्र भगवान की पुष्पों से पूजन करता है...** लिखा है, हों! पाठ में। इस शुभभाव का इतना पुण्य बँध जाये, कहते हैं, सम्यग्दृष्टि सहित की बात है, हों! यहाँ तो। उसे ही पूजा है। उसने वास्तव में पूज्य कैसे होते हैं और पूजक कैसे होते हैं, उसका भान है, उसकी पूजा की यहाँ बात करते हैं। मैं एक पूजा करनेवाला और यह पूज्य, दोनों का ज्ञान होता है। मैं कौन हूँ? मैं ज्ञानस्वरूप

आत्मा हूँ। प्रभु! आप कौन हो? कि पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप परमात्मा। इस प्रकार जो पहिचानकर भगवान की पूजा और भक्ति करे, कहते हैं कि उसके पुण्य के फल में मन्द हास्यसहित (देवांगना से पूज्य होता है)। कटाक्ष की मन्दता ऐसी देवियाँ, उनके **नेत्रों से पूजित होता है।** अर्थात्? कि इन्द्राणी के नेत्रों की शोभा तेरे शरीर पर जायेगी और वे इन्द्राणियाँ तुझे आदर करेगी। ऐसा तेरे पुण्य के फल में स्वर्ग में इन्द्ररूप से या देवरूप से तू उत्पन्न होगा। इसका फल बताते हैं, हों! वापस उसकी मिठास नहीं बताते हैं। यह तो कहा न? जिसे राग की मिठास है और आत्मा के स्वभाव की मिठास नहीं, उसे ऐसे पुण्य नहीं हो सकते। समझ में आया? आहाहा! ऐसी इन्द्राणी पूजती है।

जो मनुष्य, एक बार भी जिनेन्द्र की वन्दना करता है... तीन लोक के नाथ परमेश्वर के प्रति एक बार यदि वन्दना आगम रीति से हो,... जेठालालभाई! आता है कहीं?

एक बार जो वन्दना रे, आगम रीते थाय,
कारण जोगे कार्यनी रे, निष्पत्ति थाय रे... सम्भवजिन।

एक बार भी आगम की रीति से पूजा (हो)। आहाहा! आगम-सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी, उसकी रीति से आत्मा के ज्ञान के बहुमानसहित और भगवान के बहुमान सहित का राग; इस प्रकार से आगम रीति से एक बार वन्दन हो, उसे अल्प काल में परमात्मदशा प्राप्त हुए बिना नहीं रहती। समझ में आया? कहते हैं, एक बार जिनेन्द्र वीतरागदेव निर्दोष प्रभु तीन लोक के नाथ वर्तमान विराजते हैं। अनन्त सिद्ध हो गये। मानों ऋषभदेव को नीचे उतारकर बात करते हों, ऐसे अभी करते हैं। आगे सब लेंगे, हों!

एक दृष्टान्त आता है न? सुना है? रामचन्द्रजी का। रामचन्द्रजी थे न, तब दो वर्ष की-डेढ़ वर्ष की उम्र के थे। स्वयं सिद्ध होनेवाले हैं। शरीररहित हो जानेवाले हैं। इसलिए एक ऐसी कल्पना उठी, झरोखे में बैठे थे, उसमें ऊपर पूर्णिमा का चन्द्र दिखाई दिया। चन्द्र को नीचे उतारने का भाव। रोने लगे। रामचन्द्रजी जरा रोये। पुरुषोत्तम पुरुष। इसलिए दशरथ को खबर पड़ी। अरे! दीवान! रामचन्द्रजी क्यों रोते हैं? दीवान कहता है, मैं राज का काम करूँ और इस लड़के का रोना भी बन्द कराऊँ? दो काम मैं करूँ? परन्तु यह पुरुषोत्तम पुरुष है, महान पुरुष है, इस भव में मुक्तिगामी है। अन्तिम शरीर है। अब इन्हें

देह नहीं है। क्यों रोते हैं ? रोना बन्द कर दो। उपाय करके विचार करो। वे झरोखे में बैठे थे और चन्द्र के सामने देखा करे। उन्हें चन्द्र नीचे उतारना लगता है। फिर एक दर्पण उनके हाथ में दिया। वह चन्द्र दिखाई दिया न, दर्पण डाला जेब में। चन्द्र आया जेब में। रोना बन्द हो गया।

इसी तरह ज्ञानी को कल्पना उत्पन्न होती है कि हे परमात्मा! अनन्त सिद्ध ऊपर हैं, नीचे उतरो। अब वे तो नीचे उतरते नहीं। अशरीरी तो नीचे आते नहीं। करना क्या ? तब ज्ञानी ने आचार्य-सन्तों ने इसे कहा, तेरे ज्ञान में तू पूर्णानन्द है, उसकी प्रतीति, अनुभव कर। अर्थात् ... तेरे ज्ञान में ... समझ में आया ? रामचन्द्रजी रोते बन्द हो गये। सिद्ध होना है।

प्रकाशमूर्ति पूर्णानन्द में जाना है। नीचे उतारे परन्तु स्वयं को वहाँ जाना है। ... इसी प्रकार भगवान को कहा, अरे... आत्मा! अनन्त परमात्मा पूर्णानन्दरूप से लोकाग्र में विराजते हैं। उन्हें तुझे नीचे उतारना हो तो एक उपाय है। वे नीचे नहीं उतरेंगे। वे अवतार नहीं लेंगे। तब (करना क्या) ? तेरे ज्ञान की सामर्थ्य में ऊँचे सिद्ध को विराजमान कर। आहाहा!

पहले में लिया न ? भाई! पहली गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य। वहाँ घाटकोपर (में) कहा था। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज समयसार शुरु करते हैं न ? तब पहली गाथा में यह लेते हैं। पहली ही गाथा। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे।**' यह एक शब्द। पश्चात् टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य इसमें से भाव खींचकर निकाला कि यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि अनन्त सिद्ध अशरीरी जितने हुए, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। समयसार शुरु करते हुए वन्दन करता हूँ। अर्थात ? पश्चात टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, यह क्या कहते हैं आचार्य महाराज ? अनन्त भगवान सिद्ध परमात्मा आनन्दमूर्ति में विराजमान हैं, उन्हें मेरे ज्ञान के आँगन में मैं पधराता हूँ। अर्थात् ? अर्थात् ? मैं उनका आदर करता हूँ। अर्थात् कि राग और व्यवहार और निमित्त का आदर नहीं करता। आहाहा!

अनन्त अशरीरी सिद्ध, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हमारे ज्ञान की पर्याय जो निर्मल प्रकाश; शास्त्रभाषा में कहें तो क्षयोपशम अंश है, उस क्षयोपशम ज्ञान का विकास अंश है, उसमें अनन्त क्षायिकी केवलज्ञानी को हम पधराते हैं। आहाहा! पश्चात् अभी तो आचार्य...

डाह्याभाई! आहाहा! अनन्त सिद्ध परमात्मा की बड़ी सम्पदा, बड़ा समूह संघ विराजता है। अनन्त सिद्धों का संघ विराजता है। ऊपर—लोकाग्र में अशरीरी जितने हुए वे। प्रभु! मेरे ज्ञान की जो दशा वर्तमान विकास है न, उसमें मैं आँगन में पधराता हूँ, हों! राग में नहीं। राग में पधराते हैं कहीं? विकल्प उठे, उसमें नहीं; निमित्त शरीर में नहीं, कर्म में नहीं। प्रभु मेरे ज्ञान की वर्तमान निर्मल दशा, जितना विकास है न, वह है तो मेरा क्षयोपशम अर्थात् किंचित उघाड़ और किंचित अनउघाड़। परन्तु पूर्ण उघाड़ हुए अनन्त सिद्ध के संघ को, अनन्त सिद्ध के संघ को-समुदाय को यहाँ विराजमान करता हूँ। ओहोहो! मेरी ज्ञान की पर्याय में पधराता हूँ। एक बात।

हे श्रोताओं! वापस ऐसा कहा, हे श्रोताओं! हमारे श्रोता ऐसे होते हैं। चिमनभाई! आहाहा! तुम्हारे ज्ञान की वर्तमान दशा में अनन्त सिद्धों को मैं पधराता हूँ। पश्चात् मैं तुमको समयसार कहूँगा। आहाहा! समझ में आया इसमें कुछ? 'हरता फरता प्रगट प्रभु देखुं, मारुं जीववुं रे सफल तव लेखुं।' हरते-फिरते सर्वज्ञ प्रभु मेरी पर्याय, मेरी दशा में विराजमान है। उसे शर्म लगे अब। यह राग का आदर करना? भगवान के समीप राग नहीं और मैंने उनका आदर किया! क्या कहा, समझ में आया? यह तो प्रत्येक गाथा में कोई अलौकिक बातें की हैं। वे कहे, भगवान का व्यवहार किया। अरे... सुन तो सही, प्रभु! इस व्यवहार का अर्थ यह हो गया कि इस ज्ञान की वर्तमान दशा... स्वभाव पूर्ण है, उसकी दशा अल्प है, अल्प में पूर्णानन्द के क्षायिक ज्ञानी को अनन्त को विराजमान किया।

एक विचार तो ऐसा (आया) कि जितने अनन्त हुए और भविष्य में जो होंगे, इतने अनन्त को वह वापस करेगा। जो सिद्ध होना चाहता है और समयसार अर्थात् जो आत्मा का भान करना चाहता है वह। इतने अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... कितने बापू! यह तो बहुत कठिन बात है। अनन्त। अनन्त... अनन्त पुद्गल परावर्तन चले गये। काल के अनन्त पुद्गल परावर्तन परिभ्रमण के। एक पुद्गल परावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाती है। ऐसे अनन्त पुद्गल परावर्तन के इकट्ठे हुए सिद्ध। अरे! हमारे आँगन में प्रभु मेहमान होकर पधारो न! पधारो... पधारो! हमें अभी काल नहीं है, हों! प्रभु!

लोग नहीं करते? वार-कवार होवे तो प्रस्थाना रखते हैं या नहीं? वार-कवार होवे

तो प्रस्थाना रखते हैं न ? चलना हो रविवार को और शनिवार को गली के छोर में रहते हैं न, वहाँ जाकर रख आते हैं। कल जायेंगे।

इसी प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, प्रभु! हमें अभी केवलज्ञान का कवार है। अभी केवलज्ञान नहीं है। परन्तु हम हमारी पर्याय में अनन्त सिद्ध की-केवलज्ञानी की प्रस्तावना करते हैं, प्रस्थाना करते हैं। अल्पकाल में हम सिद्ध जैसे होने के लिये प्रस्थान करते हैं। आहाहा! भाई! यह निश्चय की भक्ति भी कोई अलौकिक है! इसे समझना। नहीं तो दुनिया तो ऐसा कहते हैं कि यह पागल है, गहल। बात तो सच्ची है, हों! कल कहा नहीं था ?

जगतडा कहे छे रे भगतडा घेला छे,
पण घेला न जाणशो रे, प्रभुने त्यां अे पहेला छे।

वह पहले पाट पर बैठनेवाले हैं। पहले पाट, क्या कहलाता है तुम्हारे ? पाट। लोग नहीं कहते ? पहले पाट पर अच्छे मनुष्य को बैठाते हैं या नहीं ? भगवान अनन्त परमात्मा... आहाहा! उसकी बात क्या ? अनन्त कितने ? और ज्ञान का अंश कितना ? अनन्तवें भाग। उघाड़ का अंश अनन्तवें भाग। अनन्त केवली, जिनके केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं। ऐसे एक और ऐसे अनन्त। आहाहा! कहते हैं, हे श्रोताओं! तुम्हारे ज्ञान में मैं उन अनन्त सिद्धों का प्रस्ताव स्थापित करता हूँ, हों! इनकार करना नहीं, न करना नहीं। न करोगे, नहीं की बात ही ली नहीं। ... ही ली है इन्होंने। ...

अनन्त सिद्ध परमात्मा को तुम्हारे ज्ञान में स्थापित करता हूँ, बस! इतनी बात। और मेरे ज्ञान में मैंने स्थापित किये हैं, अब मैं समयसार शुरु करूँगा। यह सुनते-सुनते तुम्हारा लक्ष्य अन्दर में जायेगा और अल्प काल में तुम्हें केवलज्ञान होगा। सिद्ध में मिल जाओगे। तुम्हारा स्मरण पीछे (वाले करेंगे) ऐसे तुम होओगे। चिमनभाई! वे कहे, भक्ति उड़ाते हैं। अरे... भगवान! सुन, प्रभु! भाई! भक्ति किसे कहना ? नाथ! समझ में आया ? आहाहा!

आत्मा के प्रेम की जहाँ प्रीतियाँ उछली-सम्यग्दर्शन (हुआ), ज्ञानानन्दमूर्ति का जहाँ अनुभव हुआ, ऐसे काल में भगवान पूर्णानन्द देखता है। अरे! हम तो हल्के हैं। हम तो कहाँ पामर हैं। कहाँ प्रभुता और कहाँ हमारी पामरता! समकिती को अपनी दशा में पामरता दिखती है। स्वभाव में प्रभुता दिखती है। आहाहा!

भाई! कहा है न? स्वामी कार्तिक में। स्वामी कार्तिक में अन्तिम गाथा कही है। एक ... कही है। धर्मी जीव को एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण प्रभु आत्मा हूँ, ऐसा प्रभु भासित होता है। परन्तु पर्याय में पामरता भासित होती है। कहाँ केवलज्ञान... आहाहा! अरे! कहाँ चारित्र! स्वरूप की रमणता के आनन्द का उफान, जो चारित्र वह केवलज्ञान के दीवान। वह चारित्र कहाँ और कहाँ कहना प्रभु! हमारे में कचाश कितनी! इस प्रकार समकिती अपनी पर्याय की निर्बलता में पामरता देखता है और अपने को तुच्छ गिनता है। आहाहा! कहाँ आत्मा के आनन्द का चारित्र! चरना अर्थात् आनन्द में अकेले रमते हो, ऐसा चारित्र और कहाँ पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप परमात्मा! उसके समक्ष समकिती अपने को पामर (समझता है)।

श्रीमद् में कहा है न? भाई! हे कुन्दकुन्दादि आचार्यो! इस पामर को आपके... देखो! समकित होने के बाद की बात की है। आत्मभान होने के पश्चात् कहा, इस पामर को आपके वचन स्वरूप अनुसन्धान में अतिशय-अतिशय उपकारी हुए हैं। इसलिए आपको वन्दन है! आहाहा! धर्मी को धर्म में आगे बढ़े हुए आनन्द में और शान्ति का रस जहाँ अन्तर्मुखता विशेष होती है, उनके प्रति तो धर्मी का मस्तक नम जाता है। नमे... नमे... नमे।

यहाँ कहते हैं, उन सिद्ध भगवान को स्थापित कर हम बात करेंगे। जेठालालभाई! इनकार करना नहीं, प्रभु! हों! अरे! हम रंक मनुष्य को एक बीड़ी बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं। प्रभु! पर बिना तूने तो अनन्त काल से चलाया है। सुन! क्या कहा? और यह क्या कहा? आत्मा आत्मारूप है, चाररूप। चार अर्थात्? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। वस्तुरूप से वस्तु, क्षेत्र प्रमाण चौड़ाई, कालरूप दशा, भावरूप गुण-शक्ति। इस रूप आत्मा है। वह आत्मा पर अनन्त आत्मा और पर रजकणरूप नहीं है। क्या कहा यह? चन्दुभाई! आत्मा को पर बिना रोडव्युं है अनन्त काल से। रोडव्युं समझ में आता है? क्या चहे? चलाया है। कैसे?

देखो! अँगुली है न? अँगुली। इस अँगुली में इन चार अँगुलियों बिना चलाया है। यह हो तो यह हो, ऐसा नहीं है। मैं होऊँ तो हूँ, इस द्वारा मैं नहीं। इसी प्रकार आत्मा, वह आत्मारूप है और पर अनन्त आत्मा तथा पर अनन्त रजकणरूप नहीं है। आहाहा! इस पर

के नहींरूप रोडव्युं-चलाया है। पर के अस्तिरूप चलाया है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? चन्दुभाई! भक्ति में वापस अध्यात्म कितना आता है! बापू! बड़े के आँगन भी बड़े होते हैं। उसका घर तो बड़ा होता है परन्तु आँगन भी बड़ा होता है। उसकी भक्ति भी विवेकवाली अलौकिक होती है।

यह यहाँ कहते हैं, अनन्त गुण का धाम जहाँ है, उसकी दशा में, उसकी दशा में जो विवेक वर्तता है, वह अलौकिक होता है। उसे यह भक्ति उछलकर अनन्त सिद्ध मेरे ज्ञान के आँगन में पधारो, प्रभु! मैं वर्तमान में पामर, तथापि प्रभुता को अन्दर में रखता हूँ। मेरे ज्ञान में उसे रखा है। अब मेरा ज्ञान अधिक हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया?

यह यहाँ बात करते हैं कि ऐसे जीव को जो भक्ति का आह्लाद और शुभभाव आता है, वह जीव वन्दन करे और भगवान की पूजा करे, वह मनुष्य **एक बार भी जिनेन्द्र की वन्दना करता है; वह मनुष्य, रात-दिन तीनों लोक में वन्दनीय होता है।** आहाहा! इसके पाप के बन्धन हों और उसके कारण दुनिया में बेइज्जती और अकीर्ति भले हो, परन्तु शास्त्र तो ऐसा कहता है कि आत्मज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् पाँचवाँ श्रावक गुणस्थान, पाँचवाँ आनन्द की शान्ति की वृद्धि हो गयी हो। पंचम गुणस्थान श्रावक अर्थात् यह कहीं वाडा की बात नहीं है। वस्तु के आनन्द के उफान जिसे अन्दर आंशिक अधिक आया है। भगवान ऐसा कहते हैं कि ऐसे श्रावक के आनन्द के समक्ष उसे अपयश का उदय नहीं होता। भाई! यह क्या कहते हैं? प्रभु!

आत्मा की दृष्टि और शुद्धता और परमात्मा की जहाँ भक्ति उछली है और उसमें आगे बढ़कर पंचम (गुणस्थान में) आत्मा के आनन्द की शान्ति का स्वाद विशेष लिया, पंचम गुणस्थान में श्रावक ने स्वाद-आत्मा के आनन्द का विशेष स्वाद लिया, उसे भगवान कहते हैं, उसको अपयश नहीं होता, दुर्भाग्य नहीं होता। दुर्भाग्य नहीं, अपयश नहीं। वह मानता नहीं कि हमारा अपयश होगा। मेरे गीत मैं यश से गाता हूँ, दुनिया कौन अपयश करनेवाली है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग लोगों के पास रहे। यहाँ तो भगवान कहते हैं। त्रिलोकनाथ

तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ विराजमान, ऐसा देखा है कि आत्मा के शान्ति के अनुभव सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसे विशेष शान्ति का अंश प्रगट हुआ, ऐसे पंचम गुणस्थान की दशावाले को अपयश और दुर्भाग्य और अयशरूप कीर्ति आदि नहीं हो सकती। अनादि तीन प्रकृति है, हों! यह। दुर्भाग्य, अनादेय और अयश। यह नामकर्म की प्रकृति है, इनकी यह तीन तो उसे होती ही नहीं। प्रकृति भले हो, परन्तु उसमें जुड़ान नहीं है। मैं आत्मा शान्त आनन्द हूँ न! मेरी दुनिया में अपयश और अपकीर्ति तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की बात है न। बाहर का बाहर में रहा। मुझमें कुछ है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि ऐसे भगवान को जिसने अन्तर पधराया और वन्दन किया, दुनिया उसे भविष्य में वन्दन करेगी। दुनिया उसे आदर करेगी। पुण्य ऐसा बँध जायेगा कि लोग उसका आदर करेंगे। ओहो! उसका जलसा करके बलजोरी से आदर कराना, ऐसा नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। यह जलसा कराते हैं न? ऐ... महासुखभाई! यह जलसा-बलसा करके मुझे अभिनन्दन दो, हमें यह दो। वह तो किसी के दिये से दिया नहीं जाता। यह तो बापू! स्वयं आत्मा अभिनन्दन दे। समझ में आया? जलसा करो। पांच-दस लाख खच करो। फिर हम बड़े होंगे, हमें दुनिया बड़ा कहे। ऐसा जबरदस्ती किसी को भरा-भराकर करे, वह तो कोई यश है?

कहते हैं कि ज्ञानी को जहाँ आत्मा के भानसहित भक्ति उछली है, उसमें ऐसी प्रकृति बँधेगी (कि) दुनिया उसका यश करती हुई सामने आयेगी। आहाहा! समझ में आया? देवलोक के इन्द्र, इन्द्र जिसे गाते हैं, ओहो! वाह रे वाह! तेरा सम्यग्दर्शन!! जिसने परमात्मपद का आदर किया और विकार तथा शरीर का आदर दृष्टि में रहा नहीं, उसकी महिमा इन्द्र करते हैं। इन्द्र करे, फिर छोटे की बात क्या लेना तुझे? ऐसा कहते हैं। इन्द्र भी उसकी पूजा अर्थात् कि उसका आदर करेंगे।

तीनों लोकों के जीव आकर उसकी वन्दना करते हैं। जो मनुष्य, एक बार भी जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करता है, उसकी परलोक से बड़े-बड़े इन्द्र आकर स्तुति करते हैं। जो मनुष्य एक बार भी जिनेन्द्र भगवान का ध्यान करता है; वह

समस्त कर्मों से रहित होता है तथा बड़े-बड़े योगीश्वर भी उस मनुष्य का ध्यान करते हैं... क्योंकि स्वयं ध्यान होकर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। (पश्चात्) दूसरे योगी उसका ध्यान करेंगे। **इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि भगवान की पूजन, वन्दना, स्तुति और ध्यान सर्वदा किया करे।** यह बात स्थापित करे वह तो बारम्बार करे, उसका ही कहे न। श्रावक का कर्तव्य है हमेशा भगवान की पूजा, गुरु की सेवा, दया, संयम, इच्छानिरोध तप और दान (करे)। राग घटाकर दानादि की क्रियायें गृहस्थों को दिन-प्रतिदिन होती है। उसका उसे विवेक होता है, इसलिए कहते हैं, उसे सर्वदा यह काम करना। दो श्लोक (हुए)।

एक श्लोक मंगल का था और यह श्लोक दूसरा (हुआ)। अब इसका तीसरा श्लोक है, वह बात स्तुति में विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - १०, बुधवार, दिनांक - ०६-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - २ से ४, प्रवचन-७८३

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का वनशास्त्र है। इसमें ऋषभदेव भगवान, जो इस चौबीसी के पहले तीर्थंकर हुए, उन्हें उद्देश्य कर-लक्ष्य करके भक्ति करते हैं। धर्म के समझनेवाले और धर्म के करनेवाले ऐसे आत्माओं को पूर्णानन्द परमात्मा की भक्ति का राग और विकल्प आये बिना नहीं रहता। अर्थात् क्या? कि यह आत्मा जैसा परमात्मा को प्रगट दशा सर्वज्ञ और वीतराग को हो गयी, वैसा मेरा अन्तर स्वभाव शुद्ध और आनन्द है, ऐसा अन्तर में पुण्य और पाप के राग के प्रेम का लक्ष्य छोड़कर आत्मा के अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का जिसमें अनुभव में प्रतीति हुई है, उसे धर्मी और उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसे पूर्ण परमात्मा की दशा की उसे भावना होती है। इसलिए मानो पूर्ण परमात्मदशा, पूर्ण निर्दोषदशा, एक अंश भी जिसे राग या विकल्प या भोग या विषय नहीं, जिसे पूर्णानन्द की निर्दोष प्राप्ति हुई है, ऐसे अरिहन्त परमात्मा के प्रति भक्ति में सम्यग्दृष्टि को बहुमान, विनय, भक्ति, पूजा, दान आदि का भाव हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपादेयबुद्धि से होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेयबुद्धि व्यवहार से ऐसा कहलाता है। परमार्थ से तो हेयबुद्धि है। यह अवरोधक है अभी जगत को।

आत्मा में... उसका स्वरूप तो एक समय में अनन्त ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा है, उसकी जिसे स्वभाव सन्मुख की प्रतीति और विश्वास और वेदन में आया कि यह आत्मा आनन्द है, शान्त है, अविकारी मेरा स्वरूप है। ऐसी प्रतीति का अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ, उसे अभी राग बाकी रहता है। उस राग में पूर्णानन्द परमात्मा के प्रति प्रेम, भक्ति ऐसा राग आये बिना नहीं रहता, तथापि उसे दृष्टि में हेयरूप से स्वीकारता है।

मुमुक्षु : सवेरे के साथ मिलान करना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सवेरे के साथ मिलान है, मेल बिना का कब था ? सवेरे तत्त्वदृष्टि की बात है। अभी तत्त्वदृष्टिसहित ज्ञानी को भक्ति होती है, दानभाव होता है, पूजाभाव होता है परन्तु वह भाव गृहस्थाश्रम में षट्कर्म हमेशा के होते हैं। शास्त्र में आता है या नहीं ? सम्यग्ज्ञान और भान हुआ है कि मैं आत्मा ज्ञान और आनन्द हूँ, तथापि स्वयं को पूर्णानन्द की प्राप्ति का जहाँ अभाव है, इससे उसे राग का भाग, राग का भाव शुभ और अशुभ आये बिना नहीं रहता। और उसमें अशुभ से बचने के लिये गृहस्थों को हमेशा दिन-प्रतिदिन उन्हें देव की भक्ति होती है, गुरु की सेवा होती है, अपनी अपेक्षा धर्म को विशेष प्राप्त पूर्णानन्द को विशेष साधनेवाले, ऐसे सन्तों की सेवा और भक्ति का भाव होता है और पूर्ण परमात्मा की पूजा और भक्ति और स्तुति उसे—ज्ञानी को / धर्मी को हमेशा होते हैं, तथापि उस भाव को ज्ञानी अन्तर्दृष्टि में परमार्थ से आदरणीय नहीं मानता, हेय जाननेयोग्य है और छोड़नेयोग्य है, तथापि आये बिना नहीं रहता। बात बहुत (कठिन)। इसमें शर्तें बहुत। समझ में आया ?

इस भाव को शास्त्र तो षट्कर्म कहता है न ? भाई ! हमेशा देव की पूजा होती है। निर्दोष वीतराग परमात्मा, जिनकी पूर्ण दशा प्रगट हुई, ऐसे साक्षात् परमात्मा हो और न हो तो उनकी प्रतिमा का पूजन (हो)। ऐसा भगवान की आज्ञा का मार्ग है। धर्मीजीव को हमेशा वह देवपूजा उसे होती है, परन्तु उसकी मर्यादा शुभभाव और पाप से बचने जितनी है। पुण्यभाव होता है। समझ में आया ?

इसी प्रकार उसे हमेशा कुछ इन्द्रियदमन का संयमपना भी धर्मी को होता है और हमेशा दान भी होता है। षट्कर्म हैं, उसके व्यवहार से। दान होता है। दान देने का भाव धर्मी को, जहाँ आत्मा रागरहित चीज़, विकल्परहित चीज़ है—ऐसा जहाँ भान हुआ, सर्वथा राग छोड़नेयोग्य है, ऐसे जीव को दान का भाव राग घटाने का लक्ष्मी का, लक्ष्मी में से घटाकर आहार-पानी मुनि आदि धर्मात्मा को देने का भाव, आहार-पानी आदि या लक्ष्मी आदि का सदुपयोग करने में (भाव आता है)। सदुपयोग तो जड़ का न हो परन्तु उसके प्रति राग घटाकर दान में दूँ, ऐसा भाव धर्मी को आये बिना नहीं रहता। और कोई कहता था कि यह भक्ति का पढ़े उसमें दान (आयेगा) ? यह दान का आया इसमें, देखो न ! दान एक प्रकार

की व्यवहारभक्ति है। पुण्यभाव है। शास्त्र में तो आगे दान के अधिकार में ऐसा कहा है, तब अपने पढ़ा था। (संवत्) २०१५ के वर्ष में, दान अधिकार।

हे आत्मा! कौआ होता है, कौआ,... कौआ। उसे जो कुछ लोग अच्छा माल खिचड़ी, चावल हों वे खाये। फिर वह जला हुआ खुरचन रहे न? उसे खुरचकर अपने घर के पास रखते थे। पहले एक कुण्डी रखते थे। यहाँ तो कहाँ... अब शहर में तो सब समझने जैसा हो गया। परन्तु गाँव में यह चावल और खिचड़ी होती है, और जो जला हुआ भाग हो... क्या कहलाता है? हाँडी... हाँडी। हाँडी कहाँ रही अब यहाँ? उस हाँडी के साथ चिपका हुआ माल कलछी से उखाड़कर अपने घर के पास पत्थर की कुण्डी रखते थे उसमें डालते थे। धूल वाला न हो इसलिए (डालते हैं)। कुत्ते को और कौवे को खाने को अनुकूल पड़े। ऐसा भाव पहले आर्य में था। सदा के लिये ऐसा राग कोमलता के लिये होता है।

यह दृष्टान्त देकर कहते हैं, खुरचन निकालकर उसे डाला। उसे कौआ अकेला नहीं खाता। कौवे का स्वभाव है कि काँव... काँव... काँव करके पाँच-पच्चीस (दूसरे कौवों को) बुलाकर खाता है। ऐसा ही कौवों का प्रेम अपनी जाति के साथ का स्वभाव है। कुत्ते को ऐसा जाति के साथ का द्वेष का स्वभाव है। एक कुत्ता देखे तो दूसरा कुत्ता भौंकता है। कौवे का प्रेमीपन का स्वभाव है। इसलिए उस कौवे के खुरचन डाली हो, उसे वह अकेला नहीं खाता। काँव... काँव... काँव... करके पच्चीस को बुलाकर खाता है।

इसी प्रकार आचार्य कहते हैं, अरे... कृपण! पूर्व का तेरा कोई पुण्य बाँधा हुआ था, पूर्व में तूने कोई शुभभाव किया था, राग की मन्दता का दया, दान, भक्ति का कोई शुभभाव किया था। उसमें आत्मा जला था। वह कचरा है या नहीं? पूर्व में शुभभाव किया, उसमें आत्मा की शान्ति जली थी। क्योंकि शुभभाव राग है और आत्मा का धर्म, वह रागरहित चिदानन्द एकाकार शुद्धता, वह आत्मा की शान्ति और धर्म है। ऐसी धर्म की दशा में या धर्म के भान बिना तूने पूर्व में राग की मन्दता शुभभाव की की थी, उसके कारण आत्मा का शान्तिगुण जला। उस पुण्य के शुभभाव में तुझे पुण्य बँधा। कर्म के रजकण। और पुण्य के बन्ध के पाक काल में गोटी बैठ गयी। गोठी बैठ गयी, समझ में आया? ...भाई!

...भाई! ये दोनों साथ बैठे हैं। गोटी बैठ गयी, हों! यह ऐसा मानो कि हम पैदा करते हैं, यह करोड़ और धूल और... इस बात में माल कुछ नहीं है।

आचार्य महाराज कहते हैं कि पूर्व में किसी शुभभाव के कारण से पुण्य बँधा और पुण्य के उदय काल में पाँच-पच्चीस लाख या जो कुछ धूल मिलना हो, वह मिली। आचार्य ऐसा कहते हैं, आगे अधिकार है, काक का न्याय है आगे। कितने में है? काक। पृष्ठ १३१ है। काक (कौवा) ऐसा लिखा है। पृष्ठ १३१ है। यह लिखा है, देखो!

किं जीवितेनं कृपणस्य नरस्य लोके,
निर्भोग दान-धन-बन्धन-बद्ध मूर्तेः।
तस्माद्वरं बलिभुगुन्नतभूरिवाग्भिः
व्याहूतकाककुल एव बलिं स भुंक्ते।।४६।।

यह श्लोक है, दान अधिकार का ४६वाँ श्लोक है। **जिस लोभी पुरुष का शरीर, भोग तथा दानरहित धनरूपी बन्धन से बँधा हुआ है,...** अकेले भोग भोगता है और दान नहीं करता **उस कृपण पुरुष का इस लोक में जीना सर्वथा व्यर्थ है...** उसका जीना व्यर्थ है। **क्योंकि उस पुरुष की अपेक्षा वह काक ही अच्छा है...** हिन्दी में है, संस्कृत में श्लोक है। उसकी अपेक्षा कौवा अच्छा है। **जो कि ऊँचे शब्द बोलकर और बहुत से काकों को बुलाकर, उनके साथ मिलकर भोजन करता है।** क्या कहा, समझ में आया? कि कौवा तेरी अपेक्षा अच्छा है। यदि पैसा पुण्य-पूर्व के पुण्य के कारण मिले, उसमें राग की मन्दता करके धर्म से प्रभावना में दान में, दया में, भक्ति में, पूजा में, जिन मन्दिर आदि बनाने में यदि राग की मन्दता का भाव नहीं किया तो उस कौवे से भी तू गया-बीता है।...भाई!

जिस समय जो बात शुभभाव की कहनी हो तो उसे भी बतलाते हैं और धर्म की बतलानी हो, तब कहे, रागरहित आत्मा की - शुद्ध चिदानन्द आत्मा की अन्तर ज्ञान और प्रतीति और लीनता (हुए), उतना धर्म है। परन्तु उस धर्म में जब स्थिर न रह सके, तब उसे भी ऐसे पैसे के घटाने का, लोभ घटाने का भाव उसे आये बिना नहीं रहता और शुरुआत में उसकी गाथा में ऐसा लिया है कि लोभी-कृपण पुरुष लोभ के कुँए की भेखड

में भरा हुआ है। कुँए की भेखड़ होती है। भेखड समझ में आया? कुँआ होता है न? उसमें नीचे होती है न? अन्दर में कुँए में। उसमें भेखड में फँसे हैं। कृपण जीव लोभरूपी भेखड़ में फँसे हुए प्राणी को हम तृष्णा घटाने के लिये, राग मन्द करने के लिये लोभ की न्यूनता करने को दान अधिकार कहेंगे। ऐसा कहकर आचार्य महाराज जंगल में भी जगत के पाप से बचाने को पुण्य का भान कराने को या होने को यह बात आचार्य जंगल में भी कह रहे हैं। यह भाव होता है।

कहते हैं, कौआ अकेला नहीं खाता, उसे मिली हुई खुरचन को (अकेला नहीं खाता) और तुझे कुछ पाँच-पचास लाख धूल मिली, पूर्व के जले हुए पुण्य के कारण। जला हुआ पुण्य अर्थात् आत्मा की शान्ति से पुण्य नहीं होता। क्या कहा? आत्मा भगवान आनन्दकन्द में जितनी अन्तर शुद्धता की पवित्रता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट करे, उससे अंश भी बन्ध नहीं होता और जिस भाव से बन्ध हो, वह भाव धर्म नहीं हो सकता। नटुभाई! आहाहा! ऐसा भाव धर्मी को भी राग की मन्दता से दया, दान, भक्ति, प्रभावना यह लोभ को घटाकर और लक्ष्मी का व्यय करने का उसे भाव होता है और ऐसा भाव न हो तो कहते हैं कि तुझे दृष्टि का भान नहीं परन्तु जो पुण्य के कारण से मिले, उसमें राग मन्द करने का भी तुझे ठिकाना नहीं है। तू कौवे से गया-बीता है। ऐसा कहकर राग की मन्दता कराने को लोभ को घटाने का (उपदेश देते हैं)। और वहाँ तो बहुत अधिकार लिया है।

यथाशक्ति, भाई! दो शब्द प्रयोग किये हैं। '**यथर्द्धि**'। पचास लाख की पूँजी हो और पाँच सौ-हजार खर्च करे, वह कहीं उसकी शक्ति प्रमाण नहीं है। जेठालालभाई! दो शब्द हैं। कहाँ होंगे क्या खबर पड़े? कहीं है ऐसा शब्द। समझ में आया? पृष्ठ - २२४ लिखा है। (देशव्रतोद्योतन अधिकार, गाथा-१६)। '**यथर्द्धि**' है। देखो! क्या कहते हैं?

पुत्रेराज्यमशेषमर्थिषु धनं, दत्त्वाऽभयं प्राणिषुः
प्राप्ता नित्यसुखांऽऽस्पदं सुतपसा, मोक्षं पुरा पार्थिवाः
मोक्षस्याऽपि भवेत्ततः प्रथमतो, दानं निदानं बुधैः
शक्त्या देयमिदं सदाऽतिचपले, द्रव्ये तथा जीविते।।१६।।

भूतकाल में बड़े-बड़े राजा, पुत्र को राज्य देकर, याचकजनों को दान देकर

और समस्त प्राणियों को अभयदान देकर, अनशनादि उत्तम तपों का आचरण कर, अविनाशी सुख के स्थान मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इसलिए मोक्ष का सबसे प्रथम कारण तो एक दान ही है। अर्थात् दान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अन्तर अभ्यन्तर दान—रागरहित स्वभाव का दान और बाहर में दान में राग की मन्दता का पुण्यभाव। **अतः विद्वानों को चाहिए कि धन तथा जीवन को जल के बुलबुले के समान अत्यन्त विनाशीक समझकर सर्वदा शक्ति के अनुसार...** पाठ है, हों! अन्दर। **'शक्त्या देयमिदं'** और २५ में पाठ है, **'यथर्द्धि'** जैसी तेरी शक्ति है, उतने प्रमाण में यदि दान न दे... समझ में आया? यह **'यथर्द्धि'** यह १७वाँ श्लोक है। **'मत्वेदं गृहिणा यथर्द्धि'।** जितनी ऋद्धि के प्रमाण में। पचास लाख की पूँजी हो और सौ-दो सौ खर्च करे, वह इसकी शक्ति प्रमाण नहीं है, वह तो बहुत कंजूस और निर्बल है। ...भाई! पाठ है, हों! मुनि-सन्त जंगल में रहे हुए जगत के उद्धार के लिये और पाप से बचने को पूजा और दान तथा भक्ति का अधिकार कहते हैं। परन्तु इसकी मर्यादा शुभराग की है। दृष्टि में हेय जानता है, तथापि वह भाव आये बिना नहीं रहता।

भाई! यह तेरे घर की क्रीड़ा, बापू! अलग है। तथापि इस धर्मीजीव को जब तक निर्दोष वीतराग और परमात्मदशा न हो, तब तक ऐसा भाव (आता है)। यह तो किसे, यह तो गृहस्थी को बात करते हैं, भाई! पैसा क्या मुनि के पास है? गृहस्थों को कहते हैं, तेरी **'यथर्द्धि'** जो तेरी शक्ति प्रमाण तुझे मिला है, देखो! समर्थ होने पर भी (दान नहीं देता, वह गृहस्थाश्रम) पत्थर की नाव के समान है। यदि दान नहीं दिया और राग घटाकर ऐसी भक्ति आदि नहीं की तो तेरा गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव समान है। चौरासी के अवतार में डुबो देगा। जिसे अच्छे मुनि धर्मात्मा ज्ञानी परमात्मा परमेश्वर के प्रति बहुमान-विनय, और भक्ति और दानादि के लिये जिसे उत्साह नहीं आता और वहाँ वीर्य मन्द पड़ता है, उसके वीर्य को कहते हैं कि नपुंसक वीर्य है। उस तेरे वीर्य को पाप की अपेक्षा पुण्य में वीर्य की राग की जो मन्दता है, इतना भी तेरा वीर्य नहीं है तो पूरा आत्मा आनन्दकन्द है, रागरहित, ऐसे भान का तुझे भान नहीं हो सकता। समझ में आया?

यहाँ यथाशक्ति शब्द प्रयोग किया है, हों! **'यथर्द्धि', 'यथर्द्धि'।** समझ में आया इसमें? वहाँ तो दोनों शब्द प्रयोग किये हैं। कदाचित् प्राणी ... कि बाप के मृत्युभोज में या

ऐसे में लोभ करे तो लोग इतना कहे कि यह कंजूस है, इतना (कहे)। परन्तु बराबर धर्म के प्रसंग आकर खड़े हों, उसमें जो लोभ करता है, वह पापी मिथ्यात्व को सेवन करता हुआ चार गति में भटकता है। और मायावी है। मैं धर्मी हूँ, ऐसा कहता है और धर्म के प्रसंग काल में राग की मन्दता का दानभाव नहीं आता, नहीं करता, वह मायावी है। जयन्तीभाई! मायावी कहते हैं। धर्मी नाम पाड़ते हैं और धर्म जो देव-गुरु-शास्त्र, उनकी भक्ति, उनका बहुमान, उनकी प्रभावना, ऐसे प्रसंग में तुझे लोभ घटाने का प्रसंग नहीं आता (तो तू) मायावी, कपटी, कुटिल है। धर्म का नाम देना है और धर्मी के प्रति के प्रेम को—भाव को नहीं करता। कपटी और मायावी कहा है। शिवलालभाई! सन्त हैं, उन्हें कहाँ दुनिया से चन्दा करवाना है कि दुनिया प्रसन्न हो तो ठीक। हित के लिये उपदेश के वाक्य निकले हैं।

उतनी शक्ति प्रमाण गृहस्थ हमेशा दान करे। षट्कर्म की बात चलती है। देवपूजा, गुरुसेवा, संयम, इन्द्रियदमन यह संयम तथा दान और किंचित् इच्छानिरोध आदि भाव हमेशा गृहस्थाश्रम में ऐसा शुभभाव होता है। तथापि वह समकिती उस भाव को... ...भाई! उस भाव को भी बन्धन का कारण जानकर दृष्टि में हेयरूप से स्वीकार करता है। आहाहा! यह विवाद उठा है सबको कि यह भाव होता है, इसे करते-करते धर्म कहो। ऐसा भाव करते-करते धर्म होता है। भगवान! राग है, वह करते-करते होता है या राग की रुचि छोड़ने से होता है? जयन्तीभाई! क्या होगा यह? कायदा कोई दूसरा निकलता होगा इसमें?

'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ'। सर्वज्ञ परमात्मा निर्दोष त्रिलोकनाथ का पन्थ एक ही प्रकार का होता है। निश्चय में स्वभाव के आश्रय की पवित्रता प्रगटे, इतना सच्चा धर्म। उसमें न टिके तो ऐसे शुभभाव आये बिना, हुए बिना नहीं रहते। आते हैं, तथापि वह धर्म नहीं है। उसे उपचार से-व्यवहार से धर्म कहा जाता है। व्यवहार से अर्थात् कि नहीं है, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। समझ में आया? इस जगत को सबको विवाद यह है। यह करते-करते इसे कल्याण (मनवाना है)। भाई! प्रभु! यह नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार किया, बापला! तेरी बातें तू जाने नहीं। जानता नहीं और जाननेवाला कहे, उसकी मानता नहीं।

अनन्त काल हुआ, भाई! इस चौरासी के अवतार में-घाणी में पिलाया, बापू! इस दुःख के दाडा अनन्त गये और यह मनुष्यपना मिला, इसमें समझने का अवसर आया। इसमें सच्ची समझ का नकार करे, हो गया। दाडा फिरा। उस राजा का दृष्टान्त नहीं दिया

था ? बापू ! तेरे दिन फिरे। यह काल आया और यदि समझ की दशा, सच्चे ज्ञान का डोरा नहीं पिरोया तो डोरा बिना की सुई कचरे में हाथ नहीं आयेगी। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान बिना चौरासी के अवतार में भटकता कहीं हाथ नहीं आयेगा। आँधी उड़े, उसमें एक तिनका उड़ता है, तिनका, कहाँ उड़ेगा ? ऐसे से ऐसे, ऐसे से ऐसे। बापू ! भगवान ! इस चिदानन्द के सम्यग्ज्ञान के आनन्द की श्रद्धा के भान बिना यह पुण्य और पाप के परिणाम से चौरासी के अवतार में आँधी में घड़ीक में कहीं और घड़ीक में कहीं, घड़ीक में ढोर, घड़ीक में देव, घड़ीक में राजा, घड़ीक में रंक, घड़ीक में नरक, घड़ीक में हाथी। ऐसे अवतार कर-करके तेरा कचूमर निकल गया। अरे ! परन्तु कैसे यह जाने अनन्त-अनन्त काल ?

इसलिए आचार्य कहते हैं, भाई ! अवसर आया है, इनकार नहीं करना, हों ! यह शुभराग भी धर्म है, यह बात मानना नहीं, हों ! और शुभ करते-करते अन्दर में प्रवेश (होगा, ऐसा मानना नहीं)। कारण है, शुभभाव है, वह बहिर्लक्षी वृत्ति है; और धर्म है, वह अन्तर्मुख परिणति, अन्तर वस्तु है। उसमें अन्तर ढलने से निर्मल दशा होती है। बहुत अलौकिक बातें हैं ! वस्तु अखण्डानन्द प्रभु में अन्तर्मुख झुकने से शुद्ध सम्यग्दर्शन और धर्म होता है और शुभभाव है, वह बहिर्लक्ष्य से होता है। दोनों की दिशा और ध्येय में अन्तर है। समझ में आया ? इसलिए दोनों के फल में अन्तर है, दोनों की जाति में अन्तर है, दोनों के स्वरूप में—एक में अनाकुलता और एक में आकुलता है। शुभराग में आकुलता है और स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता में अनाकुलता है। तथापि वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। यहाँ यह बात सिद्ध करनी है। समझ में आया ? दान में भी यह बात करते हैं। बहुत अधिक की है।

अब अपने तीसरा श्लोक आया है भगवान की स्तुति का। दो श्लोक हो गये। हे परमात्मा ! एक बार दृष्टान्त नहीं दिया था ? पत्नी और पति दोनों दस वर्ष से अलग हों, गाँव परदेश में। पत्नी को लिखे, मेरा जीव वहाँ लगा, खोलियाँ दोनों अलग है। ऐसा लिखते हैं न ? लिखे, हों ! माल नहीं हो कुछ। मैं यहाँ और तू वहाँ, मेरा जीव वहाँ लगा है। उसी प्रकार यहाँ धर्मी कहते हैं, हे नाथ ! तेरे पूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान का हमें भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। मैं यहाँ और परमात्मा आप आपके स्थान में। केवलज्ञानी महाविदेह में, सिद्ध भगवान ऊपर स्थान में। नाथ ! मेरा आत्मा यहाँ, तुम्हारा आत्मा वहाँ। खोलिया (शरीर) हमारा यहाँ, तुम्हारा खोलिया नहीं मिलता। सर्वज्ञ को देह है परन्तु देह का अन्तर है। परन्तु प्रभु ! मेरे

आत्मा में तुम्हारी प्रीति जमी है, वह प्रीति अब उखड़े ऐसी नहीं है। समझ में आया? वे तो मुफ्त के बोलते हैं, हों!

चालीस वर्ष की महिला हो और स्वयं पैंतालीस वर्ष का हो। ऐसे अर्धांगिनी कहे और रोवे। आहाहा! उसे बचाने का भाव है या नहीं? बचा सकता है? प्रिय में प्रिय को बचा नहीं सकता, तेरा भाव दूसरे में क्या कार्यगत होगा? तेरा भाव प्रिय में प्रिय स्त्री को बचा नहीं सकता, वह भाव दूसरे के काम में किस प्रकार काम कर सकेगा, दूसरे की दया और दूसरे को बचाना? वह तो उसके कारण से होता है, तेरा भाव वहाँ कार्य नहीं करता। उसमें और ऐसा बोले, पैंतालीस वर्ष की अपनी उम्र हो और उसकी चालीस की हो, बहुत प्रीति करता हो, जरा ऐसा भी मन में हो जाये, यह अभी मरेगी? इसकी अपेक्षा दस वर्ष पहले मरती तो दूसरी होती। पैंतालीस में जवान दूसरा विवाह नहीं करने दे। कहता था न प्रिय? अरे! तेरा प्रियपना माया में यम का पार नहीं मिले। यह मायावी कपट से ऐसा कहे, यह मेरी, मैं इसका। उस अवसर पर विकल्प ऐसा आ जाये, दस वर्ष पहले गयी होती न तो नयी तो होती। कहता था न प्रिय है? शरीर वहाँ और मेरा प्रेम यहाँ जमा है। ... ठग है।

परन्तु भक्तों को परमात्मा के प्रति जो प्रेम है, वह प्रेम तो उखड़े ऐसा नहीं है। वह स्वभाव में स्थिर हो, तब उखड़े; बाकी उखड़े ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहते हैं या नहीं कि यह तो मरी? तू कहता था न प्रिय है। परन्तु अब क्या करना इसमें? अधबीच में घर टूटा। पचास-साठ वर्ष हो गये होते तो दिक्कत नहीं थी। यहाँ चालीस वर्ष में अधबीच में (टूटा)। टूटा हुआ ही है, सुन न अब। कब तेरा घर चंगा था? भगवान चिदानन्द की मूर्ति अनन्त गुण की खान पड़ा है, उसके प्रति की रुचि बिना तेरा घर टूट गया हुआ ही है, वह कब भला-चंगा हुआ था?

आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि अहो! जिसे आत्मा के स्वभाव का प्रेम और रुचि जगी है, उसे परमात्मा को देखकर, परमात्मा की स्थापना देखकर इतना प्रेम उछलता है... क्या कहते हैं अब? देखो! तीसरी गाथा। इसका प्रेम, प्रेम के पीछे ज्ञान की-स्वभावसूर्य की रुचि है। इसलिए उस रुचि में राग आता अवश्य है, परन्तु राग छोड़कर उसे स्वरूप में स्थिर होने का भाव है। इसके अतिरिक्त उसे भाव नहीं हो सकता। अब कहते हैं, हे नाथ!

गाथा ३

चम्मच्छिणा वि दिट्ठे तइ तइलोये ण माइ महहरिसो।
णाणच्छिणा उणो जिण ण याणिमो किं परिप्फुरइ।।३।।

अर्थ :– हे जिनेन्द्र! हे भगवान! यदि हम आपको चर्म की आँख से भी देख लें तो भी हमें इतना भारी हर्ष होता है कि वह हर्ष तीनों लोकों में नहीं समाता। फिर यदि आपको हम ज्ञानरूपी नेत्र से देखें, तब तो हम कह ही नहीं सकते कि हमें कितना आनन्द होगा?

भावार्थ :– चर्म के नेत्र का विषय परिमित तथा बहुत थोड़ा है, इसलिए उस चर्म–नेत्र से आपका समस्त स्वरूप हमको नहीं दीख सकता, किन्तु हे प्रभो! उस चर्म–नेत्र से जो कुछ आपका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उससे ही हमें इतना भारी हर्ष होता है कि और की तो क्या बात? वह तीनों लोक में भी नहीं समाता, किन्तु यदि हम ज्ञानरूपी नेत्र से आपके समस्त स्वरूप को देखें, तब हम नहीं जान सकते कि हमें कितना आनन्द होगा?

गाथा - ३ पर प्रवचन

चम्मच्छिणा वि दिट्ठे तइ तइलोये ण माइ महहरिसो।
णाणच्छिणा उणो जिण ण याणिमो किं परिप्फुरइ।।३।।

हे भगवान! हे परमात्मा निर्दोष दशा को प्राप्त प्रभु! भक्त कहता है, हे परमात्मा! निर्दोष दशा को प्राप्त प्रभु! **यदि हम आपको चर्म की आँख से भी देख लें...** अर्थात् की बहिर्मुख लक्ष्य से भी यदि मैं आपको देखूँ **तो भी हमें इतना भारी हर्ष होता है...** इतना अधिक प्रमोद, विकल्प–शुभराग होता है **कि वह (हर्ष) तीन लोक में नहीं समाता,...** आहाहा! समझ में आया?

आनन्दघनजी पहले स्तवन में कहते हैं, 'ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो रे...' यह तो ऋषभदेव का नाम लिया है। परन्तु 'ऋषभति गच्छति इति परमपदं।' पूर्णानन्द की प्राप्ति वीतराग सर्वज्ञ को होती है, वे सब ऋषभ कहलाते हैं। यहाँ विशेष ऋषभदेव की व्याख्या चलेगी। उन्होंने ऐसा कहा, 'ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कंत।' आत्मा की समिति सखी ऐसा कहती है कि हे आत्मा! सर्वज्ञ परमात्मा के सिवाय मेरा कन्त और पति दूसरा नहीं चाहती। समझ में आया? निर्दोष परमात्मा।

ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कंत।
रीझयो साहिब संग न परिहरे रे....

यह शब्द पहले लालन बोले थे। एक बार वींछिया में।

रीझयो साहिब संग न परिहरे रे, भांगी सादि अनन्त।

ऋषभदेव का स्तवन करके बात स्वयं की करते हैं। मेरा आनन्द, मेरा स्वरूप शुद्ध है, उसकी प्रीति मुझे जमी है और भगवान परमात्मा हैं, उनके प्रति का विकल्प भी प्रेम का, भक्ति का है। परन्तु वह प्रीति ऐसी है, 'ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कंत।' मेरे स्वामीरूप से रागी-द्वेषी देव को कन्तरूप से मैं स्वीकार नहीं करूँगा। जिसमें राग भरा है, द्वेष भरा है, विषयभोग वासना पड़ी है, ऐसे देव को मेरे ज्ञान के आँगन में नहीं आने दूँगा। उसका बहुमान नहीं करूँगा। क्यों? 'रीझयो साहिब संग न परिहरे' ओहो! आत्मा आनन्दकन्द है, वह जब अन्तर में रुचि से रीझे और अन्तर में स्थिरता से आवे तो वह संग नहीं परिहरे। 'भांगे सादि अनन्त...' अर्थात् क्या? आत्मा के आनन्द का प्रेम होने पर उसे राग का प्रेम छूटने से शुद्धता की दशा प्रगट हुई और पूर्ण शुद्धता के उपाय से पूर्ण शुद्धता प्राप्त की।

वह 'भांगे सादि अनन्त...' क्या हुआ? आनन्द की मोक्ष की प्राप्ति हुई। आदि, परन्तु अन्त नहीं अब। चार भंग है—एक अनादि-अनन्त। आत्मा वस्तु अनादि-अनन्त—१। एक संसार अनादि सान्त। विकार अनादि का है। वह आत्मा का भान करे, तब मोक्ष होता है, इसलिए अनादि (का) अन्त आ जाता है उसका। समझ में आया इसमें? वस्तु अनादि-अनन्त। संसार का विकार आदिरहित—अनादि काल से। परन्तु मोक्ष होने पर

उसका अन्त आ जाता है। इसलिए संसार अनादि सान्त। और मुक्ति होती है, तब सादि— शुरुआत होती है, परन्तु सादि अनन्त—वह अब कभी अनन्त काल में वापस नहीं फिरता; इसलिए शुरुआत हुई, वह शुरुआत हुई, अब अन्त नहीं है। उसका नाम सादि-अनन्त कहलाता है। ...भाई! इन चार भंग की खबर नहीं होती। और आत्मा की एक समय की पर्याय जो प्रगट होती है, वह सादि-सान्त। होती है और अन्त आता है, होती है और अन्त आता है। समझ में आया इसमें? क्या?

फिर से चार भंग देखो। आनन्दघनजी कहते हैं, प्रभु! यदि तू रीझे न, और पूर्णानन्द की प्राप्ति हो (तो) भांगे सादि-अनन्त। चार भंग में मेरी मुक्ति की आदि हुई; अब अन्त आनेवाला नहीं है। इन चार भंग में एक भंग मोक्ष को लागू पड़ता है। और दूसरे तीन भंग अनादि-अनन्त वस्तु, संसार अनादि का परन्तु विकार का नाश आत्मा का भान होकर होता है, यह अन्त आ गया, इसलिए अनादि-सान्त। सान्त अर्थात् अनादि स-अन्त। आदि का भी अन्त आया और मुक्ति हुई, उसकी शुरुआत हुई। मुक्ति दशा में अनादि की नहीं थी। बराबर है? जेठालालभाई! आहाहा! बात भी सुनने को नहीं मिलती। घर के कौने में बातें करे। यह लड़के इतने और यह स्त्रियाँ इतनी परन्तु यह अनादि-अनन्त कौन है? तेरी जाति की भात में चार भंग है। जयन्तीभाई! घर की खबर नहीं होगी? इतने वर्ष से यह घर है, मेरे बाप-दादा का घर है। पुराना घर है। उसमें पुराना तू कितने में, खबर है तुझे? और नये घर बनाये। यह पहले पुराने थे परन्तु अभी नये बनाये।

इसी प्रकार आत्मा अनादि-अनन्त प्राचीन वस्तु है। उसका संसार विकार वह अनादि-सान्त है। अनादि का है परन्तु आत्मा का भान होकर उसका अन्त आ जाता है। और आत्मा की मुक्ति, वह सादि-अनन्त है। शुरुआत होती है परन्तु अन्त नहीं आता। तथा आत्मा की एक समय की दशा, एक समय की दशा होती है और जाती है, होती है और जाती है। एक समय की अपेक्षा से सादि-सान्त है। मनुष्यगति आदि की अपेक्षा से सादि-सान्त है। एक गति की अपेक्षा से। मनुष्यगति मिली, शुरुआत हुई, अन्त आ जायेगा साठ, पैंसठ, सत्तर, सौ में। सौ तो किसी को होता है। अनादि-अनन्त भगवान उसमें शरीर की स्थिति का संयोग—आदि हुई और उसका अन्त आ जानेवाला है। वह सादि-सान्त। संसार अनादि का अनादि-सान्त। मोक्ष सादि-अनन्त। भगवान आत्मा अनादि-अनन्त।

समझ में आया ? मूल बात की खबर नहीं होती। समझ में आया या नहीं, ऐई ! गुलाबरायजी ! वे पुस्तक बनावे। नोवेल और अमुक और अमुक... कहाँ गये ? प्राणभाई ! आये हैं या नहीं ? धूलधाणी है, हों ! माल कुछ नहीं होता। एक भी सच्चा प्रतिशत नहीं होता। मूल सत्य तत्त्व एक समय का अनादि-अनन्त ध्रुव भगवान और उसमें अनन्त शक्तियों का रसपिण्ड, उसका भान होने पर संसार का अन्त आ गया अन्दर और मुक्ति की शुरुआत हो गयी। वह शुरुआत हुई, अब कभी घी का मक्खन नहीं होगा, परन्तु मक्खन का घी होगा। संसार का अन्त आता है परन्तु मुक्ति हुई, उसका वापस संसार हो, ऐसा कभी नहीं होता।

इसीलिए कहते हैं कि हे नाथ ! आप यदि रीझो न,... आप अर्थात् मैं स्वयं, हों ! ऐसा वापस। आप अर्थात् वास्तव में तो आत्मा है। पूर्णानन्द की रीझ यदि हो और परमानन्द की प्राप्ति आनन्द शक्ति में है, वह प्रगट हो, समाप्त हो गया। अब उसे कभी संसार नहीं हो सकता। ऐसे भगवान को लक्ष्य कर कहते हैं, हे नाथ ! आपके आँख से दर्शन हो न, आँख से, हों ! '**चम्मच्छिणा**' पाठ है। इस चमड़े की आँख से। इसका अर्थ कि मेरा विकल्प उठता है, शुभराग, आपके दर्शन करने का।

सर्वज्ञ परमात्मा समवसरण में विराजमान होते हैं। अभी भी परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। भाई ! सब बातें लॉजिक-युक्ति से सिद्ध हो सकती है, हों ! परन्तु सब बात करने जायें तो लम्बा चले। साक्षात् परमात्मा इस क्षेत्र की सीधी सपाटी में एक महाविदेह क्षेत्र बहुत दूर है, वहाँ आगे साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं। उन्हें लक्ष्य कर कहते हैं, ऋषभदेव को लक्ष्य कर कहो या साक्षात् परमात्मा की अनुपस्थिति में उनकी प्रतिमा भी जिन नहीं परन्तु जिन सारखी है। कठिन पड़े ऐसी बात है। देता नहीं हो कोई वहाँ से। परन्तु धर्मी को उस धर्म के दर्शन करने परमात्मा का जब विरह पड़े, तब उनका निक्षेप करके स्थापना करके उसके दर्शन करके पूजा, भक्ति करता है।

कहते हैं, प्रभु ! तुम्हारे आँख दर्शन करूँ तो मुझे इतना पुण्य होगा... यहाँ हर्ष वर्णन किया है, हर्ष। इतना पुण्य होगा कि लोक में नहीं समायेगा। आहाहा ! आपके दर्शनमात्र से ! ऐसे इतने शुभभाव की दशा मुझे हो कि इस शुभ का फल जब आयेगा (कि) लोक में ऐसे पुण्य नहीं हों, ऐसा पुण्य मुझे बँधे। समझ में आया ? स्त्री-पुत्र का जो प्रेम है, इस धूल का—पैसा का—लक्ष्मी का, वह पापप्रेम है। पापप्रेम है। दुर्गति में जाने के वे

सब लक्षण हैं। अरर्र र! भारी कठिन, भाई! हमें करना क्या? परन्तु इसमें देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम....

स्त्री-कुटुम्ब के प्रेम की अपेक्षा देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम अधिक न हो तो श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि इसे हम अनन्तानुबन्धी का क्रोध कहते हैं। शिवलालभाई! अनन्तानुबन्धी की व्याख्या एक पत्र में की है। अनन्तानुबन्धी समझ में आया? अनन्त अर्थात् मिथ्या भ्रम, उसे अनुबन्ध करनेवाला विकार-कषाय को अनन्तानुबन्धी कहते हैं। ऐसा कठोर यह संसार कि अनन्त संसार का कारण (होता है)। जिसे देव-गुरु-शास्त्र के प्रेम की अपेक्षा स्त्री-कुटुम्ब और लक्ष्मी का प्रेम बढ़ जाता है, उसे अनन्त संसार का कारणरूप लोभ कहा जाता है। समझ में आया? भारी व्याख्या।

भाई! जिसे आत्मा का प्रेम और पूर्णानन्द परमात्मा और सन्त, आत्मा के ज्ञानी ध्यानी जहाँ विराजमान हों, उनके प्रति का प्रेम, स्त्री-कुटुम्ब के परिवार अपेक्षा से प्रेम विशेष प्रकार का हो जाता है। न हो और इनका प्रेम बढ़ जाये (तो) अनन्त संसार का कारणरूप विकार है। इसलिए कहते हैं, प्रभु! आपके दर्शन जहाँ हों, वहाँ मेरे शुभभाव की जाति ऐसी होती है कि जिसके फलरूप से लोक में मेरा पुण्य नहीं समायेगा। लोक में नहीं समायेगा अर्थात् लोकोत्तर स्थान में कहीं अवतरित होऊँगा और आपकी वाणी या आपका योग हो, वहाँ मेरा स्थान होगा। ऐसे तो आपके दर्शन के पुण्य के फल हैं।

कहते हैं, **हे भगवान! यदि हम आपको चर्म की आँख से देख लें तो भी हमें इतना भारी हर्ष होता है कि वह तीन लोक में नहीं समाता; फिर यदि आपको ज्ञानरूपी नेत्र से देखें तो...** पाठ में ऐसा मुद्दा है। राग और निमित्त के ऊपर का लक्ष्य छोड़कर, चिदानन्दमूर्ति ज्ञान की ज्योति चैतन्यसूर्य है, उसे यदि मैं अन्दर देखूँ (तो) उसके फल की क्या बात करना? कहते हैं। समझ में आया? दोनों बातें हैं इसमें तो— निश्चय और व्यवहार। व्यवहार से भगवान के दर्शन, पूजा, भक्ति का राग... ओहो! उसके पुण्य की क्या बात करूँ? परन्तु परमार्थ से मैं रागरहित चैतन्यसूर्य को देखूँ, ज्ञान की मूर्ति अनादि-अनन्त आनन्दकन्द को देखूँ तो प्रभु! **हम कह ही नहीं सकते कि हमें कितना आनन्द होगा?** अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अनुभव हो, उस ज्ञाननेत्र से आत्मा को देखने से, राग और पुण्य के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अनाकुल आनन्द का कन्द

प्रभु, उसमें नजर डालने से कितना आनन्द होगा ? प्रभु ! यह क्या कहें हम ? वह वाणी का विषय नहीं है। ऐसा आत्मा का आनन्द, आपको नेत्र से... आपका अर्थ इस चैतन्य को। इस आत्मा के आनन्द को और ज्ञानमूर्ति को अन्तर में देखने से इतना आनन्द होगा, उस आनन्द की क्या बात करना ? समझ में आया ?

अब चौथा श्लोक। ज्ञान की अनन्तता का वर्णन करते हैं। भगवान का—सर्वज्ञ का ज्ञान अनन्त है। ऐसा ही मेरा ज्ञान का स्वभाव एक समय में अनन्त है। क्योंकि प्राप्त की प्राप्ति है। सर्वज्ञ को पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ, आया कहाँ से ? आया कहाँ से ? पहले दिन दृष्टान्त दिया था। पीपर की चौंसठ पहरी शक्ति चरपराहट की प्रगट हुई, आयी कहाँ से ? अन्दर में है, उसमें से आयी है, बाहर से नहीं आती।

इसी प्रकार परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर को लक्ष्य कर कहते हैं, हे नाथ! आपका ज्ञान बेहद अनन्त विषय को करनेवाला, अनन्त विषय को करनेवाला ऐसा जो आपका ज्ञान, उसका मैं स्तवन करने खड़ा हुआ हूँ, मैं एक कुँए के मेंढ़क जैसा हूँ। कुँए का मेंढ़क... बात आती है न दृष्टान्त ? समुद्र का एक मेंढ़क था, वह कुँए में जा चढ़ा। इसलिए कुँए को मेंढ़क को कहता है, मेरा समुद्र बहुत विशाल है। वह समुद्र का मेंढ़क (कहता है), बहुत विशाल। तब कुँए के मेंढ़क ने पेट फुलाया, इतना तेरा समुद्र ? बापू! वह माप में आवे ऐसा नहीं है, भाई! तेरे पेट की चौड़ाई से (माप में नहीं आ सकता)। तब बहुत तो वह पेढली होती है न ? कुँए की पेढली अन्दर की। कुँए का मेंढ़क इस पेढली से उस पेढली में कूदा। इतना तेरा समुद्र ? भाई! मैं जिस वास में रहता हूँ, उस समुद्र का माप तेरे कूदने से आवे ऐसा नहीं है। तेरा पेट फुलाने से आवे, ऐसा तो नहीं परन्तु कूदने से आवे ऐसा नहीं। इस प्रकार समुद्र के मेंढ़क को कुँए का मेंढ़क कहता है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, लघुता बताते हैं। क्या कहते हैं ?

गाथा ४

अब, चौथे श्लोक में स्तुतिकार अपनी निर्मानता बतलाते हुए कहते हैं–

तं जिण णाणमणंतं विसईकयसयलवत्थुवित्थारं।
जो थुणइ सो पयासइ समुद्दकहमवडसालूरो।।४।।

अर्थ :– हे जिनेन्द्र! जो पुरुष, नहीं है अन्त जिसका तथा जिसने समस्त वस्तुओं के विस्तार को विषय कर लिया है – ऐसे ज्ञानस्वरूप आपकी स्तुति करता है, वह कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा का वर्णन करता है।

भावार्थ :– जिस प्रकार कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा नहीं कर सकता, उसी प्रकार हे जिनेन्द्र! जो पुरुष ज्ञानस्वरूप आपका स्तवन तथा आपको नमस्कार नहीं करता, उसका ज्ञान समस्त पदार्थों का विषय करनेवाला नहीं होता किन्तु जो मनुष्य आपकी भक्तिपूर्वक स्तुति करता है, उसको विस्तृत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

गाथा - ४ पर प्रवचन

तं जिण णाणमणंतं विसईकयसयलवत्थुवित्थारं।
जो थुणइ सो पयासइ समुद्दकहमवडसालूरो।।४।।

हे परमात्मा! **जो पुरुष, नहीं है अन्त जिसका तथा जिसने समस्त वस्तुओं के विस्तार को विषय कर लिया है...** बहुत सूक्ष्म बात है, सुनो! अहो! आत्मा का ज्ञानस्वभाव शक्तिरूप से अनन्त और अपार। उसकी अन्दर में लीनता होकर केवलज्ञान जो प्रगट हो, उतना ज्ञान उसका विषय कितना? अनन्त-अनन्त जाने। तीन काल-तीन लोक को जाने, उससे अनन्त गुणा हो तो भी जाने। आहाहा! कहते हैं कि हे नाथ! **ऐसे ज्ञानस्वरूप आपकी स्तुति करता है, वह कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा का वर्णन करता है।** निर्मानरूप से वर्णन करते हैं। मैं कितना वर्णन करूँ? प्रभु! आहाहा! कहाँ ज्ञान की आपकी सर्वज्ञदशा तीन काल-तीन लोक जिसके ज्ञान में (ज्ञात हो), उसमें मेरी भी सब दशा आपके ज्ञान में ज्ञात होती है। ऐसे पूर्ण ज्ञान की बात मैं अल्प ज्ञानी करता हूँ, वह

कुँए के मेंढ़क जैसा हूँ, ऐसा कहकर अपनी नम्रता, विनय और दासत्व स्वीकार करते हैं। केवलज्ञानी का दासत्व स्वीकार करते हैं। समझ में आया इसमें ?

केवलज्ञानी ऐसे परमात्मा का मैं दास हूँ। अर्थात् कि मैं साधक हूँ। मेरे आनन्द का साधक हूँ। मुझे पूर्ण ज्ञान प्रगट नहीं हुआ। वह अधूरा ज्ञानवाला पूर्ण ज्ञान की बात करता है, प्रभु! मैं तो एक कुँए के मेंढ़क जैसा हूँ। ऐसा कहकर विनय करते हैं। समझ में आया ? यह चौथी गाथा में कहा। कितना विषय... विषय कहा, हों! केवली क्या जानते हैं ? उसका विवाद है न अभी बड़ा ? पाठ में भाई! विषय लिया है। **'विसईकयसयलवत्थुवित्थारं'।** क्या कहते हैं ? आहाहा! जिसे सर्वज्ञ परमात्मा निर्दोष वीतराग जिनेश्वर प्रभु, जिनका एक सेकेण्ड में असंख्यवें (भाग में) एक समय का ज्ञान सकल वस्तु विस्तार (जानता है)। अनन्त पदार्थ, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल और एक-एक पदार्थ के अनन्त गुण और एक-एक पदार्थ की अनन्त वर्तमान अवस्था। उन्हें केवलज्ञानी का एक समय का ज्ञान पूर्ण जान लेता है। समझ में आया इसमें ? बात अन्दर बैठना (कठिन)। ऐसा ज्ञान ? यह यहाँ भक्ति है।

जिसे ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट, कितनी ? इसका ख्याल ज्ञानी को है। वह ख्याल है, ऐसा ज्ञानी अपनी भक्ति में उछलते हुए भगवान से कहता है, हे नाथ! कहाँ आपके ज्ञान की दशा परमेश्वर और कहाँ मेरी ज्ञान की अल्पज्ञ दशा। उस अल्पज्ञ द्वारा पूर्ण ज्ञान की भक्ति और स्तुति करने खड़ा हुआ हूँ। परन्तु प्रभु! मैं आपका दास हूँ, हों! इसलिए मुझे भक्ति आये बिना नहीं रहती है।

भक्तामर में कहते हैं न ? अरे... प्रभु! मैं ऋषभदेव भगवान की स्तुति करने खड़ा हुआ, परन्तु हिरण के बच्चे को कोई सिंह पकड़ने आता हो (तो) क्या हिरण सामने नहीं जाता ? स्वयं की शक्ति है, ऐसा नहीं देखता। हिरण बच्चे को बचाने सामने जायेगा। उस समय अपनी तुच्छता की खबर नहीं रखता। इसी प्रकार प्रभु! हमें खबर है कि आप अनन्त ज्ञान के धनी हो। उसकी स्तुति करने खड़ा हुआ हूँ, परन्तु मुझे हिरण जैसा गिनकर भी भक्ति करने उठा हूँ। मेरी भक्ति रोकी जा सके, ऐसी नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, हे प्रभु! आपका पूर्ण ज्ञान पूर्ण पदार्थ—सब पदार्थ को जाननेवाला, सकल पदार्थों को (जाननेवाला है)। यह बात जीव को कहाँ बैठती है ? हें...! यह बैठे

ऐसी ही बात है। बात बैठे ऐसी ही है, यही कहा जाता है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में प्रगट हुआ आत्मा का पूर्ण ज्ञान, जैसे पीपर का चौंसठ पहरा चरपराहट प्रगट हुआ, रुपया-रुपया पूरा; उसी प्रकार आत्मा का ज्ञानगुण जहाँ अन्तर ध्यान के आनन्द द्वारा पूर्ण प्रगट हुआ, एक समय में तीन काल-तीन लोक, भूत-भविष्य और वर्तमान, हुआ, होता है और होगा, सब जानता है। सब जाने, तब लोगों को विवाद उठता है।

अभी इस केवलज्ञान की बात आने पर बहुत खलबलाहट उठी है। यह तो सामान्य जानते हैं। इस व्यक्ति को इस काल में दशा होगी, ऐसा नहीं जानते। अरे.. भगवान! इस केवलज्ञान की तुझे खबर नहीं, तुझे प्रतीति नहीं। बोले, नमोत्थुणं में बोले। नमोत्थुणं में आता है न? सव्व... सव्व दरिसणं... ...भाई! शब्द आते हैं। अर्थ की उसे खबर नहीं होती। सव्व... सव्व दरिसणं। हे परमात्मा! आप सर्वज्ञ हो। सर्वज्ञ। कुछ जानने का आपको बाकी नहीं रहा। इस ज्ञान में क्या नहीं ज्ञात हो? किस जीव की दशा, किस काल में होती है, कैसे होती है, वह सब ज्ञान में ज्ञात होता है। आहाहा! तब कहे, ज्ञात हो जाये तो फिर हो गया। हो गया अर्थात् भगवान ने जाना, वैसा अपने में होगा, अब अपने पुरुषार्थ करना कहाँ रहा? वह तत्त्व को समझता नहीं। सुन तो सही, भाई! समझ में आया?

आचार्य, देखो! भक्ति का उछाला मारते हुए विकल्प से भी कहते हैं, आपकी जो केवलज्ञान की दशा,... परमात्मा देव, देव बातें करे। देव अरिहन्त। परन्तु अरिहन्त कहना किसे, इसकी खबर नहीं होती। वाडा में माने णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं। भगवान जाने तुम्बी में कंकर है या रुपये हैं, खड़खड़े इसलिए। सूखी तुम्बी होती है न? वह बीज पृथक् पड़े तो खड़खड़ाहट रुपये जैसे। रुपया कहाँ पड़ा है वहाँ। इसी प्रकार अज्ञानी को भान नहीं कि केवलज्ञान क्या चीज़ है? देव अर्थात् जिसकी दिव्य शक्ति प्रगट हुई है। जलहल ज्योति! आत्मा के असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य प्रगट हुए। केवलज्ञान सूर्य। उसे देव और उसे परमेश्वर, उसे परमात्मा कहा जाता है। उस परमेश्वर को ज्ञानी पहिचानता है। उनका दास उन्हें पहिचानता है।

हे नाथ! आपके ज्ञान की दशा में वस्तु का विस्तार (ज्ञात होता है)। जितनी वस्तुएँ हैं, उनकी प्रत्येक क्षण की अवस्था, प्रत्येक शक्ति अर्थात् गुण और प्रत्येक वस्तु, अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय (सब ज्ञात होता है)। नाम भी सुना न हो कितनों ने द्रव्य-गुण-पर्याय

के। वस्तु और वस्तु की त्रिकाल शक्ति और उसकी वर्तमान दशा। इन तीनों को द्रव्य-गुण-पर्याय कहते हैं। ऐसे तीन काल-तीन लोक के वस्तु के विस्तार को केवलज्ञानी जानते हैं। आहाहा! इसमें ऐसा जाने, फिर ज्ञान में जाने वैसा होगा। ऐ... डॉक्टर! क्या इसमें... ? विद्यानन्दजी हैं न ? विद्या याद आ गयी। भगवान की विद्या ऐसी होती है। उस ज्ञान में तीन काल-तीन लोक भगवान जानते हैं।

भाई! इस ज्ञान का जिसे इतना ज्ञान है परमात्मा का, इस आत्मा का, ऐसी जिसे प्रतीति हो, उसका जिसे भरोसा आवे, उसका लक्ष्य निमित्त, राग और अल्पज्ञता में से हटकर मेरा अन्तर स्वभाव सर्वज्ञ है, उसके ऊपर जाता है और सम्यग्दर्शन होता है। दूसरा कोई उपाय तीन काल-तीन लोक में नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! भक्ति में भी वापस सूक्ष्म। सूक्ष्म कांता है। भाई! तूने सत्य की बात सुनी नहीं और सत्य की भक्ति ऐसी भक्ति होती है, जिसके ज्ञान में समकिती के ज्ञान में-धर्मी के ज्ञान में केवलज्ञान ऐसा होता है। भूत, भविष्य और वर्तमान; हुआ, होता है और होगा, सब जानते हैं।

यह प्रश्न करनेवाले वे थे न ? भाई! तब अपने। रामजीभाई नहीं थे ? (संवत्) १९९२ में। एक साधु हुआ। स्थानकवासी साधु हुआ, जवाहरलाल के पास। पाँच वर्ष में ... पढ़ गया। पढ़-पढ़कर अन्त में शंका हुई। यदि ऐसा केवलज्ञान हो तो तत्प्रमाण होगा। इसलिए केवलज्ञान नहीं होता। ऐसी श्रद्धा से छोड़ दिया। वहाँ से एक बार यहाँ आया था। ... (संवत्) १९९२ के वर्ष की बात है। नाम भूल गये उनका। त्रिलोकचन्दजी, त्रिलोकचन्दजी। पाँच वर्ष साधु रहा जवाहरलालजी में। फिर उसे शंका हो गयी। केवलज्ञान जाने, माने तो... मुझसे प्रश्न किया कि यदि केवलज्ञान है तो केवलज्ञान ने देखा, वैसा होगा, इसमें अपने पुरुषार्थ करना कहाँ रहा ? ऐसा प्रश्न रखा। १९९२ के वर्ष की बात है। २८ वर्ष (हुए)।

कहा, सुन, भाई! केवलज्ञान है, ऐसा तुझे मान्य है ? मैं ऐसा पूछता नहीं। परन्तु तू केवलज्ञान है, ऐसा मानकर बात करता है। केवलज्ञान है और उसने जाना, वैसा होगा। ऐसा तो तू प्रश्न करता है। तुझे केवलज्ञान उड़ाना है। इस जगत में केवलज्ञान है, एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा ज्ञान है - ऐसा विश्वास है ? नहीं तो ऐसा कह कि केवलज्ञान हो नहीं सकता। तो केवलज्ञान हो नहीं सकता, इसकी पहले बात करते हैं।

परन्तु केवलज्ञान है, ऐसा मान्य करके केवलज्ञानी ने देखा, उसमें बदलेगा नहीं, तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा ? यह तेरा प्रश्न मिथ्या है। वजुभाई ! जरा सूक्ष्म बात है, हों ! बातें करे न, उस मस्तिष्क के फटे हुए। उड़ाना है पूरे केवलज्ञान को।

एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञान जानता है तो तत्प्रमाण होता है, तो फिर हमारे पुरुषार्थ कहाँ रहा ? कहा, केवलज्ञान मानते हो ? तो कहे, मैं पूछता नहीं। परन्तु तू कहता है, केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानता है। ऐसा करके तू प्रश्न करता है। तो यदि केवलज्ञान माने कि एक समय में ज्ञान की दशा तीन काल-तीन लोक को जानती है, तो उसका पुरुषार्थ अपने सर्वज्ञस्वभाव के ऊपर ढले बिना नहीं रहता। क्योंकि मोक्ष और केवलज्ञान की प्रतीति निमित्त के लक्ष्य से नहीं होती, राग के लक्ष्य से नहीं होती, अल्पज्ञ में अल्पज्ञ के लक्ष्य से नहीं होती। अल्पज्ञ में सर्वज्ञस्वभाव इसका अन्दर में है, उसके लक्ष्य से होती है। बात सूक्ष्म है। समझ में आया ? इसके हाथ पता लगे बिना केवलज्ञान देखता है, वैसा होता है - ऐसा अध्धर प्रश्न करे, तुझे केवलज्ञान उड़ाना है।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि हम मानते हैं कि एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान होता है और वह तीन काल-तीन लोक को जानता है। गोकुलभाई ! समझ में आया इसमें कुछ ? आहाहा ! गोकलभाई एक थे न अपने ? गोकलभाई को ? कौन ? वह राजकोट का नहीं ? गोकलदास गाँधी। उसने (संवत्) १९८९ में प्रश्न किया था। १९८९ का चातुर्मास था न बाहर कोठारी के नाके। उसने प्रश्न किया। केवलज्ञान मानते हैं, यह पहली बात कर, फिर दूसरी बात। आत्मा में केवलज्ञान की शक्ति है, वह प्रगट हो सकती है और प्रगट हुई दशा तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा मानते हो ? यह माने उसे भगवान के प्रति भक्ति आयी, उसे आत्मा के स्वभाव पर दृष्टि हो गयी। आहाहा ! अरे ! उसे भक्ति कैसे ? समझ में आया ? जयन्तीभाई ! समझ में आया या नहीं इसमें कुछ ? बात भारी सूक्ष्म। बापू ! तेरा पन्थ ऐसा कोई अलग और अलौकिक है। इसने कभी सुना नहीं, हों ! ऐसा का ऐसा मर गया कर करके, परन्तु अवतार टालने की बात इसकी समझ में आयी नहीं।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ ! जानता हूँ, प्रभु ! एक ओर कहना सर्वज्ञ तथा एक ओर कहना कि वे जानते हैं तत्प्रमाण नहीं होता। दोनों बातों में सुमेल नहीं। अथवा एक ओर

कहना सर्वज्ञ, दूसरी ओर कहना कि गत काल में इन परमेश्वर ने यह बनाया। तो त्रिकाल ज्ञान रहा नहीं। त्रिकाल ज्ञान नहीं रहा। वर्तमान और भविष्य का ज्ञान रहा, भूत का नहीं रहा। तो उसने सर्वज्ञ है ऐसा नहीं माना। यदि परमेश्वर सर्वज्ञ है तो एक समय में भूत में था, वर्तमान है और भविष्य में है, इसका सब ज्ञान वर्तता है। कभी इसने किया है, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया? बातें बहुत तत्त्व के अन्तर के घर की है। सर्वज्ञ! आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ! परमेश्वर सर्वज्ञ। सर्व अर्थात् त्रिकाल भूत, वर्तमान और भविष्य सब जानते हैं। इसलिए दूसरी चीज़ें भी हैं और सब चीज़ों को एक समय में जाननेवाला ऐसा ज्ञान है। वजुभाई! समझ में आया इसमें? ऐसे सर्वज्ञ को कहते हैं, हे नाथ! उन्हें कहाँ सुना था? यह तो केवली है। परन्तु भक्त को भक्ति उछलती है, इसलिए (कहता है), आप तो सर्व लोक का विस्तार-लोकालोक को जानते हो। प्रभु! ऐसे केवलज्ञान की दशा का भक्त हूँ। अर्थात् कि मेरे स्वभाव की दृष्टि और प्रतीति मुझे हुई है। ऐसा सम्यग्दृष्टि हूँ। इसलिए आपके केवलज्ञान की प्रतीति की मुझे खबर है। आपके ज्ञान प्रमाण ही जगत में होता है। ऐसा मैंने जानने से मेरा पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख ढल गया है। वह स्वभाव सन्मुख पूर्ण सन्मुख होगा तो आपके जैसा मैं भी केवलज्ञानी हो जाऊँगा। ऐसा कहकर केवलज्ञानी की इस प्रकार से भक्ति करते हैं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - ११, गुरुवार, दिनांक - ०७-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ५ से ७, प्रवचन-७८४

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति में ऋषभदेव भगवान तीर्थंकर इस चौबीसी में आद्य-पहले हुए, उनकी भक्ति पद्मनन्दि आचार्य जंगल में बसनेवाले मुनि थे, (उन्होंने) भक्ति का स्तवन बनाया है। क्यों? कि सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान जानने का प्रगट हुआ, ऐसे भगवान की भक्ति धर्मी को होती है। वास्तव में धर्मी को होती है। यह बात चौथी गाथा में कहकर...

चौथी में ऐसा कहा कि हे परमात्मा! आपका ज्ञान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त सर्व पदार्थ के विस्तार से रहा हुआ लोकालोक, उसका विषय करनेवाला ज्ञान है। क्या कहा, समझ में आया? एक समय का भगवान का ज्ञान तीन काल-तीन लोक के भूत, वर्तमान और भविष्य, सब पदार्थ को जानने की ताकतवाला ऐसा सामर्थ्य है, ऐसा जो परमात्मा के ज्ञान को अन्तर से पहिचानता है, वह वास्तव में परमात्मा की भक्ति और स्तुति करने के योग्य है। समझ में आया? एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में, अहो..! आत्मा के अन्तर के ज्ञान और आनन्द के अन्तर्मुख दृष्टि और अवलम्बन द्वारा जहाँ पूर्ण कैवल्य परमात्मत्योति चैतन्य जलहल ज्योति जगी, ऐसी पूर्णानन्द के साथ केवलज्ञान, वह ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा जिसे प्रतीति में आया है।

नव तत्त्व की श्रद्धा है या नहीं? उसमें मोक्षतत्त्व आता है न? मोक्षतत्त्व कहो या केवलज्ञान कहो या परमात्मा अरिहन्त अथवा सिद्ध कहो, जिसे मोक्षतत्त्व को अर्थात् अरिहन्त और सिद्ध की इस प्रकार से जिसे प्रतीति होती है अथवा जिसके ज्ञान की व्यक्त शक्ति तीन काल-तीन लोक हस्तामल की भाँति जाने, ऐसा जिसे ज्ञान का सामर्थ्य है, ऐसी जिसे प्रतीति हो, उसे मैं एक ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, वह जैसे ज्ञाता-दृष्टा तीन काल-तीन लोक का है, मैं भी वर्तमान में मेरे विकास हुए ज्ञान में मैं भी एक ज्ञाता और दृष्टा ही हूँ। भले अल्पज्ञान है परन्तु मेरा स्वभाव जैसे सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को जानते हैं, वैसा मेरा स्वभाव भी अन्तर ज्ञान में तीन काल-तीन लोक को जानने की ताकत है। ऐसी जिसने अन्तर में प्रतीति और श्रद्धा, अनुभव किया है, उसे वर्तमान में ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हुआ

होता है। केवली को राग होता नहीं, पूर्ण ज्ञान है। धर्मी सम्यग्दृष्टि को ज्ञाता-दृष्टापना भान में प्रगट होने पर भी उसे राग होता है। उस राग द्वारा भक्ति करता है, यह बात यहाँ चलती है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि धर्मी को भगवान के प्रति प्रमोद, भक्ति, उल्लास वीर्य उछलता है। एक बार समन्तभद्राचार्य भगवान चौबीस तीर्थंकर की स्तुति करके स्वयंभू स्तोत्र बनाया है। उसमें एक श्लोक ऐसा रखा है कि प्रभु! हे परमेश्वर परमात्मा! आपको सर्वज्ञपना है, यह मैंने निश्चित किया है। किस प्रकार? कि जगत के अनन्त पदार्थ हैं, उन पदार्थ के एक समय के अन्दर... एक समय, समझ में आया? छोटे में छोटा काल का सूक्ष्म भाग। जिसके काल के दो भाग नहीं हो सकते। ऐसे एक समय में, हे प्रभु! इस जगत के अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु इत्यादि छह वस्तु है—छह जाति, संख्या अनन्त, उन प्रत्येक के काल—छोटे में छोटा एक सूक्ष्म अंश, उसमें प्रत्येक द्रव्य में तीन अंश होते हैं। एक समय में। अर्थात्?

प्रत्येक पदार्थ एक समय में नयी अवस्था से उपजता है, पूर्व की अवस्था से व्यय अर्थात् अभाव होता है और अपनी ध्रुवता से टिका रहता है। ऐसा एक समय में तीन अंश, समय एक और अंश तीन, ऐसा हे नाथ! आपने जाना; इसलिए मैं निर्णय करता हूँ कि आप सर्वज्ञ हो। समझ में आया इसमें? आहाहा! इसका ही अभी पूरा विवाद है। एक समय में तीन अंश। समय के भाग नहीं पड़ते परन्तु अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में...

आनन्दघनजी कहते हैं, इसमें अपने राजमलजी की टीका में भी यह आता है कि एक समय में... देखो! भक्ति करनेवाले कैसे होते हैं, इसकी भी यहाँ जवाबदारी है। सर्वज्ञ को पहिचाननेवाले, परमेश्वर को पहिचाननेवाले, उन परमेश्वर को ज्ञान में लेकर बैठनेवाले, ज्ञान में रखनेवाले, उनकी ताकत कैसी और वह भक्ति और स्तुति करे, उसे व्यवहार भक्ति सच्ची कहने में आता है। आनन्दघनजी कहते हैं,

स्थिरता एक समय में ठाणे, उपजे विणसे तबही

प्रत्येक वस्तु—प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु—पॉइंट, यह तो ... नहीं, इसका

टुकड़ा करे तो अन्तिम एक टुकड़ा रहे, उसे परमाणु कहते हैं। उस एक-एक परमाणु में और एक-एक आत्मा में...

स्थिरता एक समय में ठाणे, उपजे विणसे तबही
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कभी
अवधु नटनागर की बाजी, क्या जाने बामण काजी।
अवधु क्या जाने बामण काजी, अवधु नटनागर की बाजी।

चौदह ब्रह्माण्ड का नागरिक आत्मा नट खेलनेवाला चौदह ब्रह्माण्ड में, उसके एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन अंश वर्तते हैं। यह तो बात! अनन्त गुण जितने एक आत्मा में हैं, उतने गुण एक परमाणु में हैं। ऐसे नहीं परन्तु इतने। इतने ही गुण एक धर्मास्ति नाम का एक अरूपी पदार्थ है, उसमें है। इतने ही आकाश में, इतने ही अधर्मास्ति में, इतने एक काल में-एक अणु में हैं। वे अनन्त गुण उनकी एक समय में पर्याय—नयी अवस्था होती है। एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, उसमें अनन्त गुण की अवस्था-पर्याय-हालत-नयी होती है, पुरानी जाती है, जाति टिकी रहती है। अर्थात् शास्त्रभाषा में कहें तो उत्पादव्ययधुव्रयुक्तं सत्। तत्त्वार्थसूत्र में (सूत्र है)।

प्रत्येक तत्त्व नयी अवस्था से उपजता है, पुरानी अवस्था से नाश होता है, जाति को टिकाकर ध्रुव रहता है। पर के कारण से नहीं। समझ में आया? ऐसा जिसे समय एक में और पदार्थ में तीन अंश। भगवान एक समय का छोटा भाग, उसमें तीन अंश आपने जाने, वह सर्वज्ञ का लक्षण सिवाय, सर्वज्ञ के अतिरिक्त जान नहीं सकता। समझ में आया इसमें? जेठाभाई! बहुत सूक्ष्म बातें। समय के भाग नहीं हुए। समय के भाग हुए नहीं और द्रव्य के तीन भाग एक समय में जाने। ऐसा काल का सामर्थ्य भगवान के ज्ञान का है, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। समय के भाग नहीं हुए।

भाई! यह तो आत्मा के अन्तर की सृष्टि की उत्पत्ति, ऐसे रजकण की सृष्टि अर्थात् नयी-नयी अवस्था की उत्पत्ति अनन्त गुण की एक समय में अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में होती है। है... है... है, उसका वर्णन है। यह अनन्त गुण अपने कारण से नयी अवस्था में उपजते हैं, अपने कारण से पुरानी अवस्था से व्यय अर्थात् अभाव होते हैं और ध्रुवरूप रहते हैं। जैसे सोना, सोना सोनेरूप रहता है और कुण्डल का व्यय होकर कड़े की

उत्पत्ति होती है। कड़ा उपजे कड़े की अवस्थारूप। कुण्डल की अवस्था से व्यय होता है और सोनेरूप टिका रहता है। यह एक समय। जिसके तीन भाग नहीं परन्तु वस्तु में तीन भाग हैं, ऐसे एक समय में आपने जाने। यह सर्वज्ञ के ज्ञान बिना यह जाना नहीं जा सकता। ऐसे अरिहन्त... अरिहन्त णमो अरिहन्ताणं करता है परन्तु अरिहन्त का क्या स्वरूप है, यह जाने बिना क्या अरिहन्त? ऐ... मनसुखभाई! णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं... पहाड़े बोल जाता है। परन्तु इसका अर्थ क्या?

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में हे नाथ! समय का भाग नहीं और वस्तु के तीन भाग एक समय में जाने, वह सर्वज्ञपद साबित करता है। ऐसे सर्वज्ञ की मैं स्तुति करने खड़ा हुआ हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक (जाने), पहले चौथी गाथा में आ गया, चौथी गाथा में आ गया कल। आया था या नहीं कल? '**विसईकयसयलवत्थुवित्थारं।**' तीन काल-तीन लोक के जगत में भूत, भविष्य और वर्तमान ऐसी दशा, हे नाथ! आपके ज्ञान में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञात हुए। ऐसे ज्ञान के सामर्थ्य की हमारी प्रतीतिपूर्वक में, मुझे पूर्ण परमात्मदशा नहीं है; इसलिए परमात्मा की भक्ति और स्तुति करने का राग मुझे आया है। यह बात वहाँ चौथे में कही।

अब कहते हैं कि हमको यह राग आया है, वह राग आया, उसका फल कितना? यह पाँचवीं गाथा में कहते हैं, देखो!

गाथा ५

अब, इस श्लोक में नामनिक्षेप लेकर स्तुतिकार कहते हैं-

अम्हारिसाण तुह गोत्तकित्तणेण वि जिणेस संचरइ।
आएसं मग्गंती पुरओ हियइच्छिया लच्छी।।५।।

अर्थ :- हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपके नाम के कीर्तनमात्र से ही हम सरीखे मनुष्यों के आगे आज्ञा को माँगती हुई मनोवांछित लक्ष्मी गमन करती है।

भावार्थ – हे जिनेन्द्र! आपके नाम में ही इतनी शक्ति है कि आपके नाम के कीर्तनमात्र से ही हम सरीखे मनुष्यों के सामने हमारी आज्ञा को माँगती हुई लक्ष्मी दौड़ती फिरती है। तब जो मनुष्य साक्षात् आपको प्राप्त कर लेगा तो फिर उसकी बात ही क्या है? अर्थात् उसको तो अवश्य ही अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।

गाथा - ५ पर प्रवचन

अम्हारिसाण तुह गोत्तकित्तणेण वि जिणेस संचरइ।
आएसं मग्गंती पुरओ हियइच्छिया लच्छी।।५।।

हे नाथ! हे परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ! **आपके नामरूपी कीर्तन मात्र से ही...** लो। गुण का तो भान है, ऐसा पहले कहा। अब आपका नाम, जिसके पूर्णानन्द और ज्ञान की दशा पूर्ण पवित्र हुई है अथवा धर्मात्मा की भी जिसकी पवित्र दशा हुई है, ऐसे परमात्मा के नाम, स्थापना और द्रव्य भी पूजनीक कहने में आते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसकी पवित्र निर्मल निर्दोष दशा अखण्डानन्द की पूर्ण हुई, ऐसे भाववाले भगवान का नाम कीर्तन भी पूजनीक है। उनकी स्थापना भी पूजनीक है और उनका द्रव्य भी पूजनीक है और उनका भाव तो पूजनीक होता ही है। यह वर्णन करते हैं।

हे नाथ! आपका नाम कीर्तन '**कित्तणेण**' शब्द है। नाम—परमात्मा ऋषभदेव—यह नाम लेने से आपके गुणों का मुझे अन्दर स्मरण आता है। नाम लेने से आपके गुण मुझे याद आते हैं। इस नाम की शक्ति में, भाव में इतनी कीमत है कि जिसका हमें पुण्य बँधेगा, '**जिणेस संचरइ, आएसं मग्गंती**' प्रभु! भविष्य में लक्ष्मी के ढेर हमारी आज्ञा माँगेगे। क्या चाहिए? कितना चाहिए? कहाँ चाहिए? लक्ष्मी के ढ़ेर हमारे पास आकर (पड़ेंगे)। आपकी स्वरूप लक्ष्मी की भक्ति और वह हमारे भान में हम हैं कि हम ज्ञाता-दृष्टा अपूर्ण हैं, आप ज्ञाता-दृष्टा पूर्ण हो। इसलिए पूर्णानन्द के भान की भूमिका में आपका नाम कीर्तन, नाम परन्तु भानसहित की बात है, हों! नाम कीर्तन मात्र से '**जिणेस संचरइ**'। **हम सरीखे मनुष्यों के सामने आज्ञा को माँगती हुई, मनोवांछित लक्ष्मी गमन करती है।** क्या कहते हैं?

हमारा आत्मा प्रभु! पूर्णानन्द आत्मा ज्ञान की प्रतीति हमें हमारे भान द्वारा हुई है। अब हम आपके कीर्तन करते-करते भगवान परमात्मा ऐसे अनन्त गुण के कीर्तन नाम से करते हुए, ऐसे गुण के कीर्तन से हमें पुण्य बँधेगा कि भविष्य में हम ऐसे स्थान में अवतरित होंगे, ऐसा कहते आते हैं। स्वर्ग में जायेंगे तो सामने लक्ष्मी और इज्जत कीर्ति सामने पड़ेगी। वहाँ से मनुष्य होऊँगा तो वहाँ भी हमारा पुण्य इतना होगा, यह आपकी भक्ति का फल है प्रभु। समझ में आया? यह जलसा-बलसा करके पैसा माँगते हैं और करते हैं या नहीं अभी? देखो न! हमारा नाम रखने के लिये, इज्जत रखने के लिये जबरदस्ती खड़े करे। यह कहीं वास्तविक पुण्य नहीं है।

यहाँ तो सत् स्वभाव के भान की दृष्टि में, सत् स्वभाव के पूर्ण परमात्मा की भक्ति का विकल्प उठा है, उस सत् की भूमिका में पुण्य सत् बँधता है। पुण्य सत्! ले और यह क्या? नवनीतभाई! भाई! पुण्य सत् कहा है न? श्रीमद ने। वह सत् पुण्य है। पुण्य तो पुण्य है, परन्तु आत्मा पूर्णानन्द केवलदशा परमेश्वर की... ओहोहो! जिसके एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो ज्ञान की सामर्थ्य शक्ति तीन काल-तीन लोक को अन्तर के ज्ञान को जानने से ज्ञात हो जाती है। ज्ञान को जानने से ज्ञात हो जाती है। ऐसी एक ज्ञानगुण की एक दशा, हे परमात्मा! उसके तुम्हारे नाम कीर्तन मात्र से भी; हमारी दृष्टि में स्वरूप सम्पदा है, उसकी तो प्राप्ति क्रम-क्रम से बढ़ती जाती है, परन्तु ऐसे भक्ति के विकल्प जो शुभराग हमको उठा है, भविष्य में जहाँ जन्मूँगा, (वहाँ लक्ष्मी आज्ञा) माँगती आयेगी। हम जहाँ जन्मेंगे ,वहाँ पत्थर की खान नीलमणि हो जायेगी और समुद्र के किनारे कहीं जन्मूँगा तो वहाँ की मछलियाँ करोड़ों सच्चे मोती पके, ऐसी मछलियाँ पकेंगी। दुनिया कहती आयेगी कि ओहो! यह कोई पुण्यवन्त प्राणी पूर्व में कोई आत्मा के भान की भूमिका में इस पुण्य लेकर आया है, जिसने परमात्मा की महाभक्ति और स्तवन तथा पूजा की है। देखो! इसका फल। दुनिया पूज्यरूप से उसे स्वीकार कर लक्ष्मी आज्ञा माँगेगी, कहते हैं। जेठालालभाई! यह तो फल बताते हैं, हों! इच्छा नहीं कराते। यहाँ कहते हैं... इच्छा नहीं, इसका पुण्य ऐसा अलौकिक पुण्य है।

सत् भगवान ज्ञान और आनन्द (स्वरूप हूँ)। प्रभु! मैं ज्ञान और आनन्द में पूर्ण नहीं। यह पूर्ण परमात्मा के वीर्य के उल्लास से भक्ति और स्तवन करता हूँ, प्रभु!

आपके नाममात्र से भी हमारे शुभभाव में ऐसा पुण्य बँधेगा (कि) भविष्य में जहाँ जाऊँगा, वहाँ या चक्रवर्ती पद या तीर्थंकरपद, इन्द्रपद, ऐसे पद में हम वहाँ अवतरित होंगे। समझ में आया ?

इस पाप के उदय की बात नहीं आती ? वह एक बनिया था न ? वह हमेशा ज्वार खाता था। ज्वार का रोटियाँ। गरीब व्यक्ति, इसलिए हमेशा ज्वार की रोटियाँ खाता था। फिर एक बार विचार आया कि लाओ न, अच्छे घर में लड़की के यहाँ जाऊँ, चूरमा तो मिले। लड़की के घर में जाऊँ। लड़की घर अच्छा, अच्छे ठिकाने विवाहित। लाओ न, वहाँ जाऊँ। यह ज्वार खता हूँ, वहाँ लापसी तो मिलेगी। वहाँ दो-चार वर्ष में गया। और वहाँ उसे वहाँ उसके खेत में अच्छी ज्वार पकी, इसलिए उसे भी घर में विचार हुआ कि ज्वार की रोटियाँ ही बनायें। वह जहाँ खाने बैठा, वहाँ ज्वार की रोटियाँ आयीं। जय माता! मेरी महोर पहुँच गयी। घर में था, वह आया। वह मानो कि लड़की का अच्छा घर है, पैसेवाले हैं तो लापसी (मिलेगी)। उसे घर में सवेरे से ऐसा ही विचार निश्चित किया था कि यह ज्वार ताजा उत्कृष्ट बढ़िया, ताजा उत्कृष्ट बढ़िया सफेद (हुई है), इसलिए आज ज्वार की रोटियाँ बनाना। वह मानो कि थाली में आज तो लापसी आयेगी। जहाँ रोटियाँ आयीं, ... जय माता! सामने पहुँचे। यह पाप के कारण जो वस्तु सामने गयी...

यहाँ कहते हैं कि हमारे पुण्य और आपकी भक्ति के कारण जहाँ जाऊँगा, वहाँ लक्ष्मी सामने पड़ेगी। पहले को दरिद्रता सामने आयी। हमारे सामने वहाँ जाकर या छह खण्ड के राज्य में होऊँगा या तीर्थंकर होने का, या पहले देव में इन्द्र होने का। ऐसी पुण्य की सामग्री हमारी आज्ञा माँगती आयेगी। क्या चाहिए ? कितना चाहिए ? क्यों चाहिए ? ... ऐ... मनसुखभाई!

देखो! सौ कलथी अनाज हो, उसके साथ सौ गाड़ी घास होती है। उसी प्रकार परमात्मा आपकी श्रद्धा और ज्ञान की भक्ति हमें अन्दर की प्रगट हुई है, उसमें आपके नाम कीर्तन के फल में भी ऐसी घास और डंठल पकेंगे, हों! सब पुण्य डंठल। अनाज नहीं। अनाज तो अन्दर में आत्मा राग और पुण्य-पापरहित है, ऐसी अन्तर की दृष्टि और श्रद्धा का भान हुआ है। वह डंठल, वह कणहला है। यह दाना। परन्तु आपकी भक्ति के राग में इतना पुण्य बँधेगा, जहाँ जाऊँगा, वहाँ लक्ष्मी, लक्ष्मी और लक्ष्मी। अरबों के ढ़ेर। कितना

कहाँ डालना, कैसे प्रयोग करूँ, इसका उसे विचार करना मुश्किल हो पड़ेगा।

भरत चक्रवर्ती जैसे जहाँ जन्मे, राज में पुण्य के ढ़ेर। उनका एक पुत्र था। कीर्तिकुमार... कैसा कहलाये ? कीर्ति न ? अर्ककीर्ति। भूल जाए नाम में। अर्ककीर्ति पहला पुत्र। भरत चक्रवर्ती को तो महा पवित्रता का भान तो था परन्तु पूर्व के महा पुण्य को लेकर अवतरित हुए थे। सोलह हजार देव तो जिनकी सेवा करे। ऐसे चक्रवर्ती का एक पुत्र हुआ, वह पुत्र भी चरमशरीरी। इस भव में मोक्ष जानेवाला। भरत चक्रवर्ती भी उस भव में मोक्ष जानेवाले। उनके कुटुम्ब में उस भव में मोक्ष जानेवाले हजारों। वह राजकुमार अर्ककीर्ति था। उसे भरत ने कहा, बेटा! तू यह हमारी जहाँ सभा भरती है न ? क्या कहलाती है वह सभा ? राजकीय सभा, दीवान सभा। यह कचहरी, इस कचहरी में बैठा बेटा! दो घड़ी आ, हों! तो दो घड़ी के तुझे दो करोड़ दूँगा। हमारी कचहरी में तेरी शोभा। देखो! यह उसके पुण्य। भरत के तो पुण्य, परन्तु अभी तो लड़का आया है, (उसका भी इतना पुण्य)। पुत्र! जहाँ राज्यसभा भरती है, वहाँ दो घड़ी तू आकर सिंहासन में बैठ तो भी हमारे राज्य की और हमारे कुल की, ऐसे एक पुण्यवन्त कुलदीपक हुए हैं, जिनके शरीर की ललाट सूर्य जैसा, जिसकी गम्भीरता का पार नहीं, जिसे इस काल में इस देह से देह छूटकर केवलज्ञान पाकर मुक्त होनेवाला है, ऐसे तो उसका पिता कहता है, बेटा! यहाँ दो घड़ी आना, हों! दो घड़ी के दो करोड़। संग्रह कर पड़े हैं। कहाँ डालना ? अन्त में कहा, अरे! पिताजी! ऐसा सब किया परन्तु पिताजी तो अन्त में संसार छोड़कर चले गये। वे संसार छोड़कर चले गये तो हमें क्या करना ? हमें वह लक्ष्मी-बक्ष्मी चाहिए नहीं। सामने आकर पड़ी है। वह नहीं, वह नहीं। हमारी स्वरूप लक्ष्मी साधने के लिये हमारे पिताजी निकले, हम भी निकल जायेंगे। वह व्यवस्था करने नहीं रुके। यह पैसे इतने मिले, इसका क्या करना ? लाओ, दान में दे देवें। ऐ... मनसुखभाई! भाई! यहाँ जिसे आत्मा और आत्मा के भान की महत्ता आयी, वहाँ लक्ष्मी की क्या कीमत और क्या उसकी तुच्छता, उसकी गिनती क्या ?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! ओहो! चैतन्य मंगलस्वरूप और पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान की मूर्ति प्रभु हमारी नजर में तैरता है। लड़के के प्रति बहुत प्रेम होता है न ? तो नहीं (कहते) ? बापू! तू मेरी नजर में तैरता है। ऐसा कहते हैं या नहीं ? इसी प्रकार धर्मी को तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा नजर में तैरते हैं। आहाहा! यह परमेश्वर! यह परमेश्वर! ऐसे भक्ति

के विकल्प से जहाँ हम जन्मेंगे, वहाँ हमारी आज्ञा माँगती लक्ष्मी सामने आकर पड़ेगी। शिवलालभाई! ऐसा करना, ऐसा करना लक्ष्मी के लिये। यह पाँचवें श्लोक में कहा।

दान में भी ऐसा एक आता है, ऐसी गाथा। पृष्ठ-११८। दान की १६वीं गाथा है, भाई! दान की गाथा १६वीं। क्या आता है? कि जो कोई पवित्र आत्मा सन्त, समकिती, ज्ञानी सत् समागम में आये हुए और स्वरूप को प्राप्त हुए, अखण्डानन्द चैतन्य गोला जिन्हें राग और शरीर से भिन्न पड़ा है... सोलहवीं गाथा है, भाई! दान की १६वीं। यहाँ परमात्मा की बात की। यहाँ कहते हैं कि '**नामापि यः स्मरति मोक्षपथस्य साधो-राशु**' जो सन्त... सन्त अर्थात् आत्मज्ञानी सन्त कहलाते हैं, हों! 'आत्मज्ञानी श्रमण कहावे, दूसरे तो द्रव्यलिंगी।'

आत्मज्ञानी श्रमण कहावे, दूसरे तो द्रव्यलिंगी,
वस्तुगते जो वस्तु प्रकाशे, आनन्दघन मत संगी।

'वस्तुगते जो वस्तु...' सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा और गुण और दशा का वर्णन किया है और जैसा उनका वास्तविक स्वरूप है, ऐसे वस्तुगते जो वस्तु प्रकाशे, वह आनन्दघन के—आत्मा के आनन्दघन का संगी और परिचयवाला है। ऐसा जिसे, कहते हैं, आत्मज्ञान में रमनेवाले सन्त होते हैं, भले अल्पज्ञ प्राणी छद्मस्थ है, सम्यग्दृष्टि हो परन्तु '**नामापि यः स्मरति**' है न भाई उसमें? '**मोक्षपथस्य साधो**'। **मोक्षार्थी साधु का...** यह साधु, हों! बापू! यह व्याख्या बहुत कठिन है। आनन्दस्वरूप को साधे वह साधु। राग को और विकल्प को साधे, वह साधु नहीं। आहाहा! अरे! एक-एक पद की व्याख्या समझे बिना ऐसे का ऐसा माने, उसे सच्ची मान्यता नहीं कही जाती।

कहते हैं, '**मोक्षपथस्य साधो-क्षयं व्रजति तद्दुरितं समस्तम्**' ऐसे परमात्मा के भक्त, ज्ञानी, सन्तों के नाम स्मरणसे भी '**दुरितं समस्तम् व्रजति क्षयं**'। उसके पाप क्षय-नाश हो जाते हैं। समझ में आया? परमात्मा में तो क्या परन्तु आनन्द और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति को प्राप्त, ऐसे सन्तों के '**नामापि**' शब्द है। नाम, स्थापना, द्रव्य सब उसमें लेना। ऐसे साधु का जो नामस्मरण करे धर्मात्मा वास्तविक पहिचान के भानसहित, वह '**क्षयं व्रजति**' उसके '**दुरितं**' '**दुरितं**'

अर्थात् पाप, क्षय को प्राप्त होते हैं। उसे ऐसा विकल्प आवे, पुण्य बँधे और पाप का नाश होता है। क्या कहा?

भगवान का स्मरण या सन्त सच्चे मुनि, धर्मात्मा समकिती का स्मरण, उसे शुभराग से पुण्य बँधता है और पूर्व के पाप का क्षय अर्थात् नाश होता है। दोनों एक साथ होते हैं। और दृष्टि होती है आत्मा और ज्ञानानन्द पर। ऐसे जीव के भगवान के अथवा सन्तों के स्मरण से भी पाप का नाश होता है। तो फिर... इससे अधिक लिया है, जिनके नाम स्मरण से ही जिसे महापाप का नाश हो, तो '**यो भक्त-भेषज-मठादि-कृतोपकारः**' परन्तु सन्त धर्मात्मा ज्ञानी को भोजन, उन्हें औषधि, उन्हें मकान आदि देकर **मुनियों का...** धर्मात्मा का **उपकार करते हैं, वह संसार से पार हो जाता है,...** समझ में आया? आवे, धर्मात्मा का स्मरण आता है, धर्मात्मा की याद आती है, धर्मात्मा के प्रति विनय, बहुमान बहुत विनय उठता है। अज्ञानी को धर्मात्मा के प्रति अनादर आता है।

श्रेणिक राजा थे। वे मुनि को देखकर... महामुनि सन्त आत्मज्ञानी ध्यानी आत्मा के आनन्द में मस्त! मरा हुआ सर्प डाला। मरा हुआ सर्प! लाखों चींटियाँ हों। तत्त्वज्ञान की दृष्टि खबर नहीं थी। अज्ञानी थे। परन्तु उनकी चेलना रानी समकिती थी। उनकी रानी समकिती थी। वह उन्हें धर्म प्राप्त कराने का प्रयत्न करती थी। उन श्रेणिक राजा ने कहा, अब तेरे मुनि देखे, मैं सर्प डाल आया, वह उन्होंने निकाल डाला होगा। रानी कहती है, अन्नदाता! स्वामी! नाथ! हमारे सन्त आत्मज्ञानी ध्यानी होते हैं। आत्मा के आनन्द की मस्ती में होते हैं। उन्होंने शरीर में डाला हुआ सर्प नहीं निकाला होगा। चलो देखने चलें। रानी और राजा दोनों जाते हैं। मुनि अतीन्द्रिय आनन्द के मस्ती के सुधारस पीते हैं। क्या कहते हैं? अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का अन्दर कुण्ड भगवान पड़ा है, उसके सुधारस की धारा पीते हैं, निर्विकल्परस पीते हैं। और यह क्या होगा?

भगवान! इस पुण्य और पाप के रागरहित आत्मा पूर्णानन्द की मूर्ति, उसकी प्रतीति और अनुभव करे, उसे अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन और पेय वह पीता है। यह चाय और दूध पीते हैं न? धर्मात्मा सुधारस के पेय पीते हैं। आहाहा! सुधा अर्थात् अमृत। भगवान अन्तर अमृतसागर है, उसमें डुबकी मारकर आत्मा का सुधा-अमृत का अतीन्द्रिय का स्वाद लेते हैं। उस स्वाद को सुधारस का पान कहा जाता है। आहाहा! ऐसी गर्मी में

बीड़ी पीते होंगे या नहीं ? अथवा वह क्या कहलाता है ? चाय... चाय। ऐसी गर्मी में अन्दर शीतल आत्मा की शीतलता अनुभव मुनि करते हैं। आहाहा!

इस पर्वत के शिला पर बैठे हों या सर्दी में जहाँ हिमालय-हिम गिरता हो और जहाँ वर्षा में पानी के प्रपात पड़ते हों, देह का लक्ष्य छोड़कर, वाणी का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर, आत्मा के आनन्द में मस्त होते हैं। रानी कहते हैं, स्वामी नाथ! हमारे मुनि आनन्द के रस में स्थित होते हैं। उन्होंने शरीर में डाला हुआ (सर्प) निकाल डालना नहीं चलता। ऐसा विकल्प उन्हें नहीं होता। चलो देखने चलें। देखने जाते हैं, वहाँ मुनि ध्यान में आनन्द में (होते हैं)। दु:ख-बुख नहीं, हों! यह चींटियाँ काटे, उसका दु:ख ज्ञानी को नहीं होता। उन्हें तो अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में हिलोरे खाता आत्मा होता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के झरने में से उस अतीन्द्रिय आनन्द की हिलोरों में अन्दर में चढ़ा होता है। ऐसे जहाँ देखे वहाँ चींटियाँ करोड़ों। सूक्ष्म छिद्र पड़े। प्रभु! अन्नदाता! देखो! यह सर्प निकाला नहीं, हों! इन्हें चींटियाँ बहुत हो गयी है, शरीर जीर्ण हुआ है। आनन्द की मस्ती में हैं, भले सर्वज्ञ नहीं हैं, परन्तु इनकी आनन्द की भूमिका के प्रमाण में आनन्द में मस्त हैं। वीतरागी दशा में लीन हैं। आहा! श्रेणिक राजा को (लगता है), आहा! ऐसी दशा! बाहर की नहीं, हों! उस अन्तर की दशा के महिमा के गीत गाये। प्रभु! कुछ उपदेश करो, हों! वह वहाँ उन्होंने उपदेश किया और यहाँ समकित प्राप्त हुए हैं।

जिसने असातना की थी, नरक के आयुष्य में गये, सातवें नरक के। सातवें नरक के! नीचे सात नरक हैं, हों! सब कहीं सिद्ध करने जायें... कल्पना नहीं है, हों! सात नरक हैं। महापाप के करनेवाले को वहाँ दु:ख भोगने का स्थान है। सातवें नरक में ३३ सागर का बड़ा आयुष्य है, वहाँ उसने आयुष्य बाँधा। परन्तु राजा आत्मज्ञान को प्राप्त हुआ। ओहोहो! यह मुनि कहते हैं कि आत्मा तो आनन्द है, विकाररहित चीज़ का भान किया। सातवें नरक का आयुष्य था, ३३ सागरोपम का, (वह) छूट गया। चौरासी हजार वर्ष का रह गया। मात्र चौरासी हजार वर्ष का रहा। इससे इस चौरासी हजार वर्ष की योग्यता में अभी पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में नरक में नारकी है, तथापि अन्तर के सम्यग्दर्शन के कारण आनन्द का वेदन वे वहाँ निरन्तर करते हैं। आहाहा! और वह स्थिति जहाँ पूरी होगी, तब आगामी चौबीसी में पहले जगतगुरु, पहले जगतगुरु तीर्थंकर त्रिलोकनाथ

होनेवाले हैं। उन्हें बाह्य त्याग नहीं था, तप नहीं था, चारित्र नहीं था। परन्तु आत्मज्ञान और आत्मदर्शन जिन्होंने प्रगट किया था और उसमें उन्हें फिर शुभविकल्प आया, उसमें तीर्थंकरगोत्र बँध गया।

ऐसा यहाँ कहते हैं, ऐसे मुनियों के नामस्मरण मात्र से भी महा लाभ होता है तो उन्हें औषधदान आदि के भाव करे, उसे तो बड़ा उपकार होगा। यह नाम की बात की है। कहो, समझ में आया? अब पाँच गाथा में परमात्मा के गुण की बात की। स्तुति भक्ति। अब, वे ऋषभदेव भगवान यहाँ इस अवतार में आये, इससे पहले वे सर्वार्थसिद्धि में थे। अब वहाँ से बात उठायी है। पूरा नाटक (कहेंगे)। जैसे भर्तृहरि का नाटक बताना हो तो जिस प्रकार जन्म से पूरा बतलाते हैं, वैसे इन्हें पूर्व के भव से इसमें पूरा बताया है। ऋषभदेव भगवान का चरित्र, उनके चरित्र का वर्णन।

हे नाथ! वे ऋषभ परमात्मा जब इस देह में इस क्षेत्र में जब हुए, उससे पहले एक सर्वार्थसिद्धि देव है, वहाँ थे। सर्वार्थसिद्धि देव है, विमान है। देव की चार जातियाँ हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक। वैमानिक देव में भी एक ऊँचे में ऊँचा चार विजय, विजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि—ऐसे पाँच देव के बड़े विमान हैं। उनमें अन्तिम अच्छे में अच्छा विमान, अन्तिम में अन्तिम स्वर्ग का—सर्वार्थसिद्धि (का है)। वे पूर्व में मुनि थे। ऋषभदेव का जीव पूर्व में मुनि था। आत्मध्यान में मस्त थे। और उसमें उन्होंने तीर्थंकरगोत्र बाँधा था। किन्होंने? ऋषभदेव के जीव ने पूर्व में तीर्थंकर गोत्र बाँधा था। आत्मज्ञान की भूमिका में, हों! आत्मज्ञान बिना कोई तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँध सकता। आत्मा के आनन्द के लहजत में रहते हुए शुभ विकल्प आया कि ओहो! जगत के जीव ऐसा धर्म समझे, ऐसा विकल्प आया। अथवा मैं पूर्ण मोक्ष को प्राप्त करूँ, ऐसे विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँधा हुआ कर। वे वहाँ से सर्वार्थसिद्धि में गये। सर्वार्थसिद्धि विमान अन्तिम हैं। यह तो सब... ... करे, पूर्णता आत्मा की प्राप्त न हो... यह बात कह गये हैं न एक बार, आत्मा की पूर्णता प्राप्त न हो और आत्मा का भान हुआ, कुछ राग बाकी रह गया, वह कहाँ अवतरे? स्वर्ग में जाये। अन्यत्र कहाँ जाये? कहा नहीं था?

(संवत्) १९९२ में एक पण्डित ने प्रश्न किया था। यह तुम क्या कहते हो? शास्त्र में मिलता है कहाँ? क्या है तुझे? शास्त्र में कहते हैं कि ब्रह्मचारी इन्द्राणियों में अवतरित

होते हैं। यह कहाँ मेल खाता है ? क्यों मेल नहीं खाता तुझे ? कहा। एक पण्डित था, हों! उसने पूछा था। १९९२ के वर्ष। २८ वर्ष हुए। यहाँ ब्रह्मचर्य पालन करे, परस्त्री का त्याग, स्वस्त्री का त्याग और वहाँ वापस इन्द्राणी के योग में अवतरित हो। यह तो बिना मेल की बात (हुई)। अरे! भाई! सुन प्रभु! सुन। जो कोई उसने आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया है, आत्मा का अनुभव प्राप्त किया है परन्तु केवल (ज्ञान) हुआ नहीं, उसे अभी राग भक्ति, पूजा, दान, दया का, महाव्रत का राग आये बिना नहीं रहता, होता है। उस राग में कहाँ उसका आयुष्य बँधेगा ? कह। नरक में बँधेगा ? पशु में जायेगा वह ? मनुष्य मरकर मनुष्य समकिती नहीं होता। सम्यक् आत्मज्ञानी हो, वह मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता। आत्मज्ञानी जीव हो, उसे ऐसा पुण्य होता है (कि) वैमानिक का पुरुष देव होता है, स्त्री भी नहीं होता। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में वह अवतरित नहीं होता। मनुष्य में स्त्री में अवतरित नहीं होता। वैमानिक देव में भी पुरुष देवरूप अवतरित होता है। इसके फलरूप से वह वहाँ गया है। दृष्टि में उसका निषेध वर्तता है। यह नहीं रहे नहीं, हों! मेरी आनन्द की पूँजी तो अन्दर भरी है, परन्तु मेरा आनन्द अधूरा रहा, मोक्षदशा प्राप्त करने में मेरा पुरुषार्थ कम रहा, इसलिए इस राग के फलरूप से सर्वार्थसिद्धि गति मिली है। ज्ञानी को उसका अन्तर निषेध वर्तता है। तथापि अब यहाँ क्या कहते हैं ?

ऋषभदेव भगवान को तीसरे भव में अर्थात् इस भव से पहले स्वर्ग सर्वार्थसिद्धि, उसके तीसरे (भव में)। उसमें ये सर्वार्थसिद्धि में गये, यहाँ से तीसरे भव में। इसे लक्ष्य कर बात करते हैं, हे नाथ!

काव्य ६

अब कहते हैं कि हे भगवान आपके बिना अकेले पुण्य की शोभा नहीं है–

जासि सिरी तइ संते तुव अवयणमित्तियेणट्ठा।
संके जणियाणिट्ठा दिट्ठा सव्वट्ठसिद्धावि।।६।।

अर्थ – हे सर्वज्ञ! हे जिनेश! जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि विमान में थे, उस समय जैसी उस विमान की शोभा थी, वह शोभा आपके इस पृथ्वी–तल पर

उतरने के बाद, आपके वियोग से उत्पन्न हुए दु:ख से नष्ट हो गयी–ऐसी मैं (ग्रन्थकार) शंका (अनुमान) करता हूँ।

भावार्थ – हे भगवान! आप में यह एक प्रकार की विशिष्टता विद्यमान है कि जहाँ आप निवास करते हैं, वहीं उत्तम शोभा भी रहती है क्योंकि जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि नाम के विमान में विराजमान थे, उस समय उस विमान की बड़ी भारी शोभा थी, किन्तु जिस समय आप इस पृथ्वी–तल पर उतरकर आये, उस समय उस विमान की भी उतनी शोभा नहीं रही, बल्कि इस पृथ्वी तल की शोभा अधिक बढ़ गयी।

गाथा - ६ पर प्रवचन

जासि सिरी तइ संते तुव अवयणमित्तियेणठ्ठा।
संके जणियाणिठ्ठा दिट्ठा सव्वट्ठसिद्धावि।।६।।

हे परमेश्वर! हे सर्वज्ञ! **जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि विमान में थे, उस समय जैसी उस विमान की शोभा थी, वह शोभा आपके इस पृथ्वी–तल पर उतरने के बाद, आपके वियोग से उत्पन्न हुए दु:ख से नष्ट हो गयी...** क्या कहते हैं? ओहो! परमात्मा की दशा आप भले प्राप्त नहीं हुए थे, परन्तु परमात्मा प्राप्त करने की तैयारीवाला यहाँ आपका अवतार हुआ, इस अवतार के पहले जब सर्वार्थसिद्धि में थे, वह प्रभु आपके कारण उस सर्वार्थसिद्धि की शोभा थी।

दुनिया में नहीं कहते? अच्छा पुरुष हुआ तो (कहते हैं), तुम्हारे कारण यह सब शोभता है। बड़ा व्यक्ति... ऐसा भी होता है। अच्छा व्यक्ति जाये, पश्चात् घर भी ऐसा रूखा लगता है। घर तो वह का वह होता है। क्यों... हीराभाई! कहाँ गये? गाँधी! वे भी कहते, वे रायचन्द गाँधी बहुत इज्जतवाले न, जलाकर आने के पश्चात् दामोदर को ऐसा हो गया कि आहाहा! बड़ा प्रौढ़ व्यक्ति।... हो जाता है कि आहाहा! यह? बापू गये। बापू तो गये वे गये, परन्तु महत्ता की जहाँ महत्ता दिखती थी न? फीकी दिखने लगती है। यह अपनी कल्पना है।

यहाँ एक अलंकार किया है। परमात्मा! आप जब इस भव में आये, तब सर्वार्थसिद्धि की शोभा आप वहाँ थे, तब तक थी, हों! वहाँ से निकलने के पश्चात् शोभा नष्ट हो गयी। अर्थात्? आपके आनन्दमूर्ति के पधारने से वहाँ सर्वार्थसिद्धि की शोभा लगती थी। नहीं तो उस सर्वार्थसिद्धि की वैमानिक देव की शोभा भी हमें नहीं दिखती थी। ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? एक व्यक्ति के लड़के का लड़का मर गया था। पैसेवाले थे। फिर वह महिलायें रोने लगीं। अरे! बापूजी! तुम्हारे जाने के पश्चात् यह मकान हमें श्मशान जैसे लगते हैं, ऐसे रोने लगी। वे कहे, परन्तु यह पहले से कहाँ लगायी? ऐसा नहीं। यहाँ दूसरी बात है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! आप जब आत्मा के आनन्द के साधन में वहाँ थे और सम्यग्दर्शन के-ज्ञान के ध्यान में थे, उसके कारण देव की शोभा हमारे लक्ष्य में आती थी। आप नीचे उतरे (तो) उस विमान की शोभा गयी। समझ में आया? अर्थात् कि पुण्य के फल भी सम्यग्दर्शन की भूमिका में थे, वहाँ रहते, तब हमको अच्छे लगते थे। अब तो यहाँ नीचे उतरे तो वह शोभा हमें अच्छी नहीं लगती। आहाहा! ऐसा कहकर गुण का स्मरण करते हैं, हों! शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द की जो दशा आपको प्रगट हुई है, उसके कारण सर्वार्थसिद्धि की शोभा थी। आप नीचे उतरे तो हे नाथ! **आपके वियोग से उत्पन्न हुए दुःख से नष्ट हो गयी...** वह शोभा अब दिखायी नहीं देती। कहो, समझ में आया? पश्चात् सातवीं गाथा। क्या कहते हैं अब?

अब वहाँ से यहाँ उतरे, इसकी बात करते हैं। अब यहाँ शोभा आयी। सम्यक् चैतन्यसूर्य झलकता जलहल ज्योति अन्दर विराजता है, उसका जहाँ भान होकर अनुभव हुआ, भले पूर्णानन्द की प्राप्ति तो इस देह से होनेवाली है, परन्तु इस ज्ञान से जब प्रभु! पूर्व में से यहाँ आये न, वहाँ की शोभा गयी और यहाँ की शोभा हुई। समझ में आया? दृष्टान्त दिया है, देखो!

गाथा ७

अब, सर्वार्थसिद्धि में से यहाँ भगवान अवतरित हुए, तब इस पृथ्वी का नाम वसुन्धरा पड़ा–ऐसा कहते हैं—

णाहिघरे वसुहारावडणं जं सुइर महितहो अरणी।
आसि णहाहि जिणेसर तेण धरा वसुमयी जाया।।७।।

अर्थ – हे जिनेश्वर! जिस समय आप इस पृथ्वीतल पर उतरे थे, उस समय जो नाभि राजा के घर में बहुत काल तक धन–वर्षा आकाश से हुई थी, उसी से हे प्रभो! यह पृथ्वी वसुमती हुई है।

भावार्थ – पृथ्वी का एक नाम वसुमती है। जो धन को धारण करनेवाली होवे, उसी को वसुमती कहते हैं। इसलिए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि इस पृथ्वी का नाम वसुमती जो पड़ा है, वह भगवान! आपकी कृपा से ही पड़ा है क्योंकि जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि विमान से पृथ्वी–मण्डल पर उतरे थे, उस समय बराबर पन्द्रह मास तक रत्नों की वृष्टि इस पृथ्वी–मण्डल पर नाभि राजा के घर में हुई थी, इसलिए पृथ्वी के समस्त दारिद्रय दूर हो गये, किन्तु इससे पूर्व इसका नाम वसुमती नहीं था।

गाथा - ७ पर प्रवचन

णाहिघरे वसुहारावडणं जं सुइर महितहो अरणी।
आसि णहाहि जिणेसर तेण धरा वसुमयी जाया।।७।।

यहाँ तो ज्ञानी भगवान के जहाँ हो, वहाँ गुण ही देखता है। आहाहा!

हरता फरतां प्रगट प्रभु देखुं, हरता फरतां प्रगट प्रभु देखुं,
मारुं जीववुं सऊल तव लेखुं, मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे...
ओघा जीवनदोरी हमारी रे...

हे नाथ! पूर्णानन्द की प्राप्ति करने आप यहाँ से अवतरित हुए। आपके सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति के गुण, हे नाथ! यहाँ आये, तब देवों ने पन्द्रह महीने तक लक्ष्मी की वृष्टि बरसायी। क्या कहते हैं? केवलज्ञान तो अब होनेवाला है, परन्तु माता के उदर में आने से पहले छह महीने... ऐसा कुदरत का नियम और उनका ऐसा पुण्य है कि तीर्थंकर का आत्मा पवित्र उन्नति क्रम में चढ़ता आता है और जिसे तीर्थंकरपना पुण्य का बाँधा है, वह माता के गर्भ में आने से पहले इन्द्र और इन्द्राणी माता का गर्भ साफ करने आते हैं।

यहाँ भी एक राजा-महाराजा आता हो तो सब साफ करते हैं या नहीं बड़ी नगरी को? यहाँ तो अभी साधारण नेता हैं तो शृंगार-वृंगा और धामधूम, अकेला खर्च और खर्च पूरा। उसमें तो ऐसे भगवान पधारे। भगवान माता के गर्भ में आनेवाले हैं। पूर्ण ज्ञान अभी हुआ नहीं, हों! अभी होनेवाला है, इस अपेक्षा से। इस देह से भगवान को केवलज्ञान होनेवाला है। वह माता के उदर में ऊपर से (स्वर्ग में से) आनेवाले हैं, ऐसी जब देव को खबर पड़ती है, वह माता के उदर में आने से पहले छह महीने तक आकाश में से रत्न की वृष्टि होती है। यह कहते हैं। समझ में आया? **'णहाहि'** शब्द पड़ा है न? दूसरे पद में है। **'आसि णहाहि'। 'णहा'** अर्थात् नभ। दूसरे पद का दूसरा शब्द है - **'णहाहि'।** नभ। हे नाथ! नभ अर्थात् आकाश। देखो! एक पुण्य की... धर्मात्मा को भान में पुण्य बँधे, उसकी स्थिति कैसी, उसका व्यवहार कैसा और उसका फल कैसा, यह बताते हैं। नभ में...

हे प्रभु! आप जहाँ अभी यहाँ अवतरित नहीं हुए, अभी आये नहीं, उससे पहले छह महीने इन्द्र आकाश के रजकण रत्नरूप होकर छह महीने बरसेंगे। आहाहा! देखो! यह पुण्य। पुण्य भी ऐसा। धर्मी का पुण्य भी कोई उज्ज्वल और अलग प्रकार का होता है। लोगों को पवित्रता की तो खबर नहीं होती परन्तु पवित्रता की भूमिका में बँधे हुए पुण्य कैसे होते हैं, इसकी उन्हें खबर नहीं होती। ऐसा बैठना कठिन लगता है। साधारण व्यक्ति, बेचारा राजा साधारण अभी हो गये। वार्षिक बाँध दिया, दस लाख के और पाँच लाख के। रहेंगे तब तक... ऐसे को राजा (कहे)।

यह तो महापुण्य के धनी... ओहो! ऐसे पुण्य लेकर आये, प्रभु! आप जब सर्वार्थसिद्धि में से नीचे आये, **पृथ्वी तल पर उतरे थे, उस समय नाभिराजा के घर में...** पिता के

घर में। **बहुत काल तक आकाश से धनवर्षा...** पन्द्रह महीने। पहले छह महीने और माता के उदर में सवा नौ महीने रहे, तब तक आकाश के रजकण रत्न होकर बरसे। इन्द्र का निमित्त, इनके पुण्य का निमित्त। परन्तु वह तो रत्न होते हैं, इस कोयले में होते हैं, वे रतन इसके होते हैं या नहीं? रजकण इकट्ठे होकर ऐसे उज्ज्वल होते हैं कि कोयले में रत्न पके। हीरा हो। कोयले में हीरा पके। यह पुण्यवन्त प्राणी नजदीक में हो, वहाँ हीरा हो। नींबू में दाने के बदले माणेक पके। सुना है? यह नींबू है न, नींबू। उस नींबू में दाना कठोर होता है न? किसी पुण्यवन्त प्राणी के घर में यदि उस नींबू का वृक्ष हो तो नींबू में बीज के बदले माणिक पके। बीस-बीस हजार की कीमत का। वीरजीभाई कहते थे, भाई! इस ओर में पका था। वीरजी वकील हैं अपने बड़े? ९२ वर्ष की उम्र। वे कहे, हम वकालत करने गये थे, वहाँ एक व्यक्ति को पका। बीस हजार का। उसमें से... क्या कहा यह? नींबू। और प्रवचनसार शास्त्र में पाठ है। शास्त्र में-प्रवचनसार में ४७ नय का वर्णन जहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने किया है, वहाँ नींबू में रत्न-माणिक पके ऐसा पाठ है। शास्त्र में भी पाठ है। शास्त्र में तो जगत की सब बातें हैं या नहीं? उस पुण्यवन्त के प्राणी के नींबू में माणिक पके। समझ में आया? ऐसा ही पुण्य लेकर आता है।

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! आप पूर्व के ऐसे पुण्य लेकर यहाँ नीचे अवतरित हुए कि माता के उदर में (आने से) पहले छह महीने रत्न की वृष्टि हुई। नौ महीने माता के गर्भ में (आने के पश्चात् हुई)। पन्द्रह महीने (हुई)। बैठना कठिन होता है। यहाँ इसकी माँ को पेट में वह आवे तो भूतड़ा खाने का मन हो। बारीक आटा होता है न? भूतड़े का। मिट्टी। भूतड़ा... भूतड़ा। रजकण नितरकर अकेला कोमल होता है न? कोमल। वह कोमल खाने का मल हो जाये। देखो! वह लड़का आया। ऐसा (तीर्थंकर) पुत्र जिस माता को जन्मे उसे सोलह-सोलह अलौकिक स्वप्न आते हैं। समझ में आया? जिसने आत्मा का आराधन किया है और जिसने आत्मा का सेवन किया है, वह आत्मा जहाँ अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ और अन्तिम पूर्णता को पाने के लिये जब अवतार होता है, ऐसे तीर्थंकर की माता के गर्भ में तीर्थंकर आये, तब कहते हैं, पन्द्रह महीने तक रत्न की वर्षा आकाश से हुई थी क्या? धन की वर्षा। उससे ही हे प्रभु! यह पृथ्वी वसुमति हुई। हम तो प्रभु यह वसु... वसुमति कहते हैं न पृथ्वी को? वसु अर्थात् लक्ष्मीवाली यह वसुमति। प्रभु! हमें तो

वसुमति आप आये और यह लक्ष्मी बरसी, इसलिए यह वसुमति लगती है। इसके अतिरिक्त वसुमति कहलाती वह नाममात्र था। भाव तो इस समय हुआ। उस पुण्य के फल के पीछे आत्मा के गुणों का स्मरण है, इससे इस पुण्य के फल की व्याख्या करते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ बहुत है इसमें। और ऐसा का ऐसा अधिकार दान अधिकार में भी है। ११२ पृष्ठ में, गाथा-३ है। दान में भी यह बात है। ... लक्ष्मी की बात है। क्या कहते हैं? देखो!

यही ऋषभदेव भगवान का दान का अधिकार वर्णन किया है। जब ऋषभदेव परमात्मा इस देह में आये और पश्चात् स्वयं मुनि हुए, मुनि, तो उस समय... तीसरी गाथा है, भाई! वसुमति। वह जब तीर्थंकर का आत्मा इस देह में आया और वह तो तीन ज्ञान लेकर आये थे, पश्चात् जब मुनि-नग्न दिगम्बर हुए, आत्मा के आनन्द में मस्त, तब उन्हें बारह महीने तक आहार नहीं मिला। क्योंकि जुगलिया का काल था तो आहार की विधि की खबर नहीं थी। बारह महीने तक नहीं मिला। उसमें एक उनके राज्य में कोई श्रेयांस नाम का राजा का कुँवर था। राजकुमार। उस राजकुमार को स्वप्न आया। बारह-बारह महीने से आहार नहीं। यह वैशाख शुक्ल तीन आती है न? उसके कारण यह सब करते हैं न वर्षीतप? यह तो सब समझने जैसा है। भगवान ने तो बारह महीने तक आनन्द में रहते हुए आहार नहीं मिला था, उसे कहा जाता है। यह तो एक दिन खाते हैं और एक दिन नहीं खाते। एक दिन खाये परन्तु अच्छा भला खाये। दूसरे दिन अपवास हो ऐसा। और वह खाये नहीं तो उस राग की मन्दता है, वह वास्तविक अपवास नहीं है।

आत्मा के आनन्द के भान की भूमिका में इच्छा टूटकर आनन्द आवे, ऐसी दशा को भगवान उपवास कहते हैं। उप अर्थात् आत्मा के आनन्द के समीप में वास अर्थात् बसना और उसके बिना आर्तध्यान और राग के ध्यान में जो हो, उसे भगवान अपवास कहते हैं। अप अर्थात् बुरा वास। उपवास नहीं। परन्तु बातें बहुत कठिन जगत से। यहाँ तो वैशाख शुक्ल तीन वर्षीतप का पारणा करते हैं न? अब तो यह चला है। सडसडाहट।

यह प्रसंग था। श्रेयांसकुमार को स्वप्न आया। कल्पवृक्ष सूखते हैं, कल्पवृक्ष सूखते हैं, ऐसा स्वप्न आया। राजा को। राजा का कुमार, महासमर्थ। महा पुण्यवन्त, उस भव में मोक्ष जानेवाला। ऐसे राजा को स्वप्न आया कि एक कल्पवृक्ष सूखता है। सवेरा जहाँ हुआ,

निमित्त (ज्ञानी को) पूछा, मुझे स्वप्न आया। निरर्थक नहीं जाता। क्या है यह? आज ऋषभ भगवान मुनि सन्त पधानेवाले लगते हैं। बारह महीने से कहीं आहार नहीं मिला। (आहार) लेने का विकल्प आता है, परन्तु विधि नहीं आती, इसलिए नहीं लिया। आज भगवान पधारनेवाले लगते हैं। मुनि सन्त छद्मस्थरूप से, अभी केवल (ज्ञान) नहीं हुआ था।

वे एक जहाँ आये, परन्तु राजा को विधि की खबर नहीं थी। उसमें उसने भगवान को एकदम देखा, मुनि की दशा, जरा एकाकार हो गया। जातिस्मरण हुआ। जातिस्मरण समझ में आता है? पूर्व के भव का भान आया। यह ऋषभदेव का जीव पति था और श्रेयांसकुमार का जीव आठवें भव में पत्नी था। आठवें भव में पति-पत्नी थे और दोनों ने इकट्ठे होकर मुनि को पड़गाहन किया था। निर्दोष हाथ में (आहार दिया)। वह स्मृति में आ गया। विधि की स्मृति पूर्व के भव की याद आयी। ओहो! इस विधि से यह आहार दिया जाता है। घर में गन्ने के रस के घड़े भरे थे। गन्ने के रस के। तब पश्चात् यह खेल करते हैं न वर्षीतप में? इतनी-इतनी टबुडियों १०८ भरे और डाले। उस गन्ने के रस के... स्वयं राजकुमार को भक्ति... भक्ति... भक्ति.... ओहो! धन्य मेरा अवतार! ऐसे सन्त को बारह-बारह महीने आहार नहीं। उन्हें तो आनन्द था। परन्तु ऐसा कि शरीर ऐसा जीर्ण हुआ, मेरे घर में आहार (हुआ)। बहुत आनन्द से दिया। आकाश में से वृष्टि हुई।

यह कहते हैं, देखो! है न? **श्रेयांस राजा सदा जयवन्त रहो, जिस श्रेयांस राजा के घर तीन लोक के द्वारा वन्दनीय श्री ऋषभदेव मुनिराज के पारणा के समय तीन लोक को आश्चर्य करनेवाली...** आकाश से... इसमें सुधारा होगा, भाई! इसमें शब्द नहीं पड़ा। पाठ में आकाश चाहिए। **आकाश से रत्नों की ऐसी वर्षा हुई...** तब रत्न की वर्षा हुई। स्वर्ग के देवों ने बरसायी। तब से पृथ्वी को वसुमति कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा कहकर दान के अधिकार में यह वर्णन किया है। अभी समय नहीं हो, हों! अभी समय नहीं हो। कहो, समझ में आया?

वसुमति कहते हैं, नाथ! हम तो आपके गुण को ही देखते हैं। यहाँ थे तो भी गुण के कारण शोभा (थी), यहाँ आये तो गुण के कारण पृथ्वी को वसुमति कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? इसके बिना इस पृथ्वी का नाम वसुमति नाममात्र था, भाव नहीं था। ऐसा कहकर इस गुण का स्मरण करते हैं। इसके साथ बँधे हुए पुण्य का ज्ञान करते हैं। ऐसे

पुण्य धर्मी को-धर्मात्मा को होते हैं। अज्ञानी को ऐसे पुण्य नहीं हो सकते। अज्ञानी को सच्चा पुण्य सत्पुण्य, ऐसे तीर्थंकरगोत्र, ऐसी पन्द्रह-पन्द्रह महीने लक्ष्मी झरे और ऐसी अज्ञानी को खबर पड़ती नहीं और अज्ञानी को ऐसा कभी होता नहीं। मिथ्यादृष्टि पुण्य बाँधे। साधारण फले बाहर में। ऐसे पुण्य धर्मात्मा को सम्यक् श्रद्धा की भूमिका में बँधे, उसका यह वर्णन करके भगवान की भक्ति करते हैं।

पश्चात् जरा विशेष इनकी माता की बात करते हैं अब। वहाँ आया। अब इनकी माता। प्रभु! आपकी माँ भी धन्य है! जिसके गर्भ में रत्न आया, वह रत्नकूखधारिणी माता भी धन्य है! बहुत लड़कों को माता जन्म देती है, परन्तु माता! तूने जिस पुत्र को जन्म दिया, धन्य है तुझे! ऐसा कहकर माता सिद्ध करते हैं। अध्धर से अवतार नहीं हुआ। समझ में आया? माता सिद्ध करते हैं और माता की पात्रता भी सिद्ध करते हैं। आनेवाले जीव की योग्यता का निमित्त-नैमित्तिक (सम्बन्ध) सिद्ध करते हैं। यह आठवीं गाथा में है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - १२, शुक्रवार, दिनांक - ०८-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ७ से १२, प्रवचन-७८५

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र है। पद्मनन्दि पंचविंशति। जंगल में रहनेवाले मुनियों ने आत्मा के आनन्द की भक्ति तो की है। उसे निश्चयभक्ति कहते हैं कि आत्मा ध्रुव अखण्डानन्द है, ऐसे ध्रुव के ऊपर की दृष्टि देने से जो अन्तर में एकाग्रता प्रगट होती है, उसे सच्ची भक्ति, परमार्थ भक्ति, निश्चयभक्ति कहा जाता है। वह भक्ति मुक्ति का कारण है।

आत्मा है, वह तीन रूप। आत्मा। द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से। समझ में आया इसमें? द्रव्य अर्थात् वस्तु; गुण अर्थात् शक्तियाँ अनन्त; पर्याय अर्थात् अवस्था। तथापि सम्यग्दर्शन का माल निकालने के लिये यह द्रव्य-वस्तु ही एक काम की है। समझ में आया? आत्मा की शान्ति अथवा निश्चयभक्ति अथवा मोक्ष का मार्ग जो आत्मा के पूर्णानन्द का कारण, ऐसी दशा के लिये काम का एक आत्मा ध्रुव है, वह एक काम का है। समझ में आया?

जिसकी खान में अनन्त-अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय—तीन में द्रव्य जो अभेद है, उसके ऊपर दृष्टि देने से आत्मा को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, शुक्लध्यान और केवलज्ञान उसकी खान में से प्रगट होता है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं मोक्ष के अभिलाषी हैं। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के कामी हैं और अपने ध्रुव स्वभाव में पूर्ण एकाग्रता नहीं। समझ में आया? इससे उस परमात्मपद को प्राप्त की भक्ति की जाती है। ऐसा भाव सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण समाधि-शान्ति प्रगट हो गयी है। पूर्ण समाधि। आनन्द... आनन्द... आनन्द... अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और साथ में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त वीर्य—ऐसी जिसकी प्रगट दशा प्राप्त है, उसे धर्मी जीव परमात्मा का विनय और भक्ति और बहुमान से उल्लास से भक्ति करते हैं। यह ऐसी यहाँ भक्ति की जाती है। समझ में आया?

लक्ष्मी का अर्थ लक्ष्मीवान का जो विनय करता है, वह लक्ष्मी के लिये करता है। लक्ष्मीवान के गुण गाता है, वह लक्ष्मी का प्रेमी है। वह लक्ष्मीवान के गुण गाता है। उसी

प्रकार जिसे आत्म-लक्ष्मी का प्रेम है, जिसे आत्मा आनन्द की रुचि का प्रेम है, वह पूर्णानन्द की प्राप्ति परमात्मा की भक्ति और विनय तथा बहुमान करता है। समझ में आया ?

यहाँ ऋषभदेव भगवान की भक्ति चलती है। मानो साक्षात् परमात्मा (विराजते हों, इस प्रकार से भक्ति की है)। तीर्थंकर तो हो गये, अभी तीर्थंकररूप से नहीं हैं। अभी तो मोक्ष-सिद्धपद में हैं। परन्तु आचार्य उन सिद्धपद में रहे हुए को मानो सामने खड़े रहकर भक्ति करते हों, ऐसा वर्णन यहाँ शास्त्र में उन्होंने ६१ गाथा से वर्णन किया है। अपने सात गाथायें आ गयीं। सात-सात। कहाँ से आयी ? पहले से स्तुति शुरु की है।

जो कोई भगवान की स्तुति करनेवाला है, वह भगवान के नाम को, गोत्र को और उनके गुण को पहिचानता है। वहाँ से भक्ति उठायी है। वे भगवान ऋषभदेव इस भव पहले सर्वार्थसिद्धि में थे। वहाँ से यहाँ आये हैं। पूर्व भव में उन्होंने तीर्थंकरगोत्र बाँधा था। आत्मा का ज्ञान अखण्डानन्द के ध्येय में शान्ति के-समाधि के कण अन्दर में जगे। समाधि... समाधि। समाधि अर्थात् यह चढ़ा जाये वह नहीं, हों! अविकारी आत्मा की शक्ति में से अविकारी शान्ति का समाधान, सन्तोष और आनन्द प्रगट हुआ, पूर्णानन्द प्रगट नहीं हुआ, इसलिए एक राग आया। अरे! जगत के जीव को यह धर्म समझ में आये अथवा स्वयं को ऐसा विकल्प-राग आया कि मैं पूर्णानन्द की प्राप्ति करूँ। ऐसे विकल्प में तीर्थंकरगोत्र बँध गया। उसके फलरूप में यहाँ मनुष्य में आने से पहले सर्वार्थसिद्धि में गये।

एक अन्तिम में अन्तिम विमान है सर्वार्थसिद्धि। जिसकी अर्थ-सिद्धि सभी प्राप्त होने की तैयारी वाले हैं, इसलिए उसे सर्वार्थसिद्धि का अवतार कहने में आता है। और उस सर्वार्थसिद्धि के जो देव, यहाँ से आनन्द का साधन करके गये, उसे एक ही भव करना होता है। समझ में आया ? वहाँ से मनुष्यदेह पाकर... वे तो तीर्थंकर हुए, परन्तु वहाँ का कोई भी जीव हो, वह मनुष्यदेह पाकर केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पाता है। ऐसे लाखों जीव सर्वार्थसिद्धि में अभी विराजते हैं। इतना घर जितना यह लोक नहीं, लोक बड़ा है। असंख्य योजन में है। उसमें वे परमात्मा तो अग्र विराजते हैं। लोक के अग्र। उनके नीचे यह सर्वार्थसिद्धि विमान है। एक लाख योजन का। एक लाख योजन का। एक योजन दो हजार कोस का। उसमें संख्यात देव बसते हैं। वे सब मनुष्यपना पाकर मोक्ष जानेवाले बसते हैं। यह सब उसे—समकिती को आस्था होती है। ऐसी प्रतीति में पूर्णानन्द की भक्ति करने को

स्वयं तैयार हुए हैं। समझ में आया?

संसार में भी बुजुर्ग के रूप में माता-पिता का भी प्रेम पुत्र करता है, तो यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ... आहाहा! जिनके असंख्य प्रदेश अनन्त सूर्य के प्रकाश के तेज की भाँति केवलज्ञान प्रगट हो गया है। ऐसे परमात्मा का लक्ष्य करके उनका पूरा आजीवन, जीवन पहले से ठेठ तक चितारकर लक्ष्य में लेते हैं। यहाँ तक अब अपने आया है।

हे नाथ! आप जब सर्वार्थसिद्धि में थे, तब उसकी शोभा आपके कारण थी। कल आया था न? भाई! आहा! इस अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त समकिती, उनके कारण सर्वार्थसिद्धि की शोभा थी। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! जब आप वहाँ से नीचे उतरे, तब उसकी शोभा नष्ट हो गयी और यहाँ नाभिराजा के घर में शोभा बढ़ी। वसुधारा। पन्द्रह महीने लक्ष्मी की वृष्टि हुई। छोटे मुँह बड़ी बात कठिन पड़े। बापू! यह सब त्रिकाल सत्य बात है, भाई! तेरे चैतन्य के आनन्द के माहात्म्य के समक्ष, यह पुण्य की बातें तो साधारण है। ऐसा पुण्य तो इसे साधारण अन्दर में पक जाता है। परन्तु जिसे अभी अपने स्वभाव की भी जहाँ कीमत और माहात्म्य नहीं होता, उसे ऐसे पुण्य के माहात्म्य लक्ष्य में कहाँ से दिखे?

ऐसे परमात्मा को लक्ष्य कर कहते हैं कि हे नाथ!... स्वयं को भी होना है न! आप जब यहाँ आये तब यह वसुमति, यह पृथ्वी वसुमति नहीं थी। परन्तु पन्द्रह महीने रत्न बरसे, इसलिए यह वसुमति कहने में आयी। वह जहाँ हो वहाँ आनन्द को प्राप्त आत्मा के गीत में बाहर की चीज़ का वर्णन करते हैं। अब आठवीं गाथा। माता की बात करते हैं।

हे नाथ! माता तो जगत में बहुत होती है। भक्तामर में आता है न?

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा-
न्नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनवति स्फुरदंशुजालम्।।२२।।

भक्तामर के बनानेवाले मानतुंग आचार्य हैं। बात सुनी है न? गाते... गाते... गाते... राजा ने ४८ ताले में डाले थे। ४८ तालों में कैद किया था और जहाँ उठायी है यह स्तुति '**भक्तामर प्रणतमौलि**' बहुत जीव इसके लिये गाते हैं कि पैसा-बैसा मिले। उनके ताले

टूटे थे इसलिए। यह सब भ्रमणा है। यह तो सहज उनका पुण्य था और पवित्रता के प्रेम में ऐसी भक्ति उछली है। नाथ! हम आपकी भक्ति, अरे! बन्धनरहित परमात्मा की भक्ति करते हैं और व्यवहार से यह बन्धन रहे, बने कैसे? एक-एक श्लोक जहाँ बोलने लगे, फटाक-फटाक ताले टूटने लगे। उसके कारण, हों! टूटने के योग्य थे तो टूटे। बात भारी कठिन। समझ में आया?

इसके अन्दर में एक श्लोक लिया है। मानतुंग आचार्य। हे नाथ! जगत में स्त्रियाँ तो हजारों-लाखों हैं। दिशाएँ तो दस हैं। दिशाएँ। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। चार कौने (और) ऊर्ध्व, अधो। परन्तु सूर्य को तो एक पूर्व की दिशा ही प्रगट करती है। दूसरी दिशा में सूर्य प्रगट नहीं होता। हे नाथ! बहुत सी स्त्रियाँ जगत में हैं। जैसे वे दिशाएँ बहुत हैं, उसी प्रकार। परन्तु नाथ! आपको तो आपकी माँ जो जन्म दे, उस आपकी माता को भी धन्य है!

एक बार कहा था कि जब जन्म होता है, तब माता इन्द्र को भगवान देती है। इन्द्र आते हैं। इन्द्र आकर ऐसे... तीन ज्ञान के धनी, हों! ऐकावतारी। एक भव में मोक्ष जानेवाले। ऊपर से इन्द्र उतरता है। माता ने जहाँ प्रसव किया है। वह तो सूर्य का प्रसव। शरीर भी सूर्यमय और चैतन्य भी सूर्यमय। ऐसा जहाँ देखता है, वहाँ....

पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे...
माता यतन करके रखना इसको, तव सुत हम आधार रे...
माता जतन करके रखना इसे...

भाव है न! बाकी तो आयुष्य प्रमाण कौन किसका करे? इस साधकभाव के साधनेवाले, उनका यतन रहो, और बाधकभाव का नाश होओ, इसकी अन्दर में भावना है। 'माता यतन करके रखना इसको...' नमो रत्नकूखधारिणी! इन्द्र आकर कहता है कि हे माता! नौ महीने ऐसे रत्न को रखा, उसे तो नमस्कार परन्तु तुझे पहले नमस्कार है! समझ में आया? यों भी लोगों में कुछ कहावत है न वह?

जननी जण तो भक्त जण, या दाता या शूर,
नहीं तो रहना बांझ तुम, मत गँवाना नूर।

लोगों में भी कहते हैं न? 'जननी जण तो भक्त जण,' आत्मा के ज्ञान के भक्त, उसे

जन्म देना। 'या दाता...' वह भी आत्मा का स्वभाव दाता है। बाहर के दाता की बात व्यवहार की है। 'या दाता या शूर' स्वभाव के वीर्य को स्फुरित करे, उसे जन्म देना। 'नहीं तो रहना बांझ तू...' नौ महीने, नहीं तो पत्थर रखने जैसा है। ऐसे पुत्र को जन्मे उस माता को भी कहते हैं धन्य कहलाती है। यह यहाँ आठवीं गाथा में बात करते हैं।

गाथा ८

अब, भगवान की माता को स्मरण करते हुए कहते हैं—

सच्चियसुरणवियपया मरुएवी पहु ठिऊसि जं गब्भे।
पुरऊ पट्टो बज्झइ मज्झे से पुत्तवंत्तीणं।।८।।

अर्थ – हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित हुए थे, इसलिए मरुदेवी माता, इन्द्राणी तथा देवों से नमस्कार किए गए हैं चरण जिसके – ऐसी हुई; अत: जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ थीं, उन सबमें मरुदेवी का ही पद सबसे प्रथम रहा।

भावार्थ – संसार में बहुत सी स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देनेवाली हैं, उनमें मरुदेवी के ही चरणों को क्यों इन्द्राणी तथा देवों ने नमस्कार किया? और उनके चरणों की ही क्यों सेवा की? इसका कारण केवल यही है कि हे प्रभो! मरुदेवी माता के गर्भ में आकर आप विराजमान हुए थे, इसलिए उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई और वे, जितनी पुत्रों को जन्म देनेवाली स्त्रियाँ थीं और हैं, उन सबमें उत्तम समझी गयी, अन्य कोई कारण नहीं।

गाथा - ८ पर प्रवचन

हे भाई! श्लोक

सच्चियसुरणवियपया मरुएवी पहु ठिऊसि जं गब्भे।
पुरऊ पट्टो बज्झइ मज्झे से पुत्तवंत्तीणं।।८।।

देखो ! यह मुनि जंगल में रहनेवाले, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। अर्थात् क्या ? घड़ीक में आनन्द का गोला अन्दर पृथक् पड़कर मुनि अनुभव करते हैं। घड़ीक में यह राग का विकल्प आता है। भक्ति करूँ, इतना बोलूँ। समझ में आया ? ऐसे मुनियों ने भी जंगल में भगवान को भक्ति में याद किया है। अब यहाँ साधारण प्राणी को तो परमात्मा की भक्ति श्रावक के लिये गृहस्थों को हमेशा तो देवदर्शन, गुरुसेवा ऐसे कर्तव्य शास्त्र में कहे हैं, वर्णन किये हैं, होते हैं, होते हैं।

यहाँ आचार्य ऐसे महामुनि आत्मा के आनन्द के झूले में झूलते हुए कहते हैं, नाथ! **'परउ पट्ठो बज्झइ, मज्झे से पुत्तवंत्तीण'** हे जिनेन्द्र! हे प्रभु! **आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित...** वापस अध्धर से जन्म नहीं हुआ। माता के गर्भ में आये हैं, यह भी सिद्ध करते हैं। **इसलिए मरुदेवी माता, इन्द्राणी तथा देवों से नमस्कार योग्य हुई थी;...** आप गर्भ में हो, इसलिए इन्द्रों ने आकर इन्द्राणी और देवियों ने माता को भी नमस्कार किया है। आपको किया और माता को भी नमस्कार किया है।

माता के चरण में इन्द्र नमे हैं, भाई ! आहाहा ! चैतन्यरत्न के भानवाले, जिन्हें इस भव में केवलज्ञान की प्राप्ति करनी है, निश्चित है उन्हें केवलज्ञान। और उस केवलज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् उनकी दिव्यध्वनि निकलेगी। नाग और बाघ और सिंह जिनकी सभा में आयेंगे। नाग, बाघ और सिंह, हों ! बड़े फणीधर जंगल में से ऐसे सरर... करते हुए सभा में आते हैं। देखो तो उनकी पात्रता ! जहाँ भगवान की वाणी निकलती है, वहाँ बड़े बाघ और सिंह दहाड़ मारते हों, वहाँ शान्त... शान्त पिल्ले जैसे होकर सभा में आते हैं। ऐसे सुने। क्या कहते हैं, प्रभु ! परमात्मदशा प्राप्त क्या कहते हैं हित के लिये ? यह सिंह भी पिल्ले के भाँति ऐसे सुनता है। गलुडिया समझते हो ? क्या कहते हैं हिन्दी भाषा में ? कुत्ते के बच्चे। कुत्ते का छोटा बच्चा होता है या नहीं ? उसका नाम होगा हिन्दी में, अपने को कुछ बहुत खबर नहीं। वह सिंह और बाघ आकर जिसे नमस्कार करे, ऐसे शान्त (हो जाये)। जिसकी सभा में बिल्ली और चूहे इकट्ठे बैठे हों।

जिनकी सभा में बिल्ली और चूहे इकट्ठे बैठे हों। सिंह और हिरण इकट्ठे बैठे हों। गाय और बाघ इकट्ठे बैठे हों। कोई किसी को भय उपजता नहीं। कोई किसी को भय होता नहीं, ऐसी तो उनकी पात्रता। भगवान की वाणी जहाँ निकले... जैसे मोरनी के नाद से सर्प

डोलता है, उस सर्प को मोरनी का स्वाद और मोरनी का प्रेम है। वह मोरनी जैसे बोले और सर्प डोले। जहरवाला सर्प डोले। इसी प्रकार भगवान की वाणी निकले वहाँ बाघ और नाग और सिंह ऐसे अन्दर डोल उठते हैं। आहाहा! यह क्या कहते हैं? समझ में आया?

कहते हैं, प्रभु! ऐसे प्रभु जिसके गर्भ में रहे, उसके चरण को इन्द्र और इन्द्राणियों ने वन्दन किया। ऐसी होती हुई **जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ हैं,...** जगत में जितनी पुत्रवाली स्त्रियाँ थी, **उन सबमें मरुदेवी का ही पद सबसे प्रथम है।** बड़े में बड़ा पद इसे। और जब माता भी एकाध भव करके मोक्ष जानेवाली ही होती है। यह सर्वज्ञ तीर्थंकर जिसके गर्भ में! दो सीप का मोती। यह माता और पिता को पात्रता ऐसी होती है। भगवान के कारण नहीं, हों! ऐसे वह जननी होती है और ऐसे वे जनक होते हैं कि दोनों जनों को एकाध अवतार में, कोई इस भव में, स्त्री आदि का देह हो तो दूसरे (भव में), परन्तु मोक्ष जानेवाले ही होते हैं। ऐसे दोनों सीप के मोती भगवान उसमें आते हैं। सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया?

कहते हैं, **संसार में बहुत-सी स्त्रियाँ पुत्रों को पैदा करनेवाली हैं, उनमें मरुदेवी के ही चरणों में क्यों इन्द्राणी तथा देवों ने नमस्कार किया?** कि आप उसके गर्भ में थे इसलिए। **क्योंकि हे प्रभु! मरुदेवी माता के गर्भ में आकर आप विराजमान हुए थे, इसलिए उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई तथा जितनी पुत्रों को पैदा करनेवाली स्त्रियाँ थीं और हैं, उन सबमें वे सबसे उत्तम समझी गयी,...** ढाई द्वीप के अन्दर अथवा भरतक्षेत्र के छह खण्ड में तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आवे, माता सर्वोत्कृष्ट गिनने में आयी।

अब, इन्द्र की बात करते हैं। इन्द्र जब उस बच्चे को लेता है, इतना बालक, गोद में लेता है। स्नान (जन्माभिषेक) के लिये) ले जाता है। भगवान का शरीर जहाँ जन्मता है, अन्तर में तो अवधिज्ञान (आदि) तीन ज्ञान के धनी आत्मा की उज्ज्वलता के भानवाले हैं। अन्तर में स्व-पर प्रकाशक के भानवाले हैं। देह बालक है। वह जब भगवान को इन्द्र हाथ में लेता है, इसकी बात जरा करते हैं।

गाथा ९

अब, भगवान के जन्माभिषेक की बात करते हैं–

अंकत्थे तइ दिट्ठे जंतेण सुरालयं सुरिदेण।
अणिमेसत्तबहुत्तं सयलं णयणाण पडिवण्णं।।९।।

अर्थ – हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत को चला था, तब आपको गोद में बैठे हुए उसने देखा; उस समय उसके नेत्रों का निमेष (पलक) से रहितपना तथा बहुतपना सफल हुआ।

भावार्थ – हे प्रभो! इन्द्र के नेत्रों की अनिमेषता और अधिकता आपको देखने से ही सफल हुई थी। यदि इन्द्र आपके स्वरूप को न देखता तो उसके नेत्रों का पलकरहितपना और हजार नेत्रों का धारण करना सर्वथा निष्फल ही समझा जाता।

तात्पर्य यह है कि आपके समान रूपवान संसार में दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था।

गाथा - ९ पर प्रवचन

अंकत्थे तइ दिट्ठे जंतेण सुरालयं सुरिदेण।
अणिमेसत्तबहुत्तं सयलं णयणाण पडिवण्णं।।९।।

हे जिनेन्द्र प्रभु! जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत को चला था,... बड़ी बातें, बापू! साधारण मनुष्य को भी जन्माभिषेक रूप से लोग मनाते हैं। यह तो महा जन्मकल्याणक का दिन। जन्मकल्याणक कहलाता है। दूसरे को जन्म-जयन्ती कहलाती है, इनको जन्मकल्याणक कहलाता है। ऐसे परमात्मा जहाँ इस भव में होनेवाले हैं और तीन ज्ञान तथा आत्मज्ञान प्राप्त हैं, कहते हैं, आपको जहाँ इन्द्र ने हाथ में ऐसे लिया, तब **मेरुपर्वत को चला था,...** मेरुपर्वत के ऊपर। एक मेरुपर्वत है। अपने यहाँ सब बतायेंगे, पंच कल्याणक करायेंगे उसमें (बतायेंगे)। मेरुपर्वत कहाँ रखा है? कहीं रखा होगा न?

मेरुपर्वत पर इन्द्र उन्हें ले जाते हैं। उस समय की बात याद करके मानों वर्तमान में वर्तती हो, मानो वर्तमान में वर्तती हो, ऐसे आचार्य स्तुति और भक्ति करते हैं।

हे नाथ! **मेरुपर्वत की ओर चला था और जब आपको अपनी गोद में बैठे हुए (उसने) देखा था, उस समय उसके नेत्रों का निमेष (पत्रक) से रहितपना तथा बहुतपना (सहस्रपना) सफल हुआ था।** दो बातें। '**अणि मेसत्त बहुत्तं**' दो शब्द पड़े हैं। इन इन्द्रों की हजार आँखें और पलक रहित उसकी जो आँख, दोनों सफल हो गयी। क्या कहते हैं? ऐसे हाथ में जहाँ लिया, वह रत्न जिसमें रहता है, वह डिब्बी भी उत्कृष्ट होती है। जिसमें केसर रहती है, वह थैली नहीं होती। उस केसर की डिब्बी को... क्या कहा जाता है? बरणी। भूल जाते हैं, भाई! केसर रहे, वह बरणी हो या डिब्बा हो। यह चावल रहने की थैली में केसर नहीं डाली जाती। उसमें नहीं रहती।

उसी प्रकार जहाँ पूर्णानन्द की प्राप्ति होने के लिये जो निश्चित अवतार है, उसका शरीर भी वह चैतन्यरत्न जिसमें रहा, वह शरीर भी अलौकिक होता है। आहाहा! वह डिब्बी अलग प्रकार की होती है। है या नहीं आणन्दभाई, कहाँ गये? (संवत्) १९९९ में बेचरभाई लाये थे। आठ रत्ती का हीरा। आठ रती का हीरा बेचरभाई बताने को लाये थे। १९९९ के वर्ष की बात है। राजकोट। एक रती के दस हजार रुपये लेते हैं। एक रती के दस हजार। आठ रती का है, इतना अस्सी हजार का है परन्तु उसकी डिब्बी ऐसी थी, डिब्बी, उसमें मखमल और खड्डा और (ऐसा था)। आणन्दभाई! बेचरभाई लाये थे। दो हीरा लाये थे। एक अस्सी हजार का और एक साठ हजार का। साठ हजार का था वह आधे भार का था। कहा, इतना बड़ा और साठ हजार? कम? और आठ रती के अस्सी हजार? इसमें दाग है। साठ हजार के हीरा में जरा दाग है। इसलिए इसकी कीमत घट गयी और इसमें दाग नहीं तो अस्सी हजार का है। परन्तु उसकी डिब्बी और उसका मखमल। नहीं तो हीरा है। वह कहीं डिब्बी उसे दबा नहीं सकती। परन्तु उसके खड्डे में डिब्बी में अलौकिक में रखा। मुझे तो उस समय याद आया, तीर्थंकर के आत्मा की डिब्बी ही अलग प्रकार की होती है। समझ में आया? आहाहा! जिसे पूर्णानन्द की प्राप्ति इस भव में हुई, हुई और होनेवाली है। और आनन्द के झरने में तो अवतरित हुए हैं। आनन्द के झरने के अनुभव करते-करते अवतरित हुए हैं, ऐसे भगवान का शरीर वह इन्द्र देखता है।

भगवान! देवों को आँखों की पलक नहीं होती। क्या कहा? देवों को प्रकृति का ऐसा पुण्य होता है, उसे पलक नहीं झपकती। अपने ऐसे-ऐसे होता है वैसे। उनकी आँखें ऐसी की ऐसी खुली हुई रहती हैं। स्वर्ग के देवों को ये बहुत पुण्य के धनी हैं। हजारों वर्ष में तो उन्हें आहार लेनी की इच्छा होती है। बड़े देव को। और पखवाड़े और महीने में तो श्वास लेने का ऊँचा-नीचा होता है। ऐसे स्वर्ग के देव हैं। चींटी को ऐसा कहे कि यह हजारों मण के पत्थर उठाकर शत्रुंजय में साठ हजार के तो डोरे तोड़े थे। साठ हजार के डोरे, हों! शत्रुंजय में ऊपर पत्थर ले जाने के। चींटी को कहे कि यह सब बना था। बैठे किस प्रकार? इसी प्रकार जिसके गज छोटे हैं, उसे ऐसा पुण्य भी बैठना कठिन पड़ता है। परन्तु धर्मात्मा के ज्ञान के भान हुए, उस भूमिका में ऐसा पुण्य तो साधारण गिनने में आता है। समझ में आया?

एक यह स्तुति भी आयी है, भाई! एक उसमें आया है न? सन्मति सन्देश। धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि के पुण्य ऐसे होते हैं कि जिसकी सामग्री इन्द्र और चक्रवर्ती जैसी होती है, तो भी उसे कौवे की विष्टा जैसी जानता है। ऐसा पाठ आया है। इसमें है। तीन जगह है। आहाहा! आत्मा अमृतस्वरूप, उसकी जहाँ सम्यग्दृष्टि को अनुभव की दृष्टि हुई, ऐसे पूर्व के पुण्य, जिसे चक्रवर्ती और बड़ा देवपद मिला हो, वह कौवे की विष्टा जैसा लगता है। ऐसा पाठ लिया है उसमें। नवनीतभाई! आहाहा! लोग चिल्लाहट मचा जाए अन्दर से।

यहाँ कहते हैं, भगवान! इन देवों की पलक का नहीं झपकना... ऐसे आँख की पलक और उसकी हजारों आँखों उसमें की थी, उसकी सफल हो गयी। आपके रूप को देखा, उसकी आँखें सफल हो गयीं। '**अणि मेसत्त**' ऐसा शब्द पड़ा है। उसी प्रकार आत्मा में भी एक समय का ध्रुव चिदानन्द आत्मा है, सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अनिमेष ध्रुव पर पड़ी होती है। अनिमेष, समझ में आता है इसमें कुछ? देव की पलक नहीं होती। देव को आँखें ऐसे नहीं मिचती, आँखे उघड़ी हुई होती हैं। ओहोहो! जिसके पुण्य के फल... भले कोई अभव्य हो। यह सब इन्द्र तो समकिती है, परन्तु कोई देव अभव्य हो, आँख नहीं मिचती। पुण्य इतना किया कि उसकी आँख नहीं मिचती। इसी प्रकार जिसे अन्दर से पवित्रता प्रगट हुई है और पूर्णानन्द पर जिसकी दृष्टि, समकिती की है। उसके नेत्र कभी नहीं मिचते। उसके नजर की आँखें आत्मा पर ही सदा पड़ी हैं। भले वह राग में हो, भोग में हो, बोलने

में हो परन्तु अन्तर का विषय चिदानन्द जो दृष्टि में पड़ा, उसका सफलपना ध्रुव पर ध्येय है इसलिए। समझ में आया ?

ऐसा कहते हैं, प्रभु ! उस देव की आँखों का मटकना नहीं। यह आपके रूप को देखने से सफल हुआ है। मनसुखभाई ! ऐसा सुना भी नहीं होगा कभी। पूरे दिन मजदूरी की बेगार। यह और यह, यह और यह। ऐसा होगा या नहीं ? दूसरा क्या होगा ? ढसरडा तो अपनी काठियावाड़ी भाषा का अर्थ है। ढरसडा का क्या अर्थ होगा ?

काँटे का ढेर एक बाई ,खींचती थी और उसका पति सामने कहता था। सोनगढ़ में मैंने नजरों से देखा है। वे वाघरी नहीं रहते उस कुएँ में ? उस कुएँ के पास वाघरी रहते। उसमें वह बुद्धु... बुद्धु जाता था। वह ऐसे जाता था। उसकी स्त्री रखी हुई। वह स्त्री कांटा... थी। बड़ा कांटा ऐसे खींचती थी। तब वह कहे, रहने दे, रहने दे। ऐसा करके पति-पत्नी का प्रेम बताते थे। परन्तु वह काँटे का ढेर खींचती थी। जाड़ा होता है न ? लकड़ी हो और दाँथली से खींचे। ऐसे अज्ञानी ने राग-द्वेष का खिचाव किया है। काँटे का झुण्ड पाला-पोसा है।

भगवान अन्दर आनन्द का कन्द चैतन्य सूर्य पड़ा है, उसकी नजरें भी नहीं होती, उसके प्रति प्रेम भी नहीं होता, यह अनिमेष से देखना ऐसी दृष्टि नहीं होती। यहाँ कहते हैं कि अनिमेष जिसकी दृष्टि की सफलता ध्रुव पर पड़ी है। उसकी दृष्टि सफल हो गयी। इसी प्रकार देव की आँखें भी सफल हुई। पलक का टिमकार जो नहीं मारता, उसके पुण्य के कारण, परन्तु भगवान ! जहाँ आपका शरीर देखा न, ऐसे मक्खन के पिण्ड जैसा और रूप, रूप का अवतार, वर्ण भले पूरा स्वर्णवर्ण है, ऋषभदेव भगवान, परन्तु चौबीस तीर्थंकर में कितने ताम्रवर्ण होते हैं परन्तु सुन्दर आकृति का रूप ऐसा कि जगत में किसी के पास नहीं होता और उनके रजकणों में ऐसे रजकण इकट्ठे हुए हों, जगत में जितने (परमाणु) शान्तरूप परिणमनेवाले हों, शान्ति तो आत्मा में है, परन्तु उसके निमित्तरूप परिणमने के हों ऐसे परमाणु आकर उसके परिणमे होते हैं। समझ में आया ?

यह कहते हैं, प्रभु ! ऐसे आपको जहाँ देखा, उसकी आँख सफल हो गयी, **तथा बहुतपना (सहस्रपना) सफल हुआ था।** दो शब्द हैं न ? बहुपना अर्थात् उसने देखने को हजार आँखें बनायी थी न ? दो आँखों से तृप्ति नहीं हुई। भगवान के रूप को... बाहर के,

हों! अन्दर के रूप का तो इन्द्र को भान है, परन्तु बाहर का रूप देखते... देखते... देखते... तृप्ति नहीं हुई कि आहाहा! दोनों आँखों से पूरा नहीं पड़ता, लाओं न, हजार आँखें बनाऊँ। वह हजार आँखें बनाता है। देखो! यह एकावतारी समकिती देव! उसे भी भगवान की भक्ति (ऐसी होती है)।

यह तो अभी भाई! अभी चौथे गुणस्थान में है। कौन? ऋषभदेव भगवान। अभी चौथे गुणस्थान में है। वह भी चौथे गुणस्थान में समकिती इन्द्र है। परन्तु वह इन्द्र ऐसी भक्ति करता है। भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले, केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं, तीर्थंकर का ही अवतार है। इसलिए प्रभु! इन इन्द्रों के नेत्र की अनिमेषता और अधिकता अर्थात् बहुलता, **आपको देखने से ही सफल हुई। यदि इन्द्र, आपके स्वरूप को न देखता, तो उसके नेत्रों का पलकरहितपना और हजार नेत्रों का धारण करना, सर्वथा निष्फल ही समझा जाता।**

अब आये मेरु पर। सर्वार्थसिद्धि में से उतारकर यहाँ लाये थे माता के (पास)। पश्चात् यहाँ (आकर) इन्द्र ने हाथ में लिये। अब लेकर मेरु पर गये। मेरुपर्वत है। यह जम्बूद्वीप लाख योजन का है, सब अस्ति है, हों! वर्तमान में कितने ही यह क्या कहलाता है तुम्हारा वह? राकेट और फोकेट, कुछ कहते हैं न? ऐसे गया। कितनों को शंका पड़ती है। बापू! यह वस्तु की स्थिति दूसरी है, लोग दूसरा कहते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा ने देखी हुई वस्तु कोई अलौकिक दूसरी है। लाख योजन का जम्बूद्वीप है, ऐसे-ऐसे। उसके मध्य में एक लाख योजन का ऊँचा मेरुपर्वत है। यह जमीन ही चौथे काल में ऋषभदेव भगवान के समय से... कहाँ गये विमलचन्दजी? विमलचन्दजी ने निकाला था। यह विमलचन्दजी कहें, यह जमीन एक योजन ऊँची हो गयी है। लोगों को भ्रम पड़ जाता है कि यह सब बदलता है और यह क्या होगा? भाई! उसका विचार बहुत लम्बा है शास्त्र के अधिकार का।

यहाँ कहते हैं कि यह लाख योजन का जम्बूद्वीप है। उसके मध्य में एक मेरुपर्वत एक लाख योजन का है, पत्थर का है। उसके ऊपर ले जाते हैं। तब कहते हैं।

गाथा १०

अब, मेरुपर्वत पर भगवान का जन्माभिषेक हुआ, उसका अलंकार करके स्तुतिकार कहते हैं कि–

तित्थत्तणमावण्णो मेरु तुह जम्मण्हाणजलजोए।
तत्तस्स सूरपमुहा पयाहिणं जिण कुणंति सया।।१०।।

अर्थ – हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस समय आपको जन्म–स्नान मेरु के ऊपर हुआ था, उस समय उस स्नान के जल के सम्बन्ध से मेरु तीर्थपने को प्राप्त हुआ था, अर्थात् तीर्थ बना था; इसीलिए हे जिनेन्द्र! उस मेरुपर्वत की सूर्य, चन्द्रमा आदि सदा प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

भावार्थ – आचार्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! जब तक मेरुपर्वत के ऊपर आपका जन्म–स्नान नहीं हुआ था, तब तक वह मेरुपर्वत, सामान्य पर्वतों के समान था और तीर्थ भी नहीं था, किन्तु जिस समय से आपका जन्म–स्नान, मेरु के ऊपर हुआ है; उस समय से उस आपके जन्म–स्नान के जल के सम्बन्ध से मेरुपर्वत तीर्थ, अर्थात् पवित्र स्थान हो गया है।

यह बात संसार में प्रत्यक्ष गोचर है कि जो वस्तु पवित्र हुआ करती है, उसकी लोग भक्ति तथा परिक्रमा आदि करते हैं; इसीलिए उस मेरु को पवित्र मानकर सूर्य, चन्द्रमा आदि रात–दिन उस मेरु की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करते रहते हैं– ऐसा मालूम होता है।

गाथा - १० पर प्रवचन

तित्थत्तणमावण्णो मेरु तुह जम्मण्हाणजलजोए।
तत्तस्स सूरपमुहा पयाहिणं जिण कुणंति सया।।१०।।

यह तो जहाँ हो वहाँ भगवान ही देखते हैं ज्ञानी। प्रभु! यह मेरुपर्वत पहले तीर्थ नहीं

था परन्तु आपको जब स्नान करने ले गये परन्तु स्नान भी कैसा ? बड़े-बड़े कलश पानी के, हों ! हड... हड सिर पर डाले। एक दिन का जन्मा हुआ (हो) तुरन्त का, पानी का कलश डाले तो मर जाये। समझ में आया ? यह वज्र शरीर जिनका ऐसा है। वज्र शरीर ऐसा है कि हजारों कलश, हजारों, बड़े योजन के भरे हुए, आठ-आठ योजन के भरे हुए कलश पानी सिर पर डाले। एक हजार और आठ। यह तीर्थंकर की सब ऋद्धियाँ बाहर के पुण्य के फल की है। यह इन्द्र और उसके ऊपर परमात्मा पूर्ण दशा हो, उनकी जहाँ पुण्य की प्रकृति का फल तीर्थंकर हो, वहाँ पुण्य और पवित्रता दोनों में वे पूरे होते हैं। ऐसी बात अन्यत्र पूरी नहीं हो सकती। केवलज्ञानी हो, उसे केवलज्ञान पूरा होता है, परन्तु पुण्य पूरा नहीं हो सकता।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! **जिस समय आपका जन्म-स्नान (जन्माभिषेक) मेरुपर्वत पर हुआ था...** बात ही कोई अचिन्त्य! चिमनलालभाई! बड़े योजन के पानी के कलश (डाले तो) जीवित किस प्रकार रहते होंगे ? बापू! वह तो हीरे स्तम्भ जैसे शरीर है। चैतन्य उस डिब्बी से ऐसे भिन्न अनुभव करते हैं अन्दर। उस समय, हों! दशा चौथे गुणस्थान की है, अभी पाँचवाँ, छठवाँ तो मुनि होंगे तो छठवाँ मुनि को आयेगा। अभी इस दशा में है। हजारों घड़े पानी के डाले।

उस समय उस स्नान-जल के सम्बन्ध से मेरुपर्वत भी तीर्थपने को प्राप्त हुआ... महाराज! आपके स्नान के कारण मेरु तीर्थ हो गया। कैसे ? **तीर्थ बना था; इसी कारण हे जिनेन्द्र! उस मेरुपर्वत की सूर्य, चन्द्रमादि सभी ग्रह सदैव प्रदक्षिणा करते रहते हैं।** देखो! अलंकार किया है। मेरुपर्वत है और ऊपर शिलायें हैं। वहाँ भगवान के जन्म का स्नान होता है। यहाँ कहते हैं कि चन्द्र, सूर्य तो जमीन से आठ सौ योजन ऊँचे मेरु के आसपास घूमते ही हैं। परन्तु उसमें आचार्य ने अलंकार निकाला, प्रभु! वह चन्द्र, सूर्य जो चक्कर लगाते हैं न, प्रदक्षिणा करते हैं, उसका हेतु आपका जन्म-स्थान, वहाँ हुआ और तीर्थ हुआ इसलिए। पागल भक्ति तो नहीं होगी न यह ? बापू! ये गुण और उसके पुण्य के प्रकार की स्थिति, दोनों वर्णन करते हैं।

यह तो एक बार कहा था, नहीं ? 'जगतडा कहे छे के भगतडा काला छे'। सुन न अब। 'काला न जाणशो रे प्रभुना घरे पहेला व्हाला छे।' समझ में आया ? जगत को और

भगत को कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। जगत की दृष्टि उल्टी और ज्ञानी की दृष्टि दूसरी। दोनों की दिशा फेर, दृष्टि फेर, फल फेर, कारण फेर। आहाहा! इसलिए अज्ञानी को और ज्ञानी को सीमाडे... कुछ कहते हैं न? बिना मेल का—मिलान खाये, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार भगवान के भक्तों को और जगत के भक्तों को दोनों को मिलान खाये, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, हे प्रभु! मेरुपर्वत के चन्द्र आदि सदा प्रदक्षिणा (घूमते हैं)। तीनों काल का नियम है कि मेरुपर्वत के आसपास चन्द्र और ज्योतिषी घूमते हैं। उसमें फिर यह न्याय निकाला। भगवान! यह कैसे घूमते हैं? आपका जन्म-स्नान वहाँ हुआ था न, इससे वह तीर्थ बना, इसलिए घूमते हैं। उत्तम चीज़ की प्रदक्षिणा दुनिया करती है, यह साधारण नियम है। नीचे कहा है। **जो वस्तु पवित्र हुआ करती है, उसकी लोग भक्ति तथा परिक्रमा आदि करते हैं...** परिक्रमा—प्रदक्षिणा और भक्ति। इसका नियम है। समझ में आया?

अरे! भरत चक्रवर्ती के भरतेश वैभव में एक दृष्टान्त है। उसकी माता की एक बार आरती उतारते हैं। तब प्रदक्षिणा करके आरती उतारते हैं। परन्तु यह? हमारी जननी है। हमारी माँ है, जिसने प्रसव दिया, उसका बहुमान हम करते हैं। वह छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती और यह माँ। माताजी! बैठो सिंहासन पर। क्या है? आरती उतारनी है। बैठाकर (आरती उतारते हैं)। बहुमान है न!

यहाँ कहते हैं कि यह तो धर्मात्मा समकिती ज्ञानी ऐसे तीर्थंकर का लक्ष्य करके कहते हैं, भगवान! मेरुपर्वत के आसपास ज्योतिषी चक्कर लगाते हैं, इसका कारण तो मुझे आपका स्नान हुआ न, (इसलिए) उसका कण-कण तीर्थ हो गया। उस तीर्थ के कारण भक्ति और परिक्रमा अर्थात् प्रदक्षिणा करते हैं। उसमें भी भगवान को याद करके भगवान के स्वरूप का स्मरण किया है। समझ में आया? ११वीं गाथा। अब देवों का... देव इतने सब आये हैं वहाँ, जब भगवान का जन्माभिषेक होता है, तब करोड़ों, अरबों देव आते हैं। यही कुदरत के नियम प्रमाण देवों को भक्ति (होती है)। कोई समकिती होते हैं और कोई देखादेखी (आते हैं कि) मेरे मालिक जाते हैं तो लाओ न, मैं जाऊँ। मेरे अधिपति देव जाते हैं, लाओ न, मैं जाऊँ। ऐसे भी लाखों देव साथ में (जाते हैं)। अनुकरण करनेवाले और

एक वास्तविक अनुसरण भक्ति का करनेवाले, ऐसे दोनों प्रकार के लाखों, करोड़ों देव भगवान के जन्मस्थान में गये हैं। उसे लक्ष्य कर बात (करते हैं)। कितने देव आये हैं वहाँ!

गाथा ११

मेरुसिरे पडणुच्छलिय णीरताडणपणट्ठदेवाणं।
तं वित्तं तुह ण्हाणं तह जह णहमासियं किण्णं।।११।।

अर्थ – हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! मेरुपर्वत के मस्तक पर आपका स्नान होने पर पतन 'गिरने' से उछलते हुए जल के ताड़न से अत्यन्त नष्ट उन देवों की ऐसी दशा हुई, मानों चारों ओर से आकाश ही व्याप्त हो गया हो।

गाथा - ११ पर प्रवचन

मेरुसिरे पडणुच्छलिय णीरताडणपणट्ठदेवाणं।
तं वित्तं तुह ण्हाणं तह जह णहमासियं किण्णं।।११।।

हे परमात्मा! **मेरुपर्वत के मस्तक पर आपका स्नान होने पर, जल–पतन से उछलते हुए जल के...** इतना तो पानी ऊपर से स्नान करते हुए पड़ता है, पछाड़ पड़ती है, देव भागकर ऐसे पूरा आकाश व्याप्त हो जाता है। उस भक्ति के करनेवाले इतने सब (भक्त) आये हैं कि पानी की नदी की भाँति अन्दर गिरता है। उस पानी के पछाड़ से देव उछल जाते हैं। उछलकर पूरे आकाश में व्याप्त हो जाते हैं। अरे! साधारण लोगों ने तो अभी सुनी न हो। समझ में आया? ऐसे णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं किया करे। परन्तु अरिहन्त कैसे पवित्र होते हैं और उनकी पुण्य प्रकृति कैसी होती है, यह निश्चय और व्यवहार उनके किस प्रकार के होते हैं, (इसकी खबर नहीं)। बाहर का व्यवहार, हों! अन्दर का अलग।

कहते हैं, हे नाथ! जब स्नान के पतन से पानी का गिरना हुआ, ऐसा कहने से पानी भी कितना? नदियों के पूर बहे उतना। हे भगवान! यह तो भक्ति ऐसी ही होती है। भक्ति

का भाव शुभभाव इन्द्र कछोटाबन्ध करके अन्दर से कलश... क्या कहते हैं उसे ? क्षीर समुद्र। ढाई द्वीप के बाहर एक क्षीर समुद्र है। नीचे कलश नहीं रखते। हाथों हाथ कलश वहाँ से लाकर मेरुपर्वत के ऊपर (लाते हैं)। अनेकों करोड़ों, अरबों देवों की ऐसी लाईन हो गयी होती है, लाईन। एक के हाथ में से दूसरे के, दूसरे से तीसरे। नहीं तो देव है। एक कलश उठाकर शीघ्र वहाँ ले जा सकते हैं। क्षीर समुद्र के पानी का कलश एकदम वहाँ ले सकते हैं। नहीं। बहुमान है। ओहो! भगवान का स्नान है। तीन ज्ञान के धनी हैं। आत्मानन्द में झूलते हैं। उन्हें पूर्णानन्द की प्राप्ति उस देह में आत्मा में होनी है। इसलिए देव भी ये कलश के जो स्नान करते हैं, वह एक देव दूसरे को, दूसरा तीसरे को, ऐसे करते-करते स्नान के कलश उन पर ढालते हैं। इतना पानी (गिरे) कि जिसकी पछाड़ से देवों के शरीर उछल जाते हैं।

नहीं किया पुण्य का माप, नहीं किया पवित्रता का माप। वह पवित्रता क्या चिदानन्द की है सम्यग्दर्शन में और उसकी भूमिका में बँधा हुआ... अहो! सत्पुण्य कैसे होते हैं ? इन दोनों को जिसने यथार्थ जाना नहीं, उसे यह माहात्म्य नहीं आता। क्या कहते हैं यह तो ? पागल होंगे यह ? सुन न अब। यह पागल हैं, मस्त हैं। इस ज्ञान की भक्ति में मस्त हैं। पूर्ण ज्ञान की भक्ति करने उछले हैं। उनके पुण्य के परमाणु के कारण जो यह सब बनता है, उसमें भगवान को याद करके स्मरण करते हैं। समझ में आया ?

ऐसी दशा हुई, मानों उनकी आवाज के कारण चारों ओर से आकाश ही व्याप्त हो गया हो। इतने अधिक देव... यह संख्या वर्णन करते हैं। इतने देव आये हुए। ... अहो! आज तो जन्मोत्सव है। आज भगवान का जन्मकल्याणक दिवस है। ऐसे परमात्मा को प्राप्त होनेयोग्य सम्यग्दृष्टि जीव तब से तीन ज्ञान को लेकर माता के गर्भ में (आये हैं)। मति, श्रुत, और अवधि। इस लोक को जाने, ऐसा ज्ञान तो माता के गर्भ में होता है। चिमनलालभाई! अवधिज्ञान होता है न! कैसा होता है ? पूरे लोक को जाने इतना ज्ञान तो माता के गर्भ में होता है। ज्ञान... ज्ञान अन्दर चैतन्यसूर्य दीपक अन्दर में से प्रस्फुटित हुआ। जलहल ज्योति।

वह ज्वालामुखी फटते हैं या नहीं ? सुना है न कहीं से। अग्नि के लावा (ज्वालामुखी) पर्वत में से (निकलते हैं)। गाँव के गाँव जला डालते हैं। इसी प्रकार चैतन्य का लावा ज्ञान

में जहाँ अन्दर से फटता है... वह तो अनन्त ज्ञान और आनन्द का पर्वत भगवान है। आहाहा! स्वयं चैतन्य अनन्त... अनन्त बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पर्वत। उसमें एकाग्र होकर जो शान्ति का लावा फटे, यह शान्ति का, वह अग्नि का। समझ में आया? ऐई! शान्ति... शान्ति... शान्ति में ज्ञानी डोलते हैं। ऐसी शान्ति भगवान को प्रगट हुई है, कहते हैं कि हे नाथ! आपकी भक्ति करनेवाले इतने अधिक हैं कि जिसमें आकाश व्याप्त हो गया, इतने अधिक देव थे। पानी की बात बहुत कहना चाहते हैं और देव की भी बहुत थे, ऐसा कहना चाहते हैं। आपकी भक्ति करनेवाले कितने! प्रभु! ओहोहो! मैं तो देव आपकी भक्ति करते हैं, वही भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। आपकी भक्ति करे ऐसे देवों को भाता हूँ। लाखों, करोड़ों, अरबों... ओहोहो! भगवान ऐसे, भगवान ऐसे - ऐसा सुना। यह ११वीं गाथा हुई।

अब एक अलंकार करके वहाँ रहे हुए इन्द्रों ने, जब स्नान कर लेते हैं पश्चात् शकेन्द्र की गोद में भगवान को रखते हैं और कोई इन्द्र सामने बैठकर स्तुति करते हैं। स्तुति करते... करते... करते... खड़े-खड़े कहते हैं, देव के हाथ लम्बे हो जाते हैं। ध्यान रखना! ऐसा लक्ष्य करके एक बात करते हैं।

गाथा १२

अब, बादल में भी अलंकार करके स्तुति करते हैं।

णाह तुम जम्म ण्हाणे हरिणो मेरुस्सि पणच्चमाणस्स।
वेल्लिरभुवाहिभग्गा तह अज्जवि भंगुरा मेहा।।१२।।

अर्थ - हे प्रभो! आपके जन्म-स्नान के समय जिस समय अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने नृत्य किया था, उन लम्बी भुजाओं से जो मेघ भग्न हुए थे, वे मेघ इस समय भी क्षणभंगुर ही हैं।

भावार्थ - ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि जो मेघ क्षणभंगुर मालूम पड़ते हैं, उनकी क्षणभंगुरता का यही कारण है कि जिस समय भगवान का जन्म-स्नान मेरुपर्वत पर हुआ था, उस समय उस मेरुपर्वत के ऊपर आनन्द में आकर अपनी

भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने भगवान के सामने नृत्य किया था और उस समय फैली हुई भुजाओं से मेघ भग्न हुए थे; इसी कारण अब भी मेघों में भंगुरता है, उनकी भंगुरता का दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

गाथा - १२ पर प्रवचन

णाह तुम जम्म ण्हाणे हरिणो मेरुस्सि पणच्चमाणस्स।
वेल्लिरभुवाहिभग्गा तह अज्जवि भंगुरा मेहा।।१२।।

हे प्रभु! हे नाथ! हे वीतराग परमेश्वर! **आपके जन्म-स्नान के समय इन्द्र ने अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर...** ऐसा कहकर बैठे न तो ऐसी लम्बी भुजा करके देव नाचते हैं, हों! इन्द्र भी भगवान की भक्ति में नाच उठे हैं। ऐसे शरीर बालक है। भक्ति का क्या स्वरूप है और इसमें भक्ति कैसी होती है, इसकी जगत को खबर नहीं है। ऐसी होगी? अरे! सुन न, सुन न! पागल हो जाये उसमें। हमारे कहते हैं न? एक भाई नहीं? उत्तमचन्दभाई! भक्ति का... क्या कुछ है? एक गायन गाते हैं। 'भक्ति का हुआ है उन्माद...' उत्तमचन्दभाई गाते हैं न? भाई! वडिया के। नरसिंह मेहता है जैन का। घर में मन्दिर करके सन्तुष्ट होकर अकेला भक्ति, ज्ञान, जानपना, श्रद्धा, रुचि और बस! 'मुझे हुआ है भक्ति का उन्माद...' इन्द्र कहता है, मुझे अभी भगवान की भक्ति का उन्माद हुआ है। ऐसे नाच उठते हैं ऐसे हाथ करके।

प्रभु! **अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर इन्द्र ने नृत्य किया था,...** यह पैर में घुँघरुँ बाँधते हैं। माँ-पिता के निकट लड़का नहीं नाच उठता? छोटा लड़का हो तो नाच उठता है, घनघनाहट करे, घनघनाहट करे। उसमें उसका पिता कोई अच्छी चीज़ लेकर आया हो परदेश में से। वह तो घनघनाहट करता-करता वहाँ ऐसे जाता है। इसी प्रकार भगवान तीन ज्ञान और आनन्द का कन्द लेकर अन्दर से आये हैं और पूर्णानन्द की प्राप्ति होगी, इसलिए वाणी धोध देंगे। उसे लक्ष्यकर कहते हैं, हे नाथ! जब इन्द्र ऐसे (भुजा) फैलाकर नाचते थे न, **उन लम्बी भुजाओं से मेघ भग्न हुए थे,...** देखो! एक अलंकार किया है। ध्यान रखना! मुनि ऐसे बादल को देखते हैं और फिर इन्द्र को लक्ष्यकर बात

करते हैं कि यह बादल जो टुकड़े-टुकड़े दिखते हैं न, प्रभु! पृथक्-पृथक्, यह बादल पृथक्-पृथक् दिखते हैं न? वे बादल जब इन्द्र ने भगवान का नृत्य नहीं किया था, तब तक पूरे आकाश में अखण्ड बादल एकरूप ऐसे थे। ध्यान रखना, अलंकार और अन्तर की भक्ति (ऐसे) दो प्रकार हैं।

जब... आकाश में बादल अखण्डरूप थे, ऐसा लक्ष्य करके कहते हैं, जब इन्द्र नृत्य करने उठा, लम्बे हाथ हुए न, (तो) इन बादलों के टुकड़े हो गये। ये टुकड़े-टुकड़े तब के हमको दिखाई देते हैं। क्या समझ में आया इसमें? **वे मेघ इस समय भी क्षणभंगुर ही हैं।** बादल टुकड़े-टुकड़े भंग दिखाई देते हैं, वे तब के दिखते हैं, कहते हैं। इसका अर्थ कि बाहर में तो इन्द्रों के नृत्य की भक्ति वर्णन करते हैं और अखण्ड बादल टुकड़े होकर पृथक्-पृथक् नजर में पड़ते हैं। भगवान! तब से ये बादल खण्ड-खण्ड हो गये और हमारे में हमने जब आत्मा की दृष्टि नहीं की थी, तब तक आवरण के पूरे-पूरे खण्ड पड़े थे। अखण्ड आवरण पड़ा था, परन्तु जहाँ चैतन्य की भक्ति उछलकर सम्यग्दर्शन किया, (वहाँ) उन बादलों के टुकड़े हो गये। समझ में आया? बादल खण्ड-खण्ड हो गये। आवरण-बावरण का भुक्का उड़ गया। पृथक्-पृथक् रहे। स्वरूप की स्थिरता करेगा, वे उड़ जानेवाले हैं। क्या कहा?

चैतन्यमूर्ति प्रभु, चैतन्य का सूर्य, उसका जहाँ दृष्टि का भान नहीं था, तब ऊपर आवरण के अखण्ड बादल पूरे थे। अनादि से सम्यक् के भान बिना। परन्तु जहाँ सम्यक् भान हुआ (वहाँ) बादल के टुकड़े हो गये। इस आवरण के टुकड़े जैसे रह गये, थोड़े-थोड़े। और हमारी केवलज्ञान प्राप्त करने की तैयारी हो गयी, ऐसा कहते हैं। इस आवरण का भी नाश करके हम परमात्मपद को प्राप्त करनेवाले हैं। समझ में आया इसमें? मणिभाई! यह वे पागल होंगे? वह जरा लज्जित हो, हों! भगवान की भक्ति में। अरे! ऐसा वस्त्र कैसे पहना जाये? ऐसा कैसे हो? चिमनलालभाई!

अरे! माता-पिता के प्रति तो, अच्छी चीज़ लावे तो लड़का अन्दर से उछल जाये। इसी प्रकार ये तीन ज्ञान को लेकर आये और केवलज्ञान प्रगट करके वाणी के-दिव्यध्वनि के प्रपात निकलनेवाले हैं, ऐसा लेकर आये, उनकी भक्ति करनेवाले नाच उठते हैं। उस भव में उन्हें—इन्द्रों को मुक्ति नहीं है। भगवान को उस भव में मुक्ति है। इस भव में मुक्ति

नहीं है, इसलिए इतना भक्ति का प्रमोद इतना आया है कि हे नाथ! हम तुम्हारे निश्चय से आत्मा की भक्ति की है न। उसमें आवरण, भक्ति बिना के, आत्मा के भान बिना पूरे बादल (आवरण) अखण्ड थे, उनके टुकड़े हो गये अथवा यह केवलज्ञान जो अखण्ड प्राप्त होनेवाला है, उसका एक टुकड़ा—सम्यग्दर्शन मुझे प्राप्त हो गया है। समझ में आया? अलंकार भी अलग प्रकार के। ...भाई! अरे... बापू! यह धर्म और धर्म के पिपासु, अमृत के पिपासु और जिसे पूर्ण अमृत लेना है, उनकी भक्ति निश्चय और व्यवहार कोई अलौकिक प्रकार की होती है।

कहते हैं, **ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि आज जो मेघ हमें क्षणभंगुर मालूम पड़ते हैं, उनकी क्षणभंगुरता का कारण यह है कि जिस समय भगवान का (जन्म) स्नान, मेरुपर्वत पर हुआ था, उस समय इन्द्र ने मेरुपर्वत के ऊपर आनन्द में आकर...** आनन्द में आकर **अपनी भुजाओं को फैलाकर...** इन्द्र ने भगवान के सामने **नृत्य किया था,...** नाच उठे थे। बापू! पूर्ण पवित्रता और पवित्रता के अन्तर के साधन और उस पवित्रता की भूमिका में अलौकिक पुण्य के फल, यह सब प्रकार ही अलग होता है।

श्रीमद् तो एक पत्र में कहते हैं कि यह देह अभी मिला, ऐसा पूर्व में नहीं मिला हो तो अब बाद में तो ऐसा देह मिलनेवाला नहीं है। क्यों कहते हैं यह? कि हम अब आत्मा के भान में आये और यह पुण्य ऐसा बँधेगा कि शरीर की जाति ही दूसरी आयेगी। सम्यग्दृष्टि के भान में जो पुण्य बँधेगा और मिथ्यादृष्टि को जो पुण्य बँधेगा, इन दोनों की जाति में अन्तर होता है। एक पत्र में लिखा है। उनकी भाषा बहुत गूढ़ है। ऐसा लिखा, यह देह... क्योंकि था न शरीर में जरा? क्या कहलाता है? संघरणी... संघरणी। यह देह भी आगे का देह ऐसा देह पूर्व में यदि नहीं मिला हो तो आगे के देह में यह जाति रहनेवाली नहीं है। वह देह ही अलग प्रकार का हो जानेवाला है। आत्मा के अनुभव की दृष्टि में कभी अनन्त काल में पुण्य बाँधा नहीं था और यह पुण्य के फलरूप से जो अज्ञानी के शरीर मिले, उनकी अपेक्षा ज्ञानी के पवित्रता के भान भूमिका में जो बँधे, उस शरीर के रजकण अलग प्रकार के (होते हैं)। निरोगता, यश, इज्जत, कीर्ति (अलग प्रकार की होती है)।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में एक श्लोक है। भाई! छह बोल हैं न? यश, कीर्ति, शरीर निरोगता और पुण्य का प्रभाव, यह सब सम्यग्दृष्टि को आत्मा की भान भूमिका में ऐसे पुण्य

बँधते हैं कि जगत को ऐसा दूसरा पुण्य नहीं हो सकता। उसे लक्ष्यकर बात की है, प्रभु! हम हमारे भान में आये, तब बादल के टुकड़े हो गये, समझ में आया? और हमारे केवलज्ञान का एक अंश ऐसा सम्यग्ज्ञान हमको प्रगट हुआ। उसमें भी विवाद उठाते हैं। केवलज्ञान का अंश (कहते हैं)। सुन न अब। मति और श्रुतज्ञान प्रगट हो, वह चन्द्र की दूज है। और वह दूज चन्द्र की पूर्णिमा को लानेवाली है। इसलिए उसका वह भाग और अंश कहा जाता है। इसी प्रकार आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर ध्रुव ध्येय करके कुछ भी अवलम्बन छोड़कर एकाकार पूर्व का चला आता ध्रुवतत्त्व अनादि-अनन्त, उसमें दृष्टि रखकर जो सम्यग्ज्ञान और दर्शन प्रगट किया, उसके प्रताप से क्रम से केवलज्ञान प्राप्त किये बिना रहेगा नहीं। हमारे खण्ड में केवलज्ञान का भाग आ गया और कर्म के बादल के टुकड़े हो गये। समझ में आया?

ऐसा करके (कहते हैं), **मेघों में क्षणभंगुरता है, इसके अलावा दूसरा कोई कारण नहीं है।** यह नाच हुआ, उसमें बादल फट गये। ऐसे नाच उठा आत्मा की भक्ति करते हुए आनन्द के अन्तर स्वरूप में रमणता (होने पर) बादलों के टुकड़े हो गये। वे टुकड़े अब नजर पड़ते हैं। भाई! ऐसा कहते है, कर्म के खण्ड-खण्ड अब ज्ञान में आते हैं। अखण्ड ज्ञान अब नहीं आता, अखण्ड बादल अब दिखाई नहीं देते। चैतन्य की श्रद्धा की, ज्ञान की अन्तर आनन्द की भूमिका जगी, वह अखण्ड बादल अब हमें दिखाई नहीं देते। खण्ड-खण्ड हो गये दिखाई देते हैं। यह ऐसी भक्ति से भगवान का भक्तिभाव है। शुभभाव भी उछला हुआ होता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - १३, शनिवार, दिनांक - ०९-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १२ से १६, प्रवचन-७८६

आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का महारस स्थित है। उसकी अन्तर्दृष्टि करके अन्तर के आनन्द का उफान, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते थे। ऐसे मुनि को जरा भक्ति का भाव आने पर सर्वज्ञ परमात्मा जो ऋषभदेव भगवान हुए, उन्हें लक्ष्य करके स्वभाव के साधन की अनुमोदना करते हुए भक्ति का वर्णन करते हैं। समझ में आया इसमें?

आत्मा अनाकुल आनन्द का रस है। ऐसा जिसने अन्तर में आत्मा को ध्येय बनाकर, लक्ष्य करके; शरीर, वाणी, मन और राग-द्वेष के परिणाम होने पर भी उनका लक्ष्य और रुचि छोड़कर आत्मा के आनन्द की रुचि में जो परिणमकर आनन्द की दशा में रम रहे हैं। उसे मुनिदशा कहा जाता है। उस मुनिदशा में रहा हुए परमानन्द को प्राप्त ऐसे जो भगवान, उनकी पूर्णानन्द की प्राप्ति स्वयं को चाहिए है, इससे परमानन्द को प्राप्त की भक्ति की विकल्प की वृत्ति उन्हें उठी है। और यह ऋषभदेव भगवान का पूरा इतिहास ज्ञान में चितारते हैं।

यहाँ तक आया, देखो! १२वीं गाथा आयी है। हे परमात्मा! देखो! जरा अलंकार से बात है। हे त्रिलोकनाथ! परमेश्वर! आपको पूर्णानन्द के प्राप्ति की फल की दशा (की) प्राप्ति हो गयी, ऐसे आपकी जब पूर्ण दशा हुई, वे तो मुक्ति हुए, परन्तु पहले जब आपका जन्म हुआ था, तब मेरुपर्वत पर जब इन्द्रों ने आपकी भक्ति की, वे इन्द्र भक्ति में ऐसे नाच उठे। यह नाचते हुए उनके हाथ लम्बे हो गये। उसमें बादल जो अखण्ड आकाश में थे, ऐसे लम्बे हाथ से नाचने से, प्रभु! उन बादलों के टुकड़े हो गये। धर्मात्मा परमानन्द को प्राप्त ऐसे परमात्मा को जहाँ हो, वहाँ स्मरण के कारण ढूंढ रहे हैं। इस बादल के पृथक्-पृथक् टुकड़े देखते हैं न, उसमें भगवान को याद किया है कि हे भगवान! इस बादल के टुकड़े कब के पृथक्-पृथक् पड़े हैं? कि आपकी भक्ति करते हुए जब इन्द्र नाच उठे थे, उनके हाथ लम्बे हो गये तो बादल के टुकड़े हो गये। उस समय के टुकड़े नजर पड़ते हैं।

अन्तर में—अन्दर में पूर्णानन्द प्रभु अखण्डानन्द की दृष्टि आत्मा करने से, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने से जो कर्म के आवरण के बादल पूरे और अखण्ड थे, वह अन्तर का भान

करने से उन बादलों के टुकड़े हो गये। वे कर्म के आवरण, प्रभु! हमें अब अखण्डरूप रहे नहीं। थोड़े कर्म के बादल रहे हैं, वे हमारे आनन्द की स्थिरता करके, उस आवरण को टालकर, प्रभु! आपकी पदवी हम प्राप्त करनेवाले हैं। समझ में आया? यह भक्ति की जाति अलग है। यह १२वीं गाथा तक आया।

अब वे भगवान जब जन्मे थे, जब ऋषभदेव भगवान का इस भरतक्षेत्र में चौथे काल में अवतार था, इससे पहले दस प्रकार के कल्पवृक्षों से जीवों की आजीविका चलती थी। याद भी नहीं हो, कितनों ने तो यह सुना भी नहीं होगा। क्या कहा? ऋषभदेव भगवान इस चौबीसी के पहले तीर्थंकर हुए, उससे पहले दस कोड़ाकोड़ी काल में, दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम के काल में वहाँ के मनुष्यों की कल्पवृक्षों के फल से आजीविका थी। कल्पवृक्ष थे। यह व्यापार-धन्धा आदि कुछ नहीं था। वे कल्पवृक्ष थे, तत्प्रमाण वहाँ जाये और उस प्रमाण मिल जाये। ऐसे कल्पवृक्ष दस प्रकार के थे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लम्बी बात है।

उसके पहले.. यह तो संक्षिप्त-संक्षिप्त ऐसी बात करते हैं और भक्ति की अभी अधिक करते हैं। ऋषभदेव भगवान होने से पहले दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम के काल का माप है। इतने काल में सब जुगलिया ही थे। जुगलिया अर्थात् दो जन्मे और दोनों स्वयं पति-पत्नी हो। इस प्रकार आजीविका चलती थी। ऐसे काल में उसमें बहुत काल गया। उसमें पश्चात् जब यह कल्पवृक्ष नष्ट हुए, तब भगवान का यहाँ जन्म हुआ है। अठारह कोड़ाकोड़ी की लम्बी बात है। नौ कोड़ाकोड़ी और यह नव कोड़ाकोड़ी। वह तो जरा लम्बी बात है। ऐसे में अकेले जुगलिया ही थे। और पति-पत्नी दो। वे स्वयं जन्मे और वे स्वयं पति-पत्नी हों। उन्हें वापस दो ही जुगलिया हो, उन्हें दो के अतिरिक्त तीसरा नहीं होता। पूरी जिन्दगी में एक ही जुगलिया जन्मे। ऐसी मनुष्य की स्थिति ऋषभदेव भगवान से पहले अनेक सागरोपम में थी।

सागरोपम अर्थात् बहुत-बहुत वर्षों का माप। उस समय जब दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे, वह काल बदला, इसलिए नष्ट होने लगे। मनुष्य की आजीविका उन पर आधारित थी और काल के बदलाव से वे फल घटने लगे। जैसे अभी यह आम आदि है,

परन्तु पहले के रसकस थे, वैसे अभी नहीं हैं। रसकस थे ऐसे नहीं हैं। उसी प्रकार वहाँ कल्पवृक्ष के फल में काल पड़ता आया है, इसलिए जो फल पकते थे, बहुत देरी से पके, थोड़े पके और आगे जाकर पकना ही बन्द हो गया। परन्तु यहाँ थोड़े पके तब से अपने शुरुआत करते हैं। तब मनुष्यों को... जैसे यहाँ पानी लेने जाते हैं न ? पानी बहुत थोड़ा हो तब सब-सब ... इकट्ठे होते हैं न ? क्या कहलाता है ? कलश... कलश। नल में पानी आवे और कम पानी हो तो सब कलश इकट्ठे होते हैं। नम्बर से लेते हैं। वैसे ही वहाँ कल्पवृक्ष में फल पकने से नम्बर से जो आते, वे लेते। उसमें कोई और ताकतवर होवे तो जोर करे। पाँचवाँ आया हो और सामने घुस जाये। और कोई क्रमसर लेते।

इसी प्रकार राग और द्वेष की तारतम्यता पहले एक तरफी लगभग थी, उसमें भगवान के जन्म होने से पहले ऐसे कल्पवृक्ष के स्थान में फेरफार हुआ। मनुष्यों की प्रकृति में भी हीनाधिक कषाय होने लगी। समझ में आया ? और जब तीव्र राग कषायवाला था, कोई सरलवाला था, कोई मन्दतावाला था, कोई कहे कि ये भले पहले आया नहीं और बाद में आया, भले ले लेवे, अपन दो मिनिट रुकते हैं। उन वृक्षों के फल पर आजीविका थी। ऐसी राग और द्वेष की तारतम्यता हीनाधिक होने लगी। उसमें भगवान का जन्म हुआ। और उनके पास गये। प्रभु ! यह कल्पवृक्ष के फल नष्ट हुए। हमारे आजीविका किस प्रकार करना ? यह लक्ष्य करके यहाँ स्तुति करते हैं।

गाथा १३

अब, तेरहवें श्लोक में स्तुतिकार कहते हैं कि-

जाण बहुएहिं वित्ती जाया कप्पदुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

अर्थ - हे नाथ! हे प्रभो! जिन प्रजाजनों की आजीविका बहुत से कल्पवृक्षों से होती थी, उन कल्पवृक्षों के अभाव में उन प्रजाजनों की आजीविका आप अकेले ने ही की।

भावार्थ – जब तक ऋषभदेव भगवान का जन्म, पृथ्वी–तल पर नहीं हुआ था, उस समय तक इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भोगभूमि की रचना थी। जब उनको जिस बात की आवश्यकता होती थी, तब उस वस्तु की प्राप्ति के लिए उनको प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। वे सीधे कल्पवृक्षों के पास चले जाते थे और अभिलाषित वस्तु की पूर्ति उन कल्पवृक्षों के सामने कहनेमात्र से ही हो जाती थी। उस समय दश प्रकार के कल्पवृक्ष मौजूद थे तथा अलग–अलग सामग्री देकर जीवों को आनन्द देते थे, किन्तु जिस समय भगवान आदिनाथ का जन्म हुआ, उस समय जम्बूद्वीप के इस भरतक्षेत्र में कर्मभूमि की रचना हो गयी, भोगभूमि की रचना न रही, कल्पवृक्ष भी नष्ट हो गये; उस समय जीव भूखे मरने लगे और उनको अपनी आजीविका की चिन्ता हो पड़ी, तब उस समय भगवान आदीश्वर ने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि का उपदेश दिया और भी नाना प्रकार के लौकिक उपदेश दिये; जिससे उनको फिर से वैसा ही सुख मालूम होने लगा; इसलिए कर्मभूमि की आदि में भगवान आदिनाथ ने ही कल्पवृक्षों का काम किया था। इसी बात को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार, भगवान की स्तुति करते हैं कि हे प्रभो! जिन प्रजाजनों की आजीविका, भोगभूमि की रचना के समय बहुत से कल्पवृक्षों से हुई थी, वही आजीविका कर्मभूमि के समय कल्पवृक्षों के बिना आप अकेले ने ही की; इसलिए हे जिनेन्द्र! आप कल्पवृक्षों में भी उत्तम कल्पवृक्ष हैं।

गाथा - १३ पर प्रवचन

जाण बहुएहिं वित्ती जाया कप्पदुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

हे नाथ! हे प्रभु! आप जब गृहस्थाश्रम में थे, तीन ज्ञान के धनी, क्षायिक समकिती। क्षायिक समकिती किसी ने और सुना न हो तो (कहते हैं)। आत्मा की दृष्टि ऐसी निर्मल हुई हो कि जो वापस गिरे नहीं। अनुभव का क्षायिक समकित कि जो केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। ऐसी आत्मा के अनुभव की दृष्टि को क्षायिक समकित कहने में आता है। उसके साथ मति और श्रुत और अवधि तीन ज्ञान थे।

वे पूछने आये, प्रभु! यह आजीविका हमारे किस प्रकार करना? तब कहते हैं कि हे नाथ! **पूर्व में प्रजाजनों की आजीविका, बहुत से कल्पवृक्षों के माध्यम से होती थी...** बहुत वृक्षों से होती थी, वह घटने लगी। **उन कल्पवृक्षों के अभाव में, उन प्रजाजनों की आजीविका आप अकेले ने ही की।** उन्होंने बताया कि भाई! अब ऐसा करो। अब यह अनाज पकता है, इसे लो। इसे ऐसे दलो, इसे ऐसा करो। असि, मसि, कृषि आदि सिखलाया। समझ में आया? उन्होंने अकेले ने सबकी आजीविका का निमित्त बतलाया। देखो! भाई! अब ऐसा करो। यह बाघ आदि काटने आवे तो हाथ में जरा लकड़ी रखो। क्योंकि सब फेरफार हो गया है। पहले बाघ सरल और ऐसे थे, काटते नहीं थे। उनकी प्रकृति बदलने लगी। यहाँ कल्पवृक्ष में फल घटने लगे। इसलिए भगवान को पूछने आये, प्रभु! हम भूखे मरते हैं। हमारा कोई उपाय (करो)। तब उसमें से कितने ही ऐसा निकालते हैं न? भाई! देखो! भगवान ने भी दुनिया की आजीविका पहले बतायी थी। गृहस्थाश्रम में। भाई! सुनो, प्रभु! ऐसे प्रसंग के अन्दर गृहस्थाश्रम में थे, इसलिए ऐसा राग आये बिना नहीं रहता। उस राग के कारण कहा, भाई! ऐसा करो। बर्तन बनाना हो तो तुम... है, उस पर मिट्टी का पिण्ड रखो तो उसमें कुण्डा जैसा होगा। ऐसी सब विधियाँ-७२ कला की विधि प्रजा को बहुत अरबों वर्ष में नहीं था और कल्पवृक्ष से जो आजीविका थी, वह कला—वह सब विधि बतायी।

उस लक्ष्य कर कहते हैं, बहुत कल्पवृक्षों का काम, हे नाथ! आपने अकेले ने किया, समझ में आया? अन्तर्दृष्टि से लें तो यह आत्मा कल्पवृक्ष आनन्द का कन्द है। अनादि काल से अनेक प्रकार के पुण्य और पाप के विकल्प करता था और उसके कारण शरीरादि का निभाव करता था। परन्तु जहाँ आत्मा का भान हुआ, वह कल्पवृक्ष आनन्दकन्द जहाँ आपको सूझा... ओहो! अचिन्त्य आनन्द और अचिन्त्य ज्ञान का समुद्र प्रभु आत्मा है। ऐसी अन्तर में सम्यग्दर्शन की प्रतीति खड़ी हुई। भगवान! वह एक ही कल्पवृक्ष आत्मा। उसके आश्रय से आपको सब आनन्द पूरा पड़ गया। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि के विषय में नहीं उसे निमित्त का अवलम्बन, नहीं राग का आश्रय, नहीं समकिती को वर्तमान प्रगट अवस्था का आश्रय। ध्यान रखना! यह सम्यग्दर्शन धर्म की पहली दशा। इस पहली दशा की जो अवस्था होती है, उसका आधार अकेला आत्मा

अखण्डानन्द द्रव्य है, वह आधार है। समझ में आया इसमें ? यह आत्मा कल्पवृक्ष समान, जितना इसमें एकाकार हो, उतना आनन्द झरे। उस गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी, राजपाट में रहा होने पर भी। मनसुखभाई ! उस चीज़ से निराली दृष्टि करके भगवान आत्मा पूर्णानन्द हूँ, अनाकुल शान्त, जो परमात्मा हुए, वैसा ही मैं हूँ और मैं ही आत्मा परमात्मा होनेवाला हूँ। अप्पा सो परमप्पा। इस प्रकार आत्मा की पूर्णानन्द और अनन्त-अनन्त गुणों का आत्मा कल्पवृक्ष है। अनन्त गुणों का आत्मा कल्पवृक्ष है। उस अकेले का जहाँ आधार लिया, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, पूर्ण आनन्द... समकित अर्थात् सर्व गुणांश, वह समकित। जितने अनन्त गुण हैं, उनके अंश सब निर्मल हुए। उस एक के कारण से। एक चैतन्य के आधार से सब गुण निर्मल हुए। समझ में आया इसमें ?

भक्ति में भी और आत्मा। परन्तु आत्मा बिना भक्ति कहाँ थी ? एक ही आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, इस देह में भिन्न, राग से भिन्न और अपने आनन्द आदि अनन्त गुणों से अभिन्न, ऐसे एक आत्मा में दृष्टि देने से अनन्त गुणों की निर्मल दशा सम्यग्दर्शन होने पर सर्वगुणांश वह समकित, सब गुण प्रकट हुए। उन सब गुणों का आधार कल्पवृक्ष आत्मा है। उनका आधार दया, दान के परिणाम नहीं हैं, देह की क्रिया नहीं है, वाणी नहीं है, दानादि की क्रिया भी आत्मा के अनन्त गुणों को शान्ति को प्रगट करने के लिये आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई आधार नहीं। समझ में आया इसमें ? इस बात को लक्ष्य कर यह बात की है। समझ में आया ?

अब चौदहवीं गाथा में एक दूसरी बात लेते हैं। क्या कहते हैं ? धर्मात्मा अपने आत्मा की दृष्टि का भान है, इससे परमात्मा को जहाँ तहाँ से स्मरण और याद करते हैं। गृहस्थाश्रम में भी लड़का मर गया हो, ऐसे अच्छे-बुरे प्रसंग में याद करे, अरे ! पुत्र एक अच्छे में अच्छा था, चला गया। विधवा बाई। घर में कुछ न हो और स्वयं विधवा हो। भिखारी के लड़के खाते हों, उस समय भी उसे याद आ जाए अन्दर। आहाहा ! अरे ! पति नहीं, अरे ! इसके लड़के, बीस-बीस वर्ष का विवाह, हम तो अकेले। ऐसा करके शोक करे। यहाँ धर्मात्मा आत्मा के ज्ञान की दृष्टि हुई है, वह जहाँ-तहाँ परमात्मा को याद करके आनन्द का उफान लाता है। अब कहते हैं, हे नाथ !

गाथा १४

पहुणा तए सणाहा धरा सि तीए कहण्णहा बूढो।
णवघणसमयसमुल्लसियसासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

अर्थ – हे जिनेश! हे प्रभो! आपने ही यह पृथ्वी सनाथ की है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो नवीन मेघ के समय होनेवाले श्वासोच्छ्वास के बहाने इसमें रोमांच कैसे हुए होते?

भावार्थ – जो स्त्री, विवाह की अत्यन्त अभिलाषिणी है, यदि उसका विवाह हो जाए, अर्थात् वह सनाथ हो जाए तो जिस प्रकार उसके शरीर में रोमांच उद्गत हो जाते हैं और उस रोमांच के उद्गम से उसकी सनाथता का अनुमान कर लिया जाता है। उसी प्रकार हे प्रभो! जिस समय आप इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे, उस समय पृथ्वी में रोमांच हुए; इसलिए उन रोमांचों से यह बात जान ली थी कि आपने इस पृथ्वी को सनाथ, अर्थात् नाथसहित किया।

गाथा - १४ पर प्रवचन

पहुणा तए सणाहा धरा सि तीए कहण्णहा बूढो।
णवघणसमयसमुल्लसियसासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

देखो! परमात्मा को किस प्रकार याद करते हैं! ऋषभदेव भगवान जब सर्वार्थसिद्धि में थे... वह बात हो गयी है, देव में थे, पूर्व भव में आत्मज्ञान प्राप्त और तीर्थंकरगोत्र बाँधा हुआ। सर्वार्थसिद्धि में एक देव का विमान है, अन्तिम में अन्तिम ऊँचा। चौदह ब्रह्माण्ड के छोर पर एक सर्वार्थसिद्धि नाम का विमान, जिसमें देवता–लाखों देवता बसते हैं कि जो सब देव एकावतारी—एक भव में मोक्ष जानेवाले होते हैं। ऐसे देव में से जब यहाँ अवतरित हुए, तब भाई! आषाढ़ कृष्ण २ थी।* क्या कहा?

ऋषभदेव भगवान जब गर्भ में आये, तब आषाढ़ कृष्ण २ थी और ऐसे वर्षा ऐसी

* आदि प्रभु का गर्भकल्याणक दिन

आयी, वर्षा, कि जमीन के अंकुर फूटे। पहली बरसात में अंकुर होते हैं न ? अंकुर जमीन में बहुत होते हैं, पहली बरसात में। और वह आषाढ़ कृष्ण की दूज और भगवान का आत्मा वहाँ से मनुष्य का आयुष्य बाँधकर, इस भव में मोक्ष जाना है, आषाढ़ कृष्ण दूज को ऊपर से आये। उन्हें लक्ष्य करके आचार्य जरा भक्ति करते हैं।

हे नाथ! आप ऊपर से उतरे, तब यह पृथ्वी सनाथ हुई। क्यों ? कि जैसे नवविवाहित स्त्री, नवविवाहित स्त्री पति के संग में रहने से जिसका शरीर प्रफुल्लित और विशेष अंकुर—रोमांच प्रस्फुटित (हो), ऐसा दिखता है। नवपल्लव, नवस्त्री हो, उसे पहले पति का योग हो, तब शरीर के अन्दर विशेष खाने-पीने के कारण उसका शरीर जरा अलग प्रकार का हो जाता है। मानो रोमांच खड़े हो गये हों!

इसी प्रकार हे नाथ! आप जब ऊपर से अवतरित हुए, इस पृथ्वी को रोमांच हो गया है। क्या रोमांच ? वे अंकुर आषाढ़ कृष्ण दूज थी और पहली बरसात आयी तथा यहाँ भगवान माता के गर्भ में ऊपर से आये। तीन ज्ञान लेकर (आये), उस भव में मुक्ति होनेवाली है। उसे लक्ष्य कर कहते हैं, हे नाथ! **आपने ही यह पृथ्वी सनाथ की...** यह पृथ्वी आपने सनाथ की। अभी तक अनाथ थी। सनाथ की। **यदि ऐसा न होता तो नवीन मेघ के समय होनेवाले...** नयी वर्षा आयी **श्वासोश्वास के बहाने...** मानो पूरी पृथ्वी उत्साह का श्वास लेती है। इसलिए कहते हैं, भगवान! यह अनाथ थी, आप मिले, इसलिए सनाथ हुई। नवनीतभाई! देखो! यह मुनि आत्मज्ञानी महाव्रतधारी जंगल में बसे, उन परमात्मा की यादगिरी के लिये पूरा जीवन लक्ष्य में लेते हैं।

आहा! हे नाथ! यह पृथ्वी तो आपके कारण सनाथ (हुई)। आप नहीं थे, तब यह पृथ्वी (अनाथ थी)। कैसे सनाथ ? देखो! पूरी पृथ्वी में अंकुर फूटकर मानो उत्साह का श्वास लेती हो! ऐसी पृथ्वी दिखती है, उन अंकुरों को देखकर। उसमें भी भगवान को याद किया है। समझ में आया ? इसमें अर्थ में लिखा है। **जो स्त्री, विवाह की अत्यन्त अभिलाषिणी है,...** जो स्त्री विवाह की अभिलाषिणी है। जो ब्रह्मचारिणी है, उसे तो कुछ (नहीं होता)। परन्तु जो स्त्री विवाह की अभिलाषी है **यदि उसका विवाह हो जाये अर्थात् वह सनाथ हो जाये तो जिस प्रकार उसके शरीर में रोमांच उद्गत हो जाते हैं...** पति के कारण से। **और उस रोमांच के उद्गत से उसकी सनाथता का अनुमान**

कर लिया जाता है,... कि यह विवाहित है, इसने विवाह किया लगता है। शरीर में एकदम छह महीने का फेरफार हुआ है। (पृथ्वी में अंकुर फूटे), वह आपके आने से हुआ है। समझ में आया? पृथ्वी के रोमांच में भी भगवान को देखते हैं।

हरतां फरतां प्रगट हरिने देखुं, मारूं जीववुं रे सफल तब लेखुं,
मुक्तानंदनो नाथ विहारी,

मुक्तानन्द प्रभु, आनन्द को प्राप्त हुए परमात्मा। परमात्मा पूर्णानन्द और पूर्ण निर्दोष को प्राप्त, वे हमारे जीवन की डोरी है। हमारे जीवन को निभने में वे साधन हैं, ऐसी भक्ति भगवान की भक्ति करते हुए वीर्य का उल्लास करके भक्ति करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **उसी प्रकार हे प्रभो! जिस समय आप इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए, उस समय पृथ्वी में भी रोमांच हुए, इसलिए उन रोमांचों से यह बात जान ली गयी कि आपने ही इस पृथ्वी को सनाथ अर्थात् नाथ सहित कर दिया है।** अभ्यन्तर लेते हैं। आहा! हे परमात्मा! आप योग और क्षेम के नाथ हो। हमारा आत्मा... आपके उपदेश में (आया कि) आत्मा का स्वभाव आनन्द है, उसका अवलम्बन ले। ऐसे हम अवलम्बन लेने से हमें सम्यग्दर्शन हुआ, प्रभु! अब हम सनाथ हो गये है, अभी तक अनाथ, निराधार हमारा शरण कोई नहीं था। हम भगवान आत्मा अन्तर आनन्दकन्द और पूर्ण प्रभु का शरण लिया, प्रभु! हम सनाथ हुए। अब जो प्राप्त हुई चीज़ ज्ञान, दर्शन और शान्ति के हम रखवाले हैं, उसमें आप निमित्त हो, इसलिए आप नाथ हो, और पूर्ण ज्ञानादि प्राप्त नहीं, उसे प्राप्त और मिलाप देंगे, उसे प्राप्त करने में आप निमित्त हो, इसलिए आप ही हमारे नाथ हो।

पति को पत्नी का नाथ कहने में (कारण) यह है कि उसके पास प्राप्त चीज़ का पति रक्षण करे और अभिलाषिणी भविष्य की चीजों को प्राप्त करावे, उसका नाम योग और क्षेम कहा जाता है। ऐसे तीन लोक के नाथ पवित्र परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (हुआ है), ऐसे परमात्मा इस आत्मा के नाथ है। भक्त कहते हैं, हे नाथ! आप हमारे नाथ हो। आपके उपदेश में हमारा आत्मा पूर्णानन्द है, ज्ञान की ज्योति से भरपूर, ऐसा आपने फरमाया। हमारे आत्मा का खजाना खोलकर बतलाया कि यह तेरी ऋद्धि है। उसे हम समझे, इसलिए उसमें आपका निमित्त है; इसलिए आप ही हमारे गुण की रक्षा

के कारण हो। तथा केवलज्ञान और आत्मशान्ति की पूर्णता हमारी अभिलाषिणी चीज़ है, उसे हम प्राप्त करेंगे, उसमें भी आपका निमित्त है। इसलिए आप ही हमारे योग और क्षेम से करनेवाले नाथ हो। ऐ... मनसुखभाई! ऐसी भक्ति नहीं सुनी होगी कभी। आहाहा! क्या कहते हैं। आहा! ऐसे आनन्द में आनन्द में आने पर... आनन्दघनजी एक बार कहते हैं न?

प्रीति अनादि से विष भरी, इस प्रकार करने का ही भाव,
प्रीति निर्विष प्रीतड़ी, क्यों कहे कहो रे... बनाव।

हे नाथ! हमने अनादि से रागरूपी जहर की प्रीति की है और हम आपके शिष्य हैं, ऐसा अनादि से माना है। 'परन्तु करना निर्विष प्रीतड़ी...' भगवान आत्मा राग का प्रेम छोड़कर निर्विष... भाई! यहाँ इस राग को विष कहा है। क्योंकि कितने ही चिल्लाहट मचाते हैं। भगवान! सुन भाई! आहाहा! यह शुभराग होता है न? यह राग भी जहर है। होता अवश्य है, पाप से बचने के लिये आये बिना नहीं रहता, परन्तु आत्मा के अमृत से विरुद्ध भाव है, इसलिए उसे जहर कहते हैं। हे नाथ! आप वीतराग परमात्मा निर्दोषदशा प्राप्त हो, आपकी प्रीति हम राग द्वारा करना चाहते हैं, परन्तु उस राग द्वारा वीतराग की प्रीति नहीं होती।

'करना निर्विष प्रीतड़ी' आहाहा! यह भगवान आनन्द का कल्पवृक्ष। राग और पुण्य-पाप के भाव का प्रेम छोड़कर रागरहित के साथ प्रेम (करे)। निर्विष प्रीति आत्मा के प्रति हुई और भगवान के प्रति हुई, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? गजब बातें, भाई! इसमें से कुछ दूसरा सरल होगा या नहीं? यही मार्ग और यही पद्धति। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ', 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ।' अनन्त काल में, भूत, वर्तमान और अनन्त भविष्य—एक ही मार्ग से आत्मा की शान्ति अखण्डानन्द प्रभु के प्रेम में अन्तर में जाने से यह राग और विकार का प्रेम छोड़ने से आत्मा की रुचि का प्रेम जगे और सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया? तब उसे धर्म होता है। इसके बिना धर्म तीन काल-तीन लोक में दूसरे प्रकार से नहीं होता।

इसलिए कहते हैं, नाथ! आपने जब अवतार लिया, पृथ्वी सनाथ हुई। इसी प्रकार हमारे समकित का जन्म हुआ... आहाहा! अणगारे जाया, भाई! कहा है न? अणगारे जाया। अणगार जन्मे। अणगार—अन्दर में मुनिपना आत्मा के आनन्द में घोलन होने पर प्रथम तो सम्यग्दर्शन होता है, और पश्चात् जब आत्मा के आनन्द में रेलमछेल उपजती है,

तब उसे मुनिपना—चारित्र आता है। एकदम मस्त हो जाते हैं। जगत की दरकार नहीं, दुनिया की कुछ नहीं। एक आहार-पानी का विकल्प आता है, बाकी मुनि आनन्द में मस्त होते हैं। ऐसे मुनि को लक्ष्य कर स्वयं कहते हैं, प्रभु! ऐसी दशा हमारी हुई, अब हम हो गये सनाथ। समझ में आया? हम केवलज्ञान लेनेवाले, लेनेवाले और लेनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान! आप परमात्मपद को प्राप्त हुए, हम भी प्राप्त करनेवाले हैं। ऐसा इसमें कहते हैं, हों! भक्ति में।

श्रीमद् भी ऐसा कहते हैं न? अन्तिम नहीं आता? 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में...' 'यह परमपद प्राप्ति का किया ध्यान मैं।' यह चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का कन्द प्रभु, उसके प्रेम में, प्रीति की रुचि में हम आये हैं।

यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान मैं,
गजा बिना अरु हाल मनोरथ रूप जो॥

जिस भाव से परमात्मपद प्राप्त हो उस भाव का गज, प्रभु! अभी नहीं। हमारे में पामरता के कारण वह पूर्ण परमात्मा इस भव में होवें, ऐसा हे नाथ! स्वभाव की दृष्टि होने पर भी वह हमारे में परमात्मा होने की क्षमता नहीं है।

यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान में,
गजा बिना अरु हाल मनोरथ रूप जो॥
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' मन में रहा।
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' मन में रहा।
प्रभु आज्ञा से होऊँगा वही स्वरूप जो।

प्रभु! आपकी आज्ञा है और आपने कहा है कि ऐसा भान करे, उसे अल्पकाल में केवलज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान मैं,...' अर्थात् एकाग्रता। परन्तु पूर्ण एकाग्रता की हमारी क्षमता नहीं है, नाथ! कोलकरार से कहते हैं, एकाध भव करके हम हे नाथ! आपकी आज्ञा है कि ऐसा पद समझे और धारावाही जिसकी श्रद्धा-ज्ञान (वर्ते),... ऐसी खबर पड़ती होगी? अरे! भगवान! तुझमें ताकत इतनी है कि तीन काल-तीन लोक को जानने की ताकत है। अरे! आत्मा सिंह जैसा है। सिंह... सिंह। परन्तु यह बातें...

कहा था न एक बार ?

जे दिशाये सिंह संचर्या रज लागी तरणा,
खड सूका सूखशे नहिं चरे अेने हरणां।

यह हिरण ऐसे मृग उसे नहीं चर सकेंगे। इसी प्रकार भगवान सर्वज्ञ पन्थ का मार्ग, वीर का आत्ममार्ग अखण्डानन्द में चरते हुए, अखण्डानन्द के पर्वत पर चढ़कर विकार का निषेध करते हुए जो आत्मज्ञान, दर्शन और स्थिरता होती है, उस पन्थ में ज्ञानी जाते हैं। उस पन्थ की बातें सुनते हुए उस पन्थ में सिंह विचरण करते हैं। उस पन्थ की बातें सुनते हुए काँप उठे, ऐसे काँप उठे... अर र र! यह! कायर का कलेजा... उस मार्ग की बातें सुनकर भी खदबदाहट हो जायेगी। उस मार्ग को समझ सकेगा नहीं। हिरण जैसा जिनका कलेजा, वे तिनके को नहीं खा सकेंगे।

इसी प्रकार वीतराग के मार्ग की जो बातें, अन्तर के चैतन्य के धातु में से निकला हुआ मार्ग-पन्थ, उसकी बातों को प्रभु! कायर प्राणी नहीं समझे, नहीं जँचे। यह आता है न ? उस श्लोक में नहीं आता ?

वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल...
रे गुणवन्ता रे ज्ञानी, अमृत वरस्या रे... पंचम काल में...

इस भगवान आत्मा का मार्ग (सुनते हुए) कायरों का कलेजा काँप उठता है, हों !ऐसा होगा ? ऐसा होगा ? सुन न अब। 'वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल'। यह प्रतिकूलता का पर्वत डोले परन्तु उसमें से ज्ञानी चलित नहीं होते। ऐसे ज्ञानी के मार्ग में चढ़े हुए कहते हैं, 'परम शान्तरस मूल औषध जो भवरोग के...' वीतराग की वाणी और उसका भाव, (उसमें) भव के रोग को नाश करने का सामर्थ्य है। परन्तु कायर को, नपुंसक को... नपुंसक कहा है, हों! और धीमे-धीमे (कहते हैं)।

समयसार कहता है कि विकार की रुचिवाला... संस्कृत भाषा में क्लीब कहा है। अपनी भाषा में उसे नपुंसक कहते हैं। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, अरे.. आत्मा ! विकार के भाव का प्रेम (है) और निर्विकारी भगवान का प्रेम तू करता नहीं, तेरा वीर्य

नपुंसक है। नपुंसक को प्रजा नहीं होती। इसी प्रकार वीर्य के पुण्य-पाप के प्रेमवाले को आत्मा की शान्ति की प्रजा नहीं होती। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर शान्त और अविकारी रस का कन्द है, उसकी वीर्य की स्फुरणा जो नहीं करता और मात्र पुण्य और पाप के भाव के राग के प्रेम में पड़ा, तू नपुंसक है। आहाहा! लोग चिल्लाहट मचा जाये, हों! नपुंसक को कोई पुत्र नहीं होता; उसी प्रकार विकार के प्रेमी को आत्मा के सम्यग्दर्शन की प्रजा और आत्मा के ज्ञान की प्रजारूपी अवस्था उसे प्रगट नहीं होती। समझ में आया? यह ऐसा कहते हैं, लो।

हे नाथ! आपने तो पृथ्वी को सनाथ किया। यह हमारी असंख्य प्रदेशी भूमि आत्मा, यह हमारा ज्ञान हमें होने से और आपका निमित्त मिलने से हम सनाथ हो गये। अब हम अनाथ नहीं रहे। अब पन्द्रहवाँ श्लोक। ऐसे चलता जाता है। पूर्व से लेते-लेते केवलज्ञान तक और मोक्ष तक भक्ति में ले जायेंगे। यह पन्द्रहवाँ श्लोक।

गाथा १५

अब, ऋषभदेव भगवान के दीक्षा के काल को लक्ष्य में लेकर भक्ति का वर्णन करते हैं।

विज्जुव्व घणे रंगे दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइया तइयावि तए रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

अर्थ – हे वीतराग! जिस प्रकार मेघ में बिजली दीखकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपने जिस समय नृत्य करती हुई नीलांजना नाम की देवांगना को पहले देखकर, पीछे नष्ट हुई देखी, उसी समय आपने राज्य-लक्ष्मी को भी वैसा ही देखा, अर्थात् उसको भी आपने चंचल समझ लिया।

भावार्थ – किसी समय भगवान सिंहासन पर आनन्द से विराजमान थे और नीलांजना नाम की अप्सरा का नृत्य देख रहे थे, उसी समय अकस्मात् वह अप्सरा विलीन हो, पुनः प्रकट हुई। इस दृश्य को देखकर भगवान को शीघ्र ही इस बात का विचार हुआ कि जिस प्रकार यह अप्सरा विलीन होकर तत्काल में प्रकट हुई

है; उसी प्रकार इस लक्ष्मी का भी स्वभाव है, अर्थात् यह भी चंचल है; अत: उसी प्रकार शीघ्र ही भगवान को वैराग्य हो गया। उसी अवस्था को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार ने इस श्लोक में भगवान की स्तुति की है।

गाथा - १५ पर प्रवचन

विज्जुव्व घणे रंगे दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइया तइयावि तए रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

हे परमात्मा! **जिस प्रकार मेघ में बिजली प्रकट होते ही नष्ट हो जाती है,...** बादल में जैसे बिजली का चमत्कार आवे और बिजली नष्ट हो जाती है। **उसी प्रकार आपने नृत्य करती हुई नीलांजना को पहले देखा, पश्चात् नष्ट होते हुए भी देखा...** क्या कहते हैं ? ऋषभदेव भगवान गृहस्थाश्रम में थे, अभी राजपाट था। आत्मा का भान हुआ था, अभी चारित्र नहीं था। और केवलज्ञान के साधन करने के लिये अभी तैयार नहीं हुए थे। उस समय बहुत वर्ष हुए। ८३ लाख पूर्व गये। यह वापस और बड़ी बात।

पहले के आयुष्य बड़े थे। ८४ लाख पूर्व का, करोड़ पूर्व का (आयुष्य)। बापू! यह गज बड़े हैं। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा के ज्ञान में आया हुआ कथन है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ वर्ष, सत्तर लाख करोड़ वर्ष, छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे-ऐसे ८४ लाख पूर्व का भगवान का आयुष्य था। उसमें ८३ लाख पूर्व तो गृहस्थाश्रम में गये। कोई कहे कि ऐसा भान था न, (चारित्र) क्यों नहीं ? भाई! उनके पुरुषार्थ की गति में क्रम होता है। प्रत्येक जीव के पुरुषार्थ की अपनी योग्यता का क्रम (होता है)। बापू! तीर्थंकर होनेवाले, केवलज्ञान लेनेवाले हैं। ८३ लाख (पूर्व) समकित (होने के पश्चात्) गृहस्थाश्रम में रहे। मुनिपना आया नहीं। जितना पुरुषार्थ चाहिए, उतना पुरुषार्थ ८३ लाख पूर्व तक नहीं आया। समझ में आया ? आत्मज्ञान और आत्मदर्शन के अनुभव में रहे।

तब इन्द्र को विचार आया, इन्द्र को, अरे! भगवान का बहुत काल तो इसमें जाता है। अब दीक्षित कब होंगे ? ऐसा तो कहा नहीं जाये, तीन ज्ञान के धनी हैं। जिनका तेज

इतना है कि जिनके (तेज) सामने मनुष्य उसका बल झेल नहीं सकता। इतनी पवित्रता और इतना जिनका पुण्य है, दूसरा अज्ञानी पामर नजर माँड सके नहीं। उनसे कहे नहीं, इसलिए उसने एक बार भगवान एक सिंहासन पर बैठे थे। समझ में आया? आनन्द में भगवान विराजमान हैं। उसमें इन्द्र ने देवियों को नृत्य करने उतारा। देवियाँ नाचती थीं। भगवान के समक्ष ऐसे नाचती थीं। उसमें एक देवी ऐसी उतारी कि नाचते-नाचते उसका आयुष्य पूरा हो गया। ऐसा देव ने जानबूझकर उतारी कि इसका आयुष्य अभी (पूरा होनेवाला है)। और इसका जैसे नहीं शरीर कि पड़ा रहे वे तो ऐसे बिजली के झपकारे की तरह शरीर चला जाता है। समाप्त हो जाता है। जीव चला जाता है। वह देवी नाचती थी। तीन ज्ञान के धनी भगवान अभी मुनि नहीं हुए थे। ८३ लाख पूर्व रहे। ऐसे जहाँ देवियाँ नृत्य करती हैं, उसमें एक नीलांजना नामक देवी कि जिसका आयुष्य उस क्षण में पूरा हो (इस प्रकार से) उसने रखी थी। समझ में आया? अब देव के आयुष्य भी ऐसे हैं, तो मनुष्य के गुड्डे की क्या बातें करना? यह तो दाल, भात का ढोकला है। यह कब गिरे और कब नाश हो, इसका मेल नहीं है। समझ में आया? यह दाल, भात का ढोकला है। यह क्या है? खाने का सामान यहाँ स्थापित है। उसे यह नहीं होता। देव को वैक्रियक शरीर होता है। उसे आहार-पानी नहीं होता। अमुक महीने में इच्छा हो तो कण्ठ में से अमृत झरता है और आहार की तृप्ति होती है।

उसका आयुष्य पूरा हुआ, नाचते-नाचते, हों! नीलांजना नाम की देवी ऐसे नृत्य करती थी। एकदम उड़ गयी, दूसरे भव में गयी। भगवान ने ऐसा देखा, अरे! यह एक देवी थी, वह चली गयी, उसके जगह दूसरी देवी प्रस्तुत की। नाच में भंग और खण्ड न पड़े, (इसलिए) दूसरी देवी प्रस्तुत की। परन्तु ऐसा ध्यान था। ऐसा लक्ष्य में जरा आया। अरे! क्या कहते हैं? देखो!

इस दृश्य को देखकर भगवान को शीघ्र ही इस बात का विचार हुआ कि जिस प्रकार यह अप्सरा विलीन होकर तत्काल प्रकट हुई है; उसी प्रकार इस राज्यलक्ष्मी का भी स्वभाव है... भान तो था, सम्यग्दर्शन था, तीन ज्ञान थे परन्तु वैराग्य-चारित्रदशा का वैराग्य नहीं था। यह प्रसंग उन्हें बना। स्वयं के कारण से उन्हें बना। देखनेवाले तो बहुत थे, दूसरों को क्यों वैराग्य नहीं हुआ? समझ में आया? ऐसा लगा,

ओहो ! इस देवी का आयुष्य इतना ? यह नाचते-नाचते समाप्त ? ओहो ! यह लक्ष्मी और राज सब नाशवान क्षणभंगुर है। प्रभु ! उन प्रभु को उस समय जातिस्मरण होता है। तीन ज्ञान तो होते हैं। मतिज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को जाने और दूसरे को जाने, ऐसा सम्यग्ज्ञान। श्रुतज्ञान अर्थात् आत्मा की शान्ति मिले और दूसरे को जाने, ऐसा श्रुतज्ञान। अवधिज्ञान दूसरे के मन की कितनी ही बात भूत, भविष्य के भव को जाने, ऐसा अवधिज्ञान भी था।

इस प्रकार जहाँ नीलांजना को देखा और गयी, ऐसा जहाँ लगा... ओहोहो ! बिजली की चमक के जैसा यह आयुष्य है। श्रीमद् ने कहा है न, भाई ! नहीं ?

विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य वह तो जल की तरंग
पुरन्दरी चाप अनंग रंग, क्या राचिये वहाँ क्षण का प्रसंग।

सोलह वर्ष में जब मोक्षमाला-भावना का एक ग्रन्थ बनाते थे, उसमें यह एक श्लोक रखा है। महासुखभाई ! कितने वर्ष में ? सोलह वर्ष। किसके ? देह के। आत्मा को कुछ वर्ष नहीं। आत्मा अनादि-अनन्त है। देह की सोलह वर्ष की उम्र (थी), तब एक यह लिखा, 'लक्ष्मी प्रभुता पतंग,...' हे आत्मा ! लक्ष्मी की चमक बिजली की चमक जैसी है। यह आये और जायेंगे, जाये और आये, यह सब बिजली की चमक जैसे हैं। सत्य बात होगी मनसुखभाई ! बहुत वर्षों से संग्रह कर पड़े हैं न। ऐ... पूनमचन्दभाई ! पूनमचन्दजी ! वह आया है या नहीं आया तुम्हारा ? नहीं आया होगा।

'विद्युत लक्ष्मी...' भावना में यह बोल रखा है। लक्ष्मी तो बिजली के चमक जैसी है। 'प्रभुता पतंग...' बाहर की महत्ता तो पतंग के रंग जैसी है। कागज को रंग लगावे न ? धूप लगे तो फू होकर उड़ जाता है। यह बड़ा राजा और सेठिया और अमलदार तथा पाँच-पाँच हजार के वेतनदार और... यह सब प्रभुता पतंग के रंग जैसी है। 'आयुष्य वह तो जल की तरंग...' और आयुष्य की स्थिति तो जल की तरंग जैसे एक लहर उठी और बैठी, उठी और बैठी। 'आयुष्य वह तो जल की तरंग, पुरंदरी चाप अनंग रंग।' आकाश में मेघ धनुष नहीं होता ? इन्द्रधनुष। अपने काजली कहते हैं। काजली कहते हैं न ? वह इन्द्रधनुष। वह ऐसे होता है और जाता है, ऐसा रंग। 'पुरंदरी चाप...' चाप जैसा ऐसे धनुष होता है न ? भोग के रंग वे इन्द्र के धनुष जैसे हैं। समझ में आया ?

'पुरंदरी चाप अनंग रंग, क्या राचिये वहाँ क्षण का प्रसंग।' इन क्षण के प्रसंगों में कहाँ आत्मा रचता-पचता है ? भाई ! ये क्षण के प्रसंग। बिजली की चमक जैसी लक्ष्मी और यह सब प्रभुता-महत्ता पतंग के रंग जैसी है। आयुष्य की डोर वह जल की तरंग उठी जैसी, एकदम बैठ जायेगी। यह उठे। और 'पुरंदरी चाप अनंग...' अनंग अर्थात् कामभोग। अरे ! कामभोग के रंग तो क्षण के प्रसंग हैं। क्या राचिये ? प्रभु ! कहाँ उनमें मग्न होना ? वह क्षण की दौलत और क्षण के रंग। ऐसा कहकर भावना आत्मा में ली है।

इसी प्रकार यहाँ भगवान को भावना आयी। जातिस्मरण (हुआ)। ऐसे भान तो है, सब है। अरे ! यह देवी भी, जिसे '**अमरी**' अन्दर शब्द पड़ा है न ? भाई ! '**अमरी**' अर्थात् देव को अमर कहते हैं न। अमर अर्थात् दीर्घ आयुष्य होती है। दीर्घ आयुष्य अर्थात् अमर। अमर अर्थात् कहीं त्रिकाल रहे, ऐसे अमर नहीं। बड़ी आयुष्यवाले। ऐसे नहीं, यह थोड़ा-बहुत (आयुष्य नहीं)। यह तो असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य होता है। देव के असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य है, जिससे उसे अमर कहा जाता है। उसकी स्त्री के लिये '**अमरी**' (कहा जाता है)। कहते हैं, भगवान ऐसे बैठे थे और ऐसा जहाँ देखा, अरे ! इस देवी का आयुष्य तो चपल, क्षण में पूरा हो गया। आहाहा ! क्षण में इस सब राजपाट का नाश होगा। लक्ष्मी चंचल है, यह राज चंचल है। इस प्रकार वैराग्य करके उस क्षण में भगवान ने चारित्र अंगीकार करने की भावना की। समझ में आया ?

भावना की, इसलिए लौकान्तिक देवों ने आकर (अनुमोदना की)। उनका नियोग है, लौकान्तिक (नाम का) एक पाँचवाँ देवलोक है। सौधर्म, ईशान, सनतकुमार, माहेन्द्र— चार और पाँचवाँ ब्रह्मलोक है। ऊपर देवलोक बहुत हैं, हों ! यह सब बात लॉजिक से सिद्ध हो सके, ऐसी है, हों ! एक-एक बात को सिद्ध करने जायें तो लम्बी चले कहाँ से ? न्याय से, ज्ञान के तर्क से यह सब बात भगवान ने कही है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जानकर कही। प्रवचनसार में है न ? भाई ! सुस्पष्ट तर्क से सब सिद्ध हो सकता है। कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसार के कर्ता, उसकी अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की, उसमें पाठ है कि भगवान सर्वज्ञ ने कही हुई जो सब तीन काल, तीन लोक को जानी हुई बात ज्ञानी को सुस्पष्ट तर्क द्वारा साबित / सिद्ध हो सकती है। न समझ में आये और सिद्ध न हो सके, ऐसी बात नहीं है। परन्तु उसके लिये इसका प्रयास और तैयारी चाहिए।

इसलिए कहते हैं कि नाथ! वे लौकान्तिक देव आये और स्तुति करते हैं, प्रभु! बहुत अच्छा विचार किया। वैसे तो आपने रागरहित चारित्र अंगीकार करने की तैयारी की और राज को छोड़कर प्रभु! बहुत धन्य, हम आपको अनुमोदन देते हैं। और हमारा नियोग है, प्रभु! हम तो पामर हैं। हम देव अर्थात् पामर। समझ में आया? परन्तु आप महा पवित्रता के पिण्ड। प्रभु! आप तो इस भव में केवलज्ञान लेनेवाले हो और बहुत जीवों को आपके उपदेशों का निमित्त मिलनेवाला है। इसलिए प्रभु! आप बाहर निकलो और आपने बराबर विचार किया, यथार्थ किया है। ऐसा करके देव वन्दन करके चले गये। समझ में आया? यह बात जरा कहते हैं। १६वीं गाथा।

गाथा १६

वेरग्गदिणे सहसा वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का।
देव तए सा अज्ज वि विलवइ सरिजलरवा वरई।।१६।।

अर्थ – हे जिनेश! हे प्रभो! जिस दिन आपको वैराग्य हुआ था, उस दिन जो आपने यह पृथ्वी जीर्ण तृण के समान छोड़ दी थी, अतः तब से यह दीन पृथ्वी, इस समय भी नदी के ब्याज से (बहाने) विलाप कर रही है।

भावार्थ – जिस समय नदी में जल का प्रवाह आता है, उस समय नदी जो कल-कल शब्द करती है, उसको अनुलक्ष्य कर ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! यह नदी जो कल-कल शब्द कर रही है, यह इसका कल-कल शब्द नहीं है किन्तु यह कल-कल शब्द इस पृथ्वी के विलाप का शब्द है क्योंकि जिस समय आपको वैराग्य हुआ था, उस समय आपने इस बेचारी पृथ्वी को सड़े तृण के समान छोड़ दिया था और आप इसके नाथ थे, इसलिए आपके द्वारा ऐसा अपमान पाकर यह विलाप कर रही है और कोई भी कारण नहीं।

गाथा - १६ पर प्रवचन

वेरग्गदिणे सहसा वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का।
देव तए सा अज्ज वि विलवइ सरिजलरवा वरई।।१६।।

देखो! एक अलंकार कैसा (किया है)! सन्तों ने भगवान को याद करने-स्मरण में कैसा लेते हैं? भगवान! आपको जब उस समय वैराग्य दशा, ऐसी रमणता—आत्मा में चरने की—चारित्र अंगीकार करने की भावना हुई, तब आपने इस राज्य को तृणवत् छोड़ दिया था।

हे नाथ! **जिस दिन आपको वैराग्य हुआ था,...** हिन्दी है। **उसी दिन से आपने यह पृथ्वी पुराने तृण के समान...** पुराना तृण अर्थात् पुराना तिनका, सड़ा हुआ तिनका (छोड़े), वैसे छोड़ दिया। प्रभु! यह पृथ्वी दीन हो गयी। वह नदी थी न? नदी। गाँव में नदी चलती थी न बाहर? उस नदी के पूर में कल... कल... कल... कल... आवाज होती थी। बहुत पानी के पूर का धक्का लगे, इसलिए कल... कल... आवाज होती है न? प्रपात की। उसे लक्ष्य में लेकर आचार्यदेव ने भगवान को याद किया है। हे नाथ! आपने जब आत्मा के आनन्द की उग्रता प्रगट करने के लिये राजपाट को छोड़ा, पृथ्वी को सड़े हुए तिनके की तरह छोड़ दिया, प्रभु! यह पृथ्वी पानी के रव... रव... हो, वह कल-कल रोती है। आहाहा! क्या कहा यह?

इस पानी में कल... कल... (आवाज) हो रही है, वह पृथ्वी इस बहाने रोती है। हम सनाथ थे, भगवान छोड़कर चले गये, तथापि राज और पाट तथा इन्द्र जिनके भक्त, जिनके चरण इन्द्र चाटे। जिनके चरण इन्द्र चाटे, जिनके जन्म से पहले इन्द्र आवे और माता का गर्भ साफ करे और पन्द्रह-पन्द्रह महीने तक रत्न की वृष्टि (हो)। ऐसे इन्द्र के पूजनिक प्रभु! आपने सड़े हुए तिनके के समान (राजपाट को छोड़ दिया)। यहाँ एक पैसा छोड़ना हो तो विचार करे। रुपया छोड़ना हो न... हाथ में रखे (और) बहुत देरी हो तो पसीना हो। पसीना हुआ लगता है, छोड़ दूँ, लाओ। रुपया रोता था।

एक दूसरा अधिकार आचार्य ने इसमें लिया है। पद्मनन्दि (आचार्य)। यह लक्ष्मी कृपण के यहाँ क्यों गयी? कि उदार दिलवाले ने पैसे को ठिकाने नहीं रखा। ऐसे से ऐसे,

ऐसे से ऐसे जहाँ-तहाँ प्रयोग कर डाला। उदार दिलवाले ने पैसा, रुपया, लाखों और करोड़ों, अरबों प्रयोग कर डाले। ठिकाने पड़ने नहीं दिया। लक्ष्मी ने विचार किया कि इसके पास जाऊँगी तो मैं ठिकाने नहीं रह सकूँगी। कृपण के पास जाऊँ तो उसके भण्डार में एक जगह पड़ी तो रहूँ। पूरणचन्दजी! यह आचार्य कहते हैं, हों! यह सब दृष्टान्त आचार्य ने कहे हुए (कहते हैं), घर की बात एक भी नहीं है।

भगवान त्रिलोकनाथ को साधते, आत्मदशा को साधते हुए मुनि कहते हैं कि यह लक्ष्मी क्यों एक जगह रही? कृपण के, कंजूस के घर में। वह थक गयी, उदार के घर में गयी, वहाँ जहाँ-तहाँ, जहाँ-तहाँ खर्चा खर्च, खर्चा खर्च। हमेशा हजारों-लाखों के दान। क्योंकि यह श्रावक का कर्तव्य है। हमेशा राग घटाकर किंचित् दान करे, करे और करे। अथवा तृष्णा घटाये, अथवा मुनि आदि धर्मात्मा को दान दे। ऐसा उसका कर्तव्य है। इसलिए लक्ष्मी का दान इतना करे... लक्ष्मी थक गयी। मनसुखभाई! कहते हैं कि यह निश्चितन्ता से मुझे अब यहाँ रखेगा। यह (कृपण) भण्डार कभी खोलेगा नहीं। हम निश्चिन्तता से पड़े (रहेंगे), इसलिए कृपण के हाथ में लक्ष्मी गयी। एक जगह पड़ी रहने के लिये। ऐसा कहकर कृपण की मजाक की है। अरे! भिखारी! तुझे कुछ थोड़ा मिला, उसमें किंचित् दान, भक्ति, प्रभावना में खर्च करने का भाव न आवे और संग्रह करके पड़ा है, वह लक्ष्मी ही ऐसी है कि रहे अब यहाँ, थकान लगी है तो यहाँ उतारती है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! यह दीन पृथ्वी, इस समय आपके वियोग से विलाप कर रही है। क्या कहा? नदी के बहाने प्रभु! आपका विरह पड़ा। आपने पृथ्वी के राज को छोड़ दिया। इस पृथ्वी के राज की अपेक्षा... अरे! कल्पवृक्ष समाप्त हुए तब आपने उसकी आजीविका बतायी, उसे तृणवत् छोड़कर चल निकले, सामने देखा नहीं। इस पृथ्वी में पानी कल... कल... करता है, भगवान! वह आपके विरह के वेदन का रोना है। आहाहा! अलंकार करके भक्ति (में) भगवान... भगवान हो रहे हैं। परमानन्द को प्राप्त प्रभु, जहाँ हो वहाँ प्रभु! मैं तुझे देखता हूँ। जहाँ हो, वहाँ दुनिया के प्रसंग में तुझे ही मैं देखता हूँ। ओहो! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ, जिसकी एक समय की तीन काल-तीन लोक (जानने की) दशा! आहाहा! उसका हमको विरह। समझ में आया? उसका हमको विरह और पृथ्वी कहती है कि हमको विरह।

कुन्दकुन्दाचार्य को भी ऐसा हुआ था। ध्यान में थे। पौन्नूरहिल। ऐई! उसमें झूठा लेख है। सवेरे पढ़ते थे। योजुर... योजुर कहाँ गये? पूनमचन्द! सवेरे योजुर शब्द बोले। यह क्या निकाला इसमें? कहा। पोन्नूरहिल शब्द चाहिए। वहाँ मैं बैठा था न? सवेरे दूध पीने। योजुर... योजुर नहीं, पौन्नूरहिल। यह पौन्नूरहिल मद्रास से इस ओर अस्सी मील... अस्सी मील है न? अस्सी मील (दूर) वन्देवास है। वहाँ से पाँच मील दूर पौन्नूरहिल पहाड़ी है। वहाँ दो हजार वर्ष पहले ऐसे आनन्द में विराजते थे। विचार करते-करते एक विकल्प ऐसा आ गया, अरे! हम भरतक्षेत्र के मानव, हमें परमात्मा का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में हमें तीन लोक के नाथ की यहाँ उपस्थिति नहीं, अरे! हमारा अवतार पंचम काल में (हुआ)। भगवान यहाँ नहीं और भगवान विराजते हैं कहीं। हमें विरह पड़ा। समझ में आया?

जैसे पति मरे और पत्नी जिस तरह विरह में वेदन करे, उसी प्रकार मुनि को अन्दर ऐसा यह विकल्प आया। आहाहा! हे नाथ! पूर्णानन्द सर्वज्ञपद न मिले और जहाँ पिता न मिले और लक्ष्मी समाप्त हो तो परिवार में क्लेश होता है। इसी प्रकार हे नाथ! केवलज्ञान का अभी अत्यन्त विरह पड़ा। पिता की यहाँ उपस्थिति नहीं होती और प्रजा में धर्म के बहाने कोलाहल कर रखा है। किसी ने कहीं धर्म माना, किसी ने कहीं माना और किसी ने कहीं माना। जो वास्तविक आपका कहने का स्वरूप था, उस बात को समझनेवाले विरले हो गये। ऐसा कहकर अन्दर विकल्प आया था। पश्चात् पुण्य का योग था (तो) भगवान के पास गये थे। बात पहली बैठे, न बैठे, परन्तु सुनो तो सही। एक बात ऐसी है। गये थे, आठ दिन रहे थे और विरह तोड़ा था। भरतक्षेत्र के मुनि ने महाविदेह के भगवान की यात्रा की और वहाँ से आकर, आठ दिन सुनकर और यह समयसार आदि शास्त्र बनाये। तीन काल-तीन लोक में यह सत्य बात है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य को भगवान का विरह लगा। उसे लक्ष्य कर हमें विरह है, मूल तो ऐसा कहते हैं। भाई!

आचार्य कहते हैं, पृथ्वी रोती है, हमें खेद होता है। सर्वज्ञ का हमको विरह। परमात्मा का विरह। हमारी सर्वज्ञदशा का हमको विरह। ऐसा कहकर पूर्णानन्द की भक्ति का भाव उठा है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - १४, रविवार, दिनांक - १०-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १६ से १९, प्रवचन-७८७

पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। इसे वनशास्त्र कहा जाता है। क्योंकि वन में सन्त, मुनि रहते थे। असंगपने का आत्मध्यान करने में वन में रहते थे। उस वन में लिखा हुआ शास्त्र है, इसलिए इसे वनशास्त्र कहा जाता है। यह वन में रहे हुए भगवान आचार्य परमात्मा की स्तुति किस प्रकार करते हैं, उसका हू-ब-हू चितार स्वयं इसमें दिया है। अर्थात् ?

धन के अर्थी को धनवान प्राणी प्रिय लगते हैं। धन के अर्थी को। इसी प्रकार गुण के अर्थी को गुणवान परमात्मा प्रिय लगते हैं। समझ में आया ? लक्ष्मीवाले प्रिय लगते हैं, उस लक्ष्मी के कारण से। इसी प्रकार धर्मी प्राणी को, जिसे गुण प्रिय लगते हैं। आत्मा के ज्ञान, दर्शन, शान्त आदि ऐसे गुण के प्रियपनवाले को, परमात्मा के पास अनन्त गुण हैं और प्रगट हुए हैं; इसलिए उनकी प्रियता से भगवान की भक्ति करता है। समझ में आया ?

उसमें यहाँ ऋषभदेव का लक्ष्य करके अभी भक्ति चलती है। ऋषभदेव भगवान इस चौबीसी अर्थात् कि अनन्त-अनन्त तीर्थंकरों के प्रवाह में अनन्त चौबीसी हो गयी। परन्तु यह प्रवर्तित चौबीसी में पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव थे। उनकी आदि हुई तीर्थंकरपने की। वे पहले मुनिपने में थे, केवलज्ञान में वे पहले थे। तीर्थंकररूप से पहले थे। इत्यादि कारण से उनकी स्तुति आचार्य ने; मोक्ष पधारे हैं, तथापि मानो सामने समवसरण में विराजते हों, ऐसे भगवान का लक्ष्य करके, भगवान को लक्ष्य करके उनकी भक्ति करते हैं। आपने १६ श्लोक आ गये। कहाँ तक आया है ?

भगवान पूर्व भव में सर्वार्थसिद्धि में थे। ऋषभदेव भगवान इस भव से पहले... देखो ! भव सिद्धि करते हैं। अनादि-अनन्त आत्मा है, ऐसी सिद्धि करते हैं। और जिस भव में उन्होंने आत्मज्ञानपूर्वक तीर्थंकरगोत्र उपार्जित किया महापुण्यवन्त। पुण्य की प्रकृतियाँ ४२ हैं। उनमें तीर्थंकरप्रकृति जैसी पुण्य की अतिशयवान दूसरी कोई प्रकृति नहीं है। ऐसी पुण्य की प्रकृति के भाव पूर्व में आत्मज्ञान की भूमिका में ऋषभदेव भगवान के आत्मा को अपने स्वभाव में उन्नति क्रम में चढ़ते-चढ़ते आत्मा में अनन्त आनन्द, ज्ञानादि हैं, उनके

भान और ज्ञान में उनके स्थान में जो आगे उन्नति क्रम में बढ़ते-बढ़ते, जब उन्हें यह भाव आया कि मैं पूर्णानन्द को प्राप्त होऊँ अथवा दूसरे जीव धर्म को प्राप्त करें। 'सर्व जीव करूँ शासनरसी।' अरे! इस जगत के जीव चौरासी लाख के अनन्त-अनन्त अवतार में दु:ख में तड़पते हैं और पीड़ित हैं। ऐसे प्राणियों का उद्धार कैसे हो, ऐसा ही एक शुभराग, अपनी पूर्ण शान्ति की प्राप्ति में ऐसा एक विकल्प (आया)। उसमें तीर्थंकरप्रकृति सहज बँध गयी। उन्हें इस बन्धन के भाव का आदर नहीं है और जिस भाव से प्रकृति बँधी, उस भाव का भी अन्तर में सम्यग्ज्ञानी को आदर नहीं होता। तथापि उसे ऐसा पुण्य बँधता है। त्यागे उसके आगे और माँगे उससे भागे। जो कोई पुण्य माँगता है, उसे ऐसा पुण्य नहीं हो सकता।

जिसे आत्मा के आनन्द और ज्ञाता चिदानन्दस्वरूप अनाकुल भगवान का जहाँ अन्दर प्रेम के रस की घूँट पीता है, भले अभी आगे केवलज्ञान नहीं है परन्तु आनन्द-आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का अन्तर्मुख होकर धर्मीजीव आत्मा के आनन्द का प्याला-अनुभव पीता है, उसे पीते-पीते उसे इस प्रकार का राग आया (और) तीर्थंकर गोत्र बँध गया। उसके पहले स्वर्ग में यहाँ से गये, वहाँ से बात उठायी है।

हे नाथ! आप जब सर्वार्थसिद्धि में थे, तब उसकी शोभा आपके कारण थी। आप जब वहाँ से निकले और यहाँ पृथ्वी के ऊपर जब माता के गर्भ में पधारे, प्रभु! वहाँ की शोभा नष्ट हो गयी। ऐसा कहकर क्या कहा? आत्मा के आनन्द के साधक जीव जहाँ हो, वहाँ ही उनकी अपनी और पर की शोभा उनके कारण कहने में आती है। समझ में आया? और पश्चात् कहा, प्रभु! आप जब यहाँ आये तो पृथ्वी की शोभा बढ़ गयी। उसे—पृथ्वी को वसुमति कहते हैं। आपके जन्म से पहले गर्भ के समय और जन्म से पहले पन्द्रह माह रत्न की वृष्टि हुई, इससे प्रभु! मुझे ऐसा लगता है कि यह पृथ्वी वसुमति नहीं थी। यह तब से वसुमति कही जाती है। इस प्रकार अलंकार करके आत्मा के आनन्द के साधक जीव उनके गुणग्राम—भक्ति ज्ञानी भक्तिवन्त गाते हैं।

वहाँ से आगे चलने पर प्रभु! आपका जब गर्भ में आना हुआ, तब आषाढ़ कृष्ण दूज थी, तब पृथ्वी में पहली वर्षा आयी, इससे नये अंकुर हुए। मुझे ऐसा लगता है कि प्रभु! यह पृथ्वी पहले अनाथ थी। परन्तु आप जब माता के गर्भ में आये, तब यह पृथ्वी सनाथ हुई। इससे इस हरियाली के अंकुरों से मानो उत्साह बतला रही हो, ऐसा मुझे तो प्रभु!

आपके कारण सब लगता है। समझ में आया ? धर्मी को परमात्मा के गुण का प्रेम है अथवा धर्म के स्वभाव का प्रेम है, इसलिए जहाँ-तहाँ धर्म के स्वभाव को शोध लेता है। प्रभु! उसके कारण पृथ्वी सनाथ और वसुमति कहलायी।

पश्चात् कहते हैं, आपकी माता के गर्भ में आप आये, सभी स्त्रियों में माता का पद ऊँचा हुआ और वह भी मोक्षगामी सिद्ध हुई। आप जैसी माता, आप जैसे पुत्र जिसके गर्भ में सवा नौ महीने रहे, आप तो भगवान चैतन्य रत्न हो। वह जिस डिब्बी में रहा, वह डिब्बी शरीर और उसमें धरनेवाला आत्मा, उसे भी धन्य कहा जाता है।

ऐसा करते हुए फिर जन्म हुआ। मेरुपर्वत के (ऊपर) ले गये, उसकी बात की। आपको मेरुपर्वत पर ले गये, तब इन्द्र ने आपके रूप को ऐसे देखते हुए हजारों आँखें बनायीं, तथापि उसकी पलक नहीं झपकती, ऐसी देव की स्थिति सफल तब हुई। इस प्रकार आपके रूप को देखा, आत्मा के अन्दर भी आनन्द के, ज्ञान के आनन्द के रूप को देखा, तब उसके ज्ञाननेत्र सफल हुए। दोनों प्रकार से भक्ति आती है।

पश्चात् आगे लेते हुए यहाँ तक आया था। फिर भगवान एक बार सिंहासन में बैठे थे। उसमें देव ने आकर देवियों के रूप धारण करके देवियों से नाटक कराया। अरे! ८३-८३ लाख पूर्व व्यतीत हो गये। सर्वज्ञ होने के योग्य यह आत्मा और अभी त्याग क्यों नहीं ? अरबों वर्ष चले गये, सम्यग्दृष्टि है, तीन ज्ञान के धनी हैं। इसलिए इन्द्र ऊपर से उतरकर देवियों के रूप में एक देवी ऐसी रखी कि उस क्षण में आयुष्य पूर्ण होनेवाला था। उस देवी को वहाँ रखने पर एकदम बिजली की चमक जैसे समाप्त हो जाये, वैसे देवी का आयुष्य वहाँ समाप्त हुआ। भगवान ने देखा। सिंहासन में बैठे थे, अभी गृहस्थाश्रम में है। समकिती है, तीन ज्ञान हैं परन्तु चारित्र अभी नहीं है। ऐसे देखने पर... अरे! इस देवी की स्थिति यह! जो देव अमर कहलाते हैं, वे भी क्षण में चले (जाते हैं)। इस देवी की स्थिति ही इतनी थी। उसे इन्द्र ने वहाँ नाच में उतारी। देवांगना का आयुष्य वहाँ पूरा हुआ, उतना एक लक्ष्य जहाँ अन्दर आया, (वहाँ) वैराग्य हो गया।

ओहो! यह सब नाशवान है। इस नाशवान में अभी तक मेरी आसक्ति रही। रुचि नहीं, दृष्टि सम्यक् थी, आत्मा का भान था। रागादि था, उसका अन्तर में आदर नहीं था। परन्तु मेरी आसक्ति रही, सम्यग्दर्शन होने पर भी ,वह आसक्ति मुझे नहीं पोसाती। ऐसे

उनके राग का त्याग करने को स्वयं तैयार हुए, तब उन्होंने स्वयं मुनिपना लिया। उसे लक्ष्य कर बात की है कि प्रभु! आप जब त्यागी हुए, राजपाट को छोड़ा, प्रभु! मुझे तो ऐसा लगता है कि नदी में जो कलबलाहट गाँव के बाहर चलती है न, अयोध्या नगरी में नदी बहती थी। उसकी कल... कल... कल... कल... आवाज थी। भगवान! यह कल.. कल आवाज किसकी? धर्मात्मा धर्मी में से मर्म निकालकर आत्मा के गुण का गुणग्राम करते हैं। प्रभु! यह पृथ्वी विलाप करती है, हों! आपके विरह में, अहो! जिसका सनाथपना था, उस पृथ्वी को आप छोड़कर आत्मा के ध्यान के लिये निकल गये, प्रभु! यह पृथ्वी पानी के बहाने कल... कल... रोती है। अन्तिम एक गाथा आयी है अपने।

इसका अर्थ धर्मात्मा को भी परमात्मा के विरह में खेद होता है। जिसे आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति करनी है और आत्मा के ज्ञान और आनन्द का भान है, उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति के परमात्मा का विरह लगता है। समझ में आया? एक बार आनन्दघनजी कहते,

विरह व्यथा कछु ऐसी व्यापति, मानों कोई मारती बेजा,
अंतक अंत कहालूं ले प्यारे, चाहे जीव तू ले जा।

भगवान का हमें विरह और हमारे पूर्ण ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति का हमको विरह। हे आत्मा! अब समा जा। अब समा जा। दूसरी बात करना नहीं। ऐसा कहकर अपने पूर्णानन्द की भावना करते हैं।

यहाँ भी कहते हैं, हे नाथ! इस जगत के प्राणी आपके विरह को,... इस भरतक्षेत्र में विरह पड़ा, नाथ! इस नदी के बहाने कहते हैं कि हमको आपका विरह पड़ा। अहो! सर्वज्ञदेव जहाँ साक्षात् विराजते हों, उस पृथ्वी को धन्य है। उस जमीन को धन्य है! उस तीर्थक्षेत्र और तीर्थ कहा जाता है। ऐसा कहकर अपने पूर्णानन्द की प्राप्ति का विरह वेद रहे हैं। यह १६ गाथा हुई। अब भगवान ध्यान में खड़े हैं, उसकी बात करते हैं। क्रम-क्रम से बात की है, सर्वार्थसिद्धि में से आये, दीक्षा ली, अब ध्यान में खड़े हैं। भगवान ऐसे कायोत्सर्ग में ऐसे आनन्दकन्द में (लीन हैं)। क्या कहते हैं? देखो! १७वीं गाथा। यह आचार्य हैं, आत्मज्ञानी हैं, आनन्द के ध्यानी हैं और पूर्णानन्द का अभाव पंचम काल में है। इतना पुरुषार्थ नहीं है, इससे पूर्णानन्द की प्राप्ति के परमात्मा को नजदीक में लाकर उनका स्तवन करते हैं। १७ (गाथा)।

गाथा १७

अब, वैराग्य होने के पश्चात् भगवान निश्चलध्यान में स्थित हैं, उस प्रसंग को लक्ष्य में लेकर मुनिराज स्तुति करते हैं।

अइ सोइओसि तइया काउस्सग्गटिठओ तुमं णाह।
धम्मिक्कघरारंभे उज्झीकय मूलखंभोव्व।।१७।।

अर्थात् **- हे भगवन्! हे प्रभो! जिस समय आप कायोत्सर्ग -सहित विराजामन थे, उस समय धर्मरूपी घर के निर्माण में उन्नत मूल स्तम्भ के समान आप अत्यन्त शोभित होते थे।**

भावार्थ **- हे भगवन्! जिस समय आप कायोत्सर्गमुद्रा को धारण कर वन में खड़े थे; उस समय ऐसा मालूम होता था कि आप इस धर्मरूपी घर के स्थित रहने में प्रधान खम्भे ही हैं, अर्थात् जिस प्रकार मूल खम्भे के आधार से घर टिका रहता है, उसी प्रकार आपके द्वारा यह धर्म विद्यमान था।**

गाथा - १७ पर प्रवचन

अइ सोइओसि तइया काउस्सग्गटिठओ तुमं णाह।
धम्मिक्कघरारंभे उज्झीकय मूलखंभोव्व।।१७।।

ऋषभदेव भगवान जब केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुए थे और जब आत्मा के अन्दर... क्या कहते हैं ? जैसे एक स्फटिक का स्तम्भ हो, स्फटिक का स्तम्भ। उसी प्रकार इस देहदेवल में चैतन्यरत्न, आनन्द का कन्द, देहप्रमाण आनन्द का स्तम्भ है। समझ में आया ? यह देह तो मिट्टी है। एक बार दृष्टान्त दिया था, उस हलवाई का। हलवाई लकड़ी का ब्लोक करके उसमें शक्कर का रस बहावे, रस। पुरुष के आकार पुतली बनाई, लकड़ी की, उसमें रस बहावे। थोड़ी देर डोरा बाँधकर रखे। डोरा छोड़े तो शक्कर की पुतली सफेद और मीठी ऐसा पूरा पुतला दिखाई दे। उसी प्रकार इस देह की लकड़ी, पाटिया है। उसका लक्ष्य छोड़ दे और अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प के मैल हैं, उनका लक्ष्य छोड़ दे।

अन्तर में शरीरप्रमाण अनाकुल आनन्द का चैतन्यरूपी स्फटिक रत्न का स्तम्भ आत्मा अन्दर पड़ा है। भगवान जाने क्या होगा यह ? नटुभाई ! समझ में आया या नहीं इसमें ? क्या कहा ? ऐसे चैतन्य की अस्ति की खबर नहीं।

पूरा चैतन्य पदार्थ, वस्तु... वस्तु... वस्तु। एक समय में भगवान अनन्त बेहद ज्ञान और आनन्द का कन्द है। वह होगा। विचार किया नहीं, मन्थन किया नहीं। यहाँ जिसे भान हुआ है, उस भानवाले की भक्ति करते हैं। होगा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। देखो ! दृष्टान्त देते हैं। ध्यान रखो ! लो, आनन्द के लिये दृष्टान्त देते हैं।

एक सेठिया का दृष्टान्त देते हैं। एक करोड़पति सेठ था। ध्यान रखना। फिर उसे इकतौला एक पुत्र। पुत्र को कहा कि, पुत्र ! कमाना नहीं हों, अब। अपने बहुत पैसा है। परन्तु लड़के को ऐसा लगता है कि पिता का दिया हुआ बासी खाऊँ, इसकी अपेक्षा लाओ न, मैं भी थोड़ा कमाऊँ। उसने किया सट्टा, उसमें दस लाख खोये। ध्यान रखना ! न्याय को समझने के लिये यह होगा इसमें से हाँ है, ऐसा निकालना है। होगा में से है, ऐसा निकालना है। देखो ! जहाँ देखे वहाँ पेट में दु:खे तो उसे ख्याल आता है कि यहाँ कुछ है, यहाँ कुछ है। वह पूरे शरीर में ज्ञान व्याप्त है—आत्मा। अब उसमें आनन्द कैसे है, इसकी बात अपने सिद्ध करनी है। शरीरप्रमाण चैतन्यबिम्ब भगवान प्रकाश की मूर्ति स्फटिक रत्न (विराजता है)।

इस प्रकार इसके आत्मा में आनन्द, शान्ति और सन्तोष है। किस प्रकार ? जैसे कि उस करोड़पति के लड़के ने दस लाख खोये। वह लड़का दस लाख लेने नहीं आया। क्योंकि पिता सत्ताप्रिय व्यक्ति और फिर मुझे इनकार किया है और जाऊँगा तो दो-पाँच ठीक से जड़ देंगे। इसलिए उसका मित्र था, उससे कहा, भाई ! पिता के पास जा। दस लाख ले आ। नहीं तो सवेरे मुँह नहीं देखेगा, हों ! जिसके साथ हमने व्यापार किया, नागरबेल का पान चबाया, वहाँ कोयला नहीं चबा सकूँ। मेरे पास पैसा नहीं है, ऐसा नहीं बोल सकूँगा। रात्रि में गले में फाँसी खाऊँगा। जा, पिता को कह, दस लाख दे। ध्यान रखना इसमें। वह मित्र उसके पिता के पास गया। मित्र के पिता के पास (गया)। मित्र कहता है, बापूजी ! दस लाख दो। क्यों ? (आपके) पुत्र ने खोये हैं। (पिता) जरा सत्ताप्रिय व्यक्ति इसलिए ठीक से दो-चार सुना दी। ठीक से ऐसे। जो आवे ऐसी ठीक से। ऐ... मैंने साले को कहा था, मर जा। मर जाये तो भी नहीं दूँगा। बहुत अच्छी बात है। मित्र कहता

है, बहुत अच्छी बात है। सुनो न बापू! एक बात तो सुनो हमारी। क्या ? तुझे क्या कहना है ? दस लाख उसके गये या तुम्हारे गये, खबर है तुम्हें ? बापूजी! खबर है, तुम्हारे गये या उसके गये ? हमारे गये दस लाख, उसके गये क्या ? तुम्हारी सत्तर वर्ष की उम्र है। एक पछेड़ी फाडनेवाले हो। यह करोड़ उसे देना थे। दस लाख उसके गये। उसे नब्बे लाख (मिलेंगे)। तुम्हें तो कुछ खर्च करना नहीं है। करोड़ गये उसमें दस लाख उसके गये। एक बार नजर बदलो।

प्रतिकूलता आयी है, तथापि उसमें लक्ष्य था कि मेरे गये, तब ममता थी। उसे ऐसा हुआ कि मुझे तो पछेड़ी फाड़नी थी। उसे देने थे करोड़, वह लेगा नब्बे लाख। उसके गये। ज्ञान में, वर्तमान ज्ञान में प्रतिकूलता ऐसी आने पर भी जिसमें समाधान करने की ताकत है, उसमें अनन्त प्रतिकूलता में समाधान करने की ताकत है, इसका नाम सन्तोष और आनन्द कहने में आता है। अरे! परन्तु कभी कुछ कौन है अन्दर और कितना तथा कहाँ है, खबर नहीं होती। अपने घर की खबर नहीं होती और पर की पंचायत के होशियार। मानो देव का पुत्र उतरा पर की बातें करना हो तो। परन्तु तू कौन ?

श्रीमद् ने कहा न ?

घट-पट आदि जानता, इससे उसको मान,
परन्तु जाननहार को माने नहीं, कहिये कैसा ज्ञान ?

जिस ज्ञान में... मनसुखभाई! ऐसा होता है या नहीं गृहस्थाश्रम में ? यह दस लाख मेरे गये, ऐसी ममता थी। उस ज्ञान में लक्ष्य बदल दिया कि मेरे नहीं; उसके गये। जिस ज्ञान के वर्तमान अंश में प्रतिकूलता के प्रसंग में समाधान सन्तोष करना जिसे आता है, उस ज्ञान में अनन्त प्रतिकूलता के प्रसंगों में समाधान ज्ञाता-दृष्टा रहकर शान्ति को वेदन करना आता है। उस आत्मा में अनन्त शान्ति है, ऐसा सिद्ध करते हैं। परन्तु क्या करे ? पहाड़े-भंग भेद से न्याय निकालना (आता नहीं)। समझे तो समझे, नहीं तो यह इसे थोथा लगे।

भगवान! तुझमें इतनी शान्ति और आनन्द है कि अनन्त प्रतिकूलता हो तो भी ज्ञाता-दृष्टारूप से रहकर, पर को ज्ञेयरूप से जानकर अपने में समाधान शान्ति से समाधान करने की इसमें ताकत है। यह अन्तर में सन्तोष और आनन्द है, ऐसा सूचित करता है। समझ में आया ?

इसी प्रकार यहाँ भगवान अपने आनन्दमूर्ति आत्मा को देहदेवल में, जैसे स्फटिक का स्तम्भ पड़ा हो। अरे! कभी इसका विचार नहीं, विश्वास नहीं। एक चैतन्य जाने, उसे सब जानने में आ जाता है। एक जाने, वह सब जाने और एक न जाने, उसने शून्य जाना है। शून्य लिखा, आया है न? भाई! उसमें नहीं था? एक स्तवन में रखा है न! कहाँ गये? एक में आता है न? कहीं है पृष्ठ। एक पृष्ठ था। कोई बोला था न वह। उसमें आया था।

जिन्दगीमां केटलुं कमाणा रे जरा सरवाणो मांडजो,
समजु सज्जन अने शाणा रे, जरा सरवाणो मांडजो।
आतमतत्त्वने जाण्युं न जेणे, सरवाणे मींडा मंडाणा रे
जरा सरवाणो मांडजो....

पूरणचन्दभाई! क्या कहते हैं यह?

मोटरो वसावी तमे बंगला बंधाव्या,
खूब कर्या अेकठा नाणा रे... जरा सरवाणो मांडजो...

परन्तु किसका योगफल? शून्य में योगफल किसको आवे? वास्तविक चैतन्य सम्पदा की पूँजी सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त जिसमें ज्ञान और आनन्द की सम्पदा पड़ी है, ऐसी सम्पदा की नजर और विश्वास नहीं होता, उसके योगफल में शून्य ही पड़ता है, दूसरा आवे क्या? क्या होगा इसमें? पाँच-पचास लाख कमाये, वह कहीं योगफल आता होगा या नहीं? धूल में भी नहीं, अब सुन न! धूल तो यह सब पैसा और मिट्टी, वह तो जड़ है। तेरे पास तुझे क्या आया? मनसुखभाई! ममता।

देशे फर्या ने तमे विदेशे विचर्या, टेबल ऊपर खूब कर्या खाणा रे..
जरा सरवाणा मांडजो।
उग्याथी आथमता धंधानी झंखना, उठाना आम तेम पाणा रे,
जरा सरवाणा मांडजो।

पत्थर उथाप्या। मनसुखभाई! दवा की डिब्बियाँ। यह पाणा सब। और कपड़े के पोटले। ऐ न्यालभाई! तुम्हें क्या मक्खन चोपड़ना है न। उठाया पाणा। अरे..! भगवान! चिदानन्द की ज्योत पूरा है, उसकी तूने नजर भी नहीं की। उसका तुझे विश्वास भी नहीं

आया तो परमात्मा के गुण के प्रति तुझे प्रेम नहीं आ सकेगा। समझ में आया?

डाह्या थईने तमे पूछाणा पंचमां, मोटा थईने मनाणा रे...
जरा सरवाणो मांडजो...
खाधुं-पीधुं ने तमे मोजुं बहु माणी, तृष्णाना पूरमां तणाणा रे...
जरा सरवाणो मांडजो...
लाव्याता केटलुं, लई जवाना केटलुं? आखर तो लाकडा ने छाणा रे...
जरा सरवानलो मांडजो...

कोई देगा नहीं, हों! छूने नहीं दे उस मुर्दे को। लकड़ी के उसको क्या कहलाता है? उसे छुए तो भूतड़ा होकर आयेगा। भाईसाहब परन्तु मकान इसने बनाया है न? परन्तु यह छूता है। वह मुर्दा निकाले न ऐसे सीधा। छूने देना नहीं दोनों ओर इसे। क्योंकि भूत होकर आयेगा। आहा! यह जगत की तृष्णा और यह मोहजाल की माया।

एक आत्मतत्त्व ने जाण्युं न जेणे, सरवाणे मींडा मंडाणा रे...

शून्य परन्तु पहले एक हो, तब शून्य कहाँ से आवे? पहले से शून्य था तो योगफल में शून्य आया। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्णानन्द की पुतली है। आहाहा! देह के पर्दे के पीछे भगवान... एक बार कहा था, नहीं?

तिनके की आड़ में पर्वत रे, पर्वत कोई देखे नहीं
तिनके की आड़ में...

यह पुण्य और पाप की ममता के तिनके में उसके पीछे अखण्डानन्द चिदानन्द भगवान अपना स्वभाव है, उसे अज्ञानी देखता और देखता और जानता नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा को जिसने जाना और देखा तथा पूर्ण प्राप्त होने की अभिलाषा है, ऐसे भगवान को लक्ष्य करके (स्तवन करते हैं)। हे नाथ! आप जब... अपना ध्यान करते हैं न? ध्यान अर्थात् एकाग्रता। भगवान को कहते हैं, हे नाथ! **जिस समय आप कायोत्सर्ग सहित विराजमान थे...** आत्मा के अन्दर में... ध्यान करना तो सबको आता है, परन्तु राग और द्वेष का ध्यान। आता है या नहीं? कोई पाँच-पाँच पचास हजार खर्च करना हो,

लड़की का विवाह हो और बराबर एक थाली जाति में बाँटना हो और एक-एक रुपया देना हो, उसमें विचार में चढ़ा हो दो घण्टे और लड़के का विवाह हो। शोभायात्रा चली हो, चौक में गया हो और यहाँ एक ओर कौने में बैठा हो। बापू! शोभायात्रा गयी चौक में। हें...! मैं तो विचार में चढ़ गया था। कल ऐसा करना है और (ऐसा करना है)। दो घड़ी के विचार में नगाड़े बजे, इसकी उसे खबर नहीं रही। किसके? उस राग के ध्यान में। मनसुखभाई! ऐसा होता होगा या नहीं? यह विचार की धारा चले, राग की, उसके विचार में नगाड़े बजे, लड़के का विवाह है न, देखो! इस चौक में गयी उसकी शोभायात्रा। भूल गया। मैं मेरे विचार में चढ़ गया। ध्यान तो आता है, परन्तु राग का और विकार का।

परन्तु जिसे राग की और विकार की प्रीति हटकर भगवान आनन्दकन्द का प्रेम हुआ, उसके ऊपर इसका ध्यान लगे, वह भी बाहर का भूल जाता है। समझ में आया? न्यालभाई! इस संसार के विचार में ध्यान रखते होंगे या नहीं? ऐसी लगे, ऐसी लगे अन्दर से। व्यभिचारी मनुष्य को उसकी प्रिय स्त्री व्यभिचारिणी हो, वह उसके स्वप्न में दिखाई दे और या तो कितने ही ऐसे सुने हैं, ऐसी आयी थी न? आवे क्या? धूल। तेरी कल्पना वहाँ दिखती है। जिसके ऊपर जिसे प्रेम, उसे उसका स्वप्न दिखता है। वह आयी थी न, वह आयी थी न। कौन? धूल आवे। परन्तु कल्पना का रूप उसे तादृश्य दिखता है। उसमें लीन हो जाता है।

धर्मात्मा अपना आत्मा विकाररहित और शरीररहित है, ऐसा जहाँ भान हुआ है, उसके ध्यान में लीन होता है, जगत (को) भूल जाता है। जगत को भूल जाता है कि मैं हूँ और जगत नहीं है। ऐसा भी अन्दर विकल्प नहीं रहता। ऐसी सम्यग्दृष्टि को ध्यान की कला अन्तर में जगती है, वह परमात्मा के ध्यान की कला, पूर्ण प्राप्त करने की कला जो ऐसे देखता है, उसे लक्ष्यकर कहते हैं, प्रभु! आप कायोत्सर्ग में विराजमान थे, उस **धर्मरूपी घर के निर्माण में उन्नत मूलस्तम्भ के समान...** पूरे घर का जैसे निर्माण करे, पूरा मकान, उसमें बीच का बड़ा स्तम्भ होता है न, उसी प्रकार धर्मरूपी स्वभाव के आप स्तम्भ थे। यह बात भी कैसे (बैठे)? यह मिट्टी के विचार, धूल के विचार, हड्डियाँ, माँस और चमड़ी। भविष्य की राख कहो तो अभी भी राख है। अभी इसे मुर्दा कहते हैं, हों! इसका विवाद, भाई! अभी मुर्दा नहीं। अभी भगवान मुर्दा कहते हैं।

अमृत स्वभाव भगवान,... अमृतचन्द्राचार्य ने ९६ गाथा में कहा है, समयसार में ९६ गाथा में। कर्ता-कर्म का अधिकार अपने सवेरे वाँचन होता है न ? उसकी ९६वीं गाथा है। है यहाँ ? कितने ही कहे, परन्तु अभी मुर्दा नहीं। यहाँ कहते हैं कि अभी मुर्दा है, सुन ! देखो ! क्या कहते हैं ? ९६वीं गाथा है। अरे ! **मृतक कलेवर (शरीर) द्वारा...** वह मुर्दा यह है। परमाणु मिट्टी अचेतन जड़। वह **परम अमृतरूप विज्ञानघन...** मृतक कलेवर में... अमृतचन्द्राचार्य मुनि सन्त जंगल-वनवासी आत्मध्यानी सन्त-महन्त थे। उन्होंने समयसार की ९६ गाथा की टीका की, उसमें कहा कि अरे ! आत्मा ! तू तो अमृतरूप विज्ञानघन है। आहाहा ! अकेला आनन्द का विज्ञानघन है। वह मृतक कलेवर यह मुर्दा, उसकी मूर्छा में गया, तूने अमृत को विस्मृत किया। **मूर्छित हुआ होने से, उस प्रकार के भाव का कर्ता प्रतिभासित होता है।** भगवान आनन्द की मूर्ति, सम्यग्दर्शन और आनन्द के भान बिना इसे भासित नहीं होता। यह जब भासित नहीं होता, तब मृतक कलेवर में भगवान विज्ञानघन मूर्छित हो गया।

धर्मात्मा अमृत विज्ञानघन में लीन हुए। वह (अज्ञानी) शरीर में मूर्छित हो गया। भरत चक्रवर्ती जैसे संसार में थे, छह खण्ड का राज था, ९६ हजार स्त्रियाँ थीं। तथापि बहुत समय उन्हें आत्मा के ध्यान में अमृत के झरने का वेदन होता था। परन्तु यह क्या होगा ? इस देह में पूरी चैतन्य की पूतली आनन्द के रस से भरपूर भगवान, उसका कायोत्सर्ग में काया और मन का उत्सर्ग—लक्ष्य छोड़कर... कायोत्सर्ग अर्थात् काया और मन, वाणी और पुण्य-पाप के राग, यह सब काया में जाता है। उसका उत्सर्ग अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, भगवान आत्मा के ध्यान में ऋषभदेव थे, उसे लक्ष्यकर कहते हैं, प्रभु ! आप तो धर्म के स्तम्भ हो। समझ में आया ?

घर में अच्छा व्यक्ति हो तो कहते हैं न ? कि यह हमारा स्तम्भ है। चतुर है, ऐसा कहते हैं न ? कर्मी है। कर्मी, कर्मी है। कर्म का करनेवाला। न्यालभाई ! तुम्हें सब पदवियाँ बहुत दे। सामने जो सिरवाले पड़े न, उसे कहे कि यह कर्मी है और ऐसे हैं और वैसे हैं। कर्मी न ? धर्मी नहीं न ? विकार के करनेवाले और कर्म के करनेवाले और हमारे घर में दीपक है। विकार करता जाता है, वह जाये और हमें भी साथ में नीचे कुएँ में (लेता जाता है)। यह भगवान त्रिलोकनाथ मोक्ष के पन्थ में पड़े, दूसरे मुनियों और धर्मात्मा को लक्ष्य

कराते हैं। देखो! यह ध्यान। आहा! हे नाथ! आपका ध्यान धर्मरूपी निर्माण स्तम्भ में **उन्नत मूलस्तम्भ के समान आप अत्यन्त सुशोभित होते थे।** समझ में आया? ऐसा कहकर उस ध्यान की, आनन्द की अनुमोदना करते हैं।

पहले श्लोक में यह आया है, भाई! इसका पहला श्लोक है न शुरुआत का? उसमें तो ऐसा कहा है, हे नाथ! वह भी ऋषभदेव की स्तुति है, पहला श्लोक। एकदम पहला। आप जब अन्तर आनन्द के... आहाहा! अरे! यह विद्यमान पदार्थ, इसे अविद्यमान किया ज्ञान में और अविद्यमान को विद्यमान माना अज्ञान में। पूरा चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द से भरपूर ऐसा विद्यमान प्रभु, उसे अविद्यमान किया। अनादि अज्ञान में। जहाँ ज्ञान में भान हुआ, अरे! आत्मा यह, पूर्णानन्द और ज्ञान की मूर्ति हूँ। जो परमात्मा, उसे देखकर अनुमोदन और भक्ति उछलती है। आहाहा! धन्य परमात्मा! आपका ध्यान, वह धर्म का स्तम्भ हो गया। धर्मरूपी मकान की उत्पत्ति में आप स्तम्भ समान हो। आत्मा का ध्यान रागरहित स्वभाव के ध्यान में स्तम्भ समान हैं। पहले श्लोक में है जरा, भाई! पहला श्लोक है न? क्या है देखो! संक्षिप्त में कहते हैं।

दोपहर के समय जिन आदिश्वर भगवान के ऊपर रहा हुआ तेजस्वी सूर्य, ज्ञानावरणादि कर्म रूपी ईंधन को पल भर में भस्म करनेवाली, वैराग्यरूपी पवन से जलाई हुई ध्यानरूपी अग्नि से उत्पन्न हुए मनोहर स्फुलिंगों के समान जान पड़ता है,... क्या कहते हैं? हे नाथ! हमें तो ऐसा लगता है कि आप जब अन्दर के आनन्द के ध्यान में थे न, तब ध्यानाग्नि के कारण आपका अन्दर कर्मशरीर जलने लगा। और जलकर उसमें एक ... उठा। अग्नि की चिंगारी उड़े न? चिंगारी। भगवान! वह चिंगारी उड़कर यह सूर्य दिखता है। देखो! यह सूर्य देखकर भी यह विचार आया। उत्प्रेक्षा अलंकार है। है, उसमें से दूसरा रूप निकालना, उसका नाम उत्प्रेक्षा, उत्प्रेक्षा अलंकार है। ध्यान में थे, तब उस ध्यान को देखकर भक्त कहते हैं, हे नाथ! आपके आनन्द के कन्द में जब प्रभु आप मस्त थे, तब उस ध्यानरूपी अग्नि द्वारा कर्मरूपी ज्वाला सुलगी, उसकी अग्नि की एक चिंगारी उड़कर यह सूर्य दिखता है। क्या कहा, समझ में आया?

पहले एक बार कहा था, 'जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे।' सुन रे सुन! 'काला न जाणशो रे, प्रभुने अे व्हाला छे।' प्रभु की क्रीड़ा और धर्म की क्रीड़ा अज्ञानी के

कलेजे में नहीं बैठती। वह ऐसे परमात्मा को देखकर ऐसा कहता है, हे नाथ! यह सूर्य क्या है? यह तो आप ध्यान करते थे, उसमें कर्म सुलगे न, उसकी एक चिंगारी उड़कर खड़ा रहा है। क्या कहा, समझ में आया कुछ? यह परमात्मा के आनन्द के लक्ष्य में रहकर रहनेवाले जीव...

और एक जगह उसमें ऐसा भी कहा है, उस दान के अधिकार में। जिसके घर में सन्तों की भक्ति नहीं, जिसके घर में परमात्मा छद्मस्थपने हों और जिसे घर में सत्समागम अथवा आहार लेने आवे, छद्मस्थ में, ऐसे प्रसंग नहीं, ऐसे घर को हम प्रयोजनरहित श्मशान कहते हैं। समझ में आया? यह अधिकार इसमें है। पद्मनन्दि आचार्य ने बहुत प्रकार के... ओहो! जो आत्मा का शान्त स्वभाव विकाररहित आत्मा साध रहा है, जिसके घर में प्रवेश नहीं, जिसके घर में उनके चरण नहीं, वह घर श्मशान जैसा और प्रयोजनरहित है। आचार्य ने तो यहाँ तक कहा है, जिसे ऐसे सत्समागम के प्रसंग नहीं, ऐसे गृहस्थाश्रम के जाल को गहरे पानी में डुबो देना, अंजुलि देना कि हराम है इस घर को। ऐसा इसमें आगे कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा जहाँ परमात्मा ऋषभदेव भगवान पूर्णानन्द को प्राप्त करने अन्दर मन्थन और मनन करते थे, कहते हैं, भगवान! ओहो! आपके दर्शन, आपकी भक्ति,...

भक्ति अेवी रे भाईओ अेवी, जेम तरस्याने पाणी रे जेवी।

प्यास लगी हो और मौसम्बी का पानी दे (तो) ऐसे झपट मारे। उसी प्रकार जिसे परमात्मा के अनन्त गुणों की अन्तर रुचि और भान हो गया है, ऐसे परमात्मा के ध्यान और परमात्मा को देखकर अन्दर भक्ति की झपट मारता है। आहाहा! यह प्रभु... है भक्ति का शुभ विकल्प। अन्तर के आनन्द में स्थिरता, उतनी निश्चय भक्ति, वह धर्म; परन्तु ऐसे धर्मी को, सवेरे कहलाता है, उस राग की रुचि नहीं है। परन्तु राग आये बिना रहता नहीं है। उसे प्रेम उछल जाता है कि आहाहा! ऐसे प्रभु!! पाप से बचने के लिये ऐसा शुभभाव मुनियों को और समकिती को भी आता, आता और आता है। समझ में आया?

कहते हैं, हे नाथ! जिसके मन में परमात्मा और सच्चे सन्त का वास नहीं, वह मन निरर्थक है। समझ में आया? यहाँ भी आचार्य ने कायोत्सर्ग का लक्ष्य करके भगवान के गुणग्राम गाया हैं। अब एक दूसरा श्लोक—१८वाँ।

गाथा १८

अब भगवान के केशों में भी अलंकार करके स्तुतिकार कहते हैं।

हिययत्थझाणसिहिओज्झमाण सहसा सरीरधूमो व्व।
सोहइ जिण तुह सीसे महुयरकुलसणिहकेसभरो।।१८।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! भौंरों के समूह के समान काला जो आपके मस्तक पर बालों का समूह है, वह हृदय में स्थित जो ध्यानरूपी अग्नि, उससे शीघ्र जलाया हुआ जो शरीर, उसके धुएं के समान शोभित होता है - ऐसा मालूम पड़ता है।

भावार्थ - धुआँ भी काला है और भगवान के मस्तक पर विराजमान केशों का समूह भी काला है। इसलिए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! यह जो आपके मस्तक पर बालों का समूह है, वह बालों का समूह नहीं है, किन्तु वैराग्य-संयुक्त आपके हृदय में जलती हुई जो ध्यानरूपी अग्नि, उससे जलाया हुआ जो आपका शरीर है, उसका यह धुआँ है।

गाथा - १८ पर प्रवचन

हिययत्थझाणसिहिओज्झमाण सहसा सरीरधूमो व्व।
सोहइ जिण तुह सीसे महुयरकुलसणिहकेसभरो।।१८।।

भगवान! आनन्द में-स्वरूप के आनन्द में ध्यान में थे! देखो! ध्यान कैसा, ध्यान का फल क्या, ध्यान में होता है क्या, ध्यान कर कौन सकता है —इत्यादि सब बातें इसमें कहते (कहते हैं)। आत्मा के अनन्त गुण का जिसे प्रेम हो गया है, ऐसे प्रेम के पीछे एकाकार होता है, वह ध्यान करते हुए (कहते हैं), हे नाथ! मुझे ऐसा लगता है, प्रभु! **आपके मस्तक पर भौंरों के समूह समान काला...** ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व में दीक्षा ली थी। परन्तु पुण्यवन्त प्राणी को वृद्धावस्था नहीं दिखती। उसे वृद्धावस्था होती नहीं। महा पुण्य लेकर आये हैं। पूर्व के तीर्थंकरपने का इतना पुण्य है, ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था, ८३ लाख पूर्व में दीक्षा ली थी। परन्तु जवान अवस्था जैसी दशा। काले बाल

देखकर कहते हैं, एकदम काले जैसे बाल हैं भगवान के, ध्यान के समय। अभी केवल(ज्ञान) नहीं पाये हैं, उस समय। भगवान! **भौंरों के समूह समान...** भौंरों अर्थात् भँवरा। ऐसे काले बाल का समूह आपके मस्तक के ऊपर है। **वह...** मुझे तो ऐसा लगता है, प्रभु! **हृदय में स्थित ध्यान रूपी अग्नि से शीघ्र जलाये हुए शरीर...** कर्म जलते-सुलगते हैं, उसका धुँआ बाहर दिखता है। यह भक्ति का प्रेम और भक्त कैसे भक्ति करते हैं, उसकी भी खबर नहीं होती। समझ में आया?

ऐसे परमात्मा आनन्द में झूलते हैं न! अतीन्द्रिय आनन्द के ध्यान में भगवान केवलज्ञान लेने के लिये स्थिर हो रहे हैं। उनके काले बाल देखकर भक्त परमात्मा की भक्ति में उछलते हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार लगाते हैं। हे नाथ! यह काले बाल हैं, वे बाल नहीं, हों! तब (क्या है)? आप आनन्दस्वभाव का ध्यान करते हो न, वे कर्म जलकर धुँआ आता है। यह धुँआ दिखता है सिर पर बाल का। मनसुखभाई! पागल होंगे यह? दुनिया की दृष्टि से तो पागल सही।

परमात्मप्रकाश में कहते हैं न? भाई! योगीन्द्रदेव कहते हैं। दुनिया की दृष्टि से धर्मात्मा गहल-पागल है और ज्ञानी की दृष्टि से जगत पागल है। परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव महा अध्यात्म की बात जब परमात्मप्रकाश में करते थे, समझ में आया? आत्मा के भानवाले जीवों को अज्ञानी पागल कहते हैं, मूर्ख कहते हैं। और ज्ञानी की दृष्टि से दुनिया पागल हो गयी है। इसका उसे भान नहीं। अरे! आत्मा! अरे! यह तू कौन है, इसकी तुझे खबर नहीं, बापू! बेखबर होकर अज्ञान में मूढ़ता से अनादि से भटक रहा है। यह तेरा पागलपन और गहलपना है। समझ में आया?

कहते हैं, नाथ! क्या है यह? **शीघ्र जलाये हुए...** यह बाल... आहा! वहाँ भी अन्तर आनन्द का ध्यान है, उसकी (महिमा करते हैं)। आहा! आत्मा में जितनी शक्ति है...

एक बार पानी का दृष्टान्त दिया था कि पानी अग्नि के निमित्त से उष्ण होता है, उष्ण हो वर्तमान। परन्तु उसके—पानी के मूल स्वभाव में उष्णता के काल में इतना ठण्डा, ठण्डा स्वभाव भरा है कि जिसके निमित्त से गर्म हुआ, गर्म होने की योग्यता उसकी—पानी की; अग्नि के कारण नहीं, अग्नि के कारण होवे तो आकाश गर्म होना चाहिए। उसकी योग्यता। तथापि उस समय अन्दर स्वभाव शीतल इतना है कि उस पानी का घड़ा यदि ऐसे गुलाट

मारे, ऐसे भरा हुआ पानी खदबद.. खदबद पैसा जैसा हुआ, क्या कहते हैं ? पैसे का या ऐसा कुछ कहते हैं न ? यह चावल का। फदफद पड़े ऐसा, यह कहते हैं न कुछ ? यह चावल गर्म... गर्म, यह चावल पकाते हैं न, फदफद जैसा कुछ हो उसमें चावल डालते हैं। उस पानी को ऐसे अग्नि पर डालो (तो) एक क्षण में अग्नि को मिट्टी कर डालेगा। पानी को.. उसमें इतनी शीतलता का ठण्डा स्वभाव है। उसके स्वभाव की इसे खबर, भगवान आत्मा विकार के भाव से खदबहाद—उष्ण भले हुआ हो, परन्तु उसके स्वभाव में शीतलता और आनन्दकन्द भरा है। इतनी शक्ति है। उसकी दृष्टि देने से वह विकार का और कर्म का नाश करे, ऐसी उसमें ताकत है। परन्तु परपदार्थ का इसे भरोसा, भगवान आत्मा (का भरोसा नहीं)। और उसके भरोसे बिना भगवान की सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। समझ में आया ?

कहते हैं, हे नाथ! **धुँए के समान शोभित होता है।** मानो धुँआ हो। इस आत्मा की शान्ति अविकारी स्वभाव अनादि-अनन्त आत्मा का, उसमें लीन होकर जो पड़े हैं, उसके अज्ञानपना, राग-द्वेष और अज्ञानरूप से बँधे हुए पूर्व के कर्म, वे सब जलकर राख होते हैं। ऐसा लक्ष्यकर भगवान की भक्ति—ज्ञान में महिमा करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? अब जरा ज्ञान तक आये। अब उसका केवलज्ञान तक ले गये। ऐसे ध्यान करने से आत्मा को एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने ऐसा ज्ञान प्रगट हुआ। ऐसे भगवान की केवलज्ञान के समय की स्तुति करते हैं। समझ में आया ? अभी तो भक्ति का विषय चलता है न, तो भक्ति से सम्बन्धित बात होती है न, भक्ति से सम्बन्धित।

नियमसार में आता है, भाई ! पाँचवें श्लोक में। आप्त पुरुष भगवान, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित कहने में आता है। पश्चात् पद्मप्रभमलधारीदेव ने एक श्लोक किया। नियमसार के पाँचवें श्लोक का नीचे कलश किया। अरे.. आत्मा ! भव के भय के भेदनेवाले भगवान के प्रति, निमित्तरूप से है। भव के-चौरासी लाख के भव के भय के भेदनेवाले भगवान के प्रति तुझे भक्ति नहीं तो भवसमुद्र के मध्य में मगर के मुख में है। क्या कहा, समझ में आया इसमें ? यह नियमसार में है। नियमसार है न कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ, उसका एक पाँचवीं (गाथा का) कलश है। देखो ! आया। भाई ! है न ? हिम्मतभाई !

भवभयभेदिनी भगवति भवतः किं भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधिमध्यग्राहमुखान्तर्गतो भवसि।।१२।।

संस्कृत है। हे आत्मा! **भव के भय को भेदनेवाले...** ऐसे भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा, के **प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं? तो तू भवसमुद्र के मध्य में...** भवसमुद्र के—चौरासी के अवतार में **मध्य रहे हुए मगर के मुख में है।** मगर का मुख अर्थात् मगर ने पैर पकड़ा हो, वह निगल जाता है। पूरा खा जाता है। मगर का ऐसा स्वभाव है कि जब तक पैर न पकड़ा हो, परन्तु यदि पैर पकड़ा तो समाप्त। ऐसा कहते हैं कि भवसमुद्र के चौरासी के अवतार में मध्य में भगवान परमात्मा के प्रति तुझे प्रेम और भक्ति नहीं, वह भव समुद्र के मध्य में मगर के मुख में है। पैर पकड़कर चौरासी के अवतार में ले जायेगा। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ भगवान को आत्मा का ध्यान करते हुए... अर्थात् वापस केवल(ज्ञान) कैसे प्राप्त करते हैं, यह बात भी साथ ही कहते जाते हैं। कोई बाहर के दया, दान, व्रत के विकल्प से केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता। आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसके एकाकार द्वारा आत्मा ध्यान करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह उसके उपाय की बात भी करते हैं, और केवलज्ञान की महिमा भी गाते हैं। १९वाँ श्लोक।

गाथा १९

अब, ध्यान करते-करते भगवान को केवलज्ञान होता है, उसकी बात को लक्ष्य में रखकर स्तुति करते हैं -

कम्मकलंकचउक्के णट्ठेणिम्मलसमाहि भूईए।
तुहणाणदप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! निर्मल समाधि के प्रभाव से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में यह लोक तथा अलोक प्रतिबिम्बित हुआ।

भावार्थ **- जब तक इस आत्मा में अखण्डज्ञान (केवलज्ञान) की प्रगटता नहीं होती, तब तक यह आत्मा, लोक तथा अलोक के पदार्थों को नहीं जान सकता, किन्तु जिस समय उस केवलज्ञान की प्रगटता हो जाती है, उस समय यह लोकालोक के पदार्थों को जानने लग जाता है। उस सम्यग्ज्ञान की प्रगटता तेरहवें गुणस्थान में, जबकि प्रकृष्ट ध्यान में चार घातियाकर्मों का नाश हो जाता है, तब होती है। इसी आशय को लेकर ग्रन्थकार स्तुति करते हैं कि हे प्रभु! आपने समस्त प्रकृष्ट ध्यान से चार घातियाकर्मों का नाश कर दिया है; इसीलिए आप समस्त लोकालोक को भलीभाँति जाननेवाले हुए हैं।**

गाथा - १९ पर प्रवचन

कम्मकलंकचउक्के णट्ठेणिम्मलसमाहि भूईए।
तुहणाणदप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

यह मूल श्लोक है। इसका संस्कृत है, वह अपने नहीं कहते। परन्तु संस्कृत है, देखो!

कर्मकलंकचतुष्के नष्टे निर्मलसमाधिभूत्या।
तव ज्ञानदर्पणेऽर्च्य! लोकालोकं प्रतिबिम्बितम्।।

क्या कहा? हे परमात्मा! आपने जब आत्मा के स्वभाव की एकाग्रता का ध्यान किया, तब **निर्मल समाधि प्रभाव से...** समाधि अर्थात् ईंगणा और पिंगणा चढ़े वह समाधि नहीं। निर्मल समाधि। शान्ति... शान्ति... शान्ति। अन्तर में विकाररहित शान्ति। यह पूरा शान्ति का सागर भगवान, उसमें शान्ति प्रगट करके जो अन्दर समाधि लगा दी, आत्मा की शान्ति। वे समाधि-बमाधि करते हैं न? पन्द्रह दिन चढ़ावे, अमुक करावे उसमें खोटा, हों! कुछ नहीं मिलता। समझ में आया? समाधि लगायी। धूल में समाधि नहीं वहाँ।

समाधि तो आत्मा एक समय में पूर्णानन्द का भान होकर और उसमें लीनता हो, उसे समाधि कहते हैं। लोगस्स में आता है। कण्ठस्थ किया है या नहीं लोगस्स? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' भाषा की खबर भी नहीं होती, अर्थ की खबर भी नहीं होती,

भगवान जाने। उसमें एक शब्द आता है। न्यालभाई! किया है? अर्थ की खबर है? इनकार करे न तुरन्त ही। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' ऐसा शब्द है। वह समाहि अर्थात् क्या? आधि, व्याधि, उपाधि रहित, वह समाधि। व्याधि अर्थात् शरीर का रोग; आधि अर्थात् बाहर की चीज़ की उपाधि, उपाधि अर्थात् बाहर का संयोग। आधि अर्थात् मन के प्रसंग में होते शुभ और अशुभ के विकल्प, वह आधि। व्याधि शरीर की और उपाधि बाहर की। तीन रहित आत्मा के आनन्द में एकाकार होना, उसे समाधि कहते हैं। भगवान जाने क्या समाधि होगी। भगवान तो जानते ही हैं न, उसकी तो बात चलती है यह। समझ में आया इसमें कुछ?

भाई! ऐसा मनुष्यदेह मिला और सत्य बात का ज्ञान नहीं किया तो यह चौरासी के अवतार में, बापू! भटकते हुए कहीं हाथ नहीं आयेगा। जैसे आँधी में तिनका उड़े और कहीं स्थिर न हो, वैसे चौरासी लाख के अवतार में मिथ्यात्व की भ्रमणा के कारण कहीं स्थिर नहीं होगा, भगवान! कहाँ का कहाँ भटकन, यह भव और यह भव और यह भव। कहते हैं कि अरे! ऐसा मनुष्यदेह मिला, तुझे भगवान की भक्ति नहीं? भवसमुद्र में मध्य में मगर के मुख में पड़ा है। आहाहा!

कलकत्ता का एक दृष्टान्त है, उन लड़को का नहीं? कलकत्ता में एक माता-पिता थे। आठ, दस, बारह व्यक्ति शाम को घूमने निकले। नाव में, नाव में। शाम को घूमने निकलते हैं न? ऐसे निकले वे। उसमें आठ वर्ष का एक लड़का (था)। ऐसे जरा आगे गये, वहाँ उसने पैर बाहर निकाला। उसमें एक मगर आया। पैर पकड़ा। नाववाला कहता है, डाल देंगे अभी लड़के को नीचे क्योंकि यह बारह सब मर जानेवाले हैं। मगरमच्छ बड़ा है। उसने पैर पकड़ा, वह छोड़ेगा नहीं। अभी खींचेगा तो पूरी नाव डूब जायेगी। हाय... हाय...! अब करना क्या? माँ-बाप साथ में बैठे हुए। माँ-बाप को कहता है, डाल दो इसे, नहीं तो मैं डाल देता हूँ अभी, नहीं तो यह (नाव) डूबेगी। माँ ने पकड़ा एक हाथ, उसकी ओर का दूसरे ने हाथ पकड़ा, दोनों ने समुद्र में फेंक दिया। लड़का (चिल्लाहट मचाता है), ऐ... बापू! परन्तु भाई! कहने का अवसर कहाँ था? वह नाविक कहता है, अभी मैं डाल दूँगा, नहीं तो बारह ही व्यक्ति डूब जानेवाले हैं। मगर ऐसे पैर खींचेगा। जबरदस्त मगर है, उसने पैर पकड़ा है। माँ-बाप दोनों जनों ने फेंक दिया। उस मगर के मुख में आया हुआ पैर कभी छोड़ता नहीं।

उसी प्रकार मिथ्यात्व की भ्रमणा के कारण चौरासी लाख के मगर के (मुख में) गया, उस दु:ख से नहीं छूटेगा। चार गति के दु:ख के घन तुझे सहन करना पड़ेंगे, बापू! एक बार समझण कर, सच्ची पहिचान कर और भक्ति की भक्ति क्या है, उसे पहिचान।

यहाँ कहते हैं, **निर्मल समाधि के प्रभाव से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में...** दर्पण होता है न, दर्पण। बाहर चीज़ें जैसी हों— काली, सफेद, सब उसमें दिखती है। वे उसमें नहीं, हों! वह दर्पण की स्वच्छता है। दर्पण हो बड़ा पाँच हाथ का। उसकी स्वच्छता में कोयला, आम आदि पड़े हों, वे अन्दर दिखते हैं। अग्नि हो तो अग्नि दिखती है। वह अग्नि नहीं। इस अग्नि को हाथ लगाओ तो गर्म लगेगा। यहाँ (दर्पण में) हाथ लगाओ तो गर्म नहीं लगेगा। ज्वाला दिखेगी। वह दर्पण की स्वच्छता है। इसी तरह बर्फ हो, वह दिखायी दे। वह ठण्डा नहीं लगेगा। यहाँ बर्फ नहीं है। दर्पण की स्वच्छता है।

इसी प्रकार भगवान यहाँ आत्मा को दर्पण की उपमा देकर आचार्य केवलज्ञान का वर्णन करते हैं। आत्मारूपी दर्पण में जहाँ पूर्ण विकास हुआ (तो) लोक और अलोक का ज्ञान आत्मा की पर्याय का अपना निर्मल हो जायेगा। वे चीज़ें यहाँ नहीं आती। परन्तु उस चीज़ सम्बन्धी का और अपना ज्ञान, केवलज्ञान एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण ज्ञान हो जाता है। ऐसी आत्मा की अवस्था हो, उसे केवलज्ञानी और परमात्मा कहा जाता है। यह देव की पहिचान साथ ही देते हैं। समझ में आया?

ऐसे सर्वज्ञ, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ज्ञान की दशा पूर्ण प्रगट हुई, दर्पण की भाँति लोकालोक प्रतिबिम्बित हो गये। हे नाथ! ऐसा केवलज्ञान, उसके हम अभिलाषी, आपके केवलज्ञान के भक्त हम आपकी प्रशंसा और गुणग्राम करते हैं। अर्थात् केवलज्ञान की महिमा तक यह बात आयी। अब विशेष बात है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण - अमावस्या, सोमवार, दिनांक - ११-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १९ से २२, प्रवचन-७८८

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है, जिसके कर्ता वनवासी एक पद्मनन्दि नामक महामुनि सन्त (हुए, उन्होंने रचा है)। आत्मा के अन्तर के स्वभाव का जो आनन्द, उसे साधनेवाले ऐसे साधकजीव रूप से साधु थे। यह परमात्मा की भक्ति करते हैं और इस प्रकार से जगत को कहते हैं कि भक्तिवन्त भक्त कैसे होते हैं और जिनकी भक्ति की जाती है, वह आत्मा-परमात्मा कैसे होते हैं, दोनों का उसे ज्ञान होना चाहिए। अपने यहाँ १९ गाथा तक आया।

ऋषभदेव भगवान की स्तुति की है। आत्मा, उसमें तीन प्रकार की दशा होने के योग्य आत्मा है। यह बहिरात्म होने के योग्य उसकी पर्याय में है। क्या कहा? यह आत्मा है न? आत्मा। देह से भिन्न तत्त्व, उस आत्मा में बहिरात्म अर्थात् देह और राग मैं—ऐसी मान्यता हो, उसे बहिरात्मा कहते हैं। ऐसी बहिरात्म होने की उसकी पर्याय में योग्यता है। क्या कहा? यह आत्मा अनन्त-अनन्त अन्तर ज्ञानादि गुण का पिण्ड है। परन्तु कोई गुण उसमें ऐसा नहीं है कि विकार करे और संसार में भटके, ऐसा गुण नहीं है। क्या कहा यह? खबर नहीं होती आत्मा क्या, उसकी शक्ति क्या, उसकी योग्यता क्या? उसे वास्तविक परमात्मा हुए की भक्ति भी यथार्थ नहीं हो सकती।

भगवान आत्मा की दशा में—अवस्था में—हालत में—पर्याय में—सब एकार्थ है, उसे विकार करके विकार मेरा, ऐसा बहिरात्मपना करने की उसकी पर्याय में—अवस्था में योग्यता है। १९ गाथा चलती है, भाई! और अन्तरात्मा होने की शक्ति में ताकत है। आत्मा आनन्द और ज्ञान है, ऐसा जिसे अन्तर भान हो और विकार होने पर भी वह विकार मेरा नहीं और शरीर मेरा नहीं, ऐसी अन्तर में अनुभूति आत्मा की—ज्ञान की हो, ऐसी तो उसकी ताकत-स्वभाव है। अनुभूति कर सके, ऐसा तो उसका गुण स्वभाव है। यहाँ परमात्मा की बात लेनी है न, भाई! इसलिए और यह आया अभी मस्तिष्क में। आहाहा!

क्या कहते हैं? भाई! भक्ति करनेवाला जिसकी भक्ति करता है, उसका भी उसे भान होता है और मैं कौन हूँ, उसका भी उसे भान होता है। मैं तो ज्ञान, दर्शन और

आनन्दस्वरूप हूँ। यह पुण्य और पाप का राग भाग होने पर भी मेरी चीज़ में—उस स्वभाव में—मेरा अन्तरात्मा जो स्वभाव है, उसमें वह नहीं है। ऐसा जिसे भान हो, उसे आत्मा में परमात्मा होने की शक्ति है, ऐसी उसे प्रतीति हुई हो; इसलिए परमात्मा हुए हैं, उनकी भक्ति और उल्लास और प्रेम से आत्मा का स्वभाव, उसमें राग होने का (स्वभाव) नहीं होने पर भी, पर्याय में भक्ति का राग वह उत्पन्न करता है। होता है, उसे उत्पन्न करता है—ऐसा कहने में आता है।

यह यहाँ आचार्य महाराज... कथन पद्धति ऐसी होती है। वस्तु स्वभाव वह तो जैसा है वैसा है। राग करूँ, ऐसा स्वभाव में एक भी गुण नहीं है। संसार—विकार करूँ, ऐसा कोई गुण नहीं है। भारी सूक्ष्म बात। इसकी दशा में वर्तमान अवस्था में विकार करूँ, ऐसी योग्यता है। उस योग्यता की रुचि छोड़कर जिसने आत्मा में परमात्मा होने की मुझमें शक्ति है, ऐसा जिसने अन्तर में आनन्द और ज्ञानस्वभाव का भान किया है, विकार अभी बाकी है, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है और जिसे विकार टलकर पूर्ण दशा प्राप्त हुई है, उसे परमात्मा कहा जाता है। वह अन्तरात्मा परमात्मा की भक्ति करता है, वह यहाँ चलता है। समझ में आया? यह सब इसे ज्ञान करना पड़ेगा। इसके बिना कहीं कल्याण हो जाये और हित हो जाये, (ऐसा नहीं होता)।

मुमुक्षु : गुरु-कृपा से होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु-कृपा से होगा (यह तो) उसे हो, तब गुरु-कृपा कहलाती है। गुरु-कृपा... अनन्त केवली मिल गये। समझ में आया? अनन्त सर्वज्ञों के समवसरण में अनन्त बार गया है, भाई! इसके अनादि काल के प्रवाह में। अनन्त सर्वज्ञ परमात्मा साक्षात् विराजे, उनकी धर्मसभा में भी अनन्त बार गया। कल्पवृक्ष के पुष्प से, मणिरत्न के दीपक से पूजा की। परन्तु यह भगवान आत्मा क्या कहना चाहते हैं? वह कहना चाहते हैं, विकार और संयोग से रहित तेरी चीज़ है, आनन्द अनुभव करनेयोग्य तेरा स्वभाव है, ऐसा जो कहना चाहते (थे), उसे समझा नहीं। समझा नहीं और ऐसी भक्ति करके अनन्त बार उनके पास गया परन्तु उसमें कुछ आत्मा को लाभ हुआ नहीं। किसी की कृपा से मुक्ति मिले तो कोई श्राप देकर मुक्ति ले लेवे। ऐसा है नहीं। महासुखभाई! कैसे होगा? कोई भगवान की कृपा-बृपा हो जाये तो? बापू! यह बातें जाननेयोग्य है। यह कृपा इसकी दया

उसे होती है। अरे! आत्मा चौरासी लाख में अवतरित होता है। अरे... ! मैं दु:खी हूँ। ऐसी जिसे अपनी दया आती है और अपने चैतन्य भावप्राण का अनुभव और प्रतीति होती है और करता है, उसकी कृपा उसने आत्मा पर प्राप्त की। मनसुखभाई! ऐसा आत्मा...

प्रवचनसार में आता है न? भाई! भक्ति में नहीं? मैं कौन? और हे परमात्मा! आप कौन? ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य शुरुआत में वर्णन करते हैं। प्रभु! मैं तो ज्ञान, दर्शन का भण्डार भरपूर चैतन्य हूँ, हों! और आपकी पूर्ण दशा प्रगट हुई है, उसे मैं वन्दन और भक्ति, स्तवन और विनय करता हूँ।

इस प्रकार यहाँ आचार्य महाराज पद्मनन्दि प्रभु आचार्य हैं, सन्त हैं, महन्त हैं, आत्मा के आनन्द में झूलते (सन्त हैं)। लोगों को ऐसा रस पड़ता है कि यह बाह्य आचरण है न? दया, दान, भक्ति यह आचरण ही पूरा कल्याण और मार्ग है। भगवान! यह वस्तु आचरण-फाचरण (नहीं है)। आत्मा अखण्डानन्द ज्ञाता-दृष्टा के भान बिना इस आचरण में चौरासी के अवतार प्रगट करने की ताकत है। समझ में आया? भले स्वर्ग मिले, तो भी स्वर्ग मिलकर वापस ढ़ोर में जायेगा। जिसे आत्मदर्शन, आत्मदर्शन (नहीं), स्वयं कौन है, उसकी इसे कीमत नहीं होती और दुनिया की कीमत आँकने जाता है, उसे कीमत सच्ची नहीं हो सकती।

यहाँ तो आत्मा की कीमत हुई, प्रभु! आपने कहा हुआ आत्मा, मैं शुद्ध चिदानन्द आनन्दघन हूँ, ऐसी प्रतीति अनुभव किया और प्रतीति में आत्मा जिसने लिया है, वह पूर्णानन्द परमात्मा की भक्ति करने उछल निकले हैं। मुझे भी अब पूर्णानन्द होना है, तो पूर्णानन्द को प्राप्त ऐसे भगवान की भक्ति करते हैं।

अब यहाँ १९वीं गाथा में ऐसा आया है, ऋषभदेव भगवान के पूर्व के भव से लेते-लेते यहाँ तक आया। हे नाथ! आपने **निर्मल समाधि के प्रभाव से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण...** देखो! केवलज्ञान! केवलज्ञान, वह आत्मा का सम्यग्ज्ञान दर्पण है। आहाहा! उस अन्तर चैतन्य का ज्ञानस्वभाव, वह अन्तर में एकाकार होकर जब उसकी दशा में (प्रगट हुआ)... सम्यग्ज्ञान शब्द प्रयोग किया है। है? समझ में आया? '**कम्मकलंकचउक्के, णट्ठे णिम्मलसमाहिभूईए। तुह णाणदप्पणेच्चिय**' ज्ञान का दर्पण, ऐसा कहकर उसमें निर्मल निकाला। एक समय के

अन्दर... आहाहा! ज्ञानगुण की आत्मा की शक्ति है, उसकी दशा तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय को परमात्मदशा कहा जाता है।

कहते हैं कि हे नाथ! देखो! स्वयं को इसका ख्याल है कि आत्मा की शान्ति और अन्तर समाधि द्वारा केवलज्ञान प्रगट होगा। इससे ही भगवान को केवलज्ञान कैसे हुआ, यह भी लक्ष्य में लेकर भक्ति करते हैं। परमात्मा! पूर्णानन्द और पूर्ण शान्ति आपने प्रगट की है, उस आत्मा के अन्तर में समाधि एवं शान्ति द्वारा प्रगट की है। यह राग और पुण्य और शरीर के द्वारा नहीं। शरीर अच्छा था, इसलिए क्रिया हुई और केवल (ज्ञान) हुआ; अन्दर दया, दान के, भक्ति के भाव थे, इसलिए केवल(ज्ञान) हुआ। नहीं, नहीं। वह आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति में एकाकार होकर शान्त, निर्मल, समाधि... समाधि अर्थात् आनन्द, उस आनन्द की लहर करते-करते इसने केवलज्ञान को प्राप्त किया है। ऐसे भक्तों को भक्ति में ऐसा ख्याल है। परमात्मा ने कैसे परमात्मपना प्रगट किया, ऐसा उसे ख्याल होता है। यह ख्याल न हो तो उसकी भक्ति और भक्त दोनों सच्चे नहीं हैं।

हे नाथ! **आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में लोकालोक प्रतिबिम्बित हो रहा है।** क्या कहते हैं? एक समय के ज्ञान में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। यह प्रतीति किसे (आती है)? अभी तो आत्मा कितना, इसकी खबर नहीं होती। उसके एक ज्ञानगुण की एक दशा,... आहाहा! एक समय की अवस्था, जलहल ज्योति आत्मा प्रगट हो, इससे तीन काल-तीन लोक जिसमें ज्ञात हो, ऐसे केवलज्ञान को मोक्षतत्त्व अथवा केवलज्ञानी की दशा, परमात्मदशा कहते हैं। उसे जिसने प्रतीति में लिया है। मैं रागपने, द्वेषपने रहने के योग्य नहीं हूँ। समय की अवस्था भले हो, परन्तु मैं केवलज्ञान होने के योग्य हूँ, ऐसी जिसने आत्मद्रव्य की प्रतीति की है, वह परमात्मा की सच्ची भक्ति कर सकता है।

देखो! इसमें तो ऐसा भी आया कि एक समय में भगवान का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को देखता है। अब उस ज्ञान प्रमाण जगत में होता है।

मुमुक्षु : ज्ञान के आधीन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान के आधीन होता है, ऐसा नहीं। जाना है, इसलिए उसके कारण से होता है, ऐसा नहीं। परन्तु भगवान ने ज्ञान में जाना, तत्प्रमाण जगत के पदार्थ स्वयं के कारण से पर्यायरूप परिणम रहे हैं। ऐसा ही उनका—दोनों को निमित्त-नैमित्तिक

सम्बन्ध है। समझ में आया ? जितने जगत के पदार्थ हैं, उनका त्रिकाल क्षेत्र, व्यवहार का .... उसकी दशा और उसका भाव और उसके भव, वे सब भगवान के ज्ञान में ज्ञात हो गये होते हैं और वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, राजनीति से चार, इस राजनीति को भगवान! आपकी आज्ञा को कोई उल्लंघन कर नहीं सकता। क्या कहा ? इस ज्ञान में आपने जाना, उसी प्रमाण जगत का परिणमन ज्ञान के कारण से नहीं, स्वयं के कारण से होता है, तथापि ज्ञान ने जाना तत्प्रमाण ही उसमें होता है। गजब बात, भाई! यह सब विवाद, जगत को अभी केवलज्ञान की श्रद्धा की खबर नहीं होती। केवलज्ञान क्या है, अरिहन्तपद क्या है, परमात्मपद क्या है, (इसकी खबर नहीं होती)।

एक उसमय का ज्ञान, जिसने तीन काल-तीन लोक देखे, उसी प्रमाण वहाँ पर्याय जिस समय में जहाँ जिस द्रव्य की होनेवाली है, वह होनेवाली है। चक्रवर्ती की आज्ञा का उल्लंघन हो परन्तु भगवान ने जाना, ऐसे ज्ञान की आज्ञा उल्लंघकर जगत की पर्याय दूसरे प्रकार से हो, ऐसा नहीं होता। ऐसा भाई! शब्द आता है, हों! देवचन्दजी में एक आता है। शीतलनाथ (भगवान के स्तवन में) उसमें आता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव राजनीति से चार। भगवान! आपकी आज्ञा को कोई उल्लंघन नहीं करता। चक्रवर्ती की आज्ञा उल्लंघन करे परन्तु आपके ज्ञान में जाना, उससे जगत में दूसरा हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। ठीक! तब तो ज्ञान में जाना, ऐसा होता है, इसलिए आत्मा को कुछ करने का रहा नहीं।

यहाँ आचार्य स्तुति करते हैं, समझ कर। भगवान! आपके एक समय के ज्ञान में सब ज्ञात हुआ है, ऐसी हमें प्रतीति आयी है। हमारा आत्मा अन्तर ज्ञानस्वभाव को अवलम्ब कर आपके केवलज्ञान की प्रतीति की है। हमारा पुरुषार्थ अन्तर के स्वभाव में गया और जिसमें सर्वज्ञपद चैतन्य में पड़ा है, उसे अवलम्ब कर हमारी पूर्ण ज्ञान की प्रतीति होने से, शक्ति की पूर्ण ज्ञान की प्रतीति होने से आपके केवलज्ञान में जो पूर्ण दशा है और वह जाना, वैसा होता है, ऐसी हमें प्रतीति सम्यग्दर्शन में आ गयी है। समझ में आया ? विवाद उठाते हैं या नहीं ? नेमीचन्दभाई! सब मूल में विवाद। अभी केवलज्ञान और परमात्मा की श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। अभी केवलज्ञान होवे तो क्रमबद्ध हो गया, क्रमबद्ध हो जाए तो उसमें (कुछ करने का रहता नहीं)। अरे! भगवान! तूने एक भी तत्त्व को जाना नहीं, सुन न! समझ में आया ?

जिसने केवलज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक जानती है, ऐसी जिसे प्रतीति हो, ऐसी प्रतीति अल्पज्ञदशा में अल्पज्ञ के अवलम्बन से नहीं होती। ऐसी प्रतीति करने जाये, वहाँ सर्वज्ञ आत्मा का अन्दर स्वभाव है, उसका आश्रय ले, तब उसे सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। उसमें आत्मा के स्वभाव का पुरुषार्थ आ जाता है। बहुत सूक्ष्म परन्तु। दलीचन्दभाई! यह कौन सिर फोड़े? जैसे भटकते हैं, वैसे भटकना। इसमें समझना चाहे तो इसमें कहाँ समझना ऐसा? बाहर का करते हैं उसमें ठीक, इस समझण में आवे नहीं और भटकने का कभी मिटे नहीं। भगवान! यह सिरपच्ची नहीं है। सिरपच्ची को तोड़ डालने की यह बात है। क्या करे?

यहाँ यह कहते हैं कि हे नाथ! आपने एक तो आत्मा की शान्ति, शान्ति, शान्ति... उसके स्वभाव द्वारा आपने केवलज्ञान को प्रगट किया और वह केवलज्ञान हमारी प्रतीति में हमें मोक्षतत्त्व की प्रतीति वर्तती है। सात तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। उसमें मोक्षतत्त्व आ जाता है। हमें मोक्षतत्त्व की श्रद्धा हुई है। केवलज्ञान में देखा, तत्प्रमाण होगा—ऐसा हमारे ज्ञान के स्वभाव में हमें प्रतीति में आ गया है। हमें प्रगट नहीं, इसलिए भगवान! आपकी भक्ति करते हैं। यह शुभराग है, हों! राग आये बिना रहता नहीं। है बन्धन का कारण। यह भक्ति का शुभराग है बन्धन का कारण, परन्तु पूर्ण दशा नहीं है, वहाँ इस भाव का राग उसके कालक्रम में आये बिना नहीं रहता। यह १९वीं गाथा में कहा।

अब २०वीं (गाथा)। हे नाथ! देखो! यह आत्मा की दशा। आत्मा वस्तु, उसके अनन्त गुण की शक्ति अर्थात् स्वभाव और प्रगट हुई अवस्था को पर्याय कहा जाता है। वह पर्याय जिसकी पूर्ण प्रगट हुई, तब केवलज्ञानी (हुए)। चार घनघाति कर्म, उसका आत्मसमाधि द्वारा नाश किया, यह भी एक व्यवहार के वचन हैं। अपूर्णता का पूर्णता के लक्ष्य से पूर्णता प्रगट होने पर अपूर्ण दशा का नाश हुआ, उसे भी किया, ऐसा व्यवहार कहने में आता है। तो चार घनघाति (कर्म) नाश किये, यह तो असद्भूत व्यवहारनय के कथन हैं। भारी बात, भाई! कथन है, उसके भी अर्थ दूसरे। जड़ को कौन आत्मा नाश कर सकता है? जड़ का स्वामी है कि वह जड़ को नाश करे? और अपनी अल्पज्ञता का नाश, अल्पज्ञता का लक्ष्य करके कर सकता है? ले यह मेरा अल्प ज्ञान है, इसका नाश करूँ। सर्वज्ञ अन्तर स्वभाव है, उसका अवलम्बन लेने से सर्वज्ञ स्वभाव प्रगट होता है, तब

अल्पज्ञता का नाश हो जाता है। सर्वज्ञ का उत्पाद हो, अल्पज्ञ का विनाश हो और ध्रुव कायम टिका रहे। ऐसे तत्त्व की दृष्टिवन्त सच्चे परमात्मा को मानता है और ऐसे सच्चे अरिहन्त को पहिचानता है। वह सच्चे अरिहन्त की भक्ति करता है। बाकी सब तुम्बी में कंकड। ठीक! एक बात (हुई)।

यह बात याद आयी थी, भाई! प्रवचनसार में आता है न? अचिन्त्य आदित्य और सूर्य का दृष्टान्त अभी वहाँ आया था। आत्मा कैसा है? सिद्ध कैसे हैं, ऐसा वर्णन करते हुए आत्मा ऐसा है। सिद्ध हैं वे चैतन्य तेजवाले हैं, दिव्य शक्ति प्राप्त हैं, देव हैं देव और वे देव सिद्ध परमात्मा पूर्णानन्द या अरिहन्त, वे गणधर जैसे बुद्धिवन्त और धर्मात्मा के चित्तरूपी स्तम्भ में उत्कीर्ण हो गये हैं। भाई! आता है न? यह वहाँ अभी याद आया था। समझ में आया? गणधर सन्त मुनि महा आत्मा के आनन्द में झूलते, परन्तु अभी पूर्ण वीतराग और पूर्ण केवल (ज्ञानी) नहीं, उसके चित्तरूपी स्तम्भ में पूर्णानन्द को प्राप्त परमात्मा उत्कीर्ण हो गये हैं, इसलिए वे देव कहे जाते हैं। ऐसे गणधर भी जिन्हें पूजते हैं। आहाहा!

अरे! परन्तु एक पद की अभी णमो अरिहन्ताणं की खबर नहीं होती। पहला पद। अरि अर्थात् विकाररूपी शत्रु को जिसने टाला, यह भी एक व्यवहार का कथन है। परन्तु पूर्णानन्द के स्वभाव में दृष्टि और एकाकार होने से उस विकार की अल्पज्ञता और विपरीतता टल गयी, उसे अरिहन्त कहा जाता है। आहा! ऐसे अरिहन्त को इस प्रकार से पहिचाने, उसे सम्यग्दर्शन की प्रतीति हुए बिना नहीं रहे। इसलिए कहते हैं, भगवान! आप तो सन्तों के ज्ञान के स्तम्भ में उत्कीर्ण हो गये हो। क्योंकि उन्हें भी परमात्मपद लेना है। अब २०वीं (गाथा)।

देखो! यह केवलज्ञान की—परमात्मदशा की बात की। पहली बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा (की बात की)। बहिरात्मा (अर्थात्) राग-द्वेष और शरीर मेरे, ऐसी जिसकी दृष्टि अज्ञान के ऊपर—पर के ऊपर है, वह बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। जब धर्मी होता है, तब परमात्मा की भक्ति करने के योग्य है। वह धर्मी पुण्य और पाप और देहादि नहीं, मैं चिदानन्द आत्मा हूँ, मुझमें केवलज्ञान प्रगट होने की ताकत है। प्रगट हुई नहीं। ऐसी जिसे अनुभव में प्रतीति होती है, उसे अन्तरात्मा धर्मी साधकजीव कहा जाता है। उस पूर्ण दशा को प्राप्त ऐसी परमात्मा की दशा जिन्हें प्रगट हुई, उनकी भक्ति करते हैं।

अब कहते हैं कि हे नाथ! आपको चार कर्मों का नाश हुआ, नाश किया परन्तु अब चार बाकी रहे, वे मुर्दे जैसे रह गये। देखो! आठ कर्म है, आठ कर्म। उसमें चार हैं, वे घाति हैं और चार हैं, वे अघाति हैं। आत्मा की दशा ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य की हीन होने में जो निमित्त है, उसे घातिकर्म कहते हैं और एक अघाति कर्म जो संयोग-वियोग में निमित्त होता है और अव्याबाध आदि गुण को घात में निमित्त होता है, उसे अघातिकर्म नाम दिया जाता है। देखो! इसे अरिहन्त का ख्याल है और आत्मा की दशा कैसे बढ़ती है और बढ़ने में बाकी क्या रहा, उसका भी इसे ख्याल है।

अब कहते हैं, हे नाथ! आपने जब चार घातिकर्म का नाश किया, तब रहे बाकी चार। उन्हें त्रास हुआ कि उन्हें मार डाला, हमें भी मार डालेगा। समझ में आया? बड़े योद्धा जैसे को, नियाणा जैसे को मार डाला तो यह टेंटा जैसे बालक पड़े, वे तो मुर्दे जैसे हैं। उन्हें भय हो गया कि अब तो हमें मार डालेगा। ऐसा कहकर कुछ कहना चाहते हैं, हों! क्या कहते हैं? देखो!

गाथा २०

आवरणाईणि तए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचउक्केण मुअं व णाह भीऐण सेसेण॥२०॥

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़सहित अर्थात् सर्वथा नाश कर दिया था; उस समय उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर शेष जो चार अघातियाकर्म रहे, वे भय से आपकी आत्मा में मरे हुए के समान रह गये।

भावार्थ - जिस समय ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय - इन चार घातियाकर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है; उस समय शेष वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र - ये चार अघातियाकर्म बलहीन रह जाते हैं। इसी आशय को मन में रखकर ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे भगवान! जो अघातियाकर्म आपकी आत्मा में मृतक के समान अशक्त होकर पड़े रहे, उनकी अशक्तता का कारण यह है कि जब आपने

अत्यन्त प्रबल चार घातियाकर्मों को नाश कर दिया, उस समय उनको बड़ा भारी भय हुआ कि हम भी अब निर्मूल किये जाएँगे; इसीलिए वे मरे हुए के समान अशक्त ही आपकी आत्मा में स्थित रहे।

गाथा - २० पर प्रवचन

आवरणाईणि तए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचउक्केण मुअं व णाह भीऐण सेसेण।।२०।।

हे नाथ! हे प्रभु! हे परमात्मा! आत्मा के शान्ति के साधन द्वारा आपने चार घातिकर्मों का नाश किया। यह देखकर... **जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़सहित सर्वथा नाश कर दिया था,...** मनुसखभाई! आता है न? खामणा में आता है। वहाँ शब्द आते हैं। **उस समय उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर,...** वे चार घाति नाश हुए न? तब वे **शेष अघातिया...** रहे... अघातिया लिखा है भाई इसमें? चार घातिया रहे इसमें लिखा है। वह 'अ' पड़ा रहा है इसमें। उसमें भी 'अ' रह गया है, इसमें भी 'अ' रह गया।

मुमुक्षु : यह दूसरी आवृत्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी आवृत्ति है, ठीक! इसमें 'अ' रह गया है। चार अघातिया रहे। क्या कहा? आत्मा अपनी विपरीत दशा और हीन दशा प्रगट करता है, उसमें एक कर्म जड़ निमित्तरूप है, उसकी सिद्धि करते हैं। अपूर्णता अपने लक्ष्य से नहीं होती; वह परलक्ष्य से होती है, ऐसी एक चीज़ है, उसे यहाँ कर्म कहा जाता है। उसका ज्ञान करके, कहते हैं, हे नाथ! जब आपने चार कर्मों का नाश किया, परमात्मा! तब बाकी रहे हुए चार **भय के कारण आपकी आत्मा में मृतदेह के समान स्थित रहे।** वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, ये चार कर्म हैं, रजकण की सूक्ष्म धूल। इन चार योद्धाओं को जहाँ आत्मा के ध्यान द्वारा नाश किया, तब चार बाकी मरे हुए वत् रहे हैं। समझ में आया? बात-बात में (अन्तर)। क्या घाति और क्या अघाति। भगवान जाने, अपने को तो धर्म करना है, चलो। अरे.. बापू! वह धर्म कैसे होगा? आत्मा—स्वभाव क्या है? उसकी दशा में विकार

क्या है ? उस विकार में निमित्त और संयोगी चीज़ क्या है ? उसके भान के विवेक बिना इसे आत्मा की दृष्टि और आत्मा का ज्ञान होता नहीं। आहाहा!

आचार्य महाराज कहते हैं, हे नाथ! आपने चार कर्मों का नाश किया। उसे देखकर वे चार अघाति कर्म, '**मुअं, भीएण**' भय से... अलंकार किया है, हों! जड़ को कुछ भय-बय होता नहीं। परन्तु अलंकार करके कहते हैं, अब मुर्दे जैसे रहे, अब टलने के योग्य हो गये। श्रीमद् ने कहा न ? भाई! उसमें आता है, अपूर्व अवसर में आता है। 'चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ।' परमात्म (पद) प्राप्त अरिहन्त सर्वज्ञ को...

चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ।
भव के बीज का आत्यन्तिक नाश जब॥

लो, भव का बीज यह कहा। चार घातिकर्म निमित्तरूप से और अपनी अपूर्णता तथा विकार, वह भव का बीज है। 'भव के बीज का आत्यन्तिक नाश जब'। परमात्मा को कहते हैं। समझ में आया ?

चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ।
भव के बीज का आत्यन्तिक नाश जब॥
सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता

देखो! यह क्या प्रगट हुआ ऐसा कहते हैं।

सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता

हे नाथ! ज्ञानावरणी टलकर आपको सर्वज्ञापना प्रगट हुआ। दर्शनावरणी टलकर सर्वदृष्टापना प्रगट हुआ, मोहनीय टलकर शुद्धता प्रगट हुई।

सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो।

हे नाथ! आपकी पूर्ण प्राप्ति में आपका वीर्य ऐसा प्रगट हुआ, कृतकृत्य वीर्य। सब करनेयोग्य था, वह वीर्य ने कर लिया। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन को प्राप्त किया।

कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो।

देखो! यह वर्णन कर क्या कहते हैं ?

अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ?

हे नाथ ! आपकी ऐसी दशा प्रगट हुई। नाथ ! हमें यह अवसर कब आयेगा ? अर्थात् कि हम इतना पुरुषार्थ जगाकर केवलज्ञान को और इस दशा को कब प्राप्त होंगे ? 'अपूर्व अवसर ऐसा...' गृहस्थाश्रम में थे न ? भावना नहीं कर सकते ? पाँच लाख की पूँजीवाला, करोड़ का धन्धा नहीं करता ? रमणीकभाई ! करता है या नहीं ? बड़ी फलांग मारता है। होवे पाँच लाख और दस लाख की पूँजी और मारे करोड़ और दो करोड़ की धपाल मारे, धपाल।

इसी प्रकार पूँजी में ज्ञान की पर्याय सम्यक् की प्रगट हुई है, अन्तर पूँजी में केवलज्ञान होने की शक्ति में ताकत है। भावना भाते हैं कि अहो ! नाथ ! कब केवलज्ञान, कब केवलदर्शन, कब मैं आत्मा की पूर्णानन्द दशा प्राप्त करूँ ? यह अपूर्व अवसर हमें कब आयेगा ? फिर कही है इसकी बात।

वेदनीय आदि चार कर्म वर्ते जहाँ
जली रस्सीवत् आकृति मात्र जो।

अर्थ की खबर नहीं होती, दलीचन्दभाई ! वह यह बात करते हैं आचार्य, भगवान को लक्ष्य कर। हे नाथ !

वेदनीय आदि चार कर्म वर्ते जहाँ
जली रस्सीवत्...

यह रस्सी होती है न ? सिंदरी। क्या कहलाती है ? रस्सी, रस्सी। यह डोरी। वह जली हुई रस्सीवत्। वह रस्सी जल गयी हो न ? उसमें आकार दिखता है। वह लकड़ियाँ बाँधने में काम नहीं आती। जली हुई रस्सी—जली हुई रस्सी। आकार दिखता अवश्य है और ऐसे लम्बी, परन्तु वह कहीं कोई चीज़ बाँधने में काम नहीं आती। इसी प्रकार हे नाथ ! आपको केवलज्ञान प्राप्त होने पर चार कर्म ऐसे जली हुई रस्सीवत् रह गये हैं। यहाँ आचार्य ने मुर्देवत् रहे, ऐसा कहा है। उन अघातिकर्म में ताकत नहीं कि आत्मा की शान्ति को रोके और केवलज्ञान को रोकने में निमित्त भी नहीं होते। रोके तो कर्म कोई रोकता नहीं, परन्तु निमित्त होने की और अनन्त आनन्द में विघ्न करने की भी उनमें ताकत नहीं है। मात्र

संयोगों में जरा हीनाधिक न्यूनता हो अथवा अपने अव्याबाध सुख की प्राप्ति नहीं, उसमें वे निमित्त कहलाते हैं।

कहते हैं, नाथ! आपको चार कर्म टले और चार कर्म बाकी (है, ऐसा) हमारे ज्ञान में भान है। वे मरे हुए मुर्दे की भाँति रहे हैं। अब आत्मा की एकाग्रता द्वारा वे टलकर ही रहेंगे और सिद्धपद होगा ही। अरिहन्तपद को जीवनमुक्तदशा कहा जाता है और आठों ही कर्म टलकर शरीररहित होवे, तब उसे विदेहमुक्त कहलाता है। देहरहित सिद्ध भगवान, उन्हें विदेहमुक्त कहा जाता है और अरिहन्तपद में चार बाकी और चार टले, देहसहित, उन्हें जीवनमुक्त कहा जाता है। ऐसे पद का जिसे ज्ञान (हुआ है, ऐसे) भक्त, भक्ति करनेयोग्य है, उनकी स्तुति करते हैं। कहो, समझ में आया? अब २१। क्या कहते हैं अब? यहाँ तक आये, केवलज्ञान और केवलदर्शन तक। अभी चार कर्म बाकी हैं।

समवसरण—उनकी एक धर्मसभा होती है। अब ठेठ से उठाकर बात करते-करते (कहते हैं), हे नाथ! आपको जब केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब इन्द्रों ने आकर एक धर्मसभा रची। जिसे समवसरण कहते हैं। समवसरण, जिसमें अनेक देव और बाघ और नाग, राजा तथा रंक आदि सुनने आते हैं। ऐसी एक धर्मसभा इन्द्र रचते हैं, उसे समवसरण कहते हैं। यह अलंकार नहीं है, हों! यह परमात्मपद जहाँ अन्दर में पूर्णानन्द की दशा होती है, तब वाणी का फिर कहेंगे। अभी तो यहाँ आप समवसरण में विराजमान हो, एक धर्मसभा इन्द्र (रचते हैं)। आठ प्रकार की सभा होती है। ऐसी रचते हैं। आठ प्रकार की... सभी तो बारह प्रकार की परन्तु आठ प्रकार की... क्या कहा जाता है उसे? रचना। आठ भूमि... भूमि। शब्द भूल गये। आठ भूमि रचते हैं। उन आठ भूमि में एक अन्दर की भूमि... बारह सभा होती है। पशु, पक्षी, देव, देवियाँ, नाग, मुनि, आर्यिका (बैठे), ऐसी बारह सभा (होती है)।

पूर्णानन्द को प्राप्त परमात्मा! आपको जब समवसरण में इन्द्रों ने सभा रची, तब कैसी सभा थी? और उसकी शोभा किसके कारण हुई? यह जरा वर्णन करते हैं। यहाँ के महावीर भगवान आदि हुए, तब अरिहन्तपद में थे, तब ऐसा था। अभी तो सिद्धपद हो गया। यह ऋषभदेव भगवान अभी सिद्ध हैं। परन्तु यह आचार्य वर्तमान में मानो तीर्थंकररूप से हों, यह लक्ष्य करके बात कर रहे हैं। जब आपको केवलज्ञान हुआ, तब हे प्रभु!

गाथा २१

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिवट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

अर्थ – हे जिनेश! हे प्रभो! जिस समवसरण की रचना चित्र-विचित्र मणियों से की गयी थी, उस समवसरण में जितने भी मुनि थे, उन समस्त मुनियों के ऊपर विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।

गाथा - २१ पर प्रवचन

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिवट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

यह समवसरण। पूरणचन्दजी! यह तुम्हारे समवसरण रचना है न यहाँ? नवनीतभाई! यह समवसरण है न दादर में? वह किसका पंच कल्याणक चलेगा? यह उसका नमूना है। यहाँ कहाँ भिखारी को ऐसी ताकत होगी? इन्द्र उनकी सभा रचे तो एक-एक मानस्तम्भ अन्दर होता है। मानस्तम्भ किया है अन्दर। चारों ओर चार (मानस्तम्भ होते हैं)। ऐसा है देखने जैसा। यहाँ दादर में इन लोगों ने किया है। यह उसका महोत्सव है न पंचमी से। वह सभा इन्द्र आकर रचते हैं। यहाँ पामर को क्या शक्ति हो। दो-पाँच लाख खर्च कर करे। वह तो एक पत्थर का एक मानस्तम्भ होता है। सोने का पूरा। चारों ओर चार मानस्तम्भ सभा को होते हैं। यहाँ देखने गये थे अभी दो-तीन दिन पहले। पद्धतिसर ठीक हुआ है। पद्धतिसर ठीक न? वह तो यहाँ होगा नहीं।

ऐसी सभा इन्द्र आकर रचते हैं। और रचकर ऐसे देखते हैं, तब इन्द्र को ऐसा होता है... इन्द्र तीन ज्ञान के धनी हैं, हों! ऊपर स्वर्ग के। सब लॉजिक-युक्ति से सिद्ध हो सकता है। परन्तु एक भी बात की खबर नहीं होती, उसे ऐसी एकदम बड़ी बात आवे तब (लगता है कि) कैसे होगा यह? यह ऐसा ही है। कैसे होगा क्या। यह इन्द्र आकर जब धर्मसभा रचते हैं, तब उसमें चारों ओर मानस्तम्भ रचते हैं। सुवर्ण के! और पहला गढ़ रचते हैं

अन्दर, वह '**णाणामणिणिम्माणे देव**' हे नाथ!

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिवट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

हे प्रभु! हे वीतराग! हे परमेश्वर त्रिलोकनाथ! **जिस समवसरण की रचना...** जिस धर्मसभा की रचना... पुण्य भी तीर्थंकर का ऐसा था और भक्त भी ऐसे। दोनों निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। ऐसी समवसरण की रचना। यहाँ दादर में नमूनेरूप से कुछ ठीक किया है। दिखावरूप से सब ठीक है। थोड़ा-थोड़ा देखा था अभी तीन दिन पहले। नवनीतभाई! यह सब प्रमुख है न। सबने किया है। कहाँ गये मणिभाई? यह रहे। कर्ता-हर्ता कोई नहीं, हों!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बातें ऐसी हैं ये। उस रचना के काल में रचना हो, तब निमित्त हो, उसे कहा जाता है कि इसने रचा है। अर्थात् कि ऐसा नहीं है। परन्तु रचना के काल में हुआ, तब निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिये यह बात होती है। अरे! बापू! यह बातें कोई (अलौकिक है)! यह आँख की पलक झपकती है, वह आत्मा से तीन काल में नहीं। अरे! विवाद उठाते हैं। लो, ऐसा कहते हैं, हाथ आत्मा से हिलता नहीं, उसके साथ क्या हमें चर्चा करना? भगवान! प्रभु... प्रभु... प्रभु... क्या हो? अरे! चैतन्यनाथ, तू ज्ञान का स्वामी, प्रभु! और भूल तो राग का स्वामी (हो), परन्तु जड़ का स्वामी नहीं, हों! आहा!

अरे! मरण का अवसर आयेगा। बापू! 'एक दिन ऐसा आयेगा... जे सबलो साले ऐसा पड़ेगा, श्वास भी चैन से नहीं लिया जायेगा, हों! यह श्वास चले, नहीं चलना, प्रभु! तेरे आधीन नहीं है, हों! कैसे जँचे? ऐसे सत्य के सत्य परमेश्वर के कथन और सत्य का स्वरूप, इसे नहीं जँचता, उसे शरण कहाँ से मिले? यह श्वास की गति चले, प्रभु! यह तुझसे नहीं। यह मरने... एक बार कहा था। देह अपना स्थान छोड़ेगी। नाभि का स्थान छूट जाएगा, भगवान! .... तू क्या कर सकेगा पर का? सुन न भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से किया जाए क्या धूल ? वह होने के समय निमित्त कौन था, इसका ज्ञान कराने के लिये वे कथन है। वे झूठे नय के, असद्भूत के कथन हैं। अरे रे ! परन्तु जँचे कैसे ? ऐसे धमधम चलती हो.... भाषा निकालता हो और मानों मैं ही सब... कुछ मिला हो पैसा, इज्जत और कीर्ति और कुछ बोलने का और कुछ लिखने का... विकल्प, उसमें हो जाये कि हम तो सब इन पर के कर्ता। अरे.. प्रभु ! यह श्वास नहीं चले, हों ! यह वाणी नहीं बोली जाये। ध्यान रखना ! लोग ऐसा कहते हैं कि भाषा बन्द हो गयी। मरते हैं, ऐसा नहीं कहते थे कि आत्मा चला गया, इसलिए यह भाषा नहीं होती। दलीचन्दभाई ! ऐसा कहते हैं न ? भाषा बन्द है। अन्दर आत्मा है, जानता है टगटग ऐसा लगता है परन्तु भाषा नहीं होती। तब कहते हैं दे कुछ स्लेट में (लिखे)। स्लेट में हाथ हिले तो हिले, नहीं तो हाथ भी हिले नहीं। अरे ! भगवान ! यह देह का काम देह करती है। तुझसे (होते) नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : ...बिना नहीं चलता, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, बात तो सच्ची है, बापू ! मोटर मोटर से चलती है, प्रभु ! यह तुझे गले उतारना पड़ेगा भाई ! मश्करी करते हैं, करो, बापू ! करो। अवसर आया है हमें। आहाहा ! भाई ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यह क्या चीज़ है और इसके स्वभाव में क्या होता है और यह क्या नहीं करता और करता है, यह सब परखना कठिन है। आहाहा !

नरसिंह मेहता कहते हैं न ? भाई ! जूनागढ़ में हुए हैं।

अनेक युग वीत्या रे, अेने पंथे चालता रे... जी
नाव्यो नाव्यो पंथडा केरो रे पार...

हमने किया, हमने किया, हमने किया। बापू ! यह श्वास की क्रिया तेरी नहीं, भाई ! और राग उठता है, वह भी तेरा कर्तव्य नहीं, प्रभु ! ऐसी ही वस्तु की चीज़ है।

अनेक युग वीत्या रे, अेने पंथे चालता रे... जी
नाव्यो नाव्यो पंथडा केरो रे पार...
प्रभु तारी पास रे, हरि नथी वेगला जी...

पंचाध्यायी (शास्त्र में) कहते हैं, हरि अर्थात् आत्मा। क्यों? (विभाव) और विकार के ओघ को हरे, उसे हरि कहते हैं। विकार के ओघ को हरे, उसे हरि कहते हैं। भाई! पंचाध्यायी में है। पंचाध्यायी पुस्तक है न? उसमें हरि की व्याख्या की है। हरि तू, हों! दूसरा नहीं।

प्रभु तारी पास रे, हरि नथी वेगला जी...
पण तने आडो आव्यो रे अहंकार

इस देह के काम करूँ और श्वास के करूँ और धूल के करूँ, यह अहंकार। मर गया तू, सुन न अब। दलीचन्दभाई! आहाहा! अरे.. भगवान! तेरी महिमा पर के करने में नहीं, प्रभु! तेरी महिमा पर का नहीं करने में है। और तेरी महिमा विकार करने में भी नहीं। विकार हो, उसे जानने में तेरी महिमा है। आहाहा! कैसे गले उतरे?

ऐसे पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान हों। तीन-तीन लड्डू खाते हों, अभिमान (घमण्डी चाल)। और ऐसे हिलते हों (धम धम)। यह जड़ का काम, बैठे किस प्रकार इसे? पाटनी! क्या होगा यह? आड़े आया अहंकार? 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है।' मैंने किया, यह व्यवस्था के काम मैंने किये। भगवान! देह की व्यवस्था रखने की ताकत तुझमें नहीं है, हों! यह निर्णय करना पड़ेगा, प्रभु! इसके बिना तुझे शरण नहीं मिलेगी। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, हे नाथ! समवसरण जो इन्द्र ने रचा, यह निमित्त से कथन है, ऐसा कहना है। मणिभाई! उस काल में परमाणु की रचना धर्मसभा की होने की योग्यता थी, उन परमाणु में वह परिणम गयी। उसे इन्द्रों ने रची, ऐसा व्यवहार से, उसमें निमित्त कौन था—इसका ज्ञान कराने के लिये आचार्य महाराज कहते हैं, हे नाथ '**णाणामणिणिम्माणे**' '**णिम्माणे**' '**णिम्माणे**' है न? रचना, ऐसा शब्द पड़ा है न? रचना शब्द है, इसलिए जरा व्याख्या की। अनेक प्रकार के मणिरत्न से समवसरण रचा गया। उसमें भगवान भिन्न विराजते हैं, हों! इन्हें और उसे कुछ लेना देना नहीं होता। आहाहा! महा पुण्यवन्त है, उनका पुण्य दुनिया में समाये नहीं, इतना पुण्य है। उस पुण्य की चमक जहाँ आयी, यहाँ केवलज्ञान हुआ और तीर्थंकर प्रकृति का उदय आया तथा इन्द्रों ने समवसरण / धर्मसभा की रचना की। उसमें भगवान सिंहासन के ऊपर-ऊपर विराजते हैं। सिंहासन पर नहीं, हों! सिंहासन से अध्धर चार अंगुल ऊँचे विराजते हैं। अभी चार बाकी है। वाणी, शरीर, बाकी है। आहाहा!

उसे लक्ष्य कर (कहते हैं), **जिस समवसरण की रचना, चित्र-विचित्र मणियों से की गयी थी,...** की गयी, ऐसा शब्द है न? **'णिम्माणे'। उस समवसरण में विद्यमान जितने भी मुनि थे...** देखो! आहाहा! याद करते हैं। आहा! प्रभु! जब ऐसे समवसरण में विराजमान थे, तब हजारों, लाखों सन्त आत्मा के आनन्द को साधते थे। वे मुनि आपकी सभा में विराजमान थे। आहाहा! अभी मुनियों का विरह है। उन्हें हजारों सन्तों का विरह देखा, तब याद किया भगवान को। उन भगवान की सभा में आत्मा के आनन्द के साधनेवाले अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले ऐसे सन्तों में प्रभु! **उन समस्त मुनियों के ऊपर विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।** आहाहा! वह सभा और उसमें मुनि आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले आपकी वाणी सुनने बैठे। समझ में आया?

एक विकल्प में भी पूर्व की यादगिरि करके मुनियों को स्मरण करते हैं और मुनियों की सभा में, नाथ! आप समवसरण में विराजते थे, वह आपकी बड़ी शोभा थी। **विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।** आहाहा! नीचे आत्मा के ध्यान में अतीन्द्रिय आनन्द की गुफा में अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द की गुफा में साधु लीन थे और आप केवलज्ञानी परमात्मा ऊपर विराजमान। उसके कारण प्रभु! सब शोभायमान था। ऐसा कहकर मुनियों को परमात्मा के ज्ञान की, उसके साथ ऐसा पुण्य था, उसका स्मरण और याद करते हैं। आहाहा!

एक व्यक्ति ऐसा कहता था कि यह सब अलंकार शब्द हैं, भाई! यह तो सब अलंकार हैं। अरे! भगवान! तूने बापू! देखा नहीं, भाई! तुझे पवित्र आत्मा की पवित्रता के समक्ष ऐसे पुण्य तो (कहीं होते नहीं)। पहले आया नहीं था? हे नाथ! आपकी भक्ति और आपके भक्तों को लक्ष्मी तो आगे आज्ञा माँगती आयेगी। यह पहले में आया था। माँगती आयेगी। करोड़ों, अरबों रुपये सेकेण्ड के (मिले)। आज्ञा माँगेगी कि कितना चाहिए! सुन न। जहाँ अनाज के ढ़ेर हों, वहाँ घास के ढ़ेर साथ में होते हैं। उसमें जहाँ आत्मा के ध्यान और ज्ञान की निर्जरा का भाव प्रगट होता है, वहाँ ऐसे वीतराग न हों, तब तक ऐसा पुण्य का विकल्प होता है। उसके फलरूप से पुण्य के ढ़ेर दिखते हैं। अज्ञानी की आँख में पुण्य बैठता नहीं। समझ में आया?

अभी तो यह सब राजा-महाराजा हो गये समझने जैसे। बेचारों को वार्षिक बाँध

दिया। अब यह कहाँ तक रहे ? यह पुण्य सब समाप्त हुए। उनका पुण्य था... आहाहा! कहते हैं कि जिसे पुण्य चाहिए नहीं, जिसे परमात्मदशा प्रगटी परन्तु पूर्व की तीर्थंकर प्रकृति बँधी हुई थी, उसके फलरूप से एकदम समवसरण की रचना इन्द्रों ने निमित्तरूप से की। प्रभु! आप तो महा अत्यन्त शोभा को (प्राप्त थे)। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य—समयसार के कर्ता, वे भी पौन्नूरहिल में ध्यान करते थे। मद्रास से अस्सी मील इस ओर वन्देवास है। वहाँ से पाँच मील, अभी सब गये थे, वहाँ ध्यान करते थे। वे स्वयं भगवान का समवसरण अन्दर में चिन्तवन करते थे। वह चिन्तवन करते हुए विरह दिखायी दिया कि अरे! प्रभु! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव! आपका हमें भरतक्षेत्र में विरह है। कैसे पुण्यशाली और पवित्रता तो स्वयं की थी। परन्तु उस पवित्रता के कारण वह योग नहीं हुआ किन्तु पुण्य के कारण से ऐसा पुण्ययोग कि सदेह भगवान के पास समवसरण में गये। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान विराजते हैं। उस वर्तमान सभा में भगवान तीन लोक के नाथ मनुष्यदेह में (विराजते हैं)। पाँच सौ धनुष का देह, करोड़ पूर्व का आयुष्य। वर्तमान मनुष्य क्षेत्र में विराजते हैं। यह मानना किस प्रकार ? साधारण बात की... अरे... भगवान! यह पुण्य तो ऐसा उनके पास तुच्छ है। जहाँ आत्मा की पवित्रता के समक्ष ऐसे समवसरण का पुण्य, वह तो साधारण बात है। ऐसे समवसरण में वे स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। अन्दर में विरह हुआ था। अरे! हमें परमात्मा का विरह है, प्रभु! आपके बिना हम भरतक्षेत्र में तड़पते हैं।

जिस प्रकार माँ के बिना पुत्र तड़पता है और अँगुली से पृथक् पड़े... अधिक लोगों में जाये न ? इस मुम्बई में देखो न, इसमें कहीं कहते नहीं ? लड़का खो जाये, बहुतों को होता है। उसकी माँ की अँगुली से पृथक् पड़े, तब उसे मेरी माँ... मेरी माँ... मेरी माँ... होता है। उसे चाहे जो पूछो कि तेरा नाम ? मेरी माँ। किस गली की ? मेरी माँ। है नेमिदासभाई! याद है एक बार ? पोरबन्दर उपाश्रय के निकट एक लड़की थी। पोरबन्दर। कौन सा ? (संवत्) १९८७ का चौमासा। सीढ़ियों के पास लड़की खो गयी थी। फिर उसे पूछे, कौन ? एक ही बोलती, मेरी माँ। परन्तु तेरा नाम कह तो हम पहिचानें। एक ही बात, मेरी माँ... मेरी माँ... मेरी माँ। वह अँगुली से अलग पड़ गयी थी। अलग पड़ गयी तो ऐसा कि मेरा क्या होगा ?

उसी प्रकार भक्त को-सम्यग्दृष्टि को-जीव को परमात्मा का विरह पड़ा। उसे परमात्मा... परमात्मा... परमात्मा... हो रहा होता है। आहाहा! माता से बिछुड़ा हुआ बालक। ऐसा आता है, भाई! एक श्लोक में। 'मात विहूणो बालुडो।' माता से रहित का बालक माता... माता... माता करता है। इसी प्रकार धर्मीजीव आत्मा का भान है, उसे पूर्णानन्द परमात्मा का विरह (स्मरण होता है), अरे! मेरे प्रभु मेरे पास नहीं। अरे! मेरे प्रभु तीन लोक के नाथ हमारे समीप नहीं। उसे माँ-पिता की भाँति, बालक को माता-पिता याद आवे, उसी प्रकार इसे प्रभु बारम्बार याद आते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, हे नाथ! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। आठ दिन साक्षात् सुना था, हों! भाई! और वह सुनकर यहाँ आकर यह शास्त्र रचे हैं। जगत स्वतन्त्र है। माने, न माने उसके साथ कुछ सत्यता जाती नहीं है। सत्य तो सत्य तीन काल में सत्य है। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महासन्त आत्मा के आनन्द में रमनेवाले, उन्हें भी भगवान का विरह हुआ और भगवान के निकट भेंट होकर आठ दिन भगवान का सुना। विकल्प आया।

यहाँ कहते हैं, नाथ! ऐसी सभा में मुनियों में आप विराजते हो। ओहो! यह अत्यन्त शोभा का स्थान है। हमको यहाँ पंचम काल में ऐसे साधन और ऐसा योग नहीं है। एक बात—समवसरण की बात की। अब मुनियों की शोभा, अब दूसरी बात करते हैं।

गाथा २२

समवसरण में विराजमान सर्वज्ञ भगवान की स्तुति करते हुए मुनिराज कहते हैं कि-

लोउत्तरा वि सा समवसरणसोहा जिणेस तुह पाये।
लहिऊण लहइ महिमं रविणो णलिणिव्व॥२२॥

अर्थ - हे भगवन्! हे प्रभो! जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी, सूर्य की किरणों को पाकर और भी अधिक महिमा को प्राप्त होती है, उसी प्रकार यद्यपि समवसरण की शोभा स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है तो भी हे जिनेन्द्र! आपके चरण-कमलों को पाकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।

भावार्थ - एक तो कमलिनी स्वभाव से ही अत्यन्त मनोहर होती है, किन्तु यदि वही कमलिनी सूर्य की किरणों को प्राप्त हो जावे तो और भी महिमा को प्राप्त होती है; उसी प्रकार समवसरण की शोभा, एक तो स्वभाव से ही लोकोत्तर, अर्थात् सबसे उत्तम होती है; और आपके चरणों के आश्रय को प्राप्त होकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।

गाथा - २२ पर प्रवचन

लोउत्तरा वि सा समवसरणसोहा जिणेस तुह पाये।
लहिऊण लहइ महिमं रविणो णलिणिव्व॥२२॥

क्या कहते हैं? हे परमात्मा! **जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी...** यह कमलिनी होता है न? कमल को धरनेवाली कमलिनी। **सूर्य की किरणों को पाकर...** कमलिनी में कमल की शोभा स्वत: है। कमलिनी की शोभा स्वतन्त्र होती है। कमल होता है न? कमल। **और भी अधिक महिमा को प्राप्त होती है,...** परन्तु उसमें सूर्य उगे, तब वह कमल का फूल ऐसे खिल निकलता है। वैसे ही हे भगवान! **उसी प्रकार समवसरण की शोभा, स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है...** अब यहाँ साधारण लोग भी कितने... ४८-४८ महल... कैसे? कहते हैं न? अमेरिका में... क्या? ४८ मंजिल। यह तो पुण्य का थोथा है। इसके पास पुण्य कहाँ था साधारण? कोई पापानुबन्धी पुण्य पूर्व में सहज किया हुआ। उसके (फल में) ऐसे ४८-४८ मंजिल (दिखायी दे)। उसकी इसे प्रतीति आती है। क्या कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें?

यह समवसरण भगवान की सभा... आहाहा! जहाँ बारह प्रकार की सभा विराजमान हो। मुनि, गणधर, सन्त... कहते हैं, **पुष्प में स्थित कमलिनी सूर्य की किरणों को पाकर और भी अधिक...** और अर्थात् क्या? स्वयं शोभायमान ही है, परन्तु सूर्य का निमित्त पाकर कमल स्वयं ऐसे खिल निकलता है, उसी प्रकार समवसरण की शोभा

स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है,... लोकोत्तर। आहाहा! लोक में चक्रवर्ती को न हो, ऐसा समवसरण होता है। छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती होते हैं, उनके सोलह हजार देव सेवा करते हैं। उनके पाँच महल बनाते हैं। चक्रवर्ती के लिये उत्कृष्ट पाँच महल बनाते हैं। वे भी इस समवसरण के समक्ष तुच्छ है, ऐसा कहते हैं।

चक्रवर्ती होते हैं। तीर्थंकर और चक्रवर्ती दोनों होते हैं। जैसे शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। चौबीस तीर्थंकर में तीन हैं या नहीं? वे तीर्थंकर भी थे, चक्रवर्ती भी थे, तीसरे प्रकार से कहें तो कामदेव भी थे। उनका रूप ढाई द्वीप में छह खण्ड में किसी का नहीं, ऐसा उनका रूप था और छह खण्ड के धनी चक्रवर्ती थे और तीर्थंकर थे। एक भव में तीन बड़ी पदवियाँ थीं। आहाहा!

कहते हैं, **समवसरण की शोभा, स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है,...** समवसरण की रचना... आहाहा! दुनिया के महल-बहल, ४८ पाटण और अमुक... कोई तो कहते हैं, इस गाँव में भी २२ मंजिल होते हैं। मेडियो कहते हैं न? क्या कहे न? २२ मंजिल कहो। मेडी कहो, माल कहो, सब एक है। २२ मंजिल के मकान। उसमें क्या है? इन्द्रों का जहाँ सिंहासन और वहाँ उनके देव देखो, उनके विमान अलौकिक हैं। यहाँ कहते हैं कि नाथ! यह समवसरण की शोभा लोकोत्तर-लोक में न हो, जगत के पास, ऐसी आपकी शोभा होती है। **तथापि हे जिनेन्द्र! आपके चरण-कमलों को पाकर...** आपके चरण पड़े न वहाँ, इसलिए समवसरण की शोभा अलौकिक हो गयी। आहाहा! आपके चरणकमल, हे परमात्मा! त्रिलोकनाथ प्रभु! समवसरण की शोभा तो स्वयं से है, तथापि आपके आने से... लोग नहीं कहते अच्छे गृहस्था आवे तब? आज मेरे घर में सोने का सूरज उगा। कोई करोड़पति हो और चाय पीने आवे तो ऐसा कहे, ओहो! हो सब धूलधाणी, हों! कोई राजा आया हो, माँस खाकर। कोई मकान-बकान का वास्तु लेना हो और आया हो तो बोले। आज तो हमारे घर में सूवर्ण का सूरज उगा। धूल में भी नहीं स्वर्ण का। यह सोने का है। राजा को बुलाते हैं वास्तु के समय? दो-पाँच हजार खर्च करे। वह मछलियाँ खाकर आया हो वहाँ। ओहो! स्वर्ण का सूरज। वह नरक में जानेवाला, उसका तुझे किसकी अभिनन्दना। इसके घर में वास्तु उसकी कीमत कितनी? ओहो! हमारे घर में (पधारे)।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! ऐसे अनन्त आनन्द उछलकर जहाँ आनन्द का अनुभव करते हैं, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... देह छूटकर सिद्धपद हो जानेवाला है। उनके चरण लिये। देखो! यहाँ शरीर लिया है न? अभी शरीरसहित हैं। **आपके चरण-कमलों को पाकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।** कौन? समवसरण की शोभा। लोग कहे न? आज हमारे घर में कंकू वर्णे ऐसा होता है। नहीं कहते? बाई के लिये ऐसा कहे। कोई बाई (स्त्री) अच्छी आयी हो घर में, यह बाई जब से आयी, तब से हमारा घर भर गया है। ऐसी बातें करते हैं न? वह पुण्यवन्त हो। और वह पुरानी थी, वह आयी छप्परपगी थी। ऐसी बातें लोग करते हैं। यह तो व्यर्थ की बातें हैं, हों!

यहाँ तो कहते हैं कि हे नाथ! यह सब जगत का सुना हो न। प्रभु परमात्मा तीन लोक के नाथ! आपके चरण पड़े, वे आपके चरण समवसरण में पड़े, उनकी अत्यन्त महिमा-शोभा धारण हो गयी। समवसरण की शोभा बढ़ गयी। आपके कारण वह शोभा है। भगवान! कहीं अकेली समवसरण की शोभा नहीं है। समझ में आया? ऐसा करके भक्ति की है।

अब आठ प्रातिहार्य की बात करेंगे। महापुण्य के अतिशय के आठ प्रातिहार्य हैं। उनकी बात विशेष करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक - १२-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - २२ से २५, प्रवचन-७८९

यह पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। इसमें पद्मनन्दि आचार्य आज से करीब ९०० वर्ष पहले भरतक्षेत्र में हो गये। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में रहनेवाले आत्मा थे। आत्मा है, वह आनन्द अतीन्द्रिय-इन्द्रियातीत आनन्द जिसका स्वभाव है, ऐसा जिसको अन्तर अनुभव होता है, पहले उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द (स्वरूप है)। पुण्य और पाप का भाव जो विकार है, उससे मैं भिन्न शान्त, अविकारी और अनाकुल आनन्द का स्वभाव मेरा परिपूर्ण है। ऐसा प्रथम अनुभव सम्यग्दर्शन में होता है। तब से आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। बाद में स्वरूप में बहुत लीनता होती है, तब चारित्र अर्थात् अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का, जैसे समुद्र में से मध्यबिन्दु में से किनारे पर भरती आती है। बाढ़... बाढ़ कहते हैं? क्या कहते हैं? बाढ़। किनारे पर पानी की बाढ़ आती है न?

सर्वज्ञ और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसा अनुभव के उपरान्त जिसकी लीनता अन्तर में बहुत हो गयी, उसकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द का उभरा अर्थात् अन्तर में बाढ़ आती है। ऐसी दशा को आचार्यपद अथवा मुनिपद कहने में आता है। यहाँ आचार्य पद्मनन्दि ऐसी मुनिपद की दशा में थे। फिर भी पूर्ण आनन्द की प्राप्ति जिसको-परमात्मा को हुई, ऐसे परमात्मा की भक्ति आचार्य स्वयं करते हैं। समझ में आया?

निश्चयभक्ति तो अपना शुद्ध चैतन्य आनन्द ज्ञायकमूर्ति मैं हूँ, ऐसा अन्तर में अनुभव के अतिरिक्त स्थिरता होना, वह आत्मा की सच्ची निश्चय मुक्ति के कारणरूप भक्ति है। फिर भी धर्मात्मा को भी पूर्ण परमात्मादशा की प्राप्ति नहीं है तो जिसको पूर्ण परमात्मदशा परमात्मा को हुई, उसका वह दास है। वह दास है, नम्रता से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान! आप तो पूर्ण शान्ति, अनन्त ज्ञान, आनन्द को प्राप्त हुए। इस दास पर भी करुणा कीजिए। व्यवहारभक्ति के मार्ग में ऐसा वचन भक्तिवन्त का, विनयवन्त का आता है। भगवान कुछ देते नहीं। परन्तु अपना स्वभाव शान्त, अनाकुल आनन्द में जिसको रुचि और प्रीति जम गयी, ऐसा आत्मा जब भक्ति करते हैं तो पूर्ण ज्ञानानन्द प्राप्त ऐसे ऋषभदेव,

यहाँ ऋषभदेव की स्तुति चलती है, परन्तु अनन्त ज्ञानियों की स्तुति उसमें आ जाती है। परन्तु यहाँ तो ऋषभदेव का पूरा जीवनचरित्र वर्णन करके भगवान प्रतिक्षण आचार्य उनका स्मरण और याद करते हैं। अपने चित्तपट में परमात्मा बसे हैं तो बारम्बार परमात्मा का स्मरण करके स्तुति करते हैं। भक्ति का भाव है, वह शुभभाव है। समझ में आया? ऐसा व्यवहार, निश्चय में भान होने पर भी स्वरूप में जब तक स्थिरता नहीं हो, तब ऐसी भक्ति धर्मात्मा ज्ञानी को भी आती है। ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हैं। २२वाँ श्लोक आया।

ऋषभदेव भगवान पूर्णानन्द को प्राप्त होकर अभी तो सिद्धपद में है। परन्तु वर्तमान में जब जन्म लिया, सर्वार्थसिद्धि में से, पूर्व भव में, वहाँ से आये। वहाँ से स्तुति की शुरुआत की है। हे नाथ! आप सर्वार्थसिद्ध में जब थे,... सर्वार्थसिद्ध समझते हो? एक स्वर्ग है। आत्मा का आनन्द का आराधन करते-करते थोड़ा राग बाकी रहता है और एक भव होकर मोक्ष जानेवाले की दशा (जिसकी होती है), ऐसे देव के रहने के स्थान को सर्वार्थसिद्ध देव का विमान कहने में आता है। ऐसे सर्वार्थसिद्ध में ऋषभदेव भगवान का पूर्व भव में आत्मा आनन्द का आराधन करते-करते राग बाकी रह गया, पुण्य बँध गया। उसमें सर्वार्थसिद्ध में गये।

आचार्य स्तुति करते हैं कि हे नाथ! आप जहाँ सर्वार्थसिद्ध में थे, तब सर्वार्थसिद्ध की शोभा आपको लेकर थी। परन्तु जब आप ऊपर से नीचे उतरे, मरुदेवी की कोख में, तब ... देखो! आचार्य स्तुति करते हैं। क्योंकि सर्वज्ञपद जिस भव में लेना है, उस भव में जब माता की कोख में आये, (तब) पन्द्रह महीने तक इन्द्रों ने रत्नों की वृष्टि की। तो कहते हैं कि हे नाथ! आप जब यहाँ आये, तब इस पृथ्वी को वसुमति कहने में आयी। नहीं तो पृथ्वी को वसुमति नहीं कहने में आयी थी। ऐसा कहकर, उसका आनन्द और तीन ज्ञान के धनी हैं, आनन्द का अनुभव समकिती को है, ऋषभदेव भगवान, उनकी स्तुति इस बहाने आचार्य महाराज करते हैं। और दुनिया को समझाते हैं कि सम्यग्दृष्टि अनुभवी भी पूर्णानन्द परमात्मा की भक्ति यथार्थ करते हैं।

(स्तुति) करते-करते यहाँ तक आये हैं। कहाँ तक? हे नाथ! बाद में आप जब पृथ्वी को छोड़कर मुनि हुए तो मुझे तो ऐसा लगता है कि पृथ्वी पर जो नहीं चलती है,

कल... कल... कलरव करती है, मुझे ऐसा ख्याल में आता है, आचार्य कहते हैं, आपने सनाथ पृथ्वी को छोड़ दी तो नदी के कल-कल के बहाने पृथ्वी रो रही है। समझ में आया? ऐसे भगवान की भक्ति करनेवाले अन्दर में कहते हैं, मैं भी प्रभु! आपके विरह में रो पड़ता हूँ। आगे स्वयं एक जगह कहते हैं। मैं पुकार करते-करते कहता हूँ, हे नाथ! पुकार करते-करते। आगे एक स्तुति है। करुणाष्टक है उसमें। करुणाष्टक में वह स्तुति ली है। हे नाथ! हे पूर्णानन्द प्राप्त परमात्मा! मैं पुकार करते-करते करुणा माँगता हूँ, मुझे ऐसी चीज़ होनी चाहिए, प्रभु! आपके गुण मुझे प्रत्यक्ष दिखने में आये, इतना मैं माँगता हूँ। क्या कहा? आपके जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि परमात्मदशा प्रगट हुई, ऐसे आपके गुण मेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष भासे, ऐसी आप करुणा करो, ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ। भाई! प्रत्यक्ष कब भासित हो? केवलज्ञान हो, तब भगवान के प्रत्यक्ष गुण भासे। भक्त ऐसी स्तुति करते हैं।

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यो मैं

हे वीतराग! एक पुस्तक अभी आयी है न? भाई! कहा था न? जयधवल। जयधवल का कौन-भाग? अभी नौंवा आया है। उसमें पहला एक श्लोक आया है। वीरसेनाचार्य स्तुति करते हैं। हे परमात्मा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, परन्तु लक्ष्य में तो लो कि क्या है? एक कर्म परमाणु होता है न? कर्म परमाणु। ये कर्म होते हैं न? जड़ कर्म अवस्था विकार जड़ में। आठ कर्म हैं। उसमें एक परमाणु लिया, कर्म का एक परमाणु। सूक्ष्म बात है। यह तो सूक्ष्म चैतन्य की भक्ति करनेवाले समकिती सच्चे होते हैं। समकिती बिना भगवान की सच्ची भक्ति कर सकते नहीं। राग मन्द हो तो पुण्य बँध जाए, भक्ति करते-करते। परन्तु राग बिना का अपने स्वरूप चिदानन्द का जहाँ अन्दर साक्षात्कार और भान हुआ, ऐसे समकिती भगवान परमात्मा की स्तुति करते हैं। हे नाथ! न्यालचन्दभाई! ऐसी भक्ति कभी सुनी नहीं होगी।

पण्डितजी! उसमें ऐसा आया है। वीरसेनस्वामी परमात्मा सर्वज्ञ की स्तुति करते हैं। हे नाथ! जो आत्मा विकार करता है, विकार, उस विकार का निमित्त पाकर वर्गणा में कर्मपर्याय हो जाती है। कर्म के परमाणु में, कर्मवर्गणा में कर्मपर्याय हो जाती है। कर्म का

विकार। उसमें एक परमाणु। एक परमाणु में विकार की इतनी शक्ति है, विकार की, कि सर्व जीव से भी अनन्त गुण अविभाग प्रतिच्छेद एक परमाणु की पर्याय, कर्म की पर्याय में है। आठ कर्म है न? आठ। आठ कर्म की खबर नहीं। ऐसे तो लोगस्स में बोलते हैं, विहुयरयमला। उसमें कर्म का रजकण है। फोटो आता है। अन्दर से गुजराती आ जाती है। जैसा आत्मा विकार करता है, उस प्रमाण में कर्म के रजकण में फोटो आ जाती है। वह कर्म की योग्यता से (होता है)। कर्म का आठ प्रकार है। उसमें अनन्त-अनन्त परमाणु का एक पिण्ड है और ऐसे अनन्त पिण्ड की एक प्रकृति है। ऐसी १४८ प्रकृति का आठ कर्म बना है। उसमें एक परमाणु कि जिसमें कर्म की अनुभाग शक्ति, एक परमाणु में अनुभाग शक्ति सर्व जीव से भी अनन्त गुण अनुभाग शक्ति एक परमाणु में है। पण्डितजी! धर्मी की स्तुति है, भगवान!

जहाँ भान है (कि) मैं ज्ञान हूँ, मैं पूर्णानन्द प्राप्त करने को तैयार हूँ। ऐसे समकिती भक्ति करते हैं, उसका नाम व्यवहारभक्ति यथार्थ कहने में आता है। निश्चय का भान है। परमात्मा! मैं मेरे स्वभाव में रहता हूँ, वह मेरी भक्ति है। परन्तु मैं जब व्यवहारमार्ग में आता हूँ तो आपकी भक्ति करता हूँ। उस भक्ति में ऐसा कहा, प्रभु! आपकी इतनी निर्दोषता है कि एक परमाणु में जो कर्म विकार की अनुभाग की शक्ति है, वह सर्व जीव से अनन्त गुणे अविभाग प्रतिच्छेद है। चन्दुभाई! अविभाग प्रतिच्छेद क्या, अनुभाग क्या, भगवान जाने।

कर्म में रस होता है। जैसे लड्डू में रस होता है या नहीं? रस। घी का रस। ऐसे परमाणु में अनुभाग रस होता है। एक परमाणु में अनुभाग शक्ति का भगवान ने इतना वर्णन किया है कि सर्व जीव अनन्तगुणा है, उससे अनन्तगुणा एक परमाणु में अनन्तगुणी कर्म की अनुभाग शक्ति की पर्याय है।

कहते हैं, हे नाथ! पहले श्लोक में लिया है। आपके पास उस परमाणु का, जो सर्व जीव से भी अनन्त गुणा अनुभाग है, उसमें अनन्तवें भाग में जो एक अंश है, उतना एक अंश भी आप में दोष रहा नहीं। समझना कठिन। नेमिचन्दभाई! ऐसा वीरसेनस्वामी... क्या कहते हैं? जयधवल, उसके प्रथम श्लोक में स्तुति कहते हैं। आत्मज्ञानी धर्मात्मा हैं। आत्मा का आनन्द का अनुभव हो गया है, तो पूर्णानन्द प्राप्त को कहते हैं, हे नाथ! मेरे में

अभी दोष है। मेरे में राग आता है, शुभराग आता है। मुनि है। और समकिती हो तो भी चतुर्थ-पंचम (गुणस्थान में) थोड़ा अशुभराग भी आता है। परन्तु परमात्मा को कहते हैं कि हे नाथ! एक परमाणु में अनुभाग की जो रस देने की शक्ति अनन्त है, उसका अनन्तवें भाग का एक अंश, ऐसा दोष हे नाथ! आप में रहा नहीं।

उसका अर्थ, मैं आपकी पूर्ण पवित्रता कितनी है, उसका मुझे ख्याल है। मुझे ज्ञान है, मैं मूढ़ नहीं हूँ। आप केवलज्ञान प्राप्त परमात्मदशा कैसी है, उसमें एक परमाणु का अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद अनुभाग, उसके अनन्तवें भाग का दोष भी आपके पास नहीं है। ऐसी आपने निर्दोष दशा प्राप्त की है। समझ में आया? ऐसी शक्ति धर्मी की है। वह कहते हैं, देखो! २३ (गाथा)

हे नाथ! अब पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं। पहले वीरसेनस्वामी का दृष्टान्त दिया। अपने २३वीं गाथा आयी है, कल २२ हो गयी है। कल २२वीं चल गयी है।

गाथा २३

णिद्दोसो अकलंको अजडो चंदोव्व सहसि तं तहवि।
सीहासणायलत्थो जिणंद कयकुवलयाणंदो।।२३।।

अर्थ - हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आप यद्यपि निर्दोष, अकलंक और अजड़ हैं तो भी अचल सिंहासन में स्थित तथा कुवलय को आनन्दित करनेवाले ऐसे आप चन्द्रमा के समान शोभित होते हैं।

भावार्थ - हे जिनेन्द्र! आप तो निर्दोष हैं और चन्द्रमा, दोष (रात्रि) से सहित है, अर्थात् सदोष है। आप तो कर्म-कलंक से रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा, कलंक से सहित है। आप तो जड़ता-रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा, जड़ता से सहित है। इस प्रकार आप और चन्द्रमा में भेद है, परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा, पर्वत के शिखर पर स्थित रहता है और रात्रि-विकासी कमलों को आनन्द का देनेवाला है, इसलिए शोभा को प्राप्त होता है; उसी प्रकार पर्वत के समान आप भी सिंहासन पर स्थित थे तथा आपने समस्त पृथ्वी-मण्डल को आनन्द दिया था, इसलिए आप भी चन्द्रमा के समान ही शोभित होते थे।

गाथा - २३ पर प्रवचन

णिद्दोसो अकलंको, अजडो चंदोव्व सहसि तं तहवि।
सीहासणायलत्थो, जिणंद कयकुवलयाणंदो।।२३।।

पद्मनन्दि आचार्य पंच महाव्रतधारी आनन्दकन्द में झूलनेवाले और आचार्यपद में थे, वनवास में रहते थे। जंगल में आत्मध्यान में बसते थे। उसमें यह शास्त्र बन गया, इसका नाम वनशास्त्र कहने में आता है। इसको वनशास्त्र कहते हैं। इसमें यह ऋषभदेव की स्तुति का अधिकार है। उसका २३वाँ श्लोक (चलता है)। हे नाथ!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यो मैं
काहू के कहे, कबहु न छूटे प्यारे,
काहू के कहे, कबहु न छूटे, लोकलाज सब डारी।
जैसे अमली अमल करत समय, जैसे अमली अमल करत समय,
लागी रही ज्युं खुमारी, जिनराज सुजस सुन्यो मैं।

क्या कहते हैं? हे नाथ! निर्दोष वीतराग आपका यश मैंने सुना अर्थात् मेरी निर्दोष अन्दर स्वभाव की दृष्टि मेरे में हुई, तब आप निर्दोष पूर्ण थे, उसका यश मुझे ख्याल में आया। समझ में आया? मेरी आत्मदृष्टि, पुण्य-पाप के विकल्प का छेद करके, मैं आनन्दकन्द हूँ, ऐसा मुझे अनुभव हुआ। ऐसी वीतरागदृष्टि मुझे हुई, तब आप पूर्णानन्द निर्दोष हो, ऐसा मुझे ज्ञान में ख्याल आया। तो मैं विकल्प से ऐसा कहता हूँ, 'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यो मैं।' मैंने सुजस सुना, प्रभु! अन्दर के नाद ने।

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुन्यो मैं
काहू के कहे, कबहु न छूटे

दुनिया चाहे सो कहे, उससे मेरा वीतरागस्वभाव का प्रेम और आप वीतराग प्रति का भक्ति का भाव 'लोकलाज सब डारी'। दुनिया के लाज उसके घर पर मैंने छोड़ दी है। मैं तो अब धीठ होकर मार्ग पर चलूँ। प्रभु! मेरे शुद्ध चैतन्य की दृष्टि में पूर्णानन्द के प्रेम में चलूँ। किस प्रकार?

जैसे अमली अमल करत समय,

अफीम पीते हैं न ? अफीम ना ? क्या कहते हैं ? अमल पीते हैं न ? अमल।

जैसे अमली अमल करत समय, लागी रही ज्युं खुमारी
जिनराज सुजस सुन्यो मैं।

हे नाथ ! अमल पीनेवाले को अमल पीते समय जैसे खुमारी चढ़ जाती है, वैसे हे नाथ ! मेरे आत्मा की शान्ति को मैंने दृष्टि में देखी, अन्दर में मेरी खुमारी चढ़ गयी है और आप निर्दोष परमात्मा के प्रति भी मेरा शुभभाव उछल गया है। वह, जैसे अमलीको अमल से खुमारी चढ़ जाती है, ऐसे हे नाथ ! आपकी भक्ति में मेरी खुमारी चढ़ गयी है। समझ में आया ? न्यालभाई ! कुसुम्भा की बात। कुसुम्भा को एकरस करते हैं न ? भाई ने तो दृष्टान्त दिया कि कुसुम्भा का नशा चढ़ता है। एक आदमी कहता था, वहाँ राजकोट के पास है न ? रीबडा। (संवत्) १९७१ में हम रीबडा गये थे। वहाँ एक साधु अफीम (पीता था)। हम तो चौपाल में ठहरे थे। करते-करते ऐसा बोलता था, रूपानी राब, बापू ! ऐसा बोलता था। अफीम होता है न महंगा ? महंगा अफीम होता है न ? अफीम समझते हो न ? अफीम। रूपाकी राब। एक रुपये का एक तोला उन दिनों में था। अभी तो जो हो सो हो, हमें कुछ मालूम नहीं। रूपानी राब, भाई ! चढ़ी... चढ़ी... चढ़ी। ऐसा बोलता था। उसमें कोई कहे कि उतर गयी। तो जो पीया हो वह भी उतर जाये।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब चढ़ी ऐसा कहते हैं। वहाँ सुना था। १९७१ में। आया... आया... आया... ऐसा बोले तो अफीम लिया हो तो वह चढ़े। उसमें कोई बोला, काठी का मकान है, ठाकरद्वार के पास। उसमें कोई बोला, नहीं आया। उसने अफीम लिया था, वह उतर गया।

यहाँ कहते हैं कि हमें खुमारी चढ़ी है, वह उतरेगी नहीं। हमें वीतरागस्वभाव प्रति हमारा प्रेम है, और आप वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर के प्रति हमारा प्रेम है।

अमली अमल करत समय लाग रही खुमारी,
जिनराज सुजस सुन्यो।

तेरा सुयश सुना, वह भी सुना तो सुना। सुना उसे कहते हैं कि जिसको वीतरागभाव की अन्तर रुचि और दृष्टि हो गयी। हमें भक्ति का राग आता है, परन्तु हमारे राग में जैसा मेरे स्वभाव प्रति प्रेम है, राग प्रति वैसा प्रेम नहीं है। ऐसा कहते हैं, हे नाथ! आप निर्दोष हो। देखो! पहला शब्द है, भाई!

ऋषभदेव भगवान का नाम लेकर स्तुति है, उसका जीवनचरित्र लिया है। निर्दोष (हैं)। ओहो! नाथ! एक राग का कण, दया, दान का विकल्प-राग उठता है, वह भी आपके पास नहीं है। समझ में आया? वह भी एक दोष है। पुण्यभाव दोष है। भगवान! आप निर्दोष हो। मेरे ख्याल में आप परमात्मा की दशा का मुझे भान हुआ है। निर्दोष हो। **हे जिनेन्द्र प्रभु! आप यद्यपि निर्दोष, अकलंक...** कलंक नहीं है। चन्द्रमा के साथ मिलान करना है। आपमें कलंक नहीं है। प्रभु! आप तो निर्दोष आनन्दकन्द, निर्दोष और कलंक नहीं है। **और अजड़ हैं...** आप तो अजड़ हो। अजड़ अर्थात् जड़ नहीं। अकेला चैतन्यप्रकाश सूर्य आपका प्रगट हो गया है।

तो भी... तो भी **अचल सिंहासन में स्थित...** आप जब समवसरण में सिंहासन में अचलरूप से स्थिर थे, सिंहासन में स्थित थे, किया है **कुवलय को आनन्दित...** जिन्होंने किया है। जैसे चन्द्रमा का उदय होता है तो रात्रिविकासी कमल खिल उठता है। खिलने का उपादान तो उसका है, हाँ! यहाँ तो भक्ति से बात चलती है न। रात्रिविकासी कमल को खिलने में, हे नाथ! चन्द्रमा जैसे निमित्त है, उसी तरह आप **चन्द्रमा के समान शोभित होते हैं।** चन्द्रमा में दोष यह है, रात्रि है, रात्रि में चन्द्रोदय होता है। भगवान! आप तो चैतन्यचन्द्र के सूर्य में उदय हुए और वह चन्द्र तो सदोष है। रात्रि में प्रकाश करता है, दिन में नहीं। आप तो चैतन्यप्रकाश, स्व-परप्रकाश रात और दिन तीन काल को जाननेवाले, ऐसी आपकी केवलज्ञान की निर्दोष दशा है। एक बात।

आप तो कर्मकलंक से रहित हैं,... भगवान! आपमें कर्म का कलंक किंचित् भी है नहीं। **किन्तु चन्द्रमा कलंक सहित है।** चन्द्रमा में कुछ लांछन दिखता है न? वह कलंक है। परन्तु परमात्मा, आपमें थोड़ा भी कलंक नहीं है। मैं चन्द्रमा की उपमा देता हूँ, परन्तु चन्द्रमा की उपमा आपके साथ बैठती नहीं। **आप जड़ता रहित हैं, किन्तु चन्द्रमा**

जड़ता सहित है। चन्द्रमा के परमाणु जड़ हैं और चन्द्रमा में जब चन्द्रमा उदित होता है तो रात्रि का विषयभोग के अर्थी जड़ता में झूलते हैं। आप चन्द्रमा ऐसे हो कि जब आपकी वाणी शीतलमय निकलती है तो आपकी वाणी की निर्दोषता को प्राप्तकर भव्य जीव अन्तर सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान में खिल जाते हैं। देखो! यहाँ खिलते हैं, उसकी बात ली है, नहीं खिलने की बात नहीं ली है। उपादान ऐसा ही होता है।

भगवान की वाणी, ऐसी शीतलमय वाणी जब निकलती है तो कहते हैं, **इस रीति से आप तथा चन्द्रमा में भेद है,...** उसमें दोष है, आप निर्दोष हैं। वह जड़ है, आप चैतन्य हो और वह कलंकसहित है, आप कलंकरहित है। **परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा, पर्वत के शिखर पर स्थित रहता है...** ऊपर। **और रात्रि-विकासी कमलों को आनन्द देनेवाला होकर शोभा को प्राप्त होता है; उसी प्रकार पर्वत के समान सिंहासन...** समवसरण में सिंहासन होता है, हों! वह पुण्य का फल है।

लोगों को बात बैठती नहीं। कोई कहता है कि ऐसी वीतरागदशा है, उसे सिंहासन और समवसरण की क्या आवश्यकता है? भाई! ऐसा तर्क कोई करता है। पहले तो ध्यान में रहते थे। वन में अकेले आनन्द में (रहते थे)। और कहते हैं कि मैं परमात्मा हो गया और परमात्मा हुए, तब बारह सभा में सिंहासन में और रत्न के-मणिरत्न के कंगूरे, ऐसे घर में घुस गये। अरे! भगवान! सुन तो सही। ...अधिकार है, सूयगडांग में आता है, भाई! श्वेताम्बर का सूयगडांग है न? उसमें ... अधिकार में आता है। पहले तो प्रभु, आपके प्रभु पहले तो आत्मा के ध्यान में रहते थे। जब परमात्मा हुए, तब गढ़ हुआ, सभा हुई, मणिरत्न के गढ़ में घुसकर सभा में भाषण करते हैं। तो ये बढ़ गये कि घट गये? नवनीतभाई! पुण्य की खबर नहीं, प्रभु! तुझे, आत्मा में पवित्रता कितनी है और सम्यग्दर्शन होने के बाद भक्ति का राग आता है, उसमें इतना पुण्य बँधता है, तीर्थंकर को पहले तो आत्मा का ज्ञान होता है। तीर्थंकर के भव से पहले। बाद में उसमें तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा शुभभाव आता है। उस तीर्थंकरगोत्र के शुभभाव का फल है कि सौ इन्द्र आकर वन्दन करते हैं। और जहाँ प्रकृति का फल पाक में तेरहवें गुणस्थान में आया (उस समय) इन्द्र आकर समवसरण की रचना करते हैं। पुण्य के माप की खबर नहीं कि उन्हें कितना पुण्य है। न्यालभाई! आहाहा!

समवसरण में आठ प्रकार की भूमि रचते हैं। मध्य में तीन पीठिका होती है।

सिंहासन के ऊपर विराजते हैं। स्पर्श नहीं होता, चार अंगुल दूर होते हैं। परन्तु अज्ञानी, जिन्हें परमात्मा की पूर्ण निर्दोष दशा और पूर्व के पुण्य का संयोग का फल, दोनों की पृथकता का ज्ञान नहीं है, वह परमात्मा का भी दोष निकालते हैं। देखो, पहले ध्यान में रहते थे, अकेले वन में (रहते थे) और अब परमात्मा हुए, केवलज्ञान (हुआ), गढ़ में घुस गये। कहीं भी अकेले व्याख्यान देना था न। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! आहाहा!

कहते हैं कि हे नाथ! आप सिंहासन पर अचल (थे)। सिंहासन ऊपर, जैसे सूर्य स्थिर था, वैसे बैठे थे। '**जिणंद कयकुवलयाणंदो**'। नाथ! आपके दर्शन और आपकी वाणी सुनकर भव्यजीव का आनन्द का कमल, जो संकुचित था, जैसे कमल की कली संकुचित थी, सूर्य का विकास निमित्त, अपनी खिलने की योग्यता; वैसे जिस प्राणी की आनन्द की कली परिणमन में संकुचित थी, संकुचित समझ में आता है? आनन्द का परिणमन अल्प था। शक्ति में पूर्ण था। आपकी वाणी जब निकली (तो) भव्यजीव का आनन्द का कमल खिल गया। आहाहा! समझ में आया? कहाँ गये? फूलचन्दजी कहाँ गये? किसी ने हिन्दी के लिये कहा था। समझ में आया? हिन्दी थोड़ी आती है, बीच में थोड़ी गुजराती आ जाती है। लोग विनती करते हैं, परन्तु यहाँ तो काठियावाड़ी भाषा है। ऐसी गुजराती आये, वैसी हिन्दी तो नहीं आती।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! **समस्त पृथ्वी-मण्डल को....** आपने आनन्द दिया। लो, ऐसा कह दिया। आपकी वाणी सुनकर मुझे आनन्द हुआ तो मैं तो ऐसा मानता हूँ कि पूरी पृथ्वी को आनन्द हुआ, जाओ! 'कहत कबीरा सुणो मेरे मुनिया, आप मुवे सब डूब गई दुनिया।' हे नाथ! हे त्रिलोकप्रभु! सौ इन्द्र के पूजनिक! हे नाथ, परमात्मा! आप मेरी नजरों के सामने रहते हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि आपकी वाणी सुनकर मेरा हृदय अन्दर से खिल गया। तो मैं ऐसा जानता हूँ कि सब प्राणी का आनन्द का कमल खिल गया है। मनसुखभाई! देखो! ऐसी भक्ति भी कभी नहीं की होगी। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं... करे।

भगवान की प्रतिमा, भगवान का दर्शन, ऐसा समकिती को भी हमेशा होती है। ऐसी अनादि की वस्तु है, नयी नहीं है। देवदर्शन, गुरुसेवा, दान, संयम... समझ में आया? छह प्रकार है न? षट्कर्म। हमेशा (होता है)। और तप-इच्छा निरोध, कुछ इच्छा कम करनी।

ऐसा हमेशा होता है। परन्तु धर्मी समझते हैं कि मेरे आनन्द में मैं जितना स्थिर रहा, उतना मेरी शुद्धता और मोक्ष का मार्ग (है)। और बीच में व्यवहार आता है, वह शुभभाव है, पाप से बचने को पुण्यभाव आये बिना धर्मी को भी रहता नहीं। कोई निषेध करे कि ज्ञानी को शुभभाव आता ही नहीं, वह भी मूढ़ है। और कोई ऐसा कहे कि शुभभाव है, वही धर्मशुद्धि है, वह भी मूढ़ है, उसे धर्म की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! समस्त पृथ्वी-मण्डल को आपने आनन्द दिया था। **इसलिए आप चन्द्रमा के समान शोभित होते हैं।** वास्तव में तो आठ प्रातिहार्य है न? उसमें सिंहासन का प्रथम प्रातिहार्य लिया है, ऐसा लगता है। अब, दूसरा अशोक वृक्ष। भगवान को परमात्मा को पूर्ण आनन्द जब होता है,... आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, प्रदेश समझते हो? एक पॉईन्ट है, यह मूल चीज़ नहीं है, उसका टुकड़ा करते-करते अन्तिम टुकड़ा रहे, उसको भगवान परमाणु कहते हैं। परम अणु। आखिर का टुकड़ा। वह आखिर का टुकड़ा जितनी जगह में रहे, उतने अंश को प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेश चौड़ा है। असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। आहाहा! उस अनन्त गुण का... कहते हैं, अनन्त गुण जो अन्दर में हैं, उसकी दशा जब ऐसी प्राप्त होती है, तब वहाँ एक अशोक वृक्ष हो जाता है। भगवान जहाँ विराजते हैं, वहाँ ऊपर अशोक वृक्ष प्रातिहार्य-पुण्य की अतिशय शोभा-एक वृक्ष ऊपर हो जाता है। उसको छूते नहीं। उनके शरीर को छूता नहीं। परन्तु जहाँ विराजमान है, वहाँ पीछे अशोक वृक्ष हो जाता है। उसका लक्ष्य करके आचार्य महाराज भगवान की भक्ति और स्तुति करते हैं।

गाथा २४

अच्छंतु ताव इयरा फुरियविवेया णमंतसिरसिहरा।
होइ असोहो रुक्खो वि णाह तुह संणिहाणत्थो।।२४।।

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिन भव्य जीवों के ज्ञान की ज्योति स्फुरायमान है और जो आपको मस्तक झुका कर नमस्कार करते हैं, वे तो दूर ही रहें, किन्तु हे भगवान! आपके समीप रहा हुआ जड़ वृक्ष भी अशोक हो जाता है।

भावार्थ - हे जिनेश! जिनको ज्ञान मौजूद है, अर्थात् जो ज्ञानी हैं तथा आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करनेवाले हैं - ऐसे भव्य जीव आपके पास में रहकर तथा आपका उपदेश सुनकर शोकरहित हो जाते हैं, इसमें तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु जो वृक्ष जड़ है, वह भी केवल आपके समीप में रहा हुआ ही अशोक हो जाता है; यह महान आश्चर्य है।

गाथा - २४ पर प्रवचन

अच्छंतु ताव इयरा फुरियविवेया णमंतसिरसिहरा।
होइ असोहो रुक्खो वि णाह तुह संणिहाणत्थो।।२४।।

'**णाह**' शब्द पड़ा है। हे नाथ! हे वीतराग! हे परमात्मा! तेरे समीप रहनेवाला अशोक वृक्ष जो जड़ है, उसका भी अशोक नाम हो गया। जड़ भी अशोक हुआ। प्रभु! आपके समीप में चेतन आपका ज्ञान करे, उसकी समीपता की क्या बात करें? आहाहा! देखो! आचार्य हैं, हों! धर्मात्मा छठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। पंच महाव्रत का विकल्प है, भक्ति का विकल्प राग है, उसमें कहते हैं, हे नाथ! परमात्मा! पूर्णानन्द की आपको प्राप्ति हुई, तब पूर्व पुण्य के कारण आठ प्रातिहार्य होते हैं। पुण्य की अतिशय विशेषता की शोभा। उसमें एक अशोक वृक्ष होता है, उसका लक्ष्य करके कहते हैं।

आचार्य कहते हैं कि हे जिनेन्द्र! जिन भव्य-जीवों की ज्ञान-ज्योति स्फुरायमान है... क्या कहते हैं? आहाहा! आत्मज्ञान, विकल्प अर्थात् और राग। राग और स्वभाव को एक माननेवाले की ज्ञानज्योति संकुचित होकर मिथ्यादृष्टि में है। समझ में आया? चैतन्यज्योति जलहल सूर्य प्रभु, जिसमें राग का भाव आता है, वह राग और स्वभाव को एक मानता है, उस मिथ्यादृष्टि का ज्ञानविकास रुक गया है। परन्तु ज्ञान की ज्योति जिसको स्फुरायमान है, सम्यग्दृष्टि को रागभाव आता है, परन्तु उससे मैं भिन्न हूँ, ऐसी ज्ञानज्योति की स्फुरणा अन्दर खिल गयी है। ख्याल भी करवाते हैं कि समकिती कैसा होता है और अज्ञानी कैसा होता है। अज्ञानी को मात्र भक्ति के राग में प्रेम है। ज्ञानी को भक्ति का राग जरूर आता है, आये बिना रहता नहीं। जब तक केवलज्ञान नहीं होता,

तब तक व्यवहार आता है, आता है और आता है। फिर भी, उसकी दृष्टि में ज्ञान चिदानन्द ज्योति मैं हूँ, ऐसा अनुभव में कली खिल गयी है। आहाहा! समझ में आता है ?

ज्ञान-ज्योति स्फुरायमान है... समकिती की। चतुर्थ गुणस्थान की दशा की भूमिका है। जैसे मेडी... मेडी को क्या कहते हैं ? जैसे मंजिल पर चढ़ते हैं तो सीढ़ी होती है न सीढ़ी ? सीढ़ी। सीढ़ी में जैसे चौदह सीढ़ी होती है, ऐसे आत्मा की दशा के चौदह प्रकार हैं। उसमें एक प्रकार चतुर्थ गुणस्थान की दशा है। पाँचवें की, छठवें की, सातवीं से तेरह, चौदह तक। प्रथम, द्वितीय, तृतीय साधारण है। उसमें प्रथम धर्म की दशा में ज्ञान की ज्योति स्फुरायमान (होती है)। आहाहा! प्रभु को केवलज्ञान पूर्ण स्फुरायमान हो गया है। समकिती को पूर्ण नहीं हुआ है, परन्तु ज्ञान चिदानन्द मैं हूँ, ऐसा ज्ञाता-दृष्टा का बोध अन्तर्मुख हो गया है। तो ज्ञानस्वभाव की कला खिल गयी है। भगवान! ऐसा सम्यग्दृष्टि **आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं...** ऐसा सम्यग्दृष्टि चतुर्थवाला हो, पाँचवाँ वाला श्रावक हो। श्रावक अर्थात् यह सम्प्रदाय की बात नहीं है। यह तत्त्व की दृष्टि सहित का (श्रावक), अन्तर आत्मा का ज्ञान का, आनन्द का अनुभव होता है और उस भूमिका में चतुर्थ गुणस्थान में भगवान की भक्ति का राग आता है। वह व्यवहार।

पंचम गुणस्थान में आत्मा के आनन्द की शान्ति अन्दर में बढ़ गयी है और बाद में बारह व्रत का और भक्ति का भाव उठता है, वह शुभभाव है। ऐसे भगवान, सन्त और छठवें गुणस्थान में मुनि, आत्मा के आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द का बहुत स्वाद लेते हैं। उसके ज्ञान की ज्योति स्फुरायमान हो गयी है। ऐसा चतुर्थ, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थानवाला भगवान! आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं। उसकी तो क्या बात, वह तो दूर ही रहो, उसको तो आत्मा का भान है और पुण्य भी अलौकिक बँध जाता है। शुभभाव में अलौकिक पुण्यानुबन्धी पुण्य बँध जाता है।

किन्तु हे भगवन्! आपके समीप रहता हुआ जड़ वृक्ष भी अ-शोक हो जाता है,... उस वृक्ष का नाम अशोक हुआ। उसे शोक नहीं रहा। भगवान शोकरहित हुए और समकिती को शोकरहित अपनी दृष्टि अपने को हुई। हे नाथ! आपके समीप में मैं गया (तो) मैं भी अशोक हो गया। आहाहा! निर्भय, निःशंक ज्ञानी हो गये। मेरे आत्मा में भय

नहीं, शंका नहीं, क्या चीज़ है या नहीं। ज्ञानानन्दस्वरूप मेरा है, ऐसा धर्मी को प्रथम भूमिका में सम्यग्दर्शन में भान होता है।

कहते हैं कि ऐसा भानवाला आपको नमस्कार करते हैं, उसकी बात क्या कहें ? इन्द्र ऊपर से... एक नन्दीश्वर द्वीप है। आठवाँ द्वीप है। द्वीप, समुद्र बहुत है, हों! असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, घातकी खण्ड ऐसे-ऐसे द्वीप, समुद्र असंख्य हैं। उसमें ढाई द्वीप में मनुष्य हैं। बाकी सब द्वीप में अकेले पशु हैं। ढाई द्वीप में आगे एक नन्दीश्वर द्वीप है। वहाँ बावन जिनालय हैं। साक्षात् परमात्मा की मूर्ति अनादि की है। इन्द्र वहाँ जाते हैं। फागुन शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा, कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा और आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा, बारह महीने में तीन (बार आती है, उसे) अष्टाह्निका कहते हैं। अष्टाह्निका अर्थात् आठ-अनिका, अनिका अर्थात् दिन। इन्द्र एकावतारी है, हों! एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। वहाँ जाकर पैर में घुँघरू बाँधकर नाचते हैं। पागल जैसा लगे। अरे! भाई! तेरे पिता या माता कोई अच्छी चीज़ लेकर आये हों तो छोटा बच्चा नाचने लगता है। पिताजी! क्या लाये ? क्या लाये ? न्यालभाई! खिलौनी आदि कुछ बाहर से लाये हो न ? कश्मीर गये हो, अमुक जगह गये हो। पिताजी! क्या लाये ? नाचने लगता है।

ऐसे त्रिलोकनाथ परमात्मा पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर जहाँ वाणी निकलती है, भक्त कहते हैं, पिताजी! क्या लाये ? आहाहा! अरे! उनकी प्रतिमा के सामने नाचने लगते हैं। साक्षात् भगवान के पास नाचे, उसमें क्या नवीनता है ? आचार्य वह कहते हैं, हों! आहा! नहीं समझा चैतन्य, नहीं समझा सच्ची भक्ति। मैं किसका भक्त हूँ और क्या परमात्मा है, केवलज्ञान कैसा है ? एक समय में तीन काल-तीन लोक जानता है, ऐसी ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य! उतनी भी उसे प्रतीति आयी नहीं। ऐसी प्रतीति यदि आती है तो अल्पज्ञ में अपना सर्वज्ञस्वभाव है, उसके आश्रय से आती है, भगवान का लक्ष्य करके आती नहीं। समझ में आया ? समझाय छे काँइ, हमारी गुजराती है। समझ में कुछ आता है ? आहाहा!

एक बार कहा था न ? हमारे यहाँ पालेज में वैष्णव रिश्तेदार होते हैं न। मनसुख है न, उसे मालूम नहीं होगा। लक्ष्मीचन्द कानजी, एक वैष्णव थे। घोघा के। फिर वह भक्ति करे, रात को हम भी जाते थे। पालेज की बात है, पालेज की दुकान। वहाँ जाते थे तो वह कहते थे,

जगतडा कहे छे के भगतडा काला छे,
पण काला न जाणशो रे, प्रभु ने त्यां ऐ व्हाला छे।

ऐसा गाते थे। ये तो बहुत वर्ष पहले की बात है, हाँ! (संवत्) १९६०-६१-६२ की। पालेज में जब दुकान थी न। वहाँ रिश्तेदार थे। वे वैष्णव (थे)। वे हमारे यहाँ आते थे, हम उनके यहाँ जाते थे। वे ऐसा गाते थे,

जगतडा कहे छे के भगतडा घेला छे,

पागल जैसी बातें करता है। सुन न!

अेने घेला न जाणशो रे, प्रभु ने त्यां अे पहेला छे,
जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे,
पण काला न जाणशो रे, प्रभु ने त्यां अे व्हाला छे।

प्रभु का-परमात्मा का स्वीकार है। आहाहा! आनन्दघनजी कहते हैं न?

लही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में निकले कि यह जीव समकिती और भव्य है, अब तुझे किसका मान चाहिए? कहते हैं। समझ में आया? तुझे किसका मान चाहिए? 'लही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया कि यह प्राणी अपात्र है। अब तुझे किसका अपमान सहना है? अपमान, अपमान। तेरी चार गति में भटकने की अपात्रता है। सर्वज्ञ परमात्मा और सन्तों के मुख में से ऐसा निकला कि वह पात्र है, भव्य है, समकिती है, आसन्न भव्य है, अल्प काल में मुक्ति पाने के लायक है। आहाहा! 'लही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' फूलचन्दजी! समझ में आता है? धर्मात्मा-ज्ञानी जिसको पात्र कहे, अब किसका मान चाहिए? सब मान आ गया। और धर्मात्मा कहे कि अपात्र है, अब तुझे किसका अपमान चाहिए? पूरी दुनिया का अपमान तुझे मिल गया। नरक और निगोद में भटकने की तेरी दशा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं हे नाथ! आपके समीप वृक्ष रहे, वह जड़ भी अशोक हो जाता है। तो हे नाथ! आपके केवलज्ञान और पूर्णानन्द का जिसको भान है, वह तो आपके समीप

है। आहाहा! ऋषभदेव की स्तुति है, पण्डितजी! पद्मनन्दि में से चलती है। आहा! हे नाथ! आचार्य महाराज पद्मनन्दि प्रभु महा परमेश्वर थे, आचार्यपद में हैं। आनन्दकन्द में झूलते हैं, छठवीं-सातवीं भूमिका है। क्षण में छठवाँ, क्षण में सप्तम आता है। उसको आचार्य, मुनि और साधु कहने में आता है। ऐसे आत्मा के आनन्द के झूले में झूलनेवाले, विकल्प आया तो कहते हैं, हे नाथ! ज्ञानी आपको समझकर जिसकी ज्ञान-ज्योति स्फुरायमान हो गयी है, वह आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करे, उसकी तो क्या बात रही? परन्तु आत्मा का लक्ष्य कर भगवान की भक्ति का जिसको विकल्प आया तो वृक्ष भी अ-शोक हो गया। अशोक वृक्ष प्रातिहार्य को उद्देशकर बात करते हैं। भगवान! यह वृक्ष अशोक हो गया, तो मैं तो अशोक हो जाऊँ, उसमें क्या आश्चर्य? आहाहा! कितनी प्रतीति का जोर है! अपने स्वभाव की भक्ति हुई है और भगवान की भी भक्ति हुई है। निश्चय भगवान अपना आत्मा और व्यवहार भगवान परमेश्वर। समझ में आया?

कहते हैं, हे नाथ! जिसको ज्ञान मौजूद है, जो ज्ञानी है, आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करनेवाले हैं... नन्दीश्वर द्वीप में, एकावतारी इन्द्र एक भव में मोक्ष जानेवाले, पैर में घुंघरू बाँधकर नाचते हैं। क्या पागल है? सुन तो सही। सम्यग्दृष्टि क्षायिक समकिती है। शकेन्द्र, प्रथम देवलोक है, जिसमें बत्तीस लाख विमान हैं। उस बत्तीस लाख विमान में असंख्य देव हैं। असंख्य देव का नायक इन्द्र है। इन्द्र एक भवतारी है। एक भव में मोक्ष जाने की लायकात है। वह भी जब भक्ति करते हैं, साक्षात् भगवान समवसरण में हैं, उनकी तो बात क्या, परन्तु उनकी मुद्रा, मुद्रा...

'प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे,' प्रभु की मुद्रा देखता है कि आहाहा! ऐसे भगवान थे वीतराग परमात्मा। 'प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे' क्या कहते हैं? परमात्मा की मुद्रा देखकर प्रभु आत्मा, 'प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे'—अपनी प्रभुता का ज्ञान ज्ञानी उस समय करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे,
ओलखतां बहुमान सहित रुचि पण वधे,
रुचि अनुयायी वीर्य चरण धारा सधे।

भगवान की मुद्रा देखकर भी ज्ञानी को... निक्षेप है, स्थापना की है कि यह भगवान हैं। साक्षात् भगवान समवसरण में विराजे, उनकी तो बात ही क्या! परन्तु यहाँ अभी भगवान नहीं है, हों! ऋषभदेव भगवान की स्तुति करनेवाले मुनि को, परन्तु मानो सामने विराजमान हो, ये रहे भगवान! (ऐसे बात करते हैं)। व्यभिचारी आदमी को उसकी व्यभिचारी स्त्री जैसे कल्पना में साक्षात् दिखती है कि ये रही, ये रही। ऐसे धर्मात्मा को परमात्मा कल्पना में (आते हैं कि) ये रहे परमात्मा, ये परमात्मा, ये परमेश्वर। समझ में आया? ऐसी भगवान की भक्ति उछलने पर आचार्य कहते हैं, भगवान! आपकी मुद्रा देखकर भी हमें ज्ञान होता है कि आप वीतराग हो, मेरा भी वीतरागस्वभाव है।

प्रभु प्रभुता लखे, ओलखतां बहुमान...

बहुत रुचि बढ़े, ओहोहो! मेरा स्वभाव वीतराग विज्ञानघन, आपका वीतराग विज्ञानघन पूर्ण हो गया। ऐसे रुचि बढ़े। और रुचि अनुयायी वीर्य। जैसे ज्ञानानन्द की रुचि हुई तो वहाँ अपने वीर्य की स्फुरणा स्वभाव में जाने की हुई। 'रुचि अनुयायी वीर्य चरणधारा सधे' तब स्वरूप में स्थिरता की चारित्रधारा बढ़ती है। समझ में आया?

यहाँ तो विकल्प आया, उसमें इतनी मस्ती है। भगवान! वह अशोक वृक्ष, वृक्ष अशोक हो गया, नाथ! हम तो चैतन्य हैं। आहाहा! प्रभु सर्वज्ञ परमात्मा हमारी नजरों के सामने हैं। नजर के सामने हैं, ये परमात्मा, ये परमात्मा। मोक्षतत्त्व है या नहीं? सात तत्त्व में मोक्षतत्त्व है, वह परमात्म तत्त्व है। सात तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन। उसमें मोक्षतत्त्व आ गया। केवलज्ञान की प्रतीति आ गयी, केवलज्ञान उसके लक्ष्य में आ जाता है। आहाहा! ये परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु... एक बार कहा था न?

हरता फरता प्रगट प्रभु देखूं, मारूँ जीववुं रे सफण तव लेखुं,
मुक्तानंदनो नाथ विहारी, ओघा जीवनदोरी अमारी।

हे सर्वज्ञ परमात्मा! आप मेरे जीवन की डोर हो। हम उस डोर के सहारे चले आ रहे हैं। आहाहा! सर्वज्ञता जिसके लक्ष्य में है, अल्पज्ञता और राग जिसकी हेयता में है। क्या कहते हैं? धर्मी को सर्वज्ञता जिसके लक्ष्य में है और अल्पज्ञता, राग और निमित्त जिसे हेयता में है, उसे सर्वज्ञ परमात्मा बारम्बार नजरों के सामने आते हैं। ऐसा कहते हैं, प्रभु! हमें तो आपके समीप है। अशोक वृक्ष भी जब अशोक हो गया, वृक्ष अशोक हो गया, प्रभु!

हमें तो आपके समीप में, हम वीतराग होवें, उसमें कोई नयी बात है नहीं, नवीनता नहीं है। इस प्रकार अशोक वृक्ष को लेकर भगवान की स्तुति की। पहले सिंहासन (लिया)।

आठ प्रातिहार्य (होते हैं, उसमें) एक छत्र होता है। भगवान के मस्तक पर छत्र होता है। सब बात अभी सिद्ध नहीं कर सकते, लेकिन ऐसी चीज़ है, हों! हंबग नहीं है, हों! हंबग समझे? कुछ होगा। नहीं, नहीं। ऐसा है। भगवान परमात्मा, जहाँ पूर्णानन्द की प्राप्ति (हो गयी), अतीन्द्रिय आनन्द जिसकी दशा में पूर्ण अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का अनुभव (हो गया), जिसमें एक दोष का अंश नहीं, उसके आनन्द की क्या बात! ऐसा आनन्द जिसके लक्ष्य में है और ऐसा आनन्द जिसको प्रगट हो गया और पूर्व पुण्य के कारण सिंहासन, समवसरण, अशोक वृक्ष, अब छत्र कहते हैं। भगवान! आप विराजता हो, वहाँ ऊपर मणिरत्न के तीन छत्र हैं, न्यालभाई! यह न्यालभाई की बातें हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? छत्र, छत्र की बात करते हैं। प्रभु! आपके मस्तक पर छत्र है।

गाथा २५

छत्तत्तयमालंबिय णिम्मल मुत्ताहलच्छला तुज्झ।
जणलोयणेसु वरिसइ अमयं पि व णाह बिंदूहिं।।२५।।

अर्थ - हे भगवन्! हे नाथ! आपके जो ये तीनो छत्र हैं, वे लटकते हुए निर्मल मुक्ताफल के ब्याज से मनुष्यों की आँखों में बिन्दुओं (अश्रुओं) से अमृत की वर्षा करते हैं - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - हे भगवन्! जिस समय भव्य जीव आपके छत्र को देखते हैं, उस समय उनको इतना आनन्द होता है कि आनन्द के मारे उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता है।

गाथा - २५ पर प्रवचन

छत्तत्तयमालंबिय-णिम्मल मुत्ताहलच्छला तुज्झ।
जणलोयणेसु वरिसइ, अमयं पि व णाह बिंदूहिं।।२५।।

आहाहा! हे नाथ! मैं आपके छत्र देखकर, हे नाथ! आपके जो तीन छत्र हैं, पूर्व पुण्य के कारण ऊपर छत्र होते हैं, हों! **आपके ऊपर लटकते हुए ये तीनों छत्र, निर्मल मुक्ताफल के बहाने मनुष्यों की आँखों में बिन्दुओं (आश्रुओं की) से अमृत की वर्षा करते हैं, ऐसा लगता है।** आहाहा! भगवान जहाँ विराजते हैं... उन्हें इच्छा नहीं है, हों! वह सब उनके ज्ञान में तो ज्ञेय है। समवसरण, सिंहासन, अशोक वृक्ष, छत्र सब केवलज्ञान का ज्ञेय है। उनके पास कोई चीज़ नहीं है, उनके पास तो आनन्द की चीज़ का अकेला अनुभव है। परन्तु पूर्व पुण्य के कारण, हे भगवन्! आपके जो तीनों छत्र हैं, लटकते हुए निर्मल मुक्ताफल... मानो ऊपर मुक्ताफल लटकते हों। उनके बहाने, उन मुक्ताफल के बहाने। बहाने समझते हो? उसका फल कहा न पाठ में? फलात। फलात अर्थात् व्याज से, व्याज अर्थात् उसके बहाने। बहाने की क्या भाषा है हिन्दी में? आवेज में। मुक्ताफल के आवेज में **मनुष्यों की आँखों में बिन्दुओं (आश्रुओं की) से अमृत की वर्षा करते हैं...** क्या कहते हैं? हम आपके छत्र देखते हैं तो हमारे अन्तर में आनन्द का मुक्ताफल, एक के बाद एक अन्दर से प्रगट होता है। आहाहा!

फूलखरणी होती है न? फूलखरणी नहीं? क्या कहते हैं? दीवाली में नहीं होती? फूलझरणी। एक के बाद, एक के बाद बिन्दु झरते हैं न? आचार्य कहते हैं, प्रभु! आपके छेत्र देखकर मुझे ऐसा होता कि मेरा आनन्द जो आत्मा में भरा है, क्षण-क्षण में, क्षण-क्षण में अन्दर आनन्द की कणिका जागती है। छत्र को देखकर हमारे अन्दर अमृत का झरना झरता है। पर का लक्ष्य तो विकल्प है, परन्तु अन्दर अध्यात्म में उतारा है कि मेरा लक्ष्य तो अन्तर आनन्द में है। राग आया है, फिर भी मेरे स्वभाव में मेरा आदर तो आनन्द का है। आपकी भक्ति के काल में मुझे शुभभाव तो आया, तो आपके तीन छत्र देखते हैं, मुझे ऐसा लगता है कि मुझे अमृत की वर्षा हुई और मेरी आँख में हर्ष के अश्रु आ गये। मुनि है न, मुनि। मुनि कहते हैं, **अमृत की वर्षा करते हैं, ऐसा लगता है।**

जिस समय भव्य जीव, आपके ऊपर लटकते हुए तीन छत्रों की शोभा देखते हैं, उस समय उनको इतना आनन्द होता है... अच्छे माता-पिता मिले, बहुत वर्ष के वियोग के बाद, तो पहले हर्ष के अश्रु आ जाते हैं न? समझ में आया? पिता-माता बाहर चले गये हो, याद नहीं हो, मिले नहीं हो, पाँच-दस वर्ष के बाद मिले तो देखकर पुत्र

को ऐसा लगता है, आहा! अरे माँ! तू कहाँ गयी थी? हर्ष के आँसू। दुःख के नहीं, हर्ष के, उस प्रकार के आनन्द का, हों! उस जाति का आनन्द। यहाँ कहते हैं, भगवान! आपके छत्र देखकर मानो मुझे तो पिता मिले और पिता मेरे विरह में थे, आपके ऊपर मेरी नजर गयी तो मुझे अन्दर से आनन्द के आँसू आ गये। बाह्य में हर्ष में आँख में आँसू आये और अन्दर के आनन्द में आनन्द का झरना आया। मेरी एकाग्रता परमात्मपद प्रति है तो मुझे अतीन्द्रिय आनन्द का झरना आया। वही आपके मुक्ताफल और छत्र को देखकर मुझे हुआ है। ओहोहो!

भक्ति का विषय है न? तो भक्ति तो परलक्ष्यी राग है न? फिर भी स्वलक्ष्य के भान में है, वह बात करते हैं। हमारा भान है, मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ और राग आया, वह व्यवहार है। है बन्ध का कारण, परन्तु आये बिना (रहता नहीं), पूर्ण वीतराग नहीं है; इसलिए आये बिना रहता नहीं। परमात्मा की भक्ति, प्रतिमा का दर्शन, वह सब व्यवहार आता है। नाम स्मरण, जाप, ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। परन्तु ज्ञानी समझते हैं कि व्यवहार मार्ग आया, मेरे स्वभाव में जितना स्थिर हूँ, उतना मेरा सत्य और निश्चय मार्ग है। आहाहा! इन दोनों में गड़बड़ हुई है न अभी? पाटनीजी! दो में गड़बड़ी हो गयी है। तो कहते हैं—

आनन्द के मारे उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता है। आहा! परमपिता परमात्मा, मैं तो प्रभु! आपका दास और पुत्र हूँ। उनका पुत्र सम्यग्दृष्टि हो सकता है, हों! अज्ञानी पुत्र नहीं हो सकता। क्योंकि उनकी चीज़ में से कोई अंश अन्दर में प्रगट हुआ हो तो उनका पुत्र कहने में आता है। अन्दर गुण में से प्रकृति प्रगट हुई हो, प्रकृति अर्थात् आत्मा का स्वभाव। मैं शान्त ज्ञान हूँ, राग जरूर आता है, पुण्य भी आता है, पाप भी होता है जरूर, शरीर की जड़ की क्रिया हो, परन्तु सबका मैं जानने-देखनेवाला हूँ। ऐसा ज्ञान का झरना थोड़ा प्रगट हुआ है, उसको भगवान का पुत्र कहने में आता है। समझ में आया?

उस बात को लक्ष्य करके छत्र की बात कही। अब चँवर की बात (करते हैं)। चँवर, चँवर होते हैं। आठ प्रातिहार्य में भगवान को इन्द्र आकर चँवर ढोरते हैं। चँवर में से भक्ति निकालते हैं। परमात्मा की बाह्य विभूति में से भी अन्तर की भक्ति निकालते हैं। वह बात कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक - १३-०५-१९६४
ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - २५ से २८, प्रवचन-७९०

पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। उसके कर्ता एक पद्मनन्दि आचार्य महा मुनि सन्त आत्मज्ञान, आनन्द में, ध्यान में मस्त रहनेवाले थे। वे भगवान की स्तुति करते हैं और जगत को भगवान की स्तुति करनेवाला कैसा होता है और स्तुति कैसी होती है, वह बतलाते हैं। यहाँ पद्मनन्दि का १३वाँ अधिकार है। उसकी २५ गाथा चली। देखो! क्या कहते हैं ?

भगवान ऋषभदेव परमात्मा हुए। इस चौबीस तीर्थंकर में वे वे पहले हुए। उसके पहले अनन्त-अनन्त आत्मायें आत्मा का ज्ञान और आनन्द उसका अन्तर अनुभव करके पूर्णानन्द की प्राप्ति करके मुक्त हुए। परन्तु उसमें जो तीर्थंकर थे, वे तो पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति और उसका पूर्ण पुण्य का भी संयोग अर्थात् योग था। ऐसे तीर्थंकर की स्तुति आचार्य महाराज करते हैं। जगत को बताते हैं कि स्तुति कैसी होनी चाहिए। तो स्तुति करनेवाला ऐसा होता है कि परमात्मा में जो केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है। भगवान को अपनी पर्याय अर्थात् अवस्था में अनन्त ज्ञान बेहद तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति प्रगट हुई है।

ऐसा अनन्त दर्शन—देखना, अनन्त आनन्द और अनन्त आत्मस्वरूप की रचनारूप वीर्य, ऐसा अनन्त चतुष्टय भगवान परमात्मा को प्राप्त प्रगट होता है। इसकी जिसको श्रद्धा है कि आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और अनन्त दृष्टापना का आत्मा में स्वभाव था, वही अन्तर में अनुभव करके प्रगट होता है। इसकी जिसको श्रद्धा है, उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आता है ?....

परमात्मा, जिसको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ज्ञानादि प्रगट हुआ, इसकी जिसको प्रतीति है, यहाँ तो अभी प्रतीति का ठिकाना नहीं है। परमात्मा को ऐसी दशा होती है ? एक आत्मा में एक समय में तीन काल-तीन लोक जानना-देखना, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द। ऐसा जिसकी दशा में प्राप्त हुआ, ऐसा परमात्मा की भक्ति करनेवाला कैसा

होता है ? अपने आत्मा में भी बेहद अनन्त चतुष्टय मेरी शक्ति में पड़े हैं। समझ में आया ? क्योंकि भगवान की शक्ति पड़ी थी, उसकी व्यक्तता प्रगट हो गयी। तो ऐसी प्रतीति करनेवाले को अपने आत्मा में भी अन्तर में जिसको अपना स्वभाव में बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, अनन्त अपरिमित आनन्द और अनन्त अपरिमित वीर्य, ऐसी चतुष्टय की शक्ति प्रतीति में आती है, वह प्राणी; वर्तमान में निमित्त है, राग है, अल्पज्ञता है, उसका दृष्टि में आदर होता नहीं। उसको अपना ज्ञान अनन्त चतुष्टय जो स्वभाव में पड़ा है, उसको उपादेय और आदरणीय मानते हैं, ऐसा आत्मा भगवान की प्रगट दशा की भक्ति कर सकता है। उसकी भक्ति के विकल्प को व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया ? ऐसे भगवान की भक्ति....

आत्मा थे, परमात्मा भी आत्मा है और आत्मा में ऐसी शक्ति की प्रगटता हुई, वह कहाँ से हुई ? क्या राग में से होती है ? क्या शरीर में से ऐसी प्रगटता होती है ? क्या अल्पज्ञ दशा है, उसमें से सर्वज्ञदशा, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य और पूर्ण दृष्टा क्या अल्पज्ञ पर्याय में से होती है ? कहो, समझाय छे कांई ? समझ में आता है ? यह चतुष्टय अन्दर में पड़े हैं, वह अन्दर में से एकाकार होकर उसकी पर्याय अर्थात् वर्तमान हालत में प्रगट हो गया। ऐसी प्रतीति करनेवाले को अपने में वर्तमान पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट नहीं है, परन्तु मेरे स्वभाव में अनन्त चतुष्टय है, ऐसी प्रतीति आती है और उसका अन्तर में अनुभव आता है। वह पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने के योग्य और पात्र है। बात तो यह बात है। समझ में आया ? ऐसी भक्ति-भक्ति करे तो शुभराग होता है। परन्तु वास्तविक यथार्थपने आत्मा की शक्ति की प्रतीति बिना तीर्थंकर पूर्ण आत्मा की प्रतीति कहाँ से आती है उसको ? वह पूर्ण पर्याय जिसको प्रगट हुई, ऐसा आत्मा। ओहो ! जो एक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं परमात्मा। ऐसी दशा हुई। वह दशा आयी कहाँ से ? हुई कहाँ से ? इन्दुभाई ! यों तो लोगस्समां बहु बोले छे। '**एवं मए अभिथुआ**' आवे छेने ? '**विहुयरयमला पहीणजरमरणा।**' समझया विना '**एवं मए अभिथुआ**'। हे माता ऊभी हो। ऐसा किसी ने अर्थ किया था। भाई ! समझे बिना।

मुमुक्षु : ऐसा चाले है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अेवुं चाले छे। '**विहुयरयमला**' उसमें शब्द आता है ? हे नाथ! आप '**विहुयरयमला**'। परमात्मा... वह लोगस्स में आता है। '**लोगस्स उज्जोअगरे**'। इसमें भी सामायिक में वह पाठ आता है। लोगस्सना उज्वतना करनारा परमात्मा प्रभु आप कैसे हो ? '**विहुयरयमला**' '**वि हुयरयमला**' शब्दार्थ का भी भान नहीं, उसको परमात्मा कैसा है, उसका बोध नहीं। उसको अपने स्वभाव की—शक्ति की प्रतीति नहीं है। वह भगवान की यथार्थपने व्यवहारभक्ति करने के भी योग्य नहीं है। समझ में आया ? '**विहुयरयमला**' का अर्थ ऐसा किया समझे बिना। विहा रोई मल्या। एक व्यक्ति ने, शब्द के अर्थ की खबर नहीं, और दो जाति के बीच में विरोध था। तो फिर, विहा रोई मख्या, दशाश्रीमाली बोले, विहा रोई मख्या। लेकिन ये कहाँ से आया इसमें ? उसमें तो ऐसा है कि '**विहुयरयमला**'। हे नाथ! हे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञप्रभु! वि—विशेष हुई-धुई आपने टाले हैं, '**रयमला**' हे परमात्मा! आपने रज अर्थात् आठ कर्म की रज असद्भूत व्यवहारनय से टाली है, ऐसा कहने में आता है। और मल। मल अर्थात् राग और द्वेष जो भावकर्म विकारी पर्याय है, मनसुखभाई! यह लोगस्स तो कितने वर्ष पहाड़े बोलते हैं। '**मला**' मल और रज आपने टाला है। उसका अर्थ आप की सर्वज्ञदशा में पूर्ण निर्मल दशा हुई है और कर्म का—घातिकर्म का एक रजकण भी आपके सम्बन्ध में रहा नहीं। समझ में आया ?

कल वह एक बात कही थी। पण्डितजी! जयधवल में आया है न ? अर्थ किया है न आपने पहले श्लोक का ? जयधवल में। कल आया था न ? कल तो तुम थे। हे नाथ! पहला श्लोक है जयधवल के ९वें भाग में। आत्मा में विकार होता है। विकार निमित्त और कर्म के रजकण में विकारी अवस्था का होना, वह परमाणु के सामर्थ्य से होता है। ऐसा जो आठ कर्म की जाति है अनन्त परमाणु, उसमें एक परमाणु में अनुभाग कर्म का विकार की ताकत इतनी है कि सर्व जीव से अनन्तगुना उसका अविभाग अनुभाग की पर्याय की ताकत है। समझ में आया ? ख्याल भी नहीं, क्या समझे ? ....

एक परमाणु कर्म का। उसकी विकारी पर्याय का अनुभाग की इतनी शक्ति है, अविभाग, कि सर्व जीव से अनन्तगुनी। तो वीरसेनाचार्य परमात्मा की स्तुति करते हैं कि हे नाथ! आठ कर्म, उसमें एक प्रकृति अनन्त-अनन्त परमाणु का स्कन्ध, पिण्ड। ऐसा अनन्त स्कन्ध की एक प्रकृति। ऐसी-ऐसी १४८ कर्म की प्रकृति। ऐसा प्रकृति में एक

परमाणु छोटा है, उसमें जो कर्म की अनुभाग शक्ति है; अनुभाग अर्थात् फल रस देने की ताकत, वह शक्ति सर्व जीव संख्या से अनन्तगुनी है। हे नाथ! परमाणु का जो अनन्तवें भाग में जो विकार का दोष आया, उतना दोष भी आत्मा में—तुम्हारे में है नहीं। कितनी सूक्ष्म बात ली! चन्दुभाई!

परमात्मा को पहिचाननेवाला... आहाहा! हे प्रभु! विकार होता है अपना स्वभाव भूलकर। विकार तो अपनी पर्याय में—अवस्था में है। परन्तु कर्म के रजकण की कर्मपर्याय होती है, उसमें एक रजकण में इतनी विकारी पर्याय की संख्या है, अविभाग छेद उसका, अनन्त जीव है उससे अनन्त गुना। हे नाथ! उसका एक परमाणु में जो अनुभाग है अनन्त गुना, उसका अनन्तवें भाग का एक अंश भी आप में दोष रहा नहीं। भगवान जाने क्या होगा यह? इन्दुलालभाई! भगवान तो जानते हैं। स्तुति करनेवाले में कितनी जिम्मेदारी दृष्टि की है कि उसके निमित्तपने में कर्म का एक अंश है, ऐसे अनन्त अंश परमाणु में हैं। सब टल गये। और उसके अनन्तवें भाग में एक दोष है, वह भी आत्मा के ज्ञान में, दर्शन में, आनन्द में रहा नहीं। समझ में आया? कठिन भाई। भक्ति भी कठिन। तत्त्वदृष्टि का विषय तो (है ही)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! तीन काल-तीन लोक जाने। न जाने क्या? एक समय में भगवान भूत, भविष्य और वर्तमान तीन काल की पर्याय गुण की दशा हुई, है और होगी (सब को जाने)

मुमुक्षु : विकारी पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकारी और अविकारी सब। विकारी पर्याय क्या है? सर्वज्ञ के ज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक की विकारी, अविकारी पर्याय सहित, गुण और द्रव्य तीनों ज्ञान में आते हैं, उसको परमात्मा कहते हैं। ऐसे तो णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं सब करते हैं। इन्दुलालभाई! परन्तु अरिहन्त किसको कहना? एक राग का अंश भी वैरी है, उनके पास रहा नहीं अंश। ऐसी वीतराग विज्ञानघन दशा जिसको प्राप्त हुई। ओहो! पर्याय अर्थात् अवस्था में ऐसा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्राप्त है, है जगत

में, ऐसा प्रतीति करनेवाला अपने स्वभाव में अनन्त चतुष्टय पड़ा है, ऐसी प्रतीति सम्यग्दर्शन में हुई है, वह परमात्मा पूर्णानन्द की भक्ति व्यवहार से विकल्प से करते हैं, उसका कथन यहाँ चलता है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि बिना भगवान की सच्ची भक्ति (कोई) करता नहीं।

वह स्वयंभूस्तोत्र में कहा है। समन्तभद्राचार्य। समन्तभद्राचार्य महा आचार्य हुए हैं। इतिहासकार कथा में कहते हैं कि भविष्य में तीर्थंकर होंगे। क्या है बराबर वह तो मालूम नहीं। परन्तु वह समन्तभद्राचार्य ने भगवान की स्तुति करते-करते एक बार कहा कि हे नाथ! अभव्य ग्रन्थी सत्ता आपको नमस्कार नहीं करते। पण्डितजी! उसमें आया है। ग्रन्थी सत्ता अर्थात् अभव्य। स्वयंभूस्तोत्र है न? स्वयंभूस्तोत्र—चौबीस तीर्थंकर की स्तुति समन्तभद्राचार्य ने की। उसमें एक पंक्ति आयी है, हे नाथ! जो ग्रन्थी सत्त्व जीव है अर्थात् राग और आत्मा का स्वभाव एक माननेवाला अभव्य जीव है वह, हे नाथ! आप को वन्दन नहीं करते। आपको नमस्कार नहीं कर सकते हैं। क्यों ? कि विकल्प—राग और स्वभाव को एक माना। भगवान तो रागरहित पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ, ऐसा उसको ख्याल में आता नहीं। और वह वन्दन करते हैं तो राग का ही करते हैं। राग को नमते हैं, राग का आदर करते हैं। आहाहा! उसमें एक पंक्ति ली है। पण्डितजी! चौबीस में लिया। आचार्यों ने तो गजब काम किया है! भक्ति की है तो अजब बात है! तत्त्वदृष्टि ली है तो अजब बात है! चारित्र का वर्णन किया स्वरूप में आनन्द की अजब बात है! आत्मा अचिन्त्य अजब तत्त्व है, उसका जहाँ विकास पूर्ण हुआ, ऐसे परमात्मा की स्तुति करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है यथार्थ में और वही परमात्मा का दास है। समझ में आया ?

वह कहते हैं कि हे नाथ! जगत में जिस प्राणी को पुण्य और पाप का राग का प्रेम है और राग और त्रिकाल एवं त्रिकाल आनन्दस्वभाव, दो की एकत्वबुद्धि है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव वीतरागस्वभाव को नमन नहीं कर सकते। क्योंकि वीतरागपर्याय की महत्ता उसकी दृष्टि में आती नहीं। इसमें कुछ समझ में आता है ? आहाहा! इसे तो वह विकल्प उठता है न, दया, दान, भक्ति, वृत्ति का राग, इस राग में अज्ञानी का आदर है। राग में आदर करनेवाला हे नाथ! वीतरागदशा का प्रेम उसको आता नहीं और आपको नमस्कार करने के योग्य नहीं। आहाहा! हें ?

मुमुक्षु : दया, दान तो .... कहने में आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया, दान, संयम है, विकल्प है। अरे... भगवान! सुन तो सही प्रभु! दया, दान विकल्प परमात्मा को तो होता नहीं। यदि निर्मल हो तो उनके पास क्यों नहीं रहा? वह तो विकल्प वासना हो। चौथे, पाँचवें में अमुक दशा में उसकी योग्यता अनुसार राग हो। परन्तु राग और त्रिकाल स्वभाव अखण्डानन्द प्रभु दो को एक माननेवाले को ग्रन्थि सत्ता कहते हैं। गाँठ का सत्त्व वाला जीव। सत्त्व अर्थात् जीव। गाँठ की सत्ता। राग की गाँठ उसको पड़ी है। राग बिना मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा बोध नहीं वह, परमात्मा! आप को नमन नहीं करता। और नमन करते हैं बाहर से, वह आप को नहीं। वह तो राग को और शरीर को नमन करते हैं। आहाहा! इन्दुलालभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! हम आप की पर्याय में एक समय की दशा में कितना ज्ञान, कितना दर्शन, कितना आनन्द, कितना वीर्य, वह हमारी प्रतीति में आ गया है। और राग बिना की चीज़ आप हो, हम भी हमारा आत्मा राग बिना की चीज़ है। हमारा राग है, परन्तु हमारे स्वभाव में राग नहीं है, ऐसा हमको प्रतीति में आया उस अनुसार आप रागरहित हो गये ऐसा अनुमान कर आपकी परमात्मदशा की हमको प्रतीति हुई। मोक्ष श्रद्धा की। और मोक्ष श्रद्धा... मोक्ष कहो या केवलज्ञान कहो। मोक्ष की प्रतीति हमको हुई और मोक्ष की हमको अभिलाषा है। मोक्ष की प्रतीति हुई कि रागरहित आत्मा हो सकता है और रागरहित मैं आत्मा हूँ। ऐसी प्रतीति हुई और रागरहित हुआ है, उसकी-मोक्ष की अभिलाषा जिसको है, वही परमात्मा की सच्ची व्यवहारभक्ति कर सकता है। आहाहा!

अब यहाँ आचार्य महाराज ऋषभदेव भगवान की स्तुति में सर्वार्थसिद्धि से लेकर यहाँ आये। आकर समवसरण में विराजते हैं। आठ प्रातिहार्य। जिसको तीर्थंकर प्रकृति का उदय है और आठ प्रातिहार्य उनका अतिशय पुण्य की शोभा है। वह अवतार उसका स्वरूप-परमात्मा का कैसा है? ऐसा गुणगान करते हैं। यहाँ तक आया है। २५। २५ में तीन छत्र लिये।

हे नाथ! आप जब धर्मसभा में विराजमान थे, तब आपके अनन्त चतुष्टय की तो बात क्या करना? परन्तु आपके ऊपर जो छत्र हैं न? छताति छत्तं। सुना है या नहीं? भगवान

तीर्थंकर को छत्र पर छत्र ऐसा प्रातिहार्य होता है। अरे! यहाँ एक भी छत्र भासे नहीं, वह छत्राती छत्र अतिशय। कहते हैं, हे नाथ! आपके मुक्तफल से मानों बना हो, और जिसको आत्मा में से आनन्द झरता है, ऐसा मुक्ताफल से बना ऐसा छत्रत्रय हमको दिखते हैं।

कल्याणमन्दिर स्तोत्र में तो ऐसा कहा है भगवान की स्तुति करते हुए, हे नाथ! आप के तीन छत्र हम देखते हैं, आप विराजमान हैं उसमें, तो हम तो जानते हैं कि आपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जो आराधना की थी, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन छत्र होकर खड़े हुए हैं। पण्डितजी! कल्याणमन्दिर में ऐसा लिखा है। क्या कहते हैं, समझ में आया?

धर्मीजीव को अपना आत्मा स्वभावमय है, उसकी प्रतीति हुई, ज्ञान हुआ, स्वरूप का आचरण अल्प हुआ। परन्तु केवली परमात्मा के तीन रत्न अर्थात् सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र। उसका आराधन करके केवल (ज्ञान) हुआ तो हे नाथ! मेरे को तो ऐसा भासता है कि ये तीन रत्न का आराधन किया, वह छत्र होकर अभी आये हैं। केवलज्ञान होकर आये हैं, वह बात तो बाद में। समझ में आया? नेमिचन्दजी! कल्याणमन्दि स्तोत्र में है। पागल होंगे? गहल। पागल कहते हैं? क्या कहते हैं? अरे! सुन तो सही। भक्तों की भक्ति परमात्मा प्रति का विकल्प उठता है, तब आत्मानन्द के प्रेमसहित पूर्णानन्द का प्रेम का विकल्प उठता है, तब उसको कहते हैं, हे नाथ! ये छत्र क्या हैं? तीन रत्न जो आपने साधे थे, उसके फलस्वरूप भले केवलज्ञान हुआ, परन्तु बाहर आकर तीन छत्र हो गये हैं। हमको तो तीन रत्न ही दिखते हैं। दूसरा हमको दिखता नहीं। समझ में आया? वह बात २५वीं गाथा में आ गयी।

अब, २६वीं चँवर। भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव समवसरण में वर्तमान में विराजते हैं। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं साक्षात्। ये ऋषभदेव भगवान वर्तमान में मुक्ति में पधारे हैं। परन्तु पूर्व की नय से कथन करते हैं। आप जब समवसरण में थे, तब इन्द्र चँवर ढोरते थे। वीतराग परमात्मा को कोई चंवर की हवा या सुगन्ध नहीं है। परन्तु इन्द्र पूर्व के पुण्य के कारण और भक्ति उछलती है, इन्द्रों की भक्ति उछलती है तो हाथ में चँवर लेकर भगवान को ढोरते हैं। बात बैठनी कठिन। पूर्णानन्द की प्राप्त हुई, उनको चँवर क्यों

ढोरते हैं ? हवा चाहिए ? आपके यहाँ देखो, पंखे घूमते हैं या नहीं ? ऐसे वहाँ चंवर ढोरते होंगे ? अरे... भगवान ! वह तो भक्तिवन्त के भक्ति के भाव हैं। भगवान को क्या है ? वे तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में हैं। तीन काल-तीन लोक जिसका एक समय में ज्ञेय होकर अपने ज्ञान में समा गये हैं। अपने ज्ञान को देखते हैं तो लोकालोक देखने में आ जाता है। उनको पर से लेना, देना है कुछ है नहीं। परन्तु भक्त इन्द्र... क्या कहते हैं ? अब चंवर की बात करके थोड़ी शीतलता की बात करते हैं।

गाथा २६

कयलोयलोयणुप्पलहरिसाइ सुरेसहत्थचलियाइं।
तुह देव सरइंससहरकिरणकयाइव्व चमराय।।२६।।

अर्थ - जिन चमरों को देखने से समस्त लोक के नेत्ररूपी कमलों को हर्ष होता है और जिनको बड़े-बड़े इन्द्र ढोरते हैं - ऐसे हे जिनेन्द्र! आपके चँवर, शरदऋतु के चन्द्रमा की किरणों से बनाये गये हैं - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - अन्य ऋतु की अपेक्षा शरदऋतु में चन्द्रमा की किरण बहुत स्वच्छ तथा सफेद होती है, इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि हे भगवन्! आपके चँवर इतने स्वच्छ तथा सफेद हैं, जो कि ऐसे मालूम होते हैं मानों शरदकालीन चन्द्रमा की किरणों से ही बनाये हुए हैं और जिनको देखनेमात्र से समस्त लोक के नेत्रों को आनन्द होता है तथा जिनको बड़े-बड़े इन्द्र आकर ढोरते हैं।

गाथा - २६ पर प्रवचन

कयलोयलोयणुप्पलहरिसाइ सुरेसहत्थचलियाइं।
तुह देव सरइंससहरकिरणकयाइव्व चमराय।।२६।।

क्या कहते हैं ? **चँवरों को देखने से...** हे परमात्मा ! आपके पास इन्द्र चँवर ढोरते

हैं, हमको **समस्त लोक के नेत्ररूपी कमल अत्यन्त हर्षित हुए हैं...** प्रभु! आपको देखकर हमको हर्ष होता है। समझ में आया? हमें नहीं और उनको क्यों? ओहो! वह तो पूर्णानन्द की प्राप्ति परमात्मा को (हुई है)। तो उनको इन्द्र भी चँवर ढोरते हैं। ऐसे चँवर ढोरकर, प्रभु! हम आपको जब देखते हैं आपकी नजर से, हमारे नेत्र में हर्ष होता है। हमारे अन्दर में हर्ष के आँसू आते हैं। और अन्दर के आनन्द के प्रेम से हमारा अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहता है। बाहर में हर्ष के आँसू आते हैं। आपके चँवर देखने से। देखने का ज्ञान देखता है, हों! यह तो व्यवहार से कथन चलता है न, चँवर देखने से।

जिनको बड़े-बड़े इन्द्र ढोरते हैं... समझ में आया? बड़े-बड़े इन्द्र। सौ इन्द्र हैं, उसमें से देव के अमुक इन्द्र भगवान को चँवर ढोरते हैं। ऐसे हे भगवान! आपके चँवर **शरदऋतु के चन्द्रमा की किरणों से बनाये गये हैं...** देखो! '**सरह सस हरकिरणकयाइं**' ऐसा शब्द पड़ा है। '**सरह**' शरदऋतु। शरदऋतु होती है न? ... '**सस हर**' शरदऋतु का '**सस हर**' चन्द्रमा, उसकी किरणें। उसके प्रकाश की किरणें। उनसे जब ये चँवर बने हों। देखो, आचार्य का अलंकार! भगवान! मुझे तो ऐसा दिखता है, आप अन्तर अनन्त शीतलता, शीतलता में उपशमरस पूर्ण हो गया। तो ये चँवर को देखकर मुझे ऐसा होता है कि चँवर ही शरदऋतु की शीतल चन्द्रमा की किरण से बने हो! समझ में आया?

एक भक्ति कहीं आती है। नहीं? 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां।' ऐ भक्तों... भगवान को देखकर अकषाय वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है। थोड़ी-थोड़ी उसमें गुजराती आ जाती है। वह समझ लेना थोड़ा। 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तेरा नयनमां, हृदयकमलमां दया अनन्त उभराय जो।' भगवान को दया अनन्त है। अकषाय करुणा, अकषाय करुणा। आदिपुराण में जिनसेनाचार्य भगवान को करुणा कहते हैं। हे नाथ! आप करुणामूर्ति हो। करुणा का अर्थ अकषाय करुणा जगत प्रति सबको ज्ञेय करके जानते हैं तो आपकी अकषाय करुणा है।

हृदयकमलमां करुणारस वरसे जो,
उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां,
हृदयकमलमां दयारस वरसे जहां, करकमलमां कृपामृत पूर्ण वहे,

शिर पर मूक्या लब्धि उपजे अनन्त जो...
उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां...

आँखों में भगवान उपशमरस झरे छे। आहाहा! आँख तो जड़ है। अन्तर में आत्मा का अकषाय स्वभाव का झरना, जैसे बड़े पर्वत में से पानी शीतल झरता है, ऐसे चैतन्यप्रभु पूर्ण अविकारी शान्तरस का कन्द है। उसमें एकाकार होकर जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, तो अन्तर में से उपशम—अविकारी रस झरता है। अविकारी। जो आँख में अविकारी रस झरता है, ऐसा हमको दिखता है। आहाहा! इन्दुलालभाई! क्या होगा यह? आहा! प्रभु! आपके नेत्र देखते हैं तो शीतल... शीतल... शीतल।

चंवर, शरदऋतु के चन्द्रमा की किरणों से बने हों। ऐसे आपके नेत्र में प्रभु! हम को दिखता है, शीतलता बहती हो। नेत्र तो स्थिर हो गयी हैं। उनको आँख से कुछ देखना नहीं है। भगवान को आँख से देखना है नहीं। वे तो अतीन्द्रिय ज्ञान से केवलज्ञान से अपने को देखते हैं। परन्तु नेत्र में शीतलता इतनी अन्दर है। भक्तामर में कहते हैं, जितने परमाणु शान्तरसपने परिणमने की योग्यता थी, उतने परमाणु आपके शरीर में परिणमित हो गये हैं। क्रोधी हो आत्मा तो उसके शरीर में भी क्रोध में लाल-लाल कम्पित होता है। क्रोधी हो न क्रोधी? तो शरीर भी लाल हो जाता है। हे भगवान! आप अविकारी दशा को प्राप्त हुए। आपका शरीर भी शान्तरस के परमाणु की जितनी अनन्त संख्या थी, वह आपके शरीर में आ गये हैं। समझ में आया?

धर्मात्मा उपशमरस को देखते हैं। अपना उपशमरस शान्त है, उसकी प्रतीति की रुचि, अनुभव हुआ है, तो पूर्ण उपशम अविकारी दशा प्रगट हुई (है, वह) भगवान को देखकर (कहते हैं), हे नाथ! आपके नेत्र में तो उपशमरस झरता है। आहाहा! किसी को ऐसा नहीं कहते हैं? कि तेरी आँख में तो अग्नि झरती है। भाई! ऐसा कहते हैं न?

मुमुक्षु : बहुत लाल हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत क्रोधी हो तो ऐसा कहते हैं कि तेरी आँख में तो अग्नि झरती है। क्या तुम्हारे समीप आये? लाल-लाल... सत्ताप्रिय प्रकृति का थोड़ा अपमान हो तो लाल-लाल रहे। आँख में अग्नि झरे। तो अग्नि है वहाँ? परन्तु अन्दर कषायभाव अन्दर

हुआ है तो आँख लाल हो गयी है तो अग्नि झरती है, ऐसा कहते हैं। ऐसे भगवान को कहते हैं, हे नाथ! आपका अविकारी परिणमन शान्तरस का पूर्ण हो गया। आपके चँवर में भी शान्तरस के किरण आ गये हैं, ऐसा हमको भासित होता है। कहो, सेठ! देखो यह भक्ति। ऐसी भक्ति है, हों! परमात्मा की प्रतिभा की भी भक्ति होती है, साक्षात् परमात्मा की भी होती है। ज्ञानी को ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। जब तक सर्वज्ञ न हो, पूर्ण परमात्मदशा न हो, तब तक सन्तों, मुनियों ने स्तुति की बड़ी नदी बहाई है। समन्तभद्राचार्य आदि ने भगवान के पास। शुभराग हो, विकल्प आता है अशुभ से बचने को। और परमात्मा की अपनी भावना है तो परमात्मा है, उनकी भक्ति आये बिना रहती नहीं। विनय और भक्ति का स्रोत बहाया है स्तुति का।

यहाँ आचार्य महाराज छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं आनन्द में। उनको विकल्प आया तो कहते हैं, प्रभु! **शरदऋतु में चन्द्रमा की किरणें, अत्यन्त स्वच्छ तथा सफेद होती हैं, इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि 'हे भगवान! आप के चँवर, इतने स्वच्छ तथा सफेद हैं कि मालूम होता है कि मानो वे शरदकालीन चन्द्रमा की किरणों से ही बनाये हुए हैं...'** शरदऋतु के चन्द्र की किरणों से बनाया है। चमरी गाय के बाल नहीं। ये यह तो शान्तरस की पर्याय से बात बनी है। ऐसा कहकर अपने शान्तरस को स्मरण करते हैं—याद करते हैं। पूर्णानन्द पर्याय में पूर्ण शान्तरस है, उसका स्मरण करते हैं।

अब पुष्पवृष्टि। क्या कहते हैं? भगवान परमात्मा जहाँ विराजते हैं, वहाँ देव विमान में से पुष्पवृष्टि करते हैं। यहाँ भी कोई बहुमान करते हैं, तब चावल डालते हैं, श्रीफल रखते हैं, ऐसा करते हैं या नहीं? बहुत बड़े पुरुष निकले, तब नारियल फोड़ते हैं। बाजार में स्वागत में करते हैं या नहीं? गाँव में नेहरू या गाँधीजी आते थे, तब ऐसा करते थे। ऐ.. चन्दुभाई! नारियल होता है न? नारियल। सामने चले तो वहाँ फोड़ते हैं। हम तो ऐसा नारियल अर्पण करते हैं।

ऐसी भक्ति अथवा बहुमान लौकिक में और महात्मा आदि हो तो भक्ति (करते हैं)। ऐसा कहते हैं कि हे नाथ! आपको पूर्ण ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति हुई। देवों ने पुष्पवृष्टि की, उसका क्या अर्थ है, वह मैं अलंकार से कहता हूँ, ऐसा कहते हैं।

गाथा २७

विहलीकयपंचसरो पंचसरो जिण तुमम्मि काऊण।
अमरकयपुप्फविट्ठिछल इव बहु मुअइ कुसुमसरो।।२७।।

अर्थ - हे भगवन्! हे जिनेन्द्र! आपके सामने जिस कामदेव के पाँचों बाण विफल हो गये हैं, ऐसा वह कामदेव, देवों के द्वारा आपके ऊपर की हुई जो पुष्पों की वर्षा के बहाने पुष्पों के बाणों का त्याग कर रहा है - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - आपके अतिरिक्त जितने देव हैं, उनको कामदेव ने बाण मार-मार कर वश में कर लिया; किन्तु हे प्रभो! जब वही कामदेव अपने बाणों से आपको भी वश करने आया, तब आपके सामने तो उसके बाण कुछ कर ही नहीं सकते थे, इसलिए उस कामदेव के समस्त बाण आपके सामने विकल हो गये; इससे ऐसा मालूम होता है कि जिस समय देवों ने आपके ऊपर फूलों की वर्षा की, उस समय वह फूलों की वर्षा नहीं थी, किन्तु अपने बाणों को योग्य न समझकर कामदेव अपने फूलों के बाणों को फेंक रहा था, क्योंकि संसार में यह बात देखने में भी आती है कि समय के बाद जो चीज काम नहीं देती है, उसको मनुष्य फिर छोड़ ही देता है।

गाथा - २७ पर प्रवचन

विहलीकयपंचसरो पंचसरो जिण तुमम्मि काऊण।
अमरकयपुप्फविट्ठिछल इव बहु मुअइ कुसुमसरो।।२७।।

क्या कहते हैं ? भगवान ! कामदेव (अर्थात्) पाँच इन्द्रिय के विषयों ने आपने बहुत बाण मारे। तो पाँच इन्द्रियों के विषयों के राग में कितने ही देव घायल हो गये। और विषय के अर्थी राग में घोलाई गया, चोलाई गये। चोलाई गया समझे ? मसल गये। काठियावाड़ी भाषा है। मसल गये। परमात्मा आपको पाँच इन्द्रिय का, इन्द्राणी का विषय का काम पड़ा, कामबाण छोड़ा। निष्फल गया। '**विहलीकयपंचसरे**' पाँच इन्द्रिय के विषय के बाण '**विहलीकय**' उसके विफल गये। क्या कहते हैं, समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द की

प्राप्ति में विषय की वासना का कण रहा नहीं। विषयों की लालसा आप छद्मस्थ अल्पज्ञ थे, इन्द्राणी आदि चलायमान करने को आती है और रानी आदि चलायमान करने आती है। आपकी इतनी दृढ़ता अतीन्द्रिय आनन्द में थी कि पाँच इन्द्रिय के विषय निष्फल गये। पाँच इन्द्रिय कामबाण मारते थे, उसके बाण निष्फल गये। समझ में आया ? तो उस कारण से हमको तो लगता है कि कामदेव पाँच इन्द्रिय के विषय के बाण निष्फल देखकर पुष्पवृष्टि करके, बाण के बदले पुष्पवृष्टि करते हैं। समझ में आया ?

एक दृष्टान्त याद आया। एक भावनगर का... (संवत्) १९६४-६५ की बात है। ध्रुव का नाटक आता है न ? ध्रुव... ध्रुव। ध्रुव नहीं ? ध्रुव और प्रह्लाद ऐसा आता है। ध्रुव का एक नाटक था। संवत् १९६४-६५ की बात है। हम गाँव से आये थे, तो वहाँ नाटक देखने को गये थे। उसमें ध्रुव का नाटक था। बालक आठ वर्ष का छोटा था। ऐसा बैठा था और नाटक में पर्दे गिराते हैं न ? दो-दो पर्दे। कोई पर्दा ऊपर ले लेते हैं और कोई दो पर्दे को काट देते हैं। बीच में ध्रुव बैठा था ऐसा। छोटी उम्र का। उसकी माता चल बसी थी। दूसरी माता थी। अपमानित हुआ और स्वयं... ध्रुव को चलायमान करने को... ध्रुव...

ऐसे जिसकी ध्रुव आत्मा पर दृष्टि है, उसको यहाँ लगाना है। यह तो प्रत्यक्ष देखा है। वह ध्रुव छोटी उम्र का था, परन्तु बहुत सुन्दर था, राजकुमार था। देवियाँ ऊपर से उतरती थीं। उतारते हैं न नाटक में भी ? इतना लकड़ा हो और रस्सी पर पैर रखकर ऊपर से नीचे उतरे। दो देवियाँ आयीं और उसको बहुत चलायमान किया। अरे! यह शरीर सुन्दर। राजकुमार है। क्या तुम्हारे विषय बिना क्या है ? देखो! हमारा शरीर कैसा है। ६४-६५ की बात है। संवत् १९६४-६५। देवियाँ आकर चलायमान करती हैं। बहुत सुन्दर शरीर। ऐसे स्तन, ऐसी आँख, ऐसा नाक, केले जैसे शरीर का स्तम्भ, उसकी बहुत प्रशंसा करती हैं देवियाँ। अरे... कुमार! ये तो देख। नजर तो कर यहाँ। तब ध्रुव जवाब देता है, माता! तेरे शरीर की सुन्दरता को क्या कहूँ ? यदि मुझे एकाध अवतार होगा तो तुझे माता बनाऊँगा। ऐसा तेरा शरीर है। समझ में आया ? राजकुमार कहता है, जब बहुत ललचाती है, तब देवियों को इतना कहता है, हे देवियों! वह तो स्त्री के विषय के लिये करती थी। मेरा शरीर सुन्दर है और ऐसा है। मिट्टी है, धूल है। हड्डी और चमड़ी के आकार है मिट्टी का पिण्ड। ऐसी ललचाये। फिर इतना कहा, अरे.. देवियों! माता! तेरा पेट और तेरा स्तन

और तेरे नेत्र की क्या बात कहूँ ? मुझे एकाध अवतार हो तो तुझे माता बनाऊँ, तेरे पेट में आऊँ और तेरे स्तन का दूध पीऊँ। दूसरी बात है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? उस समय की गूँज दिमाग में रह गयी थी। ६४ के वर्ष। ध्रुव ने कहा।

ऐसे यहाँ ध्रुव अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द जो ध्रुव पड़ा है आत्मा, उसका ऐसे अतीन्द्रिय का प्रेम लगा, उसके पाँच इन्द्रिय के विषय के बाण निष्फल जाते हैं। उसके विषय के बाण सफल होते नहीं। हाँ, तेरे में इतनी ताकत हो तो अब मैं केवलज्ञान प्राप्त करूँगा तो तुमको जानूँगा कि ऐसा विषय है। परन्तु आदरणीय करने की मेरे में ताकत रही नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, **हे भगवन! आपके सामने जिस कामदेव के पाँचों बाण विफल हो गये हैं, ऐसा वह कामदेव, देवों द्वारा आप के ऊपर की हुई जो पुष्पों की वर्षा, उसके बहाने...** छल शब्द पड़ा है न ? छलऐव अर्थात् बहाने। देव के बहाने कामदेव स्वयं ही पुष्प बरसाता है। जब अपना कामबाण निष्फल गया, इसलिए फूल कामदेव देव के बहाने बरसाता है। मैं तो ऐसा देखता हूँ। समझ में आता है कुछ ? आहाहा! देखो! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रेम है जिसको, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई है, ऐसा परमात्मा की भक्ति करते हैं।

आपकी पुष्पवृष्टि में तो मैं ऐसा देखता हूँ कि पाँच इन्द्रिय का विषय कामदेव निष्फल गया। तो देव के बहाने पंच वर्ण फूल आप पर वृष्टि करते हैं। मैं तो ऐसा देखता हूँ, दूसरा मेरी दृष्टि में आता नहीं। ...भाई! देखो! यह भक्ति। वह २७वीं गाथा हुई।

अब, २८ में दुन्दुभि। आठ प्रातिहार्य है। पुण्य का अतिशय होता है। जहाँ आत्मा की पवित्रता के समक्ष पुण्य की विशेषता की कोई विशेष कीमत नहीं है। और ऐसा न हो, ऐसी बात भी नहीं है। अपना जहाँ इतना पुण्य है... हमने एक बाजरे का भुट्टा देखा था। बाजरा होता है न ? बाजरा। भुट्टा भुट्टा देखा था। जामनगर के पास एक अलियाबाडा है, अलियाबाडा। अलियाबाडा गाँव है। वहाँ हम (संवत्) १९९१ की साल में, मार्गशीर्ष में। वहाँ बहुत लोग आये थे। बहुत लोग आये थे। १५०० लोग। ... लेकर दर्शन करने को आये थे। दूसरे दिन तो जाना था वहाँ। १९९१ का कार्तिक कृष्ण की बात है। एक किसान

अपने खेत में से बाजरे का भुट्ठा लाया। इतना बड़ा। ऐसा भुट्ठा। डुंडा समझते हो ? डुंडा को क्या कहते हैं ? बाजरा नहीं होता है ? बाजरा को क्या कहते हैं ? उसका भुट्ठा होता है न इतना ? समझ लेना। लेकिन इतना लम्बा था वह भुट्ठा, इतना लम्बा। उसका तना—डण्ठल जो था। वह इतना छोटा लेकिर इतना कसवाला था। कसवाला समझे ? मजबूत। उसका तना जो था... राडा को आप में क्या कहते हैं ? इतना कठिन और चिकना था, था थोड़ा, था इतना ही और बाजरे का भुट्ठा इतना। विलायती बाजरा आता है, विलायती। वहाँ जामनगर के पास। तो कहते हैं... क्या कहना है ? इसमें कुछ समझ में आता है ?

जिसके अन्तर में आनन्द और ज्ञान का बाजरे का दाना पक गया, पूर्णानन्द का कण पक गया, उसका पुण्य भले हो, स्थिति थोड़ी हो परन्तु उसका रस अनन्तगुना होता है। वह बात थोड़ी (सूक्ष्म है)। आहाहा! पण्डितजी! स्थिति थोड़ी होती है। ज्ञानी को पुण्य की स्थिति थोड़ी पड़ती है, रस बहुत पड़ता है। अज्ञानी को पुण्य की स्थिति बड़ी पड़ती है, रस थोड़ा पड़ता है। वह बात थोड़ी (सूक्ष्म है)। कर्म की मुद्दत है। मिथ्यादृष्टि जब शुभभाव करता है, अपने स्वरूप के भान बिना शुभभाव करता है। भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं, शुभभाव में कोई मिथ्यादृष्टि को पुण्य की स्थिति पन्द्रह कोड़ाकोड़ी (सागर की) स्थिति बँध जाती है। वह सब भाषा समझनी (कठिन)। समझ में आया ? क्या ? पन्द्रह कोड़ाकोड़ी कर्म की मर्यादा की स्थिति। एक करोड़, ऐसा पन्द्रह कोड़ाकोड़ी ऐसा सागरोपम। ऐसी काल की अवधि का, काल की बड़ी अवधि का नाम है।

मिथ्यादृष्टि जिसको आत्मा का स्वभाव का प्रेम नहीं और अकेला शुभभाव भक्ति आदि या दया, दान में करता है तो शुभभाव के प्रेम से उसकी कर्म की स्थिति उत्कृष्ट अर्थात् बहुत अधिक पड़ जाये तो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी की स्थिति पड़ जाती है। मुद्दत। परन्तु रस-अनुभाग फल देने की शक्ति बहुत कम है।

सम्यग्दृष्टि को, सम्यग्दृष्टि को राग का आदर नहीं है और राग होता है। और राग से रहित मेरी चीज़ है, उसका आदर अन्दर है। उसके शुभराग में साता बँध जाती है। अन्तःकोड़ाकोड़ी की स्थिति बँधती है। क्या कहते हैं समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि को पन्द्रह कोड़ाकोड़ी। समकिती को अन्तःकोड़ाकोड़ी। एक कोड़ाकोड़ी नहीं, अन्तःकोड़ाकोड़ी की स्थिति पड़ती है। आहाहा! समझ में आता है ? फूलचन्दजी! क्या कहते हैं ? जिसकी

दृष्टि आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा भान नहीं है, उसको शुभभाव होता है, परन्तु शुभभाव की उत्कृष्ट स्थिति किसी को पन्द्रह कोड़ाकोड़ी कर्म की मुद्दत उसकी पड़ती है। और सम्यग्दृष्टि आत्मा का भानवाला भगवान की भक्ति आदि के शुभभाव में अन्त:कोड़ाकोड़ी (सागर), एक कोड़ाकोड़ी (सागर) नहीं परन्तु उससे अन्दर (कम) कर्म की स्थिति। परन्तु अनुभाग फल बहुत है समकिती को। मिथ्यादृष्टि को अनुभाग अल्प है। एक बात। अरे! क्या अनुभाग और क्या आत्मा का अनुभाग? आत्मा का अनुभाग अर्थात् आत्मा का अनुभव। कर्म का अनुभाग अर्थात् कर्म का रस अनुभव उसमें जड़ में पड़ता है। जड़ अजीव का, जीव अजीव का भान नहीं, आस्रव और चैतन्य का बोध नहीं उसको क्या समझ? क्या भक्ति? क्या व्यवहार? क्या निश्चय? उसको खबर नहीं पड़ती।

दूसरी बात। यहाँ तो कहते हैं कि हे नाथ! यहाँ तो नगाड़े की बात लेनी है दुन्दुभि। परन्तु अभी अपने ऐसा लेना है कि मिथ्यादृष्टि को शुभभाव में जो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी स्थिति पड़ती है तो उसको भोगने का काल यहाँ है नहीं। क्या कहते हैं? क्योंकि त्रस में रहने का काल दो हजार सागरोपम है। आत्मा मिथ्यादृष्टिपने रुलते-रुलते त्रस में आता है। दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। लट, चींटी, मकोड़ा, मनुष्य, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, देव, नारकी। त्रस जीव जो है, हरितकाय एकेन्द्रिय के अतिरिक्त, पृथ्वी के अतिरिक्त, तो त्रस में उसकी रहने की स्थिति दो हजार सागर है। और कर्म की स्थिति साता की पन्द्रह कोड़ाकोड़ी बाँधी है। क्या समझ में आता है?

मुमुक्षु : त्रस में रहने का काल...

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रस में रहने का काल थोड़ा है और बँधने का काल शुभ में मिथ्यादृष्टि का पन्द्रह कोड़ाकोड़ी है। कहाँ रहेगा पन्द्रह कोड़ाकोड़ी का भोग? निमित्तपने भी कहाँ रहेगा? मिथ्यादृष्टि है और राग प्रति प्रेम है तो मिथ्यात्व के कारण जो स्थिति बड़ी पड़ी थी, वह अशुभभाव हो जायेगा मिथ्यात्व के कारण। अशुभ होकर स्थिति टूट जायेगी। स्थिति तोड़कर नरक और निगोद में चला जायेगा। आहाहा! समझ में आया? त्रस में तो इतनी स्थिति नहीं है तो एकेन्द्रिय में चला जायेगा, एकेन्द्रिय में चला जायेगा। दो हजार सागर रहकर, पन्द्रह कोड़ाकोड़ी स्थिति बाँधी थी, आत्मा का भान नहीं, मिथ्यात्व में राग में प्रेम था तो स्थिति तोड़कर एकेन्द्रिय में चला जायेगा। और सम्यग्दृष्टि आत्मा का भान

है और राग भक्ति आती है, पुण्य बँधता है। अन्त: कोड़ाकोड़ी। उसको भी त्रस रहने का काल... दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, तो होता नहीं। वह तो मनुष्य और देव, मनुष्य और देव। उसके अतिरिक्त उसकी गति है ही नहीं। तो अन्त: कोड़ाकोड़ी स्थिति भी उसको भोगने में निमित्त नहीं रहती। क्या कहा समझ में आया?

जिसको आत्मा का स्वभाव का माहात्म्य है सम्यक् और विकार आता है जरूर भक्ति आदि भाव, उसकी कर्म की स्थिति अन्त:कोड़ाकोड़ी बँधती है। परन्तु इतना काल भी मनुष्य और देव में रहने का है नहीं। परन्तु वह भी शुभभाव को छोड़कर शुद्ध में आकर स्थिति तोड़कर केवलज्ञान लेगा। यह केवलज्ञान लेगा; वह एकेन्द्रिय लेगा। आहाहा! अरे! भगवान! देखो तो सही, भगवान की भक्ति करने में उसको कितना विवेक है। समझ में आया?

वह बात इन्दौर में कही थी। पण्डितजी! इन्दौर में कहा था। बंसीधरजी बहुत ऐसा हो गया। ओहोहो! देखो! शास्त्र में भी इसमें कुछ न्याय भरा है। साताकर्म की स्थिति पन्द्रह कोड़ाकोड़ी। परन्तु दृष्टि आत्मा में नहीं है और राग पर दृष्टि है तो वह स्थिति तोड़कर, अशुभभाव में आकर एकेन्द्रिय में चला जायेगा। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति। त्रस की स्थिति थोड़ी है। और सम्यग्दृष्टि भगवान की भक्ति करते-करते अरे! कोई तीर्थंकर गोत्र बँध जाये। वह भी दो कोड़ाकोड़ी (सागर की) स्थिति है। इतना मनुष्य भव और देव में रहने का काल नहीं है। समझ में आया? क्या होगा? शुभभाव भले हुआ, परन्तु शुद्धात्मा की रुचि है तो अल्प काल में शुद्धोपयोग में आ जायेगा और आकर जो स्थिति पड़ी है, उसको तोड़कर केवलज्ञान लेकर मोक्ष में चला जायेगा। समझ में आया?

यहाँ देखो आचार्य भक्ति में विवेक है न। ख्याल है उसको मैं क्या करता हूँ और क्या होता है। व्यवहार आता है। परन्तु व्यवहार की हमारे स्वभाव के साथ एकता नहीं होती। धर्मी को राग, भक्ति, पुण्य, दया, दान का परिणाम आये बिना रहता नहीं परन्तु अपने स्वभाव के साथ विकार का एकत्व करते नहीं। तो विकार का फल जो थोड़ी कर्म की स्थिति बँधती है, वह भी तोड़कर स्वरूप शुद्धि करके केवलज्ञान लेगा। ऐसी आत्मा में ताकत है। सम्यग्दृष्टि की ऐसी ताकत है कि बन्ध पड़ा, फिर भी अबन्ध कर देगा। और

मिथ्यादृष्टि को पुण्य में प्रेम है... सुबह कहा था न ? पुण्य जड़त्व स्वभाव। पुण्य का प्रेम, वह जड़ का प्रेम है। उसको चैतन्यस्वभाव का प्रेम नहीं है। तो उसका प्रेम उसमें रहा। स्थिति पड़ जाओ लम्बी। वह तो संसार है। कर्म की स्थिति लम्बी पड़े, वह तो संसार है। तोड़ डालेगा स्थिति और अल्प स्थिति करके एकेन्द्रिय पर्याय में चला जायेगा, अपना स्वभाव का भान नहीं है इसलिए। मनसुखभाई! समझ में आया कुछ इसमें ? आमां अर्थात् इसमें समझ में आता है कुछ ? ऐसा। आहाहा!

यहाँ आचार्य महाराज छठवें-सातवें गुणस्थान में मुनि है। मुनि मानो भगवान को देखते हैं! हे नाथ! आपके पास दुन्दुभि नाम का नगारा है। साढ़े बारह करोड़ वाजिंत्र बजते हैं। सुना! एक साधारण राजा का पुत्र का विवाह हो तो मंगल कामना में प्रातःकाल में... क्या कहते हैं ? नोबत... नोबत। चौघड़िया। एक पुत्र का जन्म हो तो भी नगारा और वाजिन्त्र बजते हैं सुबह। हमने तो देखा था। एक बालक नया जन्मा था। हम अजमेर गये न, अजमेर। वहाँ सेठ के घर। किसी के यहाँ पुत्र जन्म हुआ। तो नगारे बजते थे। क्यों ? भागचन्दजी के पुत्र को पुत्र हुआ था उस समय। अजमेर गये थे उस दिन। ओहो! एक पुत्र के प्रसव में भी साधारण मनुष्य में नगारा बजे, तो सर्वत्र परमात्मा जिसकी प्रजा केवलज्ञान और आनन्द की प्रजा प्राप्त हो गयी। प्रजा हुई द्रव्य में से, द्रव्य पिता है, पर्याय उसकी प्रजा है। आहाहा!

एक समय में भगवान ध्रुव चिदानन्द प्रभु द्रव्य है, वह पिता है। उसमें से प्रजा निकलती है, वह उसकी पर्याय है। केवलज्ञान और पूर्णानन्द की प्रजा उत्पन्न हुई तो इन्द्र नगारा बजाते हैं। मंगल काल में इन्द्र नगारा, साढ़े बारह करोड़ वाजिन्त्र बजाते हैं। कहते हैं, पुण्य नहीं बेठता। परन्तु आत्मा की पवित्रता है। तो पवित्रता का अंश का अनुभव हुआ है, तो उसके पवित्रता के स्थान में राग कैसा आता है और उसका पुण्य कैसा है, उन दोनों की उसको प्रतीति है। समझ में आया ?

तो कहते हैं, हे नाथ!

गाथा २८

एस जिणो परमप्पा णाणोण्णाणं सुणेह मा वयणं।
तुह दुंदुही रसंतो कहइ व तिजयस्स मिलियस्स।।२८।।

अर्थ - हे भगवन्! बजती हुई आपकी दुन्दुभि (नगाड़ा) तीनों लोक को इकट्ठा कर यह बात कहती है कि हे जीवों! यदि वास्तविक परमात्मा हैं तो भगवान आदिनाथ ही हैं, किन्तु इनसे भिन्न परमात्मा कोई भी नहीं; इसलिए तुम इनसे अतिरिक्त दूसरे का उपदेश मत सुनो, इन्हीं भगवान के उपदेश को सुनो।

भावार्थ - मङ्गल काल में जिस समय आपकी दुन्दुभि, आकाश में शब्द करती है, अर्थात् बजती है; उस समय उसके बजने का शब्द निष्फल नहीं है, किन्तु वह इस बात को पुकार-पुकार कर कहती है कि हे भव्य जीवों! यदि तुम परमात्मा का उपदेश सुनना चाहते हो तो भगवान श्री आदिनाथ का दिया हुआ उपदेश सुनो, किन्तु इनसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देव हैं, उनके उपदेश को अंशमात्र भी मत सुनो, क्योंकि यदि परमात्मा हैं तो श्री आदीश्वर भगवान ही हैं, किन्तु इनसे भिन्न लोक में दूसरा परमात्मा नहीं है।

गाथा - २८ पर प्रवचन

एस जिणो परमप्पा णाणोण्णाणं सुणेह मा वयणं।
तुह दुंदुही रसंतो कहइ व तिजयस्स मिलियस्स।।२८।।

उसका संस्कृत है।

एष जिनः परमात्मा, नान्योन्येषां श्रुणुत मा वचनम्।
तव दुन्दुभिः रसन्, कथयति इव त्रिजगतः मिलितस्य।।२८।।

हे नाथ! **आपकी बजती हुई दुन्दुभि (नगाड़ा)**... यहाँ तो एक दुन्दुभि प्रातिहार्य की बात कही है। बाकी समवसरण में... अरे! यहाँ साधारण राजा होता है तो कितना बाजा रखते हैं। हम यहाँ ठहरते हैं, वहाँ बाजा बजता है। खीमचन्दभाई के मकान में। वहाँ है न?

क्या कहते हैं उसे ? कांग्रेस का मकान। ये बड़े-बड़े लोग आनेवाले हैं न। शाम को ऐसा बाजा बजाते हैं। ये तो एक साधारण प्राणी कहलाये, उसके लिये ऐसा बाजा। तीन लोक के नाथ परमात्मदशा (प्राप्त की) और जहाँ समवसरण में धर्मसभा में विराजमान हो, साढ़े बारह करोड़ बाजे की ध्वनि आती है। आहा! किस नाप से नाप करना ? भगवान! वह बात यथार्थ तीन काल-तीन लोक में सिद्ध हो गयी है। समझ में आया ? प्रसिद्ध, प्रसिद्ध, प्रसिद्ध है! साढ़े बारह करोड़ बाजे। उसमें एक दुन्दुभि नाम का नगाड़ा। दुन्दुभि।

हे नाथ! वह दुन्दुभि 'तीनों लोक में यह बात कहती है...' अपना भाव है न, हम भी अल्पज्ञ हैं, हमें परमात्मदशा प्रगट करनी है। हमें भी एकाध भव होनेवाला है। तो प्रभु! हमारा जहाँ अवतार हो, वहाँ आपकी वाणी हमको मिलेगी, ऐसा हम मानते हैं। हम तो जहाँ सर्वज्ञ और तीर्थंकर विराजमान हें, वहीं हमारा जन्म होगा। कहते हैं, उसे बहाने, यह दुन्दुभि ऐसा कहती है, तीन लोक को इकट्ठा कर। पाठ में है, '**तिजयस्स मिलियस्स**'। तीन लोक वहाँ इकट्ठा हो जाता है ? सुन न! हमारी भावना है या नहीं ? तीन लोक के जीव इकट्ठे हो। अरे जीवों सुनो! **यह बात कहती है कि हे जीवो!...** यदि वास्तविक परमात्मा है और **भगवान आदिनाथ ही हैं; इनसे भिन्न...** अल्पज्ञपने जो परमात्मा मनाते हैं, राग रहता है और परमात्मा मनाते हैं, वह परमात्मा नहीं है, ऐसा देवदुन्दुभि बात करता है। दुन्दुभि आवाज में ऐसा लगता है कि दुन्दुभि ऐसा कहता है, हे लोगों (जीवों), भगवान से भिन्न परमात्मा ऐसी निर्दोष दशा के अतिरिक्त होता नहीं। इसलिए तुम इनसे अतिरिक्त **दूसरे का उपदेश मत सुनो,...** दुन्दुभि कहता है, यह सुनो, यहाँ आओ, यहाँ आओ। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया ?

नगाड़ा को देखकर आचार्य... उस समय तो नहीं है, परन्तु है ऐसा अन्तर भान हुआ है न। निःशंक ज्ञानी को सब बात बैठ जाती है। उसमें कहीं शंका नहीं रहती। द्रव्य, गुण, पर्याय साधारण बात और उसका पुण्य फल, सम्यक् श्रद्धा में सब निरतिशय अर्थात् कोई भी शंका बिना अन्दर में बैठ जाती है। कुछ भी शंका रह जाये कि ऐसा है कि ऐसा है ? ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं, हे नाथ! आपकी वाणी सुनने लायक है, ऐसा नगाड़ा कहता है। नगाड़ा जड़ कहता है, ऐसा कहते हैं। सुनने लायक हो तो वीतराग की वाणी। अरागी -अद्वेषी पूर्णानन्द की प्राप्ति, उसके उपदेश में वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी

वीतरागता चारित्र का ही कथन आता है। राग का आता है तो जानने लायक आता है, परन्तु आदरने लायक नहीं। आहाहा! भगवान की वाणी में... क्योंकि उसने अल्पज्ञ का नाश कर सर्वज्ञ लिया, राग का नाश कर वीतराग हुआ। तो उसके उपदेश में सर्वज्ञपद प्राप्त कर और वीतरागदशा प्राप्त कर। राग की उपेक्षा और अल्पज्ञ की उपेक्षा कर और सर्वज्ञस्वभाव और पूर्णानन्द की वीतराग की अपेक्षा कर। ऐसी वीतराग की वाणी आती है।

हे जीवों! नगाड़ा कहता है कि भगवान की वाणी सुनने लायक है। इससे अतिरिक्त राग से धर्म माननेवाला, संयोग से लाभ माननेवाला, वह परमात्मा हो सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह दुन्दुभि ऐसा कहती है कि भगवान के उपदेश को सुनो। परमात्मा आनन्द का कन्द हुए। इच्छा बिना वाणी निकलती है। ढोलक होता है न? ढोलक। क्या कहते हैं? नगाड़ा। बजाते हैं न? उसको इच्छा नहीं है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है, उसको इच्छा नहीं है। परन्तु हाथ डाले तो आवाज निकले, आवाज उठती है। ऐसे भगवान को इच्छा नहीं है वाणी में। इच्छा है? परन्तु पूर्व के पुण्य के कारण से, भव्य जीव के पुण्य का योग का निमित्त। अपने उपादान परमाणु में भाषा आने की योग्यता। आवाज उठती है, इच्छा बिना आवाज उठती है। नगाड़ा पर ऐसा थाप गिरे तो आवाज निकले बिना नहीं रहती। ऐसे जहाँ पुण्य के योग से वाणी—ध्वनि उठती हो, 'ॐकार दिव्यध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की वाणी ॐकार पूरे शरीर में से उठती है। फिर भले उसको निरक्षरी, साक्षरी कोई भी झगड़ा हो। समझ में आया? ऐसी वाणी सुनकर... क्या कहते हैं? आपकी वाणी सुनने लायक है, दूसरे की नहीं। ऐसा कहकर क्या कहा? कि हमको एकाध भव हो और राग बाकी है तो हमें वीतराग की वाणी सुनने मिले, दूसरी वाणी नहीं। हमारा अवतार वहाँ होगा, अन्यत्र अवतार होगा नहीं। ऐसे भक्तिवन्त भगवान की भक्ति करते हुए आत्मा का अलंकार से भी वर्णन करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक - १४-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - २९ से ३०, प्रवचन-७९१

यह पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र है। उसमें भगवान परमात्मा की स्तुति चलती है। आवाज आती है न? आती है? क्या कहते हैं? देखो! २९वाँ श्लोक है, २९। आजकल, अनन्त काल में अनन्त आत्माओं ने आत्मा की पवित्रता की प्राप्ति की और जो आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी दशा आनन्दरूप जिसको हुई—पूर्णानन्द, उसको परमात्मा कहते हैं। अनादि काल से आत्मा अपना शुद्ध अन्दर स्वरूप सच्चिदानन्द आनन्दकन्द है, उसको भूलकर अनादि से चौरासी लाख की योनि में अपने स्वरूप का अनजान होकर भूलता है, उसका जिसको भान हुआ (कि) मैं ज्ञानसूर्य और आनन्द हूँ। मेरे स्वभाव में तो चैतन्य और अतीन्द्रिय-अणीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। ऐसा जिसको अन्तर में अनादि से अज्ञान का नाश कर, अपने स्वरूप का भान हुआ, ऐसा भान होने के बाद स्वरूप में विशेष स्थिरता करते-करते, जब एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक को जानने का आत्मा में ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी इस दशा को परमात्मा कहने में आता है। ऐसे परमात्मा अनन्त काल में अनन्त हुए। अपनी पवित्र दशा को प्राप्त कर।

कहते हैं कि उसमें इस चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर हुए—ऋषभदेव प्रभु। जिनको पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द और पूर्ण श्रद्धा अर्थात् परम पवित्रता, पूर्ण दृष्टा, पूर्ण वीर्य की शक्ति की प्रकाश शक्ति थी। उनकी स्तुति यहाँ आचार्य महाराज करते हैं। स्तुति करनेवाला कैसा होता है, यह बात बहुत चली है। अपना स्वरूप जिसको शुद्ध आनन्द है, उसकी जिसको अन्तर रुचि हुई है। समझ में आया? अपना स्वरूप सच्चिदानन्द अन्दर है। सत् अर्थात् शाश्वत और ज्ञान एवं आनन्द जिसका नित्य असली स्वभाव है। ऐसा जिसको अनुभव में, पुण्य-पाप के राग से रुचि छोड़कर अपना शुद्ध आनन्द का स्वसंवेदन हुआ, ज्ञान से ज्ञान का वेदन अर्थात् ज्ञान से ज्ञान का अनुभव हुआ, उसका नाम आत्मा का सम्यग्दर्शन अथवा आत्मा का साक्षात्कार कहते हैं। यह बात जब आत्मा में हुई तब, जिस आत्मा में परमात्मदशा पूर्ण कैवल्यदशा जिसको प्रगट है, उसकी वह स्तुति करते हैं। समझ में आया?

यहाँ बात तो बहुत चली है, प्रारम्भ से सब बात नहीं कहने में आती है। देह से भिन्न

आत्मा है, यह बात पहले कही थी। इस देह से आत्मा का स्वरूप चैतन्य भिन्न है। भिन्न नहीं हो तो आत्मा और देह एक हो तो जैसे देह दिखने में आता है, वैसे आत्मा दिखाई देना चाहिए। और आत्मा एवं देह एक हो तो आत्मा तो चैतन्यमूर्ति सत् अविनाशी है, ऐसे देह और आत्मा एक हो तो देह भी अविनाशी होना चाहिए। देह तो नाशवान है और उसका जाननेवाला सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द को धरनेवाला आत्मा अनादि अविनाशी है। ऐसा जिसको अन्तर में भान हुआ और फिर परमात्मदशा (प्रगट हुई), एक समय में तीन काल-तीन लोक का जानना हुआ, ऐसे भगवान को परमात्मा कहते हैं। ऐसे परमात्मा में ऋषभदेव भगवान की यहाँ स्तुति चलती है।

ऋषभदेव भगवान को आत्मा में जब पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो उन्हें पूर्व पुण्य के कारण उनके शरीर में भी भामण्डल होता है। वह बात चलती है। सब बात अभी लॉजिक से अभी सिद्ध करने जाये तो समय ज्यादा चला जाये। वह बात ऐसी है कि जब आत्मा प्रकाशमय जो चैतन्यसूर्य विकास (रूप) है, ऐसी शक्ति का विकास हुआ तो पूर्व पुण्य के कारण शरीर में भी भामण्डल होता है। भा अर्थात् प्रकाश। आसपास प्रकाश का एक पुंज का घेरा होता है। ऐसी स्थिति को लक्ष्य में लेकर आचार्यदेव भगवान परमात्मा की स्तुति करते हैं। कहते हैं, देखो! २९वाँ श्लोक है, भाई!

गाथा २९

रविणो संतावयरं ससिणो उण जड्डुयाअरं देव।
संतावजडत्तहरं तुम्हच्चिय पहु पहावलयं।।२९।।

अर्थ - हे जिनेश्वर! हे प्रभो! सूर्य का प्रभा समूह तो मनुष्यों को सन्ताप का करनेवाला है तथा चन्द्रमा का प्रभा समूह, जड़ता का करनेवाला है, किन्तु हे पूज्यवर! आपका प्रभा समूह तो सन्ताप व जड़ता, दोनों को नाश करनेवाला है।

भावार्थ - यद्यपि संसार में बहुत से तेजस्वी पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु हे पूज्यवर! हे प्रभो! आपके सामने कोई भी तेजस्वी पदार्थ उत्तम नहीं है क्योंकि हम यदि सूर्य को उत्तम तेजस्वी पदार्थ कहें, तो हम कह नहीं सकते क्योंकि उसकी प्रभा का

समूह मनुष्यों को अत्यन्त सन्ताप का करनेवाला है। यदि चन्द्रमा को हम उत्तम तथा तेजस्वी पदार्थ कहें तो यह भी बात नहीं बन सकती, क्योंकि चन्द्रमा की प्रभा का समूह जड़ता का करनेवाला है, किन्तु हे जिनवर! आपकी प्रभा का समूह तो सन्ताप और जड़ता दोनों का सर्वथा नाश करनेवाला है, इसलिए आपकी प्रभा का समूह ही उत्तम तथा सुखदायक है।

गाथा - २९ पर प्रवचन

रविणो संतावयरं ससिणो उण जड्डुयाअरं देव।
संतावजडत्तहरं तुम्हच्चिय पहु पहावलयं।।२९।।

हे परमात्मा! एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में जिसको तीन काल-तीन लोक जानने में आये और एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में जिसको आत्मा का पूर्णानन्द अन्दर में से प्राप्त हो गया, ऐसे परमात्मा का अन्तर स्वभाव तो अलौकिक है। परन्तु जिसके शरीर में भा -प्रकाश का चक्र उठता है, उसको लक्ष्य कर आचार्य महाराज परमात्मा की स्तुति करते हैं।

हे जिनेश्वर प्रभो! सूर्य का प्रभासमूह तो मनुष्यों को सन्ताप करनेवाला है... सूर्य की प्रभा मनुष्य को आताप देती है, सन्ताप देनेवाली है। उसके किरण में उष्णता है तो उस प्रभा का समूह आपकी प्रभा के साथ मिलती नहीं। **तथा चन्द्रमा का प्रभासमूह, जड़ता करनेवाला है;...** आपको क्या उपमा दूँ, प्रभु? चन्द्र की और सूर्य की। चन्द्र की प्रभा रात्रि को निन्द्रा लाने में निमित्त है और चन्द्र की प्रभा रात्रि को विषय वासना प्रगट करने में, जड़ता करने में निमित्त है। तो उस प्रभा की अपेक्षा हे नाथ! पूर्ण स्वरूप आपका अन्दर जलहल ज्योति चैतन्य सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ, उसके साथ शरीर में प्रभा हुई, वह प्रभा तो आत्मा को जड़ता और आताप दोनों का नाश करनेवाली है।

हे पूज्यवर! आपका प्रभु समूह, सन्ताप व जड़ता, दोनों का ही नाश करनेवाला है। ओहो! आत्मा ऐसा शक्तिवान है कि जिसको प्रगट दशा हुई तो शरीर में ऐसी प्रभा हो जाती है कि मनुष्य दूसरा प्राणी उस प्रभा में नजर करे तो अपने सात भव देखता है। सब अस्तित्व सिद्ध करने (जाये तो समय लग जाये)। यहाँ तो बात चलती है

उतनी थोड़ी कहते हैं। कभी सुना नहीं है कि आत्मा का माहात्म्य क्या है और निज माहात्म्य के आगे पूर्व पुण्य के अतिशय से क्या-क्या उसमें सामग्री-संयोग आदि होते हैं, उन सबको लक्ष्य में लेकर भगवान परमात्मा की भक्त-सम्यग्दृष्टि आत्मा का भानवाला स्तुति करते हैं कि हे नाथ! आपकी केवलज्ञान की प्रभा तो ऐसी है कि जिसको उसका ख्याल आये, उसकी अज्ञानता नाश हो और जड़ता का नाश हो और क्लेश का भी नाश होता है। समझ में आता है ?

चैतन्य भगवान एक समय में पूर्णानन्द, ऐसी जिसको प्राप्ति हुई, ऐसे जिसको दूसरे जीव ने लक्ष्य में लिया कि मेरा आत्मा भी ऐसा अनन्त आनन्द प्रगट करने लायक है और पूर्ण ज्ञान प्रगट करने लायक है। ऐसे परमात्मा की जिसको प्रतीति हुई, उसको अन्दर में राग-द्वेष क्लेश का नाश होता है और अज्ञानरूपी जड़ता का भी नाश होता है। लक्ष्मीवाले की लक्ष्मी का प्रेमी स्तुति करता है, महिमा करता है, प्रशंसा करता है। क्योंकि उसका पैसे पर प्रेम है तो पैसेवाले की स्तुति और प्रशंसा करते हैं। वैसे जिसको आत्मा आनन्द और ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसका प्रेम है, वह जीव पूर्ण ज्ञान और आनन्द को प्राप्त हुआ, ऐसे परमात्मा के गुण का प्रेम है तो भक्ति और स्तुति करता है।

ऐसी स्तुति में शरीर का, प्रभु! आपके शरीर की प्रभा भी ऐसी है कि जगत के प्राणी को आताप और जड़ता का नाश करनेवाली आपकी प्रभा है। अन्दर का केवलज्ञान सूर्य, एक सेकेण्ड के असंख्यवे भाग में आत्मा में केवलज्ञान एक समय में पूर्ण प्रगट होता है। सवेरे दृष्टान्त दिया था। पीपर के दाने का दृष्टान्त दिया था। पीपर का छोटा दाना होता है, उसमें चौसठ पहरी चरपरा रस पड़ा है। तो घोंटने से चौसठ पहरी तिखास-चरपराई प्रगट होती है। उसमें है तो प्रगट होता है। जिसको चौसठ पहरी तिखास-चरपराई कहते हैं। ऐसे आत्मा में चौसठ अर्थात् पूर्ण और पूरा-पूरा अन्तर में ध्रुव स्वभाव सच्चिदानन्द-सत् अर्थात् शाश्वत, ज्ञान और आनन्द उसका त्रिकाली असली स्वभाव, उसमें पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द पड़ा है। भगवान जाने कहाँ पड़ा है। समझ में आया ?

कहते हैं, हे परमात्मा! आपका केवलज्ञान जो प्रगट किया और आपने अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट किया, उसका लक्ष्य करनेवाला, उसका प्रेम करनेवाला, उसको चन्द्र और सूर्य की प्रभा की कीमत है नहीं। चन्द्र की प्रभा जड़ता करती है, सूर्य की प्रभा आताप

करती है। परन्तु आपका केवलज्ञान और केवलदर्शन पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, उसका भक्त उसके आत्मा का लक्ष्य करनेवाला उसको अज्ञान का नाश होता है और जड़ता एवं क्लेश का भी नाश होता है। ऐसा २९वें कलश में वह कहा।

अब ३०वें कलश में थोड़ी दिव्यध्वनि की बात करते हैं। क्या दिव्यध्वनि? भगवान को जब केवलज्ञान (प्रगट होता है), जैसे पीपर की चौंठस पहरी चरपराहट प्रगट होती है, ऐसे आत्मा में पूर्ण ज्ञान और पूर्णानन्द शक्ति में से प्रगट होता है, तब उसको दिव्यध्वनि छूटती है। इच्छा बिना ध्वनि निकलती है। उस ध्वनि का लक्ष्य करके आचार्य महाराज भगवान की भक्ति और स्तुति करते हैं।

गाथा ३०

मंदरमहिज्जमाणांबुरासिणिग्घोससण्णिहो तुज्झ।
वाणी सुहा ण अण्णा संसारविसस्सणासयरी।।३०।।

अर्थ - हे भगवन! हे जिनेश्वर! मन्दराचल से मंथन किये गये समुद्र के निर्घोष (बड़ा भारी शब्द) के समान आपकी वाणी शुभ है, किन्तु अन्य वाणी शुभ नहीं तथा आपकी वाणी ही संसाररूपी विष का नाश करनेवाली है, किन्तु अन्य दूसरी वाणी संसाररूपी विष का नाश करनेवाली नहीं है।

भावार्थ - हे भगवन्! यद्यपि संसार में बहुत से बुद्ध प्रभृति देव मौजूद हैं और उनकी वाणी भी मौजूद है, किन्तु हे प्रभो! जैसी आपकी वाणी (दिव्यध्वनि) शुभ तथा उत्तम है, वैसी बुद्ध आदि की वाणी नहीं है क्योंकि आपकी वाणी, अनेकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन करनेवाली है और उनकी वाणी, एकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन करनेवाली है। वस्तु अनेकान्तात्मक ही है, एकान्तात्मक नहीं। आपकी वाणी समस्त संसाररूपी विष को नाश करनेवाली है, किन्तु बुद्ध आदि की वाणी, संसाररूपी विष को नाश करनेवाली नहीं, बल्कि संसाररूपी विष को उत्कृष्ट करनेवाली ही है। आपकी वाणी मन्दराचल से जिस समय समुद्र का मन्थन हुआ था और जैसा उस समय शब्द हुआ था, उसी शब्द के समान उन्नत तथा गम्भीर है।

गाथा - ३० पर प्रवचन

मंदरमहिज्जमाणांबुरासिणिग्घोससण्णिहो तुज्झ।
वाणी सुहा ण अण्णा संसारविसस्सणासयरी।।३०।।

हे भगवान! हे जिनेश! मन्दराचल से मंथन किये गये... समुद्र में जैसे मेरुपर्वत से मन्थन किया ऐसा कहने में आता है? उस समुद्र को **निर्घोष (बड़े भारी शब्द)...**होता है। समुद्र में मेरुपर्वत का मन्थन करने से समुद्र में बड़ी भारी आवाज होती है। ऐसे हे नाथ! आपकी केवलज्ञान और परमानन्ददशा प्रगट हुई, त्रिकाल सर्वज्ञदशा प्रगट हुई, उसमें वाणी निकली, ऐसी ध्वनि उठी-दिव्यध्वनि की आवाज निकली। बारह सभा के बीच में। 'ॐकार धुनि सुणी अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की वाणी में ॐ ऐसी आवाज निकलती है। पूरे शरीर में से। अपने जैसी भाषा निकलती है, वैसी भाषा नहीं। क्योंकि यहाँ तो राग है तो कषाय के भेद से निकलती है। जिसको राग रहित आत्मा की पूर्णानन्ददशा प्रगट है, उसकी वाणी घोघमार ॐकार की ध्वनि छूटती है।

ऐसी वाणी को लक्ष्य करके कहते हैं, प्रभु! आपकी ऐसी वाणी को घोघ निकलती है कि जो प्राणी उस वाणी में कहे भाव को समझ में लाता है, उसका अज्ञान और राग-द्वेष जहर मिट जाता है। समझ में आता है? यह तो अभी भक्ति का विषय है, तत्त्वज्ञान का विषय सवेरे चलता है। अभी तो भक्ति का विषय है। भक्ति....

आनन्दघनजी एक बार कहते हैं, भाई!

गगनमण्डल में गौआ विआणी, वसुधा दूध जमाया
माखण था सो विरला रे पाया सन्तो, छाशे जगत भरमाया
अवधु क्या माँगु रे गुण हिना,
गगनमण्डल में गौआ विआणी, वसुधा दूध जमाया
माखण था सो विरला रे पाया सन्तो, छाशे जगत भरमाया
अवधु क्या मागु रे गुण हिना...

क्या कहते हैं? 'गगनमण्डल में गौआ विआणी'। आत्मा का स्वभाव का जहाँ पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, उसमें वाणी निकली, वाणी। वाणी को गौ कहते हैं न? गौ। वाणी

निकली, भगवान की वाणी। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? इस देह से भिन्न चैतन्यरत्न है, देह का परमाणु मिट्टी का पिण्ड है, उससे चैतन्यरत्न अन्तर ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। ऐसा भण्डार जिसको अन्तर में अनुभव करके खुल गया, उसकी वाणी ऐसी आयी कि 'गगनमण्डल में गौआ विआणी'। इच्छा बिना वाणी की ध्वनि छूटी। वसुधा दूध जमाया। पात्र जीव को हृदय में वह वाणी आयी। उस वाणी में से क्या निकाला? 'माखण था सो विरला पाया'। क्या कहते हैं? भगवान वाणी में ऐसा आया कि पुण्य और पाप का विकल्प अर्थात् राग है, उससे तेरी चीज़ आनन्दकन्द भिन्न है। आनन्द का मक्खन तेरी चीज़ है। ऐसा वाणी में से निकालकर आनन्द का जिसको अनुभव (होता है), पुण्य और पाप के राग के विकल्प के पीछे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है, उसका अन्दर में अनुभव किया तो गगनमण्डल में गौआ विआणी- भगवान की वाणी निकली।

'वसुधा दूध जमाया'। पात्र था, उसमें वाणी गिरी। परन्तु 'माखण था सो विरला पाया'। विरल प्राणी, पुण्य-पाप के विकार से रहित मेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द का रस है, ऐसा अनुभव किया, उसका नाम मक्खन है। और जगत को, 'छाशे जगत भरमाया'। दुनिया पुण्य और पाप की राग की क्रिया में भ्रमि हो गया। परन्तु आत्मा राग से रहित भगवान है, ऐसी आपकी जो वाणी निकली थी, उस वाणी में ऐसा सार आया, वह सार कोई विरला समझा। अज्ञानी को उस सार में पता लगा नहीं।

'गगनमण्डल में अघ बीच कूआ।' भगवान आत्मा अन्तर में अमृत का कुँआ- सरोवर है। कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, दाल-चावल बिना चले नहीं, भोग बिना चले नहीं। अरे! भगवान! सुन तो सही, तेरी दशा में ऐसी पामरता है, तेरे स्वभाव में पामरता नहीं है। अन्तर स्वभाव सच्चिदानन्द ध्रुव आनन्दकन्द ज्ञान से भरा है, ऐसे आत्मा में से पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो भक्त कहते हैं कि हे नाथ! आपकी वाणी जब निकली तो उस वाणी में आत्मा का अमृत क्या है, वह आपने बताया। पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, मन तो भिन्न है, मिट्टी, परन्तु पुण्य और पाप का विकल्प जो वासना उठती है, वह भी विकृत और विकल्प और दुःख है। उसके पीछे अन्दर में आनन्दकन्द भगवान

पड़ा है, उसको हे नाथ! आपने वाणी में बताया। उस वाणी में बताया, उसे विरल जीव ने पाया। जगत में विरल कोई प्राणी आत्मा का बोध वाणी में कहने में आया था, ऐसा वाणी का बोध आनन्द, स्वसंवेदन विकार से रहित, शरीर से रहित अनन्त आनन्द का कन्द मैं हूँ, ऐसा स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान आपकी वाणी में कहा था, वह जिसने पाया, वह तो कोई पाता है। बाकी 'छाशे जगत भरमाया'। पूरा जगत पाप और पुण्य का परिणाम करके हम कुछ ठीक करते हैं, हम कुछ हित के पन्थ पर हैं, ऐसा अज्ञानी मान लेते हैं। उसको हे नाथ! आपका स्वभाव और आपने कही वाणी का सार उसके ख्याल में और प्रतीति में आया नहीं। वाणी थोड़ी सूक्ष्म है, राजकुमारजी! वाणी सूक्ष्म है, हों! दुनिया से भिन्न है।

'गगनमण्डल में अघ बीच कूआ।' शरीर भिन्न, यहाँ चैतन्यमूर्ति अघ बीच कुँआ है। 'वहाँ है अमी का वासा।' वहाँ अमृतानन्द प्रभु अन्दर स्वभाव में पड़ा है। 'सुगुरा होवे सो भर-भर पीए संतो, नुगुरा जाये प्यासा।' 'सुगुरा होवे सो भर-भर पीवे।' भगवान आत्मा शरीर, वाणी, मन के पीछे और पुण्य-पाप के राग के विकल्प के तृण के पीछे आनन्दकन्द है, ऐसा भगवान ने वाणी में दिखाया, वह अमृत कुँआ है। वाणी में अमृत कुँऐं की बात की है। परन्तु वह बात 'सुगुरा होवे सो भर-भर पीऐ।' जिसको गुरुगम मिले और आत्मा की पात्रता हो तो विकार से रहित मेरी चीज़ है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करके आत्मा का स्वसंवेदन में अमृत का अनुभव ज्ञानी करते हैं। हे नाथ! यह आपकी वाणी का सार है। समझ में आया?

वह कहते हैं, देखो! '**वाणी सुहा**'। प्रभु! आपकी वाणी विकार को छेदकर, निर्विकारी भगवान आत्मा है, ऐसा आपने बताया और अनन्त गुण का खजाना खोल दिया। हमको ख्याल में आया, प्रभु! हम भी आप जैसे होने के लायक हैं। हम भी आप जैसे होने के लायक हैं। ऐसे अपने आनन्द की प्रतीति और अनुभव हुआ, उसे कहते हैं कि आपकी वाणी के घोघ का सार यह था। समझ में आया? और जिसको वाणी का सार समझ में नहीं आया, वह 'छाशे जगत भरमाया'। पापक्रिया में सुख मानते हैं, ज्यादा से ज्यादा दया, दान परिणाम शुभभाव है, उसमें आनन्द और सुख मानते हैं। आत्मा का सार वाणी में आया, उस सार को, हे नाथ! वह समझ सके नहीं। अनन्त काल हुआ उसको, परन्तु आत्मा विकार से भिन्न है, ऐसा पता लगा नहीं तो आपकी वाणी का सार भी वह समझा नहीं। ऐसी, ३०वें श्लोक में आचार्य भक्ति करते हैं।

पद्मनन्दि आचार्य महामुनि दिगम्बर ९०० वर्ष पहले हुए। जंगल में रहते थे। इस शास्त्र का नाम वनशास्त्र है। पद्मनन्दि (पंचविंति)। श्रीमद् राजचन्द्र इसको वनशास्त्र कहते हैं। वनवशास्त्र। वन में लिखा था। आत्मा के आनन्द में, अनुभव में कलम में डुबो-डुबोकर लिखा है। बोली को आपकी हिन्दी में क्या कहते हैं? अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द है। लेकिन अतीन्द्रिय आनन्द कहाँ—से लाना? अकेले संकल्प-विकल्प, संकल्प-विकल्प विकार की खान दिखती है उसको तो। जैसे पूनी होती है, पूनी, एक पूनी जहाँ छूटे वहाँ दूसरी पूनी, ऐसे पूनी की पूनी जुड़ती जाती है, वैसे अनादि काल से विकार की सन्धि एक के बाद एक चली आती है। परन्तु विकार के पीछे भगवान आत्मा,... विकार यह बताता है कि त्रिकाल स्वभाव से विरुद्ध दशा है। उस विरुद्ध के पीछे अनादि-अनन्त आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु है, उसका पता अज्ञानी को मिलता नहीं। क्योंकि अज्ञानी को उसका भरोसा आता नहीं। मैं ऐसा? मेरे में ऐसा? उसे दृष्टि में पता नहीं लगता।

कहते हैं कि हे नाथ! संसार विष नाश करी। उसमें शब्द है न? भाई! संसार के विष का नाश करनेवाली। यह शब्द पड़ा है। आचार्य महाराज, ऋषभदेव भगवान की—पूर्णानन्द प्राप्त असंख्य वर्ष पहले हुए, उन्हें वर्तमान में याद करके कहते हैं, हे नाथ! आपकी निर्विष परमात्मदशा प्रगट हुई और विकार का नाश करके आपको निर्विष अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, उसमें जो वाणी निकली, वह वाणी संसारविष नाश करनेवाली है। आहाहा! क्या कहते हैं? इसमें कहीं पता नहीं लगता।

'तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहीं।' अखा भगत कहता है। 'तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहीं, तरणा ओथे...' ओथे समझ में आता है? ओथे, हमारी काठियावाड़ी गुजराती भाषा है। पुण्य-पाप का विकल्प-भाव होता है, वह तृण समान है। तृण के पीछे आनन्दकन्द भगवान अनादि-अनन्त आत्मा विराजमान है। परन्तु जिसको पुण्य-पाप तृण का प्रेम है, उसकी आड़ में भगवान अन्दर आनन्दकन्द है, उसका पता, लक्ष्य और दृष्टि उसे होती नहीं। 'तरणा ओथे डुंगर, डुंगर कोई देखे नहीं।' कहो, समझ में आया?

यहाँ वह कहते हैं कि हे नाथ! आपको जब मोक्ष अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, तब जो वाणी अरिहन्त पद में से निकली, नाथ! वह विष का करनेवाली वाणी है। विष अर्थात्

संसार शब्द पड़ा है, भाई? '**संसारविसस्स**' नाश करके। सूक्ष्म बात है, प्रभु! संसार किसको कहना? आत्मा पूर्ण आनन्द त्रिकाल स्वभाव है, उसमें संसरण इति संसारः। उसमें से हटकर पुण्य-पाप के विकार जितना मैं हूँ, ऐसी मान्यता, राग-द्वेष वह संसार है। यह संसार जहर है। संसार आत्मा की दशा से बाहर नहीं रहता। आत्मा का स्वभाव भी त्रिकाल रहता है और उसकी भूल भी उसकी दशा में रहती है। संसरण इति संसारः। त्रिकाल आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा को भूलकर अन्तर में राग और द्वेषभाव होता है, उसको अपना मानकर मिथ्यादृष्टिपने विकारी मैं हूँ, निर्विकारी चिदानन्द त्रिकाल है, उसकी प्रतीति नहीं है, उस मिथ्यात्वभाव को विष अर्थात् जहर कहने में आता है। आहाहा!

हे नाथ! आपकी वाणी संसार विष का नाश करनेवाली है। आपकी वाणी में निकलता है कि आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का सरोवर विकारी भाव के पीछे पड़ा है। विकार भाव की रुचि छोड़, भगवान आत्मा अनन्त महिमावन्त परमात्मस्वभाव अन्दर पड़ा है, उसकी रुचि कर, ऐसा आपकी वाणी में कहने में आया है। अज्ञानी की वाणी ऐसी नहीं है। अज्ञानी की वाणी विकार करो, विकार रखो, विकार से लाभ होगा, ऐसी वाणी है, वह भगवान की वाणी नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी, वीतराग और निर्दोषता प्राप्त कराये, उसे वाणी कहते हैं।

उस वाणी में ऐसा आया कि जहर का नाश कर, प्रभु! तुम प्रभु हो। भगवान हो। आत्मा अन्तर आनन्द अनन्त-अनन्त गुण का सरोवर स्वभाव है। उसकी दृष्टि करके पुण्य-पाप का विकार की प्रीति, रुचि की जहर छोड़ दे। नहीं तो आत्मा के अमृत आनन्द का अनुभव होगा नहीं। और आत्मा के अमृत का अनुभव हुए बिना तेरे जन्म-मरण का नाश कभी होगा नहीं। जन्म-मरण का बीज मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेष, अल्पज्ञता को अपना पूर्णपना मानना, वही मिथ्या भ्रान्ति-भ्रम है। वीतराग की वाणी में आया कि विकार की रुचि छोड़। त्रिकाल आनन्दकन्द चिदानन्द अन्दर में पड़ा है, उसकी दृष्टि कर। ऐसी दृष्टि (करने की बात) आपकी वाणी में आयी, वह वाणी जहर का नाश करनेवाली है। नास्ति से बात की। दूसरी भाषा से कहें तो अमृत को उत्पन्न करनेवाली है। समझ में आया? अगम्य निगम की बात! अगम्य निगम क्या चीज़ है, क्या मार्ग है, क्या

मैं हूँ, उसका उसे पता नहीं। और परमात्मा क्या है एवं परमात्मा की पूर्ण दशा क्या है, उनके पुण्य का प्रभाव कितना है, उसका उसे पता लगता नहीं।

यहाँ आचार्य महाराज भगवान को लक्ष्य कर भक्ति करते हैं। ज्ञानी को भी भक्ति का भाव आता है। भक्ति, पूजा, दान, दया ऐसे शुभभाव ज्ञानियों को भी आये बिना नहीं रहते। आते हैं जरूर, परन्तु मानते हैं कि इस राग के पीछे मेरी चीज़ आनन्द है, वही मेरा स्वभाव है। उसमें मैं एकाग्र होऊँ, उतनी मुझे शान्ति और धर्म होगा। जितना राग आया है, उतना मुझे बन्ध का कारण है। आत्मा है जरूर, आता है, आता है तो यह भक्ति करते हैं। समझ में आया? आया तो भक्ति करते हैं। आपकी वाणी....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्यदेव भक्ति करते हैं। मुनि हैं, ९०० वर्ष पहले आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले मुनि हैं। पद्मनन्दि आचार्य। वे फरमाते हैं कि हे नाथ! आपकी वाणी में आत्मा के आनन्द का वाच्य, वाणी वाचक है, जैसे शक्कर (शब्द) वाचक है, शक्कर शब्द वाचक है, शक्कर वाच्य को बताता है। (समय) हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल-४, शुक्रवार, दिनांक - १५-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ३० से ३३, प्रवचन-७९२

पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। जिसके कर्ता लगभग ९०० वर्ष पहले पद्मनन्दि आचार्य महासन्त महन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले थे। उसके आनन्द में अपना स्वरूप शुद्ध आनन्द तो प्रगट हुआ था, परन्तु पूर्ण शुद्ध प्रगट नहीं था। तो पूर्ण शुद्ध आनन्द जिनको प्रगट हुआ है, ऐसा परमात्मा की भक्तिरूप, स्तुतिरूप विकल्प आया है तो भक्ति करते हैं।

सन्त मुनि भी भगवान की भक्ति करते हैं। गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि आदि (को) परमात्मा की पूजा, भक्ति, स्तवन, स्तोत्र तो होना चाहिए। उसको ऐसा भाव आता है। वह भाव को समझते हैं कि अपने स्वभाव सन्मुख से (हटकर) जितना पर सन्मुख में राग आया, उतना शुभ आस्रव और पुण्यबन्ध का कारण है। फिर भी वह भाव धर्मात्मा को समकिती को, गृहस्थों को और मुनिराज छठे गुणस्थान में आनन्द में झूलते हो तो भी उसको योग्यता अनुसार भक्ति, ऐसे वचन, स्तुति, स्तवन हुए बिना रहते नहीं। देखो! यहाँ अपने ३० गाथा चली है। ३०वीं गाथा में क्या कहा?

भगवान ऋषभदेव को लक्ष्य करके कहते हैं। भगवान ऋषभदेव पूर्ण प्राप्त तो इस भव में हुए। आनन्द और सर्वज्ञपद। वे पहले सर्वार्थसिद्धि में थे, वहाँ से आकर मुनि हुए और मुनि होकर जब केवलज्ञान पाया, उस समय वाणी निकली। उस वाणी को लक्ष्यकर आचार्य महाराज स्तुति करते हैं।

हे भगवान! आपकी दिव्यध्वनि कैसी है? संसार विष का नाश करनेवाली है। कल आखिर में यह शब्द आया था। संसार विष नाश करनेवाली। क्या कहते हैं? भगवान पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ निर्दोषदशा को प्राप्त हुए, तो उनकी वाणी निर्दोषदशा श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र को प्राप्त हो और सदोषता का नाश और अभाव हो, ऐसी वाणी, सर्वज्ञ भगवान की वाणी में ऐसा उपदेश आता है। समझ में आया? वीतराग का लक्षण और वीतराग की वाणी का लक्षण समझना चाहिए।

भगवान आत्मा जब परमात्मा होता है, निर्विकल्प पूर्ण समाधि शान्ति। उसकी

वाणी में निर्विकल्प दृष्टि आत्मा की, राग से-विकल्प से भिन्न, ऐसी दृष्टि का विषय भगवान की वाणी में बताते हैं। और स्वसंवेदनज्ञान। राग से भिन्न अपना आत्मा आनन्दकन्द का ज्ञान से ज्ञान का वेदना, अनुभवना, उसका नाम स्वसंवेदनज्ञान, वह भगवान की वाणी में आता है। और भगवान की वाणी में स्वरूप की रचना, अन्दर स्थिर होना, आनन्द की रचना वीर्य द्वारा होनी, शान्ति की अर्थात् चारित्र की रचना होना। शान्ति और आनन्द को अलग करते हैं उसका कारण, चारित्र वह शान्ति है, उसके साथ आनन्द है, वह सुख की आह्लाद दशा है। शान्ति और आनन्द की जो वीर्य रचना आत्मा की होती है, उसका नाम चारित्र है। वह चारित्र वीतरागी दशा है, ऐसा वीतराग की वाणी में आता है।

परन्तु वीतराग की वाणी में वह भी आता है कि जब पूर्ण ज्ञान, आनन्द और चारित्र पूर्ण नहीं हो, तो धर्मी को भी बारह व्रत का विकल्प पंचम गुणस्थान में होता है, मुनि के योग्य पंच महाव्रत आदि का राग आता है और भूमिका के योग्य भगवान की भक्ति का भी भाव आता है। समझ में आया ? स्वयंभू स्तोत्र में तो समन्तभद्राचार्य ने तो स्तोत्र में नदी की बाढ़ की भाँति बहाया है। नहीं तो वे महान मुनि थे। समर्थ आत्मज्ञानी आनन्द में झूलनेवाले, परन्तु परमात्मा की स्तुति करते हैं।

यहाँ कहा, हे नाथ! देखो! स्तुति करनेवाला जिसकी स्तुति करता है, उसकी दशा का उसको ज्ञान और भान है। ज्ञान और भानवाला स्तुति करता है, वह वास्तविक स्तुति है। अहो! भगवान! आपका पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का विकास आपको हुआ। तो उस समय आपकी इच्छा बिना वाणी निकली। वह वाणी संसार का जहर-नाश करनेवाली है। उस शब्द में क्या आया ? मिथ्यात्व संसार है और राग-द्वेष भी संसार है। संसार कोई दूसरी चीज़ नहीं है। अपनी पर्याय में सदोषता का भाव संसार है। संसार अपने आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं रहता।

कहते हैं कि विकारी मिथ्यात्वभाव, उसका नाश करने की बात आपकी वाणी में आती है। अपना अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान, उसका तुम आश्रय करो और आश्रय करने से तुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी और मिथ्यात्व का नाश होगा। ऐसा भगवान की वाणी में आता है। उस वाणी को यहाँ कहते हैं, संसारविष का नाश करनेवाली है।

शुभ-अशुभभाव दोनों को यहाँ जहर कहा है। लोगों को कठिन लगे। विष्टा कहते हैं तो भी कठिन लगता है। समझ में आया? यहाँ तो जहर कहा है। और वह भी... अभी सन्मति सन्देश में आया है न? सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती और इन्द्र की सम्पदा को काग की विष्टा मानते हैं। अभी आया है। पण्डितजी ने सन्मति सन्देश में लिखा है। दो-तीन जगह लिखा है। समझ में आया?

अहो! अपना स्वरूप अमृत अनाकुल आनन्द, उसके समक्ष जो पुण्यभाव होता है, वह हो, पाप से बचने को ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। नहीं तो उस समय आनेवाला है तो उसी समय शुभराग आयेगा। शास्त्रकार तो उसे परमार्थ से जहर कहते हैं। परन्तु पूर्णानन्द की प्राप्ति नहीं हुई है तो राग आता है, तो व्यवहार से अमृत स्वभाव आनन्द का अनुभव, उसमें जो राग आया तो व्यवहार से उसको अमृत भी कह दिया। व्यवहार से अमृत, निश्चय से जहर। बड़ी कठिन वाणी, भाई! व्यवहार से अमृत का अर्थ कि वह अमृत नहीं है, परन्तु अपने निराकुल आनन्द के साधन में राग की मन्दता का व्यवहार से अनुकूल निमित्त गिनने में आया, उस कारण से आनन्द में निमित्त पड़ा तो उसे व्यवहार से अमृत कहने में आया। निश्चय में तो वह राग अमृत नहीं है। है नहीं, उसको कहना, उसका नाम व्यवहार है। और है, उसको जानना, उसका नाम निश्चय है। बड़ी कठिन बात। समझ में आया? आचार्य भगवन्त को, समकिती को भगवान के पास स्तुति करते-करते बहुत स्तुति करते हैं।

एक बार तो... वह स्तुति आयी न? भाई! वादिराज... वादिराज। वादिराज मुनि हुए न? भक्तामर स्तोत्र, मानतुंग आचार्य करते हैं। वह भी ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हैं। अपने आनन्द में एकाकार है और जब ताले में डाल दिया... निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सहज ऐसा हो जाता है। स्तुति की तो हुआ, वह तो व्यवहार का कथन है। जब ४८ ताले में डाल दिया तो स्तुति करते... करते... करते... ऐसा आया। '**भक्तामरप्रणतमौलिमणि-प्रभाणा**' नाथ! हम यहाँ आपकी स्तुति करते हैं। अबन्ध परिणामी भगवान का हम भजन करते हैं। हमारा अबन्ध भाव है, उसकी दृष्टि हमारे ज्ञान में हुई है। आपकी पूर्ण अबन्धदशा हुई है, ऐसी स्तुति करते हैं और ऐसा बन्धन रहे, ऐसा नहीं रह सकेगा। समझ में आया? भक्तों की भक्ति में शुभराग में ऐसा आरोपित कथन आता है। ऐसा करते... करते... करते...

पूर्व पुण्य का योग, पाप पलटकर पुण्य हुआ और पुण्य के कारण फट... फट (बेड़ियाँ टूट गयीं)। पुण्य तो निमित्त है, हों! वह क्रिया होने की थी, हुई तो ऐसा कहने में आया कि भक्तामर स्तोत्र से टूट गयी, ऐसा कहने में आता है। गोदिकाजी! समझ में आया?

वादिराज कहते हैं, स्तुति करते हैं। उन्हें कोढ़ था, कोढ़। शरीर में कोढ़ था। एक श्रावक मुनि के दर्शन करने जाते थे। परन्तु वह श्रावक ज्ञानी थे, मुनि महामहन्त थे। राजा को किसी ने ऐसी चुगली की कि ये तो कोढिया के दर्शन करने जाता है। महाराज! सबको कोढिया बना देगा। ऐसा सबको चेप... क्या कहते हैं उसे? चेप... चेप। चेप लगा देगा। श्रावक को राजा ने कहा, अरे... श्रावक! तेरा गुरु कोढ़िया है? उसे तुम वन्दन करने जाते हो और सबको यहाँ चेप लगेगा। महाराज! मेरे गुरु कोढ़िया नहीं है। आत्मा में कोढ़ नहीं है, इसलिए कह दिया, कोढ़ नहीं है आत्मा में। शरीर में कोढ़ नहीं है।... मेरे गुरु ऐसे हैं। फिर मुनि के पास गये (और कहा), प्रभु! मैंने ऐसा कहा है कि मेरे गुरु को कोढ़ नहीं है। अन्तर और बाह्य दोनों में नहीं है। क्या करना? शान्ति करो, शान्ति करो। करते... करते... वादिराज ने भगवान की स्तुति का प्रारम्भ किया। भक्ति के भाव में आता है और उस समय परमाणु पलटकर ऐसी क्रिया बनने में उसे निमित्त कहने में आता है। निमित्त उसे कहते हैं कि बननेवाली क्रिया बनती है तो उसको निमित्त कहते हैं। निमित्त का अर्थ उससे कार्य हुआ, ऐसा (नहीं है)। तो निमित्त नहीं रहता।

ऐसी स्तुति की कि हे नाथ! वादिराज मुनि भगवान की स्तुति करते हैं। प्रभु! आप जब माता के उदर में तीन ज्ञान लेकर आते हो, सोना का गढ़ और नगरी बन जाती है। सोने की नगरी और गढ़ बन जाता है। प्रभु! माता के कूँख में आने से ऐसी बात बन जाती है, प्रभु! मन के मन्दिर में आपको विराजमान किया है। (कोढ़) शरीर में कैसे रह सके? ऐसा रोग रह नहीं सकता, आपको अन्दर विराजमान किया है। वह तो भक्ति का उल्लास है और वह क्रिया बनने की होती है। छूती नहीं, हों! बनने में बन जाती है। कर्ता नहीं है, विकल्प आया तो हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

भगवान तीन ज्ञान लेकर माता के उदर में आते हैं। तब नगरी सोने की बनती है, गढ़ सोने का होता है। ये शरीर में कोढ़ रहे? आपको यहाँ विराजमान किया है। पूर्णानन्द

परमात्मा अनन्त ज्ञानज्योति मेरी पर्याय में मैंने विराजमान किया है। आप कैसे इस शरीर को ऐसा देख सकते हो ? एकीभाव स्तोत्र में कहा है। भाई ! आता है न ? एकीभाव अभी याद आया था। अभी निकाला था। एकीभाव स्तोत्र है न ? पण्डितजी ! एकीभाव स्तोत्र। उसमें पाँचवाँ श्लोक है।

'प्रभु सब जग के विना हेतु बाँधव उपकारी' देखो !

प्रभु सब जग के बिना हेतु बाँधव उपकारी
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी,
भक्तिरचित ममचित्त सेज नित वास करोगे,

हे नाथ ! मेरा मन विकल्प के शुभ सेज में आपको विराजमान किया है।

भक्तिरचित ममचित्त सेज... सेज... सेज। हमारी ज्ञानपर्याय सेज में भक्तिभाव में आपको विराजमान किया है।

भक्तिरचित ममचित्त सेज नित वास करोगे,
मेरे दुःखसंताप देख किम धीर धरोगे। ५।

भक्ति का भाव है। समझ में आया ? नाथ ! मैं तेरा दास हूँ, तेरा भक्त हूँ, मेरे चित्त के सेज में आपको विराजमान किया है।

भक्तिरचित ममचित्त सेज नित वास करोगे।

हे नाथ ! सर्वज्ञ पूर्णानन्द प्रभु ! वीतराग निर्दोष परमात्म दशा प्राप्त हे नाथ ! हमारे आँगन में आदर के साथ स्थापित किया है। हमारे भक्तिचित्त में आपको स्थापित करता हूँ। 'सेज नित वास करोगे।' नित वास करोगे, हों ! टूट नहीं पड़ेगी आपकी भक्ति में। पूर्णानन्द का प्रेम है, वह आपका ही प्रेम है। और विकल्प उठा है, वह भी हमारा शुभभाव है।

मेरे दुःखसंताप देख किम धीर धरोगे।

भगवान ! मेरा दुःख देखोगे ? आपको यहाँ आदर सहित स्थापित किया है। नहीं देखेंगे। सेठ ! कर्ता-फर्ता नहीं है, हों ! कर्ता है, ऐसा नहीं है। ये तो एक भक्ति के चित्त में स्थापित किया है तो ऐसी चीज़ क्यों नहीं हो ? ऐसा पूर्व पुण्य के कारण और परमाणु के

पलटने के कारण से साता के कारण परमाणु पलट जाते हैं। एकदम से! वही उसके क्रम में आनेवाली चीज़ थी। समझ में आया? बड़ी कठिन बात, भाई! 'मेरे दु:ख सन्ताप देख किम धीर धरोगे।' भान नहीं है कि किसी का कोई कर्ता नहीं है? और भगवान देखते हैं तो भगवान से मेरा दु:ख नाश होता है? परन्तु भक्ति के भाव में उन्मत्तता परमार्थ से उठती है। हे नाथ! लोक का एक राजा हो, गाँव का मुख्या हो तो गाँव का साधारण मनुष्य उसके पास जाए तो उसको उसके प्रमाण में कुछ देता है।

तीन लोक के नाथ परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, तीन लोक का नाथ कहते हैं हम तो। आपका भक्त हूँ, आपसे नहीं मिले ऐसी बात सम्भवित नहीं है। अपने स्वरूप की ओर एकाग्रता की विनती है, हाँ! समझ में आया? भगवान अखण्डानन्द ध्रुव धातु चैतन्य पड़ी है, उसके पास, प्रभु! आपके पास अनन्त आनन्द है। तो आपके शरण में आया और मुझे नहीं मिले, तीन काल में नहीं बनता। ऐसे यहाँ कहते हैं कि 'भक्तिरचित ममचित्त सेज नित वास करोगे।' भगवान! दूसरे को मेरे चित्त में ला नहीं सकता, आपके सिवा। तो 'मेरे दु:खसन्ताप देख किम धीर धरोगे।' मेरे दु:ख और प्रतिकूलता आप कैसे देख सकोगे? आपके केवलज्ञान में ऐसा होता ही नहीं। समझ में आया? नवनीतभाई! भक्तों का आरोपित कथन है, व्यवहार से। उसको वैसे जानना चाहिए।

यहाँ अब कहते हैं, हे नाथ! आपकी वाणी तो ऐसी है कि संसार के विष को नाश करनेवाली है। अर्थात् विकारमात्र का अभाव करने की और निर्विकार पर्याय प्रगट करने का आपकी वाणी में आया है। अब, यहाँ ३१वीं गाथा में कहते हैं। ३० में कल आया था।

गाथा ३१

पत्ताण सारणिं पिव तुज्झ गिरं सा गई जडाणं पि।
जा मोक्खतरुट्ठाणे असरिसफलकारणं होई।।३१।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेश! जो अज्ञानी जीव, आपकी वाणी को प्राप्त कर लेते हैं, उन अज्ञानी जीवों की भी वह गति होती है, जो गति, मोक्षरूपी वृक्ष के स्थान में अत्युत्तम फल प्राप्ति की कारण होती है।

भावार्थ - जो जीव ज्ञानी हैं, वे आपकी वाणी को पाकर मोक्ष -स्थान में जाकर उत्तमफल को प्राप्त होते हैं, इसमें तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं, किन्तु हे भगवन! अज्ञानी पुरुष आपकी वाणी का आश्रय कर मोक्ष-स्थान में उत्तम फल को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार नदी, वृक्ष के पास जाकर उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण होती है; उसी प्रकार आपकी वाणी भी उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण है; इसलिए आपकी वाणी उत्तम नदी के समान है।

गाथा - ३१ पर प्रवचन

पत्ताण सारणिं पिव तुज्झ गिरं सा गई जडाणं पि।
जा मोक्खतरुट्ठाणे असरिसफलकारणं होई।।३१।।

हे नाथ! हे प्रभु! हे जिनेश! **हे अज्ञानी जीव...** '**जडाणं**' शब्द पड़ा है। अज्ञानी जीव भी आपके पास आता है तो आपकी वीतरागी वाणी का भाव समझकर, जो ज्ञानी आनन्द का फल प्राप्त करते हैं, वही अज्ञानी को आनन्द के फल की प्राप्ति होती है। समझ में आया? हे भगवान! **जो अज्ञानी जीव, आपकी वाणी प्राप्त करते हैं,...** पाठ में '**जडाणं**' शब्द है। '**जडाणं**' का अर्थ अज्ञान है। **उस अज्ञानी जीवों की भी वही गति होती है, जो मोक्षरूपी वृक्ष के स्थान में...** '**असरिस**' शब्द पड़ा है न? भाई! '**असरिस**' उसका अर्थ किया है, उत्तम। '**असरिस**' अर्थात् उत्तम। साधारण जैसा नहीं ऐसा। '**असरिस**' अर्थात् उत्तम। ऐसे **अत्युत्तम फल प्राप्ति का कारण होती है।** क्या कहते हैं?

तत्त्वज्ञान तरंगिणी में एक दृष्टान्त दिया है कि जो भगवान की वाणी वास्तविक समझते हैं, आत्मा रागरहित है, ऐसा ज्ञान होता है और चारित्र में आनन्द में होता है तो एकदम उसको चारित्र को प्राप्त कर केवलज्ञान का फल पकता है। परन्तु जैसे आम का पेड़ होता है न? पेड़। आम... आम। आम का पेड़ होता है न? आम का पेड़। उसमें ऊपर आम होते हैं न? आम। आम होते हैं न? पचास-सौ आम पकते हैं। भगवान! उस पके आम का पोपट उड़कर... पोपट को क्या कहते हैं? तोता... तोता। तोता उड़कर स्वाद लेता है, ऊपर से उड़कर पके आम का (स्वाद लेता है), वही स्वाद, भगवान! जो चींटी होती है, चींटी। चींटियाँ। चींटियाँ... चींटियाँ। चीटी भी आम के पेड़ का मूल पकड़ लेती हैं तो तुरन्त आम का फल पकता है। जो पोपट-तोता ऊपर से उड़कर खाता है, वही चींटी जो मूल पकड़कर जाती है, आम का मूल, तो पोपट जो आम खाता है, वही चींटी खाती है। खाती है, कहते हैं न? खाती है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, हे नाथ! जो आत्मा का राग और पुण्यरहित आत्मा का भान हुआ है और चारित्र स्वरूप की रमणता... धन्य अवतार! ऐसी चारित्रदशा हुई है, उसका तो मोक्षफल का, उसको तो मोक्ष का ही फल मिलता है, मोक्ष ही मिलता है। वह तोता ऊपर से एकदम चखे, ऐसे। परन्तु अज्ञानी प्राणी, चींटी जैसा छोटा प्राणी हो, परन्तु आपकी वाणी में मूल तत्त्व क्या है, उसे पकड़ लिया है, वह मूल पकड़ लिया है कि आत्मा राग और पुण्यरहित ऐसे आत्मा की प्रतीति भगवान करवाते हैं। ऐसी रुचि जिसको हो गयी है, ऐसे चींटी जैसे हम आत्मा, आम का पेड़ जैसे चींटी ने पकड़ लिया, वैसे हमारे मूल पेड़ को हमने पकड़ लिया है। तो हम भी क्रम से चढ़कर जो केवलज्ञान चारित्रवन्त प्राप्त करते हैं, वही केवलज्ञान हम प्राप्त करेंगे। समझ में आया? तत्त्वज्ञान तरंगिणी है न? पण्डितजी! उसमें दृष्टान्त दिया है। शुभचन्द्राचार्य है न उन्होंने। आचार्य जगत को अनेक प्रकार से भक्ति का प्रेम और सत्य स्वभाव का प्रेम कराने को अनेक दृष्टान्त देते हैं।

यहाँ कहते हैं, **जो जीव ज्ञानी हैं, वे आपकी वाणी को प्राप्त कर, मोक्ष स्थान में जाकर उत्तम फल को प्राप्त होकर, इसमें तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं; किन्तु हे भगवान!** हे परमात्मा त्रिलोकनाथ! **अज्ञानी पुरुष भी आपकी वाणी का आश्रय लेकर, मोक्ष स्थान में...** वाणी का आश्रय अर्थात् वाणी तो जड़ है। विवाद करते

हैं न? चौथे (कलश की) भाई! '**जिनवचसि रमन्ते**' है न वह कलश? '**जिनवचसि रमन्ते**'। परन्तु उसका अर्थ क्या? भगवान! जिन वाणी में-जड़ में रमना है? वह तो परपदार्थ है। जिनवचन में कहे हुए भाव में रमना वह जिनवचन में रमना कहने में आता है। आहाहा! समझे नहीं, क्या करे? भगवान ने ऐसा कहा है, देखो भैया! '**जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः**' वह मिथ्यात्व का वमन कर देते हैं। भैया! सुन तो सही, प्रभु! वाणी तो वाणी में कहनेवाला अभिप्राय-भाव है, वह जो समझता है और उसमें रमते हैं, उसके मिथ्यात्व का नाश हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, देखो! अज्ञानी भी आपकी वाणी को प्राप्त कर **मोक्ष स्थान में उत्तम फल को प्राप्त होते हैं।** वाणी का आश्रय कर अर्थात् वाणी में कहने का भाव है, तेरी चीज़ प्रभु! अखण्डानन्द शुद्ध आनन्द है, भैया! उस आनन्द में राग की गन्ध नहीं। उस राग का स्पर्श आत्मा ने—आत्मस्वभाव ने किया नहीं। क्या कहते हैं? विकल्प उठते हैं, उसका स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! संसार का उदयभाव, जितने उदयभाव कहो, उसने त्रिकाल स्वभाव को स्पर्श नहीं किया, छुए नहीं। आहाहा! ऐसी आपकी जो वाणी निकली। ओहो! उसका बोध जिसको हुआ, बोध हुआ—सम्यग्ज्ञान हुआ, मूल पकड़कर सम्यग्ज्ञान लिया है, तो क्रम से चारित्र प्राप्त करेगा और चारित्रवन्त जो मोक्ष प्राप्त करते हैं, वही अज्ञानी भी सम्यग्ज्ञान में चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। केवलज्ञान का फल आनन्द का अनुभव करेगा। परन्तु उसका आश्रय करनेवाला, उसका कहने का भाव का आश्रय करनेवाला। मात्र शरीर और विकल्प का आश्रय, वह आश्रय नहीं है। सूक्ष्म बात है, भैया! वह कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं?

जिस प्रकार नदी वृक्ष के पास जाकर... पाठ में है न? भाई! '**सारणिं पिव**' '**सारणिं**' अर्थात् नदी। '**सारणि पिव**' **नदी वृक्ष के पास जाकर उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण होती है,...** उसी प्रकार, नाथ! **आपकी वाणी भी...** वाणी का भाव **उत्तम फलों की उत्पत्ति में कारण है। अतः आपकी वाणी उत्तम नदी के समान है।** आपकी वाणी... अब वाणी (लेते हैं)। केवलज्ञान के बाद की (बात) चलती है न। दीक्षा ली, आदि सब बात करते-करते वाणी तक आये हैं। वह ३१ गाथा में कहा। ३२। बत्तीस।

गाथा ३२

पोयं पिव तुह पवयणम्मि सल्लीणा फुड़महो कयजडोहं।
हेलाए च्चिय जीवा तरंति भवसायरमणंतं।।३२।।

अर्थ - जिस प्रकार जिन मनुष्यों के पास जहाज मौजूद है, वे मनुष्य उस जहाज में बैठकर, जिसमें बहुत-सा जल का समूह विद्यमान है, ऐसे समुद्र को बात की बात में तिर जाते हैं। उसी प्रकार हे पूज्य! हे जिनेश! जो मनुष्य आपके वचन में लीन हैं अर्थात् जिन मनुष्यों को आपके वचन पर श्रद्धान है, बड़े आश्चर्य की बात है कि वे मनुष्य भी पलमात्र में, जिसका अन्त नहीं है, ऐसे संसाररूपी सागर को तिर जाते हैं।

भावार्थ - हे प्रभो! इस समय संसार में जितने जीव हैं, सब सामान्यतया अज्ञानी हैं। उनको स्वयं वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं हो सकता है। यदि हो सकता है तो आपके वचन में श्रद्धान रखने पर ही हो सकता है; इसलिए हे प्रभो! जिन मनुष्यों को आपके वचनों पर श्रद्धान है, वे मनुष्य अनन्त संसार-समुद्र को बात की बात में तिर जाते हैं, किन्तु जो मनुष्य आपके वचनों में श्रद्धान नहीं रखते, वे इस संसार-समुद्र से पार नहीं हो सकते। जिस प्रकार जहाजवाला ही समुद्र को पार कर सकता है और जिसके पास जहाज नहीं, वह नहीं कर सकता।

गाथा - ३२ पर प्रवचन

पोयं पिव तुह पवयणम्मि सल्लीणा फुड़महो कयजडोहं।
हेलाए च्चिय जीवा तरंति भवसायरमणंतं।।३२।।

आहाहा! मुनि भावलिंगी सन्त हैं। परन्तु वे वन में भगवान का लक्ष्य करके स्तुति का वहन-नदी की भाँति बाढ़ बहायी है। हे नाथ! जिन मनुष्यों के पास जहाज मौजूद है... पाठ में है न? '**पायं पिव**'। जहाज... जहाज। हे नाथ! हे परमेश्वर! परमात्मा! त्रिलोकनाथ! आप मेरे स्वामी हो और मैं आपका पुत्र हूँ। हे पिता! जिस मनुष्य के पास जहाज मौजूद है, वे मनुष्य जिस प्रकार उस जहाज में बैठकर, जिसमें बहुत सा जल का समूह है,... है

न ? **'संलीणा', 'संलीणा'।** बहुत पानी का समूह है। वे विद्यमान ऐसे समुद्र को बात ही बात में तिर जाते हैं। **'हेलाए च्चिय', 'हेलाए च्चिय'।** लीला मात्र में तिर जाता है। जहाज है न ? चाहे जितना नदी का पानी हो। परन्तु जहाज जिसके पास है, (वह) लीला मात्र से तिर जाते हैं। उसी तरह समुद्र को बात ही बात में तिर जाते हैं।

ऐसे हे पूज्य नाथ! **जो मनुष्य, आपके वचनों में लीन हैं...** अर्थात् मनुष्यों की आपके वचनों पर श्रद्धान है। जो वीतरागी वाणी है, वीतराग की वाणी वीतरागमय होती है। सराग को रखने की वाणी वीतराग की होती नहीं। समझ में आया ? ऐसी वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी जिसको अन्दर श्रद्धा में बैठ गयी, बड़े आश्चर्य की बात है कि **वे मनुष्य क्षणमात्र में ही... 'हेलाए च्चिय'** का अर्थ किया है। खेलमात्र में, लीलामात्र में। जिसका अन्त नहीं है, ऐसा **'संसार-सागर तिर जाते हैं।'** भगवान! आपकी वीतराग वाणी का ख्याल आया, वह जहाज मिला, जहाज मिला। चौरासी के अवतार क्षणभर में तिरकर मोक्षरूपी नगर में चला जायेगा। दलीचन्दभाई! समझ में आती है यह भक्ति ? अभी तो भक्ति की खबर नहीं। खबर नहीं अर्थात् एक ससमय में सर्वज्ञ की दशा... अभी कहेंगे एक वचन में। अभी कहेंगे, ३३ में तुरन्त कहेंगे।

एक समय में तीन काल तीन लोक जाननेवाले भगवान, जिसके एक ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था, द्रव्य त्रिकाल, गुण ज्ञान त्रिकाल, उसकी एक समय की पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था। तीन काल-तीन लोक अनन्त केवली को भी एक समय की पर्याय जानती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विवादवालों के पास विवाद रहा। एक समय का ज्ञान भविष्य की पर्याय होगी तब जानेगा। अरे.. चल। तो केवलज्ञान किसको कहते हैं। विकारी पर्याय भी एक समय में तीन काल-तीन लोक को ज्ञानी जानते हैं। इस जीव को इस समय ऐसा विचार होगा और ऐसा निमित्त है, ऐसी बात भगवान के ज्ञान में पहले से तीन काल-तीन लोक की आ गयी है। अरे! भगवान! णमो अरिहन्ताणं, ऐसा शब्द बोलना, परन्तु अरिहन्त किसको कहते हैं, उनके ज्ञान का क्या सामर्थ्य है, वह ज्ञान, जिसको ऐसे ज्ञान के सामर्थ्य

की प्रतीति हुई, उसे अपने अल्पज्ञान में राग एवं निमित्त का आदर अन्तर में रहता नहीं। समझ में आया? एक समय में भगवान... वह बाद में कहेंगे, ३३ में कहेंगे।

यहाँ तो इतना कहते हैं, आपकी वाणी का... हे नाथ! परमात्मा! साक्षात् हमारी नजर में आप प्रत्यक्ष दिखते हो, हम तो कहते हैं, आपकी वाणी की जिसको श्रद्धा (है)... परन्तु वह वाणी और वाणी का भाव क्या है, यह समझना कठिन पड़े। सब वाणी-वाणी करते हैं अपनी दृष्टि की अपेक्षा रखकर। परन्तु वाणी में जैसा वीतरागभाव प्रगट हुआ है, ऐसी ही वाणी वीतरागभाव की निकलती है। अल्प ज्ञान, अल्पज्ञता और राग का नाश हुआ है। सर्वज्ञ और वीतराग हुए हैं। तो अल्पज्ञता और राग का नाश करने में और सर्वज्ञ एवं वीतराग होने का वाणी में भाव आता है। समझ में आया? ऐसी वाणी का भाव जिसको अन्तर में रुचे, भगवन्त! वह भी बात ही बात में... ऐसा क्यों कहा? '**हेलाए च्चिय**' दुःख नहीं है। संसार तिरने में चारित्र का दुःख है, ऐसा नहीं है। मौज करते-करते मुक्त हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। कैसी मौज? समझ में आया? अरे! भैया! बहुत सहन करना पड़ता है, बहुत दुःख है। अरे! भगवान! दुःख है तो... है। चारित्र और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दुःखरूप है ही नहीं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आनन्ददाता है। आनन्ददाता को दुःखदाता कहना, उसकी विपरीतता है। समझ में आया? अरे! चारित्र तो बढ़ा तो दुःख बढ़ा। कितने परीषह सहन करने पड़े। अरे! भगवान! चारित्र दुःखरूप है? छहढाला में आता है, भैया! नवनीतभाई! छहढाला में नहीं आता? संवर, निर्जरा के अधिकार में। संवर-निर्जरा में आता है। भाषा सब थोड़े ही याद रहती है। संवर और निर्जरा सुखदायी है। उसे दुःखदायी मानते हैं। सब पंक्ति याद (नहीं रहती)।

मुमुक्षु : आतम के हित हेतु विराग ज्ञान ते लखे आपको कष्टदान।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। उसमें क्या कहते हैं? आत्मा का हित जो ज्ञान और आनन्द है—चारित्र, उसे कष्टदायी मानते हैं। (वह) संवर, निर्जरा की मिथ्यादृष्टि की ऐसी भूल है। डाह्याभाई! है न? नवनीतभाई! हेतु विराग अन्तर रागरहित दशा, शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान और अरागी चारित्र आनन्ददाता है। उसको कष्टदायी मानना (विपरीतता है)। आस्रव कष्टदायक है, विकार कष्टदायक है। संवर स्वभाव का साधन मोक्ष का मार्ग है, उसमें

आनन्द आता है। आनन्ददायक को कष्टदायक मानना, निर्मल दशा को बन्ध का कारण मानना, ऐसी बड़ी भूल अज्ञानी की है।

आचार्य कहते हैं हे नाथ! आपकी वाणी में जो आत्मा की शान्ति का, आनन्द की रुचि, ज्ञान और स्थिरता आयी, ऐसे आनन्ददायक धर्म में चलकर कल्याण मार्ग उसको सहज प्राप्त हो जाता है। दु:ख-बुख नहीं, धर्मी को दु:ख होता ही नहीं। समझ में आया? अन्तर में, हों! बाह्य शरीर में हो, नहीं हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। वह कोई दु:ख की व्याख्या नहीं है। शरीर की प्रतिकूलता है, वह दु:ख की व्याख्या नहीं है। आकुलता-राग... सवेरे आया था, आकुलता ही दु:ख है। दु:ख पर नहीं। ज्ञानी को अपना स्वभाव श्रद्धा-ज्ञान में लेकर जब स्थिरता होती है, (तो) आनन्ददायक मोक्षमार्ग है। लीलामात्र में आनन्द करते-करते केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। धर्मी को दु:ख-बुख है नहीं। समझ में आया? अब ३३वीं। अब आता है, देखो! अब सर्वज्ञ आये। तीन गाथा में वाणी की बात कही। पहले दिव्यध्वनि कही थी, दूसरे में अज्ञानी भी, ज्ञानी जो केवलज्ञान को, अनन्त आनन्द को प्राप्त करते हैं, ऐसा अज्ञानी भी भान करके प्राप्त करते हैं। और बाद में वृक्ष की उपमा दी। अब कहते हैं।

गाथा ३३

तुह वयणं चिय साहइ णूणमणेयंतवाययवियडपहं।
तह हिययपईपअरं सव्वत्तणमप्पणो णाह।।३३।।

अर्थ - हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपके वचन ही निश्चय से अनेकान्तवादरूपी विकट मार्ग को सिद्ध करते हैं। हे नाथ! आपका सर्वज्ञपना समस्त मनुष्यों के हृदयों को प्रकाश करनेवाला है।

भावार्थ - संसार में जितने पदार्थ हैं, वे समस्त पदार्थ अनेक धर्मस्वरूप हैं। जब और जिस वाणी से उन पदार्थों के अनेक धर्मों का वर्णन किया जाएगा, तभी उन पदार्थों का वास्तविक स्वरूप समझा जाएगा, किन्तु दो-एक धर्म के कथन से उन पदार्थों का वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सकता।

हे भगवन्! आपके अतिरिक्त जितने देव हैं, उन सबकी वाणी एकान्तमार्ग को ही सिद्ध करती है, इसलिए उनकी वाणी, वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं कह सकती, किन्तु आपकी वाणी ही अनेकान्तमार्ग को सिद्ध करनेवाली है; इसलिए वही पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का वर्णन कर सकती है। आपके सर्वज्ञपने से भी समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश होता है, अर्थात् जिस समय आप उनको यथार्थ उपदेश देते हैं, उस समय उनके हृदय में भी वास्तविक पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

गाथा - ३३ पर प्रवचन

तुह वयणं चिय साहइ णूणमणेयंतवाययवियडपहं।
तह हिययपईपअरं सव्वत्तणमप्पणो णाह।।३३।।

'**वियडपहं**' विकट पन्थ है। प्रभु! तेरी ज्ञान की शैली समझनी, महाविकट है। अनेकान्तवाद भगवान का है। **हे प्रभो! वास्तव में आपके वचन ही अनेकान्तवाद रूपी विकट मार्ग...** क्या कहते हैं? अनेकान्तरूपी विकट मार्ग है। जो आत्मा स्वभाव में आनन्दस्वरूप है, वह पर्याय में संसार में दुःखरूप भी है। जो दुःखरूप दशा है, वह आनन्दरूप दशा नहीं है। उसका नाम अनेकान्त है। अनेकान्त परस्पर विरुद्ध शक्ति का प्रकाशना, वस्तु का वस्तुत्व का प्रकाशना, विरुद्ध शक्ति का एकसाथ प्रकाशना, उसका नाम अनेकान्त है। धर्म अपने स्वभाव से भी होता है और विभाव से भी होता है, ऐसा अनेकान्त नहीं है। ऐसा अनेकान्त का स्वरूप ही नहीं। परस्पर विरुद्ध शक्ति... अपना शुद्ध भगवान, उसके अवलम्बन से निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति से मुक्ति होती है। और विकार व्यवहार आता है, उससे मुक्ति नहीं होती है। ऐसा अनेकान्तवाद, हे नाथ! विकट पन्थ आपका है। समझ में आया? यह तो अनेकान्त को फूदड़ीवाद करते हैं न? सेठ, हरीचन्दजी! कहते हैं न, ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। भगवान! तेरा मार्ग ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप त्रिकाल है, वही त्रिकाल दुःखरूप है, ऐसा नहीं। शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द अस्ति है, तो दुःख की पर्याय है, वह त्रिकाल

स्वभाव में नहीं। उसका नाम अनेकान्त कहते हैं। और दु:ख की एक समय की पर्याय है, उसमें आनन्द का अभाव है। उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा अपना शुद्ध स्वभाव परिपूर्ण, उसका आश्रय करके दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता हुई, वही मुक्ति एक मार्ग है। और बीच में राग आया, जिसको व्यवहार कहते हैं, उससे मुक्ति नहीं होती है, ऐसा आपका अनेकान्त मार्ग प्रभु! समझना विकट मार्ग है। व्यवहार में ऐसा आता है कि दोनों मार्ग है। निमित्त देखकर निश्चय और व्यवहार दो मोक्षमार्ग कहा। दो मोक्षमार्ग है नहीं। मोक्षमार्ग का दो कथन है, कथन है; मार्ग तो एक ही है। आहाहा! क्या समझना उसमें? कथन करने की शैली का अर्थ कोई भी चीज़ है, उससे परमार्थ बताना है, तब यथार्थ है। और उसका निमित्त देखकर उसको आरोप देकर कहना, वह व्यवहार है। वास्तव में व्यवहार है, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। समझ में आया? बड़ी कठिन बात, भाई!

इसलिए आचार्य कहते हैं, '**वियडपहं**' प्रभु! विकट पन्थ तेरा है। समझने में जगत को कठिन है। अनेकान्तवाद है। अनन्त धर्म, प्रभु! आत्मा अपना पवित्र स्वभाव त्रिकाल रखता है, उसमें भी अन्तर में दु:ख है, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। अपना (स्वभाव) आनन्दरूप है और दु:खरूप है नहीं। इस प्रकार अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य का श्रद्धा, ज्ञान हुआ वह एक ही मोक्षमार्ग है। राग आता है, उसकी उसमें नास्ति है। निश्चय की दशा में व्यवहार का अभाव है, उसका नाम अनेकान्त कहने में आता है। निश्चय का भाव है और व्यवहार का अभाव है। यह अस्ति-नास्ति का नाम अनेकान्तवाद है। समझ में आया? बड़ी कठिन बात, भाई! लोगों ने ऐसी दृष्टि कर रखी है, अपनी कल्पना से, वैसे शास्त्र का वांचन करते हैं। लेकिन शास्त्र, भगवान! वह अनेकान्तवाद तो कहने की चीज़ है। अनेकान्त स्वरूप आत्मा में है, उसको बतानेवाली चीज़ है।

भगवान आत्मा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्ग। अपने शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से सम्यक् प्रतीति, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् लीनता अन्तर में हुई, उस एक ही भाव में अनन्त धर्म रहते हैं। क्या? अपने में अस्ति है और रागादि आते हैं, उसका उसमें अभाव-नास्ति है। राग भी उसमें है और निर्मलता भी है, ऐसी दो बात एक पर्याय में नहीं होती। कौन-सी? निर्मल में। एक पर्याय में चार होती है। और चार आ गया। आत्मा का भान होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो चारित्र की पर्याय में है एक समय की पर्याय, लेकिन

उसमें चार भाग रहते हैं। एक संवर, निर्जरा की शुद्धता और एक आस्रव, बन्ध की अशुद्धता। अरे! ऐसा तत्त्व भगवान का विकट।

एक पर्याय मानी नहीं। पर्याय? एक समय की पर्याय? त्रिकाल द्रव्य के पास निर्मल... निर्मल? अरे! सुन तो सही। एक समय की चारित्रगुण की, त्रिकाल चारित्रगुण की एक समय की पर्याय, समय एक, भाग दो—शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध का दो भाग—संवर और निर्जरा। अशुद्ध का दो भाग—आस्रव और बन्ध। सूक्ष्म लगे तो लक्ष्य में रखना। बापू! उसने कभी सच्ची समझ की नहीं, क्या चीज़ है, उसे लक्ष्य में ली नहीं। ऐसे ही भगवान... भगवान... भगवान करो। भगवान... भगवान... क्या? भगवान दे देंगे? तेरी चीज़ उनके पास है?

कहते हैं कि आत्मा में जब शान्ति और श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। तब कुछ निर्मल भी है और चारित्र की पर्याय कुछ अनिर्मल अर्थात् अशुद्ध भी है। शुद्ध में अशुद्ध नहीं है और अशुद्ध में शुद्ध नहीं है। एक पर्याय में चार भाग। शुद्ध में अशुद्ध नहीं और अशुद्ध में शुद्ध नहीं। ऐसा अनेकान्तवाद परमात्मा, आपने कहा, विकट पन्थ है। अज्ञानी को समझने में महा माथापच्ची लगे, ऐसी बात है। समझे, उसके मिथ्यात्व का नाश हो जाता है। समझ में आया? चन्दुभाई! आहाहा! एक बोल कहा।

'तुह वयणं चिय साहइ, णूणमणेयंतवाययवियडपहं'। आहाहा! आत्मा में एक ज्ञानगुण है। एक गुण में दूसरे गुण का अभाव है। गुण एक अस्तिपने और अनन्त गुण की नास्ति। उसका नाम अनेकान्त है। एक समय की पर्याय में अस्ति और दूसरी पूर्व, उत्तर की और दूसरी पर्याय की उसमें नास्ति। आहाहा! अस्ति-नास्ति विरुद्ध शक्ति का प्रकाशना, उसका नाम अनेकान्त है। अकेले अनन्त धर्म है तो अनेकान्त है, ऐसा नहीं। समझना कठिन। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! तेरी वाणी में अनेकान्तवाद आया, वह जगत को समझना महा मुश्किल है और समझे वह तो न्याल हुए बिना रहता नहीं। आहाहा!

यह... है या नहीं? देखो न। ये लकड़ी है या नहीं? ये लकड़ी है या नहीं? है। सुनो तो सही। ये लकड़ी है या नहीं? ये लकड़ी अँगुलीरूप है? नहीं। क्या (कहा)? अँगुलीरूप लकड़ी नहीं है। नहीं है, यह उसका धर्म है। यह अँगुली है या नहीं? देखो! यह अँगुली है, वह अँगुली अँगुलीरूप है। वह अँगुली इस अँगुलीरूप भी है, ऐसा नहीं। इस

अँगुलीरूप नहीं। क्योंकि यह अँगुली कट जाये तो अँगुली रहती है। अँगुली अपने से है और दूसरी अँगुली से नहीं, उसका नाम अस्ति-नास्ति है। समझ में आया?

आनन्दघनजी कहते हैं, एक बार कहा था न? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि एक समय में ध्रुव रहता है और उसी समय उत्पाद-व्यय की पर्याय भी होती है। जिस समय जो उत्पाद हुआ, वह दूसरे समय में नहीं है। और दूसरे समय में पहले समय का व्यय हुआ, वह व्यय पहले समय में उत्पाद था, दूसरे समय व्यय होता है। आहाहा! कहते हैं कि,...

स्थिरता एक समय में ठाणे, उपजे, विणसे सबही
उलटपलट ध्रुव सत्ता राखै, या हम सुनी न कबही
अवधु नटनागर की बाजी, क्या जाने बामण काजी
अवधु नटनागर की बाजी...

भाषा ऐसी ली है। समझ में आया? आहाहा! हे नाथ! आपने वस्तु का स्वरूप प्रकाशित किया। उसमें एक समय में, समय एक। आँख खुलकर बन्द हो, उसमें असंख्य समय जाते हैं। समय एक। और एक समय में प्रत्येक पदार्थ ध्रुव भी रहते हैं और एक समय में उत्पाद-व्यय (भी होता है)। उसी समय में, हों! नयी अवस्था उत्पन्न हुई, पूर्व का व्यय (हुआ)। 'उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे' उलट अर्थात् उत्पाद, पलट अर्थात् पूर्व का व्यय, ध्रुव सत्ता राखे। ऐसी वस्तु की स्थिति, हे भगवान! आपके सिवा कोई जानते नहीं।

समन्तभद्राचार्य तो कहते हैं, हे नाथ! आप सर्वज्ञ हो, ऐसा मैंने निश्चय किया है। किस कारण से? स्वयंभूस्तोत्र में है। समय एक और तीन अंश आपने जाने। प्रत्येक वस्तु ध्रुव है, उस समय में। उसी समय में नयी अवस्था उत्पन्न होती है, उसी समय में पूर्व का व्यय होता है। समय एक, काल भाग नहीं होता। वस्तु में तीन अंश एक समय में जाने, उसका नाम सर्वज्ञपद है। सर्वज्ञ के सिवा ऐसा कोई जान सकता नहीं। आहाहा! क्या करे? भक्ति में भी ऐसा कठिन कहाँ-से लाये? यहाँ वह कहते हैं।

'सव्वत्तणमप्पणो णाह'। आपका सर्वज्ञपना ऐसा है। एक समय में आपका सर्वज्ञपना है। देखो यहाँ। हे नाथ! **आपका सर्वज्ञपना ही समस्त मनुष्यों के हृदय का**

प्रकाश करनेवाला है। पाठ है न? पाठ। **'हिययपईवअरं'।** ज्ञान के हृदय में प्रदीपकरण-प्रकाश करनेवाला आपका सर्वज्ञपना है। क्या कहते हैं? यहाँ तो कहते हैं... वे तो कहते हैं, यदि सर्वज्ञपना नक्की करेंगे तो... जो देखा है, वैसा होगा, पुरुषार्थ करना कहाँ रहा? आहाहा! अरे.. भगवान! यहाँ तो कहते हैं, सर्वज्ञ को जाने, उसके हृदय में प्रकाश हो जाये, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। और प्रवचनसार में तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'।** सर्वज्ञ का द्रव्य-वस्तु, शक्तियाँ-गुण, और पूर्ण पर्याय केवलज्ञान आदि। ये तीन को जो जीव जानता है, **'सो जाणदिअप्पाणं'।** वह आत्मा को जानता है, ऐसा भगवान कहते हैं। ऐसा नहीं है कि सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा होता है, तो सर्वज्ञ को जाननेवाले का पुरुषार्थ रहता नहीं, ऐसा है नहीं। सुन तो सही। समझ में आया? अटपटी बात है, भगवान! वह तो अलौकिक बात है तो सरल और सीधी। परन्तु अज्ञानी ने ऐसी अटपटी कर दी है कि उसमें से निकलना उसे मुश्किल पड़ता है। क्या कहा?

यहाँ भी कहते हैं, हे नाथ! **'तह हिययपईवअरं'।** आपका सर्वज्ञपद हृदय का प्रकाश करनेवाला है। अर्थात् जिसको सर्वज्ञपद परमात्मा है, ऐसी प्रतीति हुई, उसको सर्वज्ञ स्वभाव मेरा है, क्योंकि उनका सर्वज्ञस्वभाव था तो उन्होंने सर्वज्ञ पर्याय प्रगट की। तो जैसी प्रगट की, उसकी प्रतीति करने जाता है तो ऐसा ही मैं आत्मा सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसी प्रतीति करते हैं, उसको मोक्षतत्त्व की प्रतीति होती है। उसको सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। उसके हृदय में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश होता है।

दूसरी बात। यहाँ कहा, **'हिययपईवअरं'** हृदय प्रदीप्त करनेवाला। **'सव्वत्तणमप्पणो णाह'।** हे नाथ! हे प्रभु! आपका सर्वज्ञपद हृदय को प्रकाश करनेवाला है। अज्ञान का नाश करनेवाला है। (अज्ञानी) कहते हैं, अरे! भगवान! एक समय में तीन काल-तीन लोक, हुआ, हो रहा है और होगा सब जाने तो क्या होगा? अरे! सुन तो सही, प्रभु! तुझे क्या (करना है)? अरे! भगवान! अरे! तुझे कर्ता-कर्ता (होकर) राग में फेरफार करना है। ज्ञ-स्वभाव में ऐसी चीज़ है नहीं। सर्वज्ञ जैसे पूर्ण जाननेवाले हैं, ऐसे अस्तित्व की सत्ता की श्रद्धा करने जाता है तो मैं भी ज्ञाता-दृष्टा हूँ और राग एवं विकल्प मेरी चीज़ में नहीं है, ऐसी प्रतीति करते हैं तो सर्वज्ञ की प्रतीति हुई तो हृदय में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश हुआ। समझ

में आया ? अरे ! भगवान ! क्या करे ? भक्ति में डाल दिया, देखो ! आहाहा ! कोई किसी को दे नहीं सकता।

यहाँ तो कहते हैं, आपका सर्वज्ञपना... पाठ है न ? **'तथा हृदयप्रदीपकरं, सर्वज्ञत्व-मात्मनो नाथ!'** ऐसा कहा है। अरे.. नाथ ! अरिहन्तपद, सर्वज्ञपद, परमेश्वरपद, वीतरागपद, निर्दोष पूर्ण दशा को प्राप्त पद, ऐसा सर्वज्ञपद जिसको ख्याल में आया, उसके हृदय में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। समझ में आया ? वह स्वच्छन्दी नहीं होता, वह दोषवाला नहीं रह सकता। आहाहा ! भगवान सर्वज्ञ है, मैं भी आत्मा हूँ। और भगवान सर्वज्ञ हैं, उन्होंने ऐसा कहा है कि तुम भी सर्वज्ञस्वभावी, मैं भी सर्वज्ञस्वभावी। तुम सर्वज्ञस्वभावी। सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञपर्याय प्रगट की।

४७ शक्ति है न ? ४७। आत्मप्रसिद्धि में आ गया है। सर्वदर्शी नौंवी शक्ति है, दसवीं सर्वज्ञत्वशक्ति है। शक्ति है न ? ४७ शक्ति का वर्णन किया है। आत्मप्रसिद्धि में (आ गया है)। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ। दसवीं शक्ति है सर्वज्ञ। नौवीं सर्वदर्शी। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति का अमृतचन्द्राचार्य ने वर्णन किया है। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति। सब जानना, वह अपनी पर्याय की पूर्णता है। उसका नाम आत्मज्ञान और उसका नाम तीन लोक को जाननेवाली अपनी पर्याय को आत्मा जानता है। आहाहा ! ऐसी सर्वज्ञ की पर्याय एक समय में है और वह भी दूसरे समय में दूसरी होती है। प्रथम समय में जो केवलज्ञान है, वैसा का वैसा दूसरे समय में उत्पन्न हो। परन्तु वह नहीं रहता। ऐसे एक समय की पर्याय में दूसरे समय की पर्याय का अभाव है। ऐसा भगवान का अनेकान्त मार्ग है। भगवान का नहीं, वस्तु का ऐसा है। भगवान ने कहाँ (किया है), है ऐसा कहा है, कहा है ऐसा है। है ऐसा जाना है। समझ में आया ?

कहते हैं, हे नाथ ! आपका सर्वज्ञपना जिसको ख्याल में, प्रतीति में आता है, नाथ ! उसके ज्ञान में प्रकाश हो जाता है। मैं भी सर्वज्ञ होने की लायकात वाला मैं भी ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मैं राग और पर का कर्ता-हर्ता नहीं। ऐसा सर्वज्ञ को जाननेवाले के हृदय में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश होता है। यहाँ का शब्द है।

कुन्दकुन्दाचार्य का शब्द, पहले ज्ञान अधिकार में ८० गाथा। **'जो जाणदि अरहंतं**

दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं' जो जाने अरिहन्त की पर्याय को, द्रव्य-गुण को पहले लिया, त्रिकाल। जो जाने परमात्मा की पर्याय को, जो जाने परमेश्वर की दशा को '**सो जाणदिअप्पाणं**'। आहाहा! आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से बात की है। यहाँ यह कही, वहाँ वैसे कहा। आहाहा! समझ में आता है? अरे! उसकी समृद्धि, सम्पदा, ऋद्धि क्या है, उसकी नजर करनी नहीं है और मात्र बातें करके माने कि भगवान को माना।

लो, एक प्रश्न तो यहाँ (संवत) १९९२ की साल में आया था। १९९२ की साल में। सर्वज्ञ केवलज्ञानी है। लोक में जैसा दिखता है वैसा होगा। (उसमें) पुरुषार्थ कहाँ रहा? १९९२ की साल में प्रश्न हुआ था। हीराचन्दभाई के मकान में। १९९२, बीस साल हुए। वह भी पण्डित था, पढ़ा था। पहले साधु हो गया था, जैन स्थानकवासी साधु। पाँच साल रहा, फिर तर्क उठा, मिथ्यादृष्टि हो गया। था तो मिथ्यादृष्टि पहले से, परन्तु फिर उसको ऐसा हो गया कि ऐसा क्यों होता है? कर्म का उदय आता है, ऐसा होता है, आत्मा में ज्ञान कम हो जाये, ऐसे कैसे खबर पड़ी? अरे! सुन तो सही। फिर उसे प्रश्न किया था। केवलज्ञान है वह तीन काल तीन लोक को देखता है, तो पुरुषार्थ कहाँ रहा? सुन! केवलज्ञान है, ऐसी मान्यता है तुमको? (तो कहने लगा), मैं पूछता नहीं। तुम पूछते हो। केवलज्ञान है, ऐसा मानकर बात करते हो। केवलज्ञान है, तीन काल-तीन लोक देखता है। ऐसा तुम्हारा प्रश्न है। तो तुम केवलज्ञान है, ऐसा मानते हो? फिर तीन काल-तीन लोक देखने की बात है। वह मेरा प्रश्न नहीं है। प्रश्न यही है तेरा। नहीं तो ऐसा कह, केवलज्ञान नहीं है, ऐसा निश्चित कर। तो केवलज्ञान है, ऐसा हम साबित कर देंगे। पहले तेरा प्रश्न है कि केवलज्ञान है, उसमें जैसा देखा वैसा होगा, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? तो केवलज्ञान है, ऐसा तुम मानते हो? वह मेरा प्रश्न नहीं है। मानकर तो बात करता है, कि केवलज्ञान है, तीन काल-तीन लोक देखता है।

अरे! भगवान! केवलज्ञान है, ऐसी मान्यता जिसको हो जाती है, उसकी स्वभाव सन्मुख दृष्टि हो जाती है। उसको स्वभाव सन्मुख (दृष्टि होती है कि सर्वज्ञ) जाननेवाले-देखनेवाले (हैं), (ऐसा) मैं भी जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। मैं राग का कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं। मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। सर्वज्ञ की श्रद्धा और ज्ञान करनेवाला अपने स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान किये बिना सर्वज्ञ की श्रद्धा उसको यथार्थ होती नहीं। समझ में आया?

आगे भी सूक्ष्म आ गया, भक्ति में सूक्ष्म भी आये। उसमें कोई मेल रहता है ? समझ में आया ? सवेरे तत्त्वज्ञान की बात चलती है। अभी भी यह बात आयी। बात एक ही है। भक्ति में तो भगवान को देखकर ऐसा भाव (आता है), ओहोहो ! परमेश्वर साक्षात् विराजते हैं, सीमन्धर प्रभु महाविदेहक्षेत्र में। वे कहते हैं, फरमाते हैं, वही वाणी निकलती है। अरे.. आत्मा ! हमारे पद का जिसको ज्ञान हो, उसको सम्यग्ज्ञान का प्रकाश हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया ? पाटनीजी !

कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, अरिहन्त की पर्याय पूर्ण केवलज्ञान को जो जाने, '**सो जाणदिअप्पाणं**'। वह आत्मा को जानता है, ऐसा कहा है। नहीं जानता और पुरुषार्थ नहीं होता है, ऐसा तो कहा नहीं है। अरे ! तुझे वाणी की खबर नहीं। भगवान, आचार्य आदि सन्त क्या कहते हैं, उनकी पद्धति की रीति की खबर नहीं है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ की पर्याय को जाने। पर्याय है, ऐसी प्रतीति करे—जाने का अर्थ (यह है)। मेरा स्वभाव भी ऐसा है, ऐसी प्रतीति किये बिना रहता नहीं। '**सो जाणदिअप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।**' उसका मिथ्यात्व रूपी मोह नाश हुए बिना रहता नहीं। आहाहा ! लोगों को कठिन (लगता है)। तत्त्वज्ञान चीज़ क्या है, परमेश्वर क्या है, उसकी खबर नहीं और अपना विचार करे नहीं, समझे नहीं, जबरदस्ती तो कोई किसी को समझ सकता नहीं। अनन्त तीर्थंकर आये तो भी ताकत है कि कोई द्रव्य को समझ सके ? वह तो समझने की योग्यता हो तो निमित्त कहने में आता है।

कहते हैं हे नाथ ! आहाहा ! देखो, ये मुनि ! ९०० वर्ष पहले (हुए)। सर्वज्ञ परमात्मा का भरत में विरह था। भरत में विरह था। परन्तु समवसरण में बैठे सर्वज्ञ को याद किया है। सर्वज्ञ में मानो ऋषभदेव भगवान बैठे हो ! प्रभु उनकी नजर में—ज्ञान में प्रत्यक्ष दिखते हैं। आपका सर्वज्ञपना और आपकी अनेकान्तवाद की वस्तु की स्थिति विकट जैसे लगती है, परन्तु जिसको जानने में आता है... अहो ! ज्ञान का सूर्य मैं हूँ। सर्वज्ञ का ज्ञान का सूर्य पूर्ण हो गया, मेरे में प्रगट करने की ताकत है, ऐसी मुझे मेरे में प्रतीति, अनुभव हो गया। ऐसा हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है। उसको सर्वज्ञ को जानने में आये, ऐसा कहने में आता है। नहीं तो सर्वज्ञ है, उसकी प्रतीति उसको है नहीं। दलीचन्दभाई ! सूक्ष्म बात है। ऐसा सुनकर बैठे, ऐसा नहीं है। मेहनत कब की है ? कमाना, कमाना, कमाना। ये करूँ,

ये करूँ, ये करूँ। दृष्टान्त तो है न, सच्ची बात है न? पैसे आना, वह कोई आपके प्रयत्न का फल नहीं है। सच्ची बात होगी? होशियारी का फल नहीं है। वह तो आना हो तो आये। 'हुन्नर करो हजार, भाग्य बिन मिले नहीं।' आपसे ज्यादा बुद्धिवाले बहुत होते हैं। आपके जितना नहीं मिलता है। और आपको लाखों रुपये पैदा होते हैं, वह क्या आपकी बुद्धिबल के कारण है? यह तो पुरुषार्थ से होता है। पुण्य से नहीं। सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र पुरुषार्थ से होता है, कर्म से नहीं। कर्म मदद करे तो होता है, ऐसा तीन काल में है नहीं।

(यहाँ) ऐसी भक्ति करते हैं। हे नाथ! **वास्तव में आपके वचन ही अनेकान्तवाद रूपी विकट मार्ग को सिद्ध करते हैं तथा आपका सर्वज्ञपना ही समस्त मनुष्यों के हृदय का प्रकाश करनेवाला है।** लो, ३३ (गाथा पूरी) हुई। अब, ३४वीं गाथा है, वह थोड़ी लम्बी है। यहाँ ... हो गया, ३४ में ऐसा कहते हैं, प्रभु! जैसे किसी की आँख निर्मल हो और गगन में पंखी उड़ते हो और उसके पास अन्धा बैठा हो। अन्धा, तीक्ष्ण दृष्टिवाले को कहे कि, देखो! देखनेवाला कहता है, १०८ पंखी गगन में उड़ते हैं। अन्धा कहता है कि नहीं, १०८ नहीं है। परन्तु तुझे दिखता नहीं, तू कैसे बोलता है? यह बात ३४वीं गाथा में कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल-५, शनिवार, दिनांक - १६-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ३३ से ३६, प्रवचन-७९३

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। उसके करनेवाले ९०० वर्ष पहले सर्वज्ञ अनुसारी आत्मा की दृष्टि का अनुभव-अनुभूति हुई थी और इससे अतिरिक्त स्वरूप में चरने का चारित्र-आनन्द की प्राप्ति बहुत हुई थी। चारित्र अर्थात् आत्मा के आनन्द का अनुभव जो पहले हुआ, बाद में स्वरूप में लीनता का आनन्द का बहुत आनन्द की वृद्धि हुई थी। ऐसी दशा को मुनिपना अथवा आचार्यपद, उपाध्याय पद कहते हैं। ऐसे पद्मनन्दि आचार्य थे। वन में—जंगल में रहते थे। एक बार भगवान की भक्ति का विकल्प आया। जंगल में रहते हैं। परमात्मा का भरतक्षेत्र में विरह है। तो उसका विरह दूर करने को भक्ति का भाव आया। तो ऋषभदेव भगवान की स्तुति करते हैं। एक में अनन्त आ जाते हैं। परन्तु वर्तमान ऋषभदेव की पहले से (भक्ति करते हैं)। पूर्व में सर्वार्थसिद्धि में थे, वहाँ से लेकर यहाँ केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, वहाँ तक का अधिकार भक्ति में आ गया है। अब यहाँ ३४वीं गाथा कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं ?

हे प्रभु! देखो! परमात्मा की पहिचान करना भी बड़ी आत्मा की कीमत है। परमात्मा है जगत में। एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में जिनको केवलज्ञान पर्याय तीन काल-तीन लोक जानने की प्रगट है, उनको सर्वज्ञ अथवा उनको परमेश्वर कहते हैं। ऐसी परमेश्वर की भक्ति यथार्थ किसे कहते हैं ? एक समय में भगवान का ज्ञान तीन काल-तीन लोक हस्तामलक की भाँति, जैसे हाथ में आँवला रहता है, स्पष्ट दिखता है; वैसे तीन काल-तीन लोक एक ज्ञान की एक समय की एक पर्याय में सब जानने में आता है। ऐसे भगवान का भरोसा-प्रतीति करने में, निमित्त, राग और अल्पज्ञ की रुचि छूटकर अपना स्वभाव केवलज्ञान प्रगट करने की पूँजी अन्दर में ध्रुव है, ऐसे ध्रुव स्वभाव पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दृष्टि वास्तविक परमात्मा की प्रतीति करनेवाला होता है। समझ में आया ?

ऐसे भगवान की भक्ति तो समझे बिना अनन्त बार की। समवसरण में साक्षात् भगवान विराजमान थे और उस समय में अवतार मनुष्यपने लिया और भगवान की भक्ति

में कल्पवृक्ष का फूल, मणिरत्न का दीपक और हीरे का थाल (लेकर) ऐसी भक्ति की। परन्तु वह तो शुभभाव हुआ। वह परद्रव्यानुसारी विकल्प है। ऐसी भक्ति, अपना आत्मा ज्ञानस्वभाव का परिपूर्ण चैतन्य है। राग से, शरीर से, कर्म से, निमित्त से भिन्न है—ऐसा भान हुए बिना केवलज्ञानी सर्वथा दोषरहित है। ऐसे निर्दोष पर्याय की प्रतीति अपना आत्मा राग और निमित्त से रहित है, ऐसे निर्दोष स्वभाव की प्रतीति किये बिना, सर्वज्ञ पूर्ण निर्दोष है, ऐसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि को होती नहीं। समझ में आया? ऐसे तो अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। अनन्त बार ग्यारह अंग पढ़े। णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं ऐसा अनन्त बार किया। जाप किया। परन्तु वह सब विकल्प-राग (था)। उसमें अपना स्वभाव एक समय में केवलज्ञान प्राप्त करने की ताकत मैं रखता हूँ, ऐसे राग की अल्पता, तुच्छता और निमित्त की पृथक्ता, राग की विभावता, पर की पृथक्ता और स्वभाव की सामर्थ्यता,... समझ में आया? स्वभाव की सामर्थ्यता की प्रतीति हुए बिना राग की पृथकता और जड़ आदि परपदार्थ की भिन्नता, उसके ज्ञान में आती नहीं। और केवलज्ञान की जब प्रतीति होती है, अरिहन्तपद, तो अरिहन्त की जैसी पर्याय है, ऐसी पर्याय मेरे में होनेयोग्य है। ऐसी जब दृष्टि होती है तो वह दृष्टि अपना ज्ञ-स्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, पूर्ण ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि पड़ते ही अपने को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होता है। तब सर्वज्ञ की प्रतीति है, व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? इसके बिना सर्वज्ञ की प्रतीति, अन्तर का कोई कारण मिले बिना यथार्थ प्रतीति होती नहीं।

आचार्य कहते हैं, हे नाथ! आप कैसे हो, मैंने जान लिया है। मुनि थे। जंगल में दिगम्बर सन्त थे। एक वस्त्र का धागा नहीं। विकल्प आया, थोड़ा विकल्प था। परन्तु अन्तर में मैं राग और विकल्प से पार आनन्दकन्द हूँ। केवलज्ञान की पर्याय एक समय में पूर्ण जानने की लायकात है तो मेरा आत्मा भी एक समय में पूर्ण जानने की लायकातवाला गुण रखता है। ऐसा गुण और गुण को धरनेवाला गुणी, ऐसा आत्मा का लक्ष्य और दृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन और सम्यक् पर्याय होती नहीं। और तब तक केवलज्ञानी की शक्ति की भी सच्ची प्रतीति कहने में आती नहीं। वह लिया है। देखो! ३३ गाथा तक तो सब लिया है।

अब, आज ३४वीं चलती है। क्या कहते हैं? देखो! हे नाथ! क्या केवलज्ञान

आपकी एक समय की पर्याय ! आहाहा ! समय एक और जानना अनन्त केवली और तीन काल एवं तीन लोक। समय एक और जानना त्रिकाल। समय एक ज्ञान का और जानना अनन्त द्रव्य। समय एक ज्ञान का और जानना अनन्त क्षेत्र। समय एक और जानना एक द्रव्य के अनन्त गुण। समय एक और अनन्त गुण की अनन्त एक समय की पर्याय। ऐसा सबको जानना, ऐसा केवलज्ञान परमात्मा की दशा है। कहते हैं, प्रभु ! कहाँ आपका केवलज्ञान और अज्ञानी लोग आपके साथ वाद और विवाद करते हैं कि ऐसा केवलज्ञान कैसे होता है ? एक समय में कैसा ज्ञान होता है ? तीन काल-तीन लोक को जानना, ऐसा सामर्थ्य तो हमको ख्याल में (आता नहीं)।

सर्वज्ञ वह कहते हैं वर्तमान सबको जाननेवाला विशेष, वह सर्वज्ञ, ऐसा भी कितने ही प्राणी सर्वज्ञ की व्याख्या करते हैं। पण्डितजी ! मालूम है। समझ में आया ? विचार विशिष्ट। दूसरे से विचार में विशेष थे। उसका नाम (सर्वज्ञ)। उस समय की सब चीज़ को जाननेवाला दूसरे विशेष (जाननेवाला) सर्वज्ञ। ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञान को जानने से सब जाना जाता है। सब जानने में आता है। उसका नाम केवलज्ञान है। यहाँ कहते हैं कि हे नाथ !

गाथा ३४

विप्पडिवज्जइ जो तुह गिराए मइसुइबलेण केवलिणो।
वरदिट्ठिदिट्ठणहजंतपक्खिगणणेवि सो अंधो।।३४।।

अर्थ - हे भगवन्! जो मनुष्य, मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान के ही बल से आप केवली के वचन में विवाद करता है, वह मनुष्य उस प्रकार का काम करता है कि जैसे, अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा देखे हुए आकाश में जाते हुए पक्षियों की गणना में जिस प्रकार अन्धा संशय करता है।

भावार्थ - जिसकी दृष्टि तीक्ष्ण है - ऐसा कोई मनुष्य यदि आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की गणना करे और उस समय कोई पास में बैठा हुआ अन्धा पुरुष उससे पक्षियों की गणना में विवाद करे तो जैसे उस सूझते पुरुष के सामने उस अन्धे का

विवाद करना निष्फल है; उसी प्रकार हे प्रभो! हे जिनेश! यदि कोई केवल मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान का धारी आपके वचन में विवाद करे तो उसका भी विवाद करना निरर्थक ही है, क्योंकि आप केवली हैं तथा ज्ञान में समस्त लोक और अलोक के पदार्थ हाथ की रेखा के समान झलक रहे हैं और वह प्रतिवादी मनुष्य, मतिज्ञान-श्रुतज्ञान का धारी होने के कारण थोड़े ही पदार्थों का ज्ञाता है।

गाथा - ३४ पर प्रवचन

विप्पडिवज्जइ जो तुह गिराए मइसुइबलेण केवलिणो।
वरदिट्ठिदिट्ठणहजंतपक्खिगणणेवि सो अंधो।।३४।।

क्या कहते हैं ?

विप्रतिपद्यते यस्तव गिरि मतिश्रुतिवलेन केवलिनः।
वरदृष्टिदृष्टनभोयात,-पक्षिगणनेऽपि सोऽन्ध।।३४।।

क्या कहा ? हे भगवान! **जो मनुष्य,...** प्रभु! **मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के बल से...** सच्चा मति-श्रुत नहीं, हों! मात्र मति और श्रुत का थोड़ा क्षयोपशम हुआ, उसके बल से। **आप केवली के वचनों में विवाद करता है,...** क्या कहते हैं ? आप केवली के वचन में विवाद करते हैं। वह कैसा है ? **वह मनुष्य...** ऐसा काम करता है कि **अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा...** देखो! क्या कहते हैं ? **अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा आकाश में की गई पक्षियों की गणना में अन्धे व्यक्ति के समान संशय करता है।** क्या कहा ? दृष्टान्त क्या दिया ?

किसी की दृष्टि बहुत सूक्ष्म और स्वच्छ है। आँख की। वह, आकाश में गमन करनेवाले पक्षी को देखता है। कबूतर को देखता है। देखता है, ऐसे नजर करता है, देखता है और (पक्षी) चले जाते हैं और गिनता है, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात। प्रभु! जैसे स्वच्छ दृष्टिवाला, तीक्ष्ण दृष्टिवाला गगन में जानेवाले पक्षी की गणना की संख्या जानता और कहता है, उसके साथ अन्धा होड़ करता है कि नहीं, इतने पक्षी नहीं हैं। तुम कहते हो उतने नहीं हैं। तूने कैसे जाना कि नहीं हैं ? तेरी दृष्टि तो अभी नीचे भी नहीं पड़ती,

आकाश में पड़ती नहीं और आकाश में भी गमन करनेवाला पक्षी, स्थिर नहीं। समझ में आया ? जाते हुए, पाठ है। आकाश में गमन करते हुए। कैसा न्याय लिया है ?

एक तो आकाश दूर, उसमें गमन करते हुए पक्षी और उसकी गणना करना कि ये १०८ हैं। उसके साथ अन्धा, जिसको मति-श्रुत का अल्प विकास है, सम्यग्ज्ञान नहीं। मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान हो, उसको तो केवलज्ञान की समार्थ्य कितनी है, उसकी प्रतीति हो जाती है। समझ में आया ?

जयधवल में दृष्टान्त दिया है कि केवलज्ञान एक अंश है। पूर्ण अंश है, उस अपेक्षा से उसको अंशी कहते हैं। और मति एवं श्रुतज्ञान उस अंशी का एक अंश है। ध्यान रखना! अंशी का ज्ञान हुए बिना उसका ज्ञान होता है, ऐसा होता नहीं। दृष्टान्त दिया है स्तम्भ का, जयधवल में। स्तम्भ है, स्तम्भ। उसकी एक हजार हांस होती है। हांस होती है न ? क्या कहते हैं ? तुम्हारे में हांस को क्या कहते हैं ? बोलो तो सही। आप हिन्दी जानते हो या नहीं ? पहलू। ऐसे पहलू (होते हैं)। एक पहलू जिसने जाना, वह पूर्ण जितना स्तम्भ है, स्तम्भ का अंश है, ऐसे पूर्ण को जाने बिना एक अंश का जानना होता नहीं। यह दृष्टान्त जयधवल में वीरसेनस्वामी ने दिया है। लोग कहते हैं कि मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान का अंश ? केवलज्ञान तो, उसकी प्रकृति सर्वघाति है। तो वह तो सर्वथा केवलज्ञान होता है तो होता है। उसमें अंश कहाँ से आया ? परन्तु जयधवल में वीरसेनस्वामी कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! तुझे ज्ञान की खुमारी और ज्ञान की एक समय में ताकत क्या है अरिहन्त की, उसका तूने कभी विचार किया नहीं, निर्णय किया नहीं।

एक समय में केवलज्ञान की पर्याय जिसको प्राप्त सर्वज्ञ पद है, तीन काल-तीन लोक, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त भव और अनन्त भाव, ऐसा जिसकी एक समय की पर्याय में जानने में आया, ऐसा केवलज्ञान, उसको यहाँ अंशी अर्थात् पूर्ण कहा। उसका अंश मति और श्रुत। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उसका अंश है। उस अंश में द्रव्यस्वभाव का लक्ष्य करके सर्वज्ञपद आत्मा में है, ऐसा लक्ष्य करके मति-श्रुत हुआ, तो उस मति-श्रुत में पूर्ण केवलज्ञान कैसा है, ऐसी भी प्रतीति उसमें आ जाती है। समझ में आया ?

पूरे स्तम्भ का पहलू, एक पहलू किसका है, ऐसा ज्ञान हुए बिना पहलू का ज्ञान

होता नहीं। एक पहलू पूरे स्तम्भ का है, पूरा स्तम्भ ऐसा है, उसका एक पहलू है। ऐसे केवलज्ञान की एक समय की पूर्ण पर्याय, उसको अंशी अर्थात् पूर्ण कहने में आता है। उसका मति-श्रुतज्ञान अपना आत्मा स्वसंवेदन द्वारा राग से, विकल्प से, मन से, शरीर से भिन्न होकर अपने आत्मा में जब सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होता है, तब उस ज्ञान को मति-श्रुतज्ञान कहने में आता है। शास्त्र पढ़ने की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? शास्त्र पढ़ा हो या नहीं पढ़े हो।

अन्तर की चीज़ ज्ञान की ज्योति चैतन्यमूर्ति प्रभु है, अन्दर में जाकर उसका स्वसंवेदन करते हैं, तब उसे सम्यग्दृष्टि और साथ में सम्यक् मति और श्रुत उत्पन्न होता है। मति-श्रुत में केवलज्ञान कैसा है, उसकी प्रतीति आ जाती है। उसको शंका होती नहीं। यहाँ तो अभी केवलज्ञान में शंका (करते हैं), भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे। सबको देखे तो क्या हुआ केवलज्ञान में? लो, ऐसा कहते हैं। भविष्य की पर्याय केवलज्ञानी अनिश्चितरूप से देखता है; जब होगी, तब देखे। अरे! भगवान! केवलज्ञान अरिहन्त क्या है, यह तुझे खबर नहीं है। एक समय का केवलज्ञान भविष्य में अनन्त काल के बाद इस जीव को सम्यग्ज्ञान होगा, मतिज्ञान होगा, सम्यग्दर्शन होगा अथवा मिथ्यात्व होगा, सिद्धपद होगा, वह सब एक समय में पहले से तीन काल की बात जानते हैं। अनिश्चित नहीं। भविष्य में होगी तब जानेगा, ऐसा नहीं। हुई, है और होगी, सब पर्याय को भगवान का ज्ञान एक समय में जानता है, पूर्ण। इस बात की अभी शंका बहुत उठी।

जब क्रमबद्धपर्याय बाहर आयी, क्रमबद्धपर्याय की बात आयी और शंका उठी। अरे! भगवान का केवलज्ञान ऐसा माने, एक समय में सबको देखे और ऐसा हो तो पर्याय क्रमबद्ध हो गयी, एक के बाद एक होनेवाली होगी, भगवान ने देखा उस समय में वहाँ होनेवाली उसके द्रव्य के कारण से होगी। और केवलज्ञान जब निश्चित करेगा कि तीन काल-तीन लोक जैसा जाना, वैसा होगा। तो हमें पुरुषार्थ करने का कहाँ रहा? अरे! भगवान!

केवलज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष स्पष्ट स्वसंवेदनज्ञान का अनुभव करते (हुए) तीन काल-तीन लोक जानने में आ जाता है। ऐसे ज्ञान की प्रतीति जिसको होती है, उसकी स्वभावसन्मुख दृष्टि हुए बिना केवलज्ञान की

सच्ची प्रतीति होती नहीं। समझ में आया? लालचन्दजी सेठ! यह समझना पड़ेगा, ऐसा नहीं चलेगा। समझे बिना मोक्ष हो जाए, ऐसा नहीं है। एक समय में भगवान का ज्ञान अनन्त काल पहले जो हुआ, कोई सिद्ध की पर्याय (हुई), उसको भी वर्तमान में जानते हैं। अनन्त काल के बाद... शास्त्र में लेख है, आयेगा कलशटीका में, सर्वज्ञ के ज्ञान में... क्या है शब्द? सर्वज्ञ के ज्ञान में नोंध है। कलशटीका आयेगी। क्या है? आत्मानुभूति।

... जीव को मोक्ष पहुँचे उसका काल परिमाण है। यह जीव इस समय मोक्ष जायेगा, उसका माप काल में आया है। और यह जीव इतने काल के बाद मोक्ष जायेगा, उसकी नोंध केवलज्ञान में है। सूक्ष्म बात है। भगवान की प्रतीति करना... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञानी खाताबही रखते हैं। देखो! श्लोक कौन-सा है? '**उभयनयविरोधध्वंसिनी**'। लो, उसमें भी है, हों! '**उभयनयविरोधध्वंसिनी**'। है न? कौन-से नम्बर का है? चौथा है या नहीं? वह तो चौथा है। चौथा है, देखो! इसमें भी आयेगा। देखो! यहाँ है देखो! यह पुस्तक लेना है तो पुस्तक लो। ... देखो! देखो! **यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है।** आप लोग नोंध नहीं करते? नवनीतभाई! खाताबही में नोंध-खाताबही करते हैं या नहीं? केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में यह जीव इस काल में मोक्ष जायेगा, इस काल में मिथ्यात्व होगा, इस काल में निगोद में जायेगा, ऐसी सब केवलज्ञान में नोंध है। अरे! केवलज्ञान किसको कहते हैं, लोग (मात्र) णमो अरिहन्ताणं बोलते हैं। परन्तु जिसे केवलज्ञान की प्रतीति आती है, उसको मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा हो जाता है। राग का करनेवाला भी नहीं और देह की क्रिया करनेवाला भी नहीं। जैसे सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक को देखते-जानते हैं, ऐसा मैं भी जानने-देखनेवाला हूँ, एक पुण्य का विकल्प आता है, उसका मैं कर्ता नहीं, मेरा काम नहीं। ऐसा जब सम्यग्ज्ञान होता है, तब केवलज्ञान की सच्ची प्रतीति आती है। समझ में आया? वह बात अभी अरिहन्तदेव किसको कहना, सर्वज्ञ परमेश्वर किसको कहते हैं।

मोक्ष पहुँचने का काल परिमाण है। विवरण-यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है। वह जीव संसार में भ्रमते-भ्रमते जब अर्ध पुद्गलपरावर्तनमात्र रहता है, तभी सम्यक्त्व उपजानेयोग्य है। इसका नाम

काललब्धि कहलाता है। यद्यपि सम्यक्त्व रूप जीवद्रव्य परिणमता है, तथापि काललब्धि के बिना... उसकी पर्याय के काल में पुरुषार्थ बिना, **करोड़ उपाय जो किये जायें तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नहीं, ऐसा नियम है।** आहाहा! देखो! भगवान के ज्ञान में-परमेश्वर के ज्ञान में यह जीव काल में मोक्ष जायेगा, इस काल में मिथ्यात्व प्राप्त करेगा, उस काल में निगोद में जायेगा, इतनी सब केवलज्ञान में नोंध है। आहाहा! भगवान खाताबही रखते होंगे? इसमें नोंध (शब्द) लिया है।

भगवान! ज्ञान की सामर्थ्य कितनी है, यह तुझे मालूम नहीं और तू अन्धा, जैसे देखनेवाला पुरुष आकाश में गमन करते पक्षी की संख्या बताता है, उसके साथ अन्धा स्पर्धा करता है कि ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। लेकिन कहाँ से तू ऐसा नहीं कहते हो? नहीं देखा नीचे, नहीं देखा आकाश, नहीं देखा पक्षी, नहीं देखी गति। कैसी गति होती है और कैसा पक्षी है। अज्ञानी आत्मा का भान बिना केवलज्ञान की शंका अनेक प्रकार से उठाते हैं। अन्धा, स्वच्छ दृष्टिवन्त के साथ गणना करने में वाद करता है, ऐसे अज्ञानी वाद करते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान केवलज्ञान में... ऐसा कहा, देखो!

हे नाथ! **अच्छी दृष्टिवाले मनुष्य द्वारा...** देखे हुए आकाश में जाते हुए पक्षी, उसकी **गणना में अन्धे व्यक्ति के समान संशय करता है।** ऐसा केवलज्ञान के साथ अज्ञानी संशय करता है। ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। भगवान ऐसा जाने? भविष्य की पर्याय होगी, तब जानेंगे। ज्ञेय जब होगा तो ज्ञेय के कारण ज्ञान है, ज्ञेय अनुसार ज्ञान है। तो जब ज्ञेय में पर्याय होगी, तब जानेगा—ऐसा है नहीं, तीन काल में। सुन! तुझे केवलज्ञान और परमात्मा क्या है, यह तुझे खबर नहीं।

एक समय में केवलज्ञानी भूतकाल, वर्तमान और भविष्य सबकी पर्याय हुई, है और होगी, एक समय में पहले जानते हैं। एक समय में जानने की ताकत रखते हैं। ऐसे केवलज्ञानी की जिसको प्रतीति होती है, ऐसा मैं भी ज्ञाता-दृष्टा हूँ, मैं राग और शरीर की क्रिया करनेवाला नहीं। सर्वज्ञ पूर्ण ज्ञान से जानने-देखनेवाले हैं, मैं अल्प ज्ञान से भी जानने-देखनेवाला हूँ। देह की क्रिया, राग की क्रिया मेरा कर्तव्य नहीं और में कर्ता नहीं। ऐसी अपने में सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान हुए बिना केवलज्ञान की सच्ची प्रतीति उसको होती नहीं और उसकी भक्ति भी सच्ची होती नहीं।

परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने कहा है, हे नाथ! आपकी भव-भव में मैंने पूजा की। भव-भव में समवसरण में आया। जब मनुष्यपना और समवसरण था वहाँ। लेकिन आपने कही क्या चीज़ है (और) आपकी आज्ञा मैं समझा नहीं। और आज्ञा समझे बिना अनन्त काल ऐसे ही गया। या तो पुण्य की क्रिया (की)। बाद में कहेंगे, इस गाथा के बाद में। भगवान का ज्ञान ऐसा है और उसका नय बताने की चीज़ ऐसी है कि जगत में एकान्त नय माननेवाले के साथ वह नय जीत लेती है। अज्ञानी के नय के एकान्त पक्ष को भगवान का ज्ञान अनेकान्त सबको जीत लेता है। कोई कहता है कि आत्मा अकेला शुद्ध है, कोई कहता है कि आत्मा पर्याय में अशुद्ध है तो पूरा अशुद्ध ही है। कोई कहता है कि आत्मा एक ही है, कोई कहता है कि आत्मा द्रव्य ही है, पर्याय नहीं है, कोई कहता है कि पर्याय है और द्रव्य नहीं है, कोई कहता है कि आत्मा है, परन्तु एक गुणवाला है। एक आत्मा अनन्त गुणवाला है, ऐसी भगवान! आपकी कथनी उसके सामने एकान्त नयवाले जो विरोध करते हैं, वे, अन्ध (पुरुष) जैसे देखनेवाले पुरुष के साथ विवाद करता है, ऐसा वह विवाद अज्ञानी का है। आपके साथ मिलान होता नहीं। समझ मे आया?

देखो! यह दृष्टान्त दिया। अन्धा, ऐसे जा रहे हैं, ऐसा एक आदमी देखता है, उसे कहता है, नहीं। अरे! तुझे कैसे मालूम पड़ा कि इतने नहीं है। तू तो जमीन भी नहीं देखता। तेरे शरीर को भी नहीं देखता। तो आकाश में गमन करनेवाले बगुले १०८ है, ऐसा तूने कहाँ से देखा? तो देखनेवाले के साथ तू अन्धा विवाद कैसे कर सकता है। ऐसे (यहाँ) कहते हैं, हे नाथ! आचार्य कहते हैं, आचार्य महाराज स्वयं। जंगल में रहते हुए भक्ति उछली है। हे नाथ! आपका केवलज्ञान एक समय की ज्योति परमेश्वर पद, उसके साथ अज्ञानी शंका और तर्क करते हैं कि ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता। तीन काल का ज्ञान हो तो भविष्य की पर्याय जब होगी, वह भी उसके पहले ज्ञान में आ गया तो भविष्य में होगी उसको बदलना! आत्मा बदल सकता नहीं। ऐ... चिमनलालभाई! इसमें कुछ समझ में आता है? ऐसे ही समझे बिना कुछ होनेवाला नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आता है न? समझ में आया? वह तो दूसरे के लिये कहते हैं।

क्या कहते हैं? हे नाथ! **जिसकी दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण है, ऐसा कोई मनुष्य, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की गणना करे और उस समय पास में बैठा हुआ कोई**

अन्धा पुरुष, उन पक्षियों की गणना में विवाद करे तो उस अन्धे का विवाद करना निष्फल है... हे नाथ! हे परमेश्वर परमात्मा! **कोई मति-श्रुतज्ञानधारी...** या अज्ञान को धरनेवाला **आपके वचनों में विवाद करे तो उसका विवाद करना निरर्थक ही है...** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है, वह केवलज्ञान का कण-अंश है। आहाहा! समझ में आया? अभी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में, हों! श्रावक तो पीछे रहा और मुनि तो कहीं दूर रह गये। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में होते हैं। ...! बहुत बात ऐसी सूक्ष्म है।

सर्वज्ञ पद ने जैसा देखा, ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवा दूसरे में हो सकती नहीं। तीन काल-तीन लोक में उस पन्थ के साथ दूसरे का मिलान और मेल हो सकता नहीं। एक समय में भगवान ने अनन्त गुण देखे, अनन्त पर्याय देखी, अनन्त आत्मा देखे, अनन्त क्षेत्र देखा, अनन्त भव देखे, अनन्त एक द्रव्य का भाव देखा। भाव समझे? गुण। ऐसे ज्ञान की पर्याय में जैसा है, उसके साथ अज्ञानी मिलान करके वाद करे, अन्धा देखनेवाले के साथ वाद करे, ऐसी चीज़ें हैं।

फिर ३५ में थोड़ी बात करते हैं, देखो! वह थोड़ी सूक्ष्म बात ली है।

गाथा ३५

भिण्णाण परणयाणं एक्केक्कमसंगयाणया तुज्झ।
पावंति जयम्मि जयं मज्झम्मि रिऊण किं चित्तं।।३५।।

अर्थ - हे भगवन्! हे प्रभो! आपके नय, परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले, भिन्न-भिन्न, ऐसे परवादियों के नय (कुनय) रूपी वैरियों के मध्य में तीनों जगत में विजय को प्राप्त होते हैं; इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं।

भावार्थ - परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले तथा एक-दूसरे के विरोधी ऐसे शत्रु, जिनमें एकता है तथा एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं; ऐसे योद्धाओं के द्वारा जिस प्रकार बात की बात में जीत लिये जाते हैं तो जैसे उन शत्रुओं को जीतने में कोई आश्चर्य नहीं है; उसी प्रकार के प्रभो! जो परवादियों के नय परस्पर में एक-दूसरे से सम्बन्ध नहीं

रखनेवाले हैं, भिन्न-भिन्न हैं; ऐसे उन नयों को यदि परस्पर में सम्बन्ध रखनेवाले तथा अभिन्न आपके नय जीत लेवें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

गाथा - ३५ पर प्रवचन

भिण्णाण परणयाणं एक्केक्कमसंगयाणया तुज्झ।
पावंति जयम्मि जयं मज्झम्मि रिऊण किं चित्तं।।३५।।

हे भगवान! हे परमात्मा! हे परमेश्वर! **आपके नय,...** नय अर्थात् ज्ञान का अंश। भगवान ने निश्चय से आत्मा अखण्डानन्द है, ऐसा कहा। व्यवहार से पर्याय समय की है, ऐसा कहा। निश्चय से अखण्ड शुद्ध है, ऐसा कहा। व्यवहार से वर्तमान अशुद्ध संसारी है, ऐसा कहा। त्रिकाल आत्मा आनन्द है, ऐसा कहा। वर्तमान संसारी पर्याय में दुःखी है, ऐसा कहा। ऐसा निश्चय-व्यवहारनय का सम्बन्ध सर्वज्ञ के पद में होता है। आपके सिवा दूसरे, या तो एकान्त द्रव्य ही मानते हैं, या तो एकान्त पर्याय मानते हैं, या एकान्त शुद्ध ही मानते हैं, या एकान्त अशुद्ध ही मानते हैं, या एकान्त सुखी आत्मा को मानते हैं। देखो! आत्मा कभी (अशुद्ध हुआ है) ? आत्मा तो निर्मल है। अरे! सुन तो सही। वस्तु निर्मल है। परन्तु पर्याय में निर्मलता हो तो मुक्ति करने का प्रयास करने का कहाँ रहा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परतन्त्र थोड़ा भी नहीं है। वह प्रश्न आया है। अरे! भगवान! वह नय नहीं। सिद्ध को भी कोई कहते हैं कि भगवान का ऐसा अनेकान्त नय है कि परमात्मा सिद्ध जो लोकाग्र में विराजते हैं, (वे भी) कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र हैं। अरे! भगवान! क्या देखे ? क्या तेरी बात ? सर्वथा स्वतन्त्र में परतन्त्र नहीं है, उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! क्या करें ? वर्तमान में ज्ञान की विपरीतता और लोगों को उतनी गरज नहीं है।

मुमुक्षु : अलोक में जा नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलोक में जा नहीं सकता, ऐसी उसकी योग्यता है। क्या धर्मास्तिकाय नहीं है, इसलिए नहीं जाता है, ऐसी बात है नहीं तीन काल में। अपनी सिद्ध

पर्याय की पूर्णता उस समय में, उस क्षेत्र में रहने की लायकात है। ऊर्ध्व जाने की लायकात हो और वहाँ रुकना पड़े, ऐसी चीज़ है नहीं। भगवान के ज्ञान में आनन्दसहित जो पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, वह पूर्ण स्वतन्त्र है। प्रत्येक पर्याय में, प्रत्येक गुण में और प्रत्येक द्रव्य में। समझ में आया? एक समय भी सिद्ध भगवान परतन्त्र नहीं है। अभी कितने ही ... वाले कहते हैं कि सिद्ध भगवान भी स्वतन्त्र हैं और ऊपर नहीं जाते हैं, उतना परतन्त्र है—तो अनेकान्त कहने में आता है। अरे! भगवान! क्या कहते हो? परमात्मा भी परतन्त्र? अरे! क्या कहना है तुझे? समझ में आया? परतन्त्र रहना है और परतन्त्र की दृष्टि है।

भगवान परमात्मा स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... परिपूर्ण स्वतन्त्र। कर्ता की व्याख्या वह है कि स्वतन्त्रपने होकर अपनी पर्याय का इष्टपना का कार्य करे, उसका नाम कर्ता और स्वतन्त्र कहने में आता है। सिद्ध में भी एक कर्ता नाम का गुण अनादि पड़ा है। कर्ता की स्वतन्त्रपने, अपनी उस समय की अनन्त गुण की पर्याय स्वतन्त्रपने करे और वह पर्याय स्वतन्त्र उसका इष्ट नाम कार्य है, उसको सिद्ध भगवान कहते हैं। समझ में आया?

केवलज्ञान भी, केवलज्ञान जो प्रगट होता है, वह भी कर्ता स्वतन्त्रपने कार्य करता है। एक समय की केवलज्ञान की पर्याय, उसका आत्मा कर्ता होकर (स्वतन्त्र कार्य करती है)। प्रवचनसार में १६वीं गाथा में कहा है। अरे... आत्मा! पर की सामग्री खोजने में क्यों व्यग्र होता है? १६वीं गाथा में कहा है। अरे.. आत्मा! पर की सामग्री खोजने में क्यों व्यग्र होता है? १६वीं गाथा है न? स्वयंभू। १६वीं। स्वयंभू। केवलज्ञानी है वह स्वयंभू है। अपने से प्रगट हुआ है। कोई (अन्य) कारण से नहीं। कर्म हटा तो प्रगट हुआ, संहनन मजबूत है तो प्रगट हुआ, ऐसी बात है नहीं। १६वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, सर्वज्ञ-अनुसारी जो वस्तु थी, उसे वहाँ प्रसिद्ध करते हैं।

भगवान आत्मा, जब परमात्मा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, वह स्वतन्त्रपने अपना कर्ता, अपना कार्य, अपना साधन, अपने से करके अपने को देना, अपने में से प्रगट होना, अपने आधार से प्रगट होना। ऐसा षट्कारक का वर्णन प्रवचनसार में १६वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने केवलज्ञान का किया है। स्वयंभू। शक्ति में था, प्रभु! आपको प्रगट हो गया। आप पूर्ण स्वतन्त्र हो। कोई कहे कि अभी स्वतन्त्र है और कदाचित् परतन्त्र हैं, वह बात वस्तु के स्वरूप में है नहीं।

कहते हैं कि भगवान! **आपके नय, परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले भिन्न-भिन्न...** कोई एकान्त माने कि एकान्त परतन्त्र, एकान्त स्वतन्त्र, ऐसे नहीं। एकान्त सिद्ध स्वतन्त्र है और परतन्त्र बिल्कुल नहीं। संसारी प्राणी करने में, विकार और निर्विकार करने में स्वतन्त्र है परन्तु पर के आधीन होता है, अपना धर्म, उतनी अपेक्षा से परतन्त्र है। पर के कारण नहीं। आहाहा! क्या कहा? ४७ नय में आता है। ४७ नय है प्रवचनसार में। उसमें स्वतन्त्र, परतन्त्र है। ईश्वर, अनीश्वर दो नय ली है। आत्मा अपना स्वभाव और विभाव करने में स्वतन्त्र है। अपने से है, इसलिए स्वतन्त्र है। परन्तु निमित्त के आधीन होता है, उस अपेक्षा से परतन्त्र होने का भी पर्याय में अपना धर्म है, उस कारण से परतन्त्र होता है। पर के कारण से परतन्त्र होता है, ऐसा वस्तु में धर्म है नहीं।

यहाँ वह कहते हैं, हे नाथ! अज्ञानी एकान्त माननेवाला वस्तु का स्वरूप नहीं समझनेवाला, उसकी नय को आपकी सम्यक् नय जीत ले तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह कहते हैं, देखो! **परस्पर में सम्बन्ध नहीं रखनेवाले...** एक-दूसरे के विरोध ऐसा शत्रु, जिनमें एकता है और एक-दूसरे के विरोधी नहीं है, ऐसे योद्धाओं के द्वारा जिस प्रकार बात ही बात में जीत लिये जाते हैं, उन शत्रुओं को जीतने में कोई आश्चर्य नहीं है। हे नाथ! परवादियों के एकान्त नय समझे बिना की, वैरियो में परस्पर सम्बन्ध नहीं रखनेवाला भिन्न-भिन्न है।

उसी नयों के परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले, पर्याय स्वतन्त्र है, द्रव्य स्वतन्त्र है, पर्याय अंश है, द्रव्य त्रिकाल है। ऐसा नय का सम्बन्ध रखनेवाली आपके नय अज्ञानी के नय जीते तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। ये तो आचार्य शुरु करते... करते... करते... भक्ति में सूक्ष्म में आ गये हैं।

पहले तो ऐसा आया कि सर्वार्थसिद्धि में थे, तब भगवान से पूरी शोभा थी। परन्तु आप यहाँ आये तो यहाँ की शोभा बढ़ गयी। ऐसे करते-करते केवलज्ञानी की वाणी पर आये हैं। भक्ति तो किसे कहना? जिसके गुण की पर्याय इतनी सामर्थ्यवान! हे परमेश्वर! परम ईश्वर किसको कहना? परम ईश्वर—पूर्ण ईश्वर। पूर्ण ईश्वर में कुछ ईश्वर और कुछ अनीश्वर कहाँ से आया? पूर्ण ईश्वर। अपने गुण से, अपनी पर्याय से परमात्मा पूर्ण स्वतन्त्र और पूर्ण ईश्वर हैं। तो कहते हैं, हे नाथ! अज्ञानी अपनी कल्पना से विरुद्ध नय करते हैं,

ज्ञानी का नय उसको जीत लेते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात हुई, वह ख्याल में है। ३६।

दूसरी एक ५७वीं गाथा है, भाई! उसमें। ५७वीं है। ५६। उसके अनुसन्धान में है। देखो! क्या कहते हैं? ५७ में है, ५६। हे नाथ! मुनि को भगवान की भक्ति में विकल्प आया तो उसके गुण में कितनी प्रतीति है, गुण का सामर्थ्य है, उसकी बात करते हैं।

धरइ परमाणुलीलं, जं गब्भे तिहुयणंपि तंपि णह।
अंतो णाणस्स तुह, इयरस्स न एरिसी महिमा।।५६।।

हे परमात्मा! हे परमेश्वर! हे जिनेश्वर! **जिस आकाश के गर्भ में ये तीनों भुवन, परमाणुमात्र लीला को धारण करते हैं...** क्या कहते हैं? आहाहा! **जिस आकाश के...** अनन्त आकाश है। उसमें यह लोक एक परमाणु जितना है। क्या? अनन्त आकाश है न? अनन्त आकाश। बेहद आकाश अमाप है। सुबह बहुत कहा था। अमाप... अमाप... अमाप... कहीं माप नहीं है आकाश का। नास्तिक को भी क्षेत्र के अस्तित्व को सिद्ध करना पड़ेगा। ऐसा... ऐसा... ऐसा... कहीं भी आकाश का अन्त नहीं है। यहाँ कोई वृक्ष है या ... है या अब अन्त आ गया, ऐसा है नहीं। अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अलोक आकाश अमाप। भगवान! अमाप आकाश में चौदह लोक—चौदह ब्रह्माण्ड परमाणु तुल्य है। एक परमाणु तुल्य गर्भ में रहनेवाला है।

परमाणु के समान भासित होते हैं,... आकाश भी आपके ज्ञान में परमाणु के समान मालूम पड़ता है। क्या कहा? हे नाथ! अनन्त अमाप आकाश, उसमें चौदह ब्रह्माण्ड एक परमाणुतुल्य है। रजकण (ऐसा है), ये चौदह राजुलोक। वह अमाप अकाश आपके ज्ञान में परमाणुतुल्य है। आपके ज्ञान में अलोक तो परमाणुतुल्य जानने में आता है। इससे अनन्तगुना आकाश हो तो भी आपका ज्ञान जान सकता है। है? गंगवालजी! ५६वीं गाथा है।

धरइ परमाणुलीलं, जं गब्भे तिहुयणंपि तंपि णह।
अंतो णाणस्स तुह, इयरस्स न एरिसी महिमा।।५६।।

हे नाथ! ऐसे ज्ञान की महिमा तेरे अतिरिक्त दूसरे में कभी होती नहीं। देखो! परीक्षा करके निर्णय किया है। ऐसे ही माने कि भगवान सच्चे हैं, भगवान सच्चे हैं, ऐसा नहीं।

समझ में आया ? परीक्षा किये बिना मानना, उसको सच्ची मान्यता कहते नहीं। हे नाथ! आकाश अमाप ज्ञान की एक समय की पर्याय में परमाणुतुल्य आकाश आ जाता है। बात मस्तिष्क में आये नहीं। अमाप आकाश, जिसमें चौदह ब्रह्माण्ड परमाणु (तुल्य), अमाप आकाश केवलज्ञान की एक पर्याय में परमाणुतुल्य है। भाई! परमेश्वर की पर्याय और परमेश्वर का सामर्थ्य जिसको स्वीकृत हो, उसको मैं भी ऐसा आत्मा हूँ, मैं राग जितना नहीं, मैं निमित्त नहीं, मैं हमेशा अल्पज्ञ में रहनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो सर्वज्ञस्वभावी अन्तर में हूँ। सर्वज्ञस्वभावी अन्तर्दृष्टि होती है और अल्पज्ञ, राग और निमित्त की हेयबुद्धि होती है, तब सर्वज्ञ की सच्ची प्रतीति आती है। समझ में आया ? न्याय से है या नहीं ? जज है न, जज है। न्याय से बात चलती है न। नयावलम्बन मार्ग है।

हे नाथ! आहाहा! इतने परमेश्वर जिसके पेट में बैठते हैं,... समयसार की पहली गाथा में लिया न। पहली गाथा में। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं), अरे! जीवो। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे।**' ऐसे अनन्त केवलज्ञानी प्राणी अनन्त सिद्ध हुए, एक समय में तीन काल-तीन लोक जाननेवाली केवलज्ञान की पर्याय, ऐसे अनन्त केवली सिद्ध हुए, उन अनन्त सिद्धों की हमारे ज्ञान में हमने प्रतिष्ठा की है। हमारी ज्ञान की पर्याय जो वर्तमान चलती है, उसमें अनन्त सिद्धों की प्रतिष्ठा की है, स्थापन किया है। हमारी ज्ञान की पर्याय जो वर्तमान चलती है, उसमें अनन्त सिद्धों की प्रतिष्ठा की है, स्थापन किया है। हम अनन्त केवली को हमारी पर्याय में मेहमान के तौर पर प्रतिष्ठित किये हैं। आहाहा! मेहमान कहते हैं ? क्या कहते हैं ? मेहमान कहते हैं। मेहमान कहते हैं न ?

हम मोक्ष के मार्ग में निकले हैं। तो हे नाथ! शरीर में आपको प्रतिष्ठित नहीं करते हैं, राग में नहीं, विकल्प में नहीं। मेरी क्षयोपशम जो ज्ञान की एक समय की विकास की पर्याय-अवस्था है, अनन्त केवली को हम हमारे आँगन में प्रतिष्ठित करते हैं। आओ नाथ! हमारी पर्याय में पधारो। आहाहा! समझ में आया ? पहली गाथा का अर्थ है। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे।**' '**वंदित्तु**' का अर्थ है सिद्धों को आदर देना। '**वंदित्तु**' अर्थात् वन्दन करना, आदर देना। आदर देने की व्याख्या क्या ? कि राग और संयोग का आदर छोड़कर, अपने ज्ञान का वर्तमान विकास का अंश है, उसमें अनन्त सिद्धों को आदर देकर प्रतिष्ठित करना। पधारो नाथ, हमारे ज्ञान की पर्याय में।

अब, बाद में आचार्य कहते हैं, वह बात तो हमारी की। आचार्य कहते हैं। परन्तु श्रोता को हम कहते हैं, अरे... श्रोता! तुम्हारे ज्ञान का वर्तमान विकास अंश जो दिखता है, उतने में मैं भी अनन्त सिद्ध को प्रतिष्ठित करता हूँ। श्रोता के ज्ञान की पर्याय में अनन्त सिद्धों को प्रतिष्ठित करता हूँ। ना मत कहना कि अरे रे! इतना नहीं चलेगा। सुन तो सही। क्या कहा, समझ में आया? श्रोता को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य समयसार की पहली गाथा में कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका ली। अनन्त सिद्ध! कितने सिद्ध, कितने! ओहोहो! छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन चले गये। इतने सिद्ध, सबको तेरी ज्ञान की एक समय की पर्याय का विकास है, (उसमें) स्थापित करते हैं, स्थापित करते हैं। आहाहा! जिसके ज्ञान में अनन्त सिद्ध स्थापित करते हैं, उसकी दृष्टि का जोर कहाँ जाता है? राग में नहीं, निमित्त में नहीं, पुण्य में नहीं; उसका जोर जाता है अन्तर स्वभाव की ओर। नहीं तो सर्वज्ञ की प्रतिष्ठा श्रोता भी ले सकता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

बाद में कहते हैं, अब हम समयसार कहेंगे। सुन! समझ में आया? एक तपेला हो पानी का,... तपेला कहते हैं न? बर्तन... बर्तन। तपेला कहते हैं। आधा मण पानी भरा हो। उतने प्रमाण में एक लकड़ी का डट्टा लकड़ी का। ऐसे डाले (तो) पानी सब निकल जायेगा। अकेला डट्टा और बर्तन रह जायेगा। वैसे अपनी ज्ञानपर्याय में परमात्मा पहले से समयसार शुरु करते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, तुम्हारी एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध हम स्थापित करते हैं। अब, राग, अल्पज्ञ, निमित्त चले जायेंगे और तेरा लक्ष्य आत्मा पर हो जायेगा, तब अनन्त सिद्ध को तेरी पर्याय में स्थापन किये, ऐसा सच्चा हो जायेगा। तब सुनते-सुनते तेरा लक्ष्य आत्मा पर रहेगा, (तो) अल्पज्ञ और राग चला जायेगा। अकेला सर्वज्ञपद रह जायेगा। बड़ा कठिन, भाई! भक्ति भी कठिन की।

सवेरे की दृष्टि तो कठिन (लेकिन भक्ति भी कठिन)। भाई! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है, भैया! तूने सुना नहीं। अनन्त काल में सुना नहीं। 'श्रुत परिचित अनुभूता'। राग की कथा सुनी है, राग करना और भोगना। परन्तु रागरहित की ज्ञानसमृद्धि, उसकी भक्ति कभी यथार्थ की नहीं। और उसकी भक्ति किये बिना भगवान की सच्ची व्यवहार भक्ति भी कहने में आती नहीं। निश्चय बिना का व्यवहार, उसको भगवान को ना कहते

हैं कि वह व्यवहार नहीं है। वह अन्धा व्यवहार है। समझ में आया ? आहाहा ! हे परमेश्वर ! तुम्हारा दास होने में हमारी कितनी जिम्मेदारी है। परमेश्वर का सेवक होने में कितनी जिम्मेदारी है। आहाहा ! परमेश्वर का दास और सेवक होता है, वह राग और निमित्त का सेवक नहीं होता है। समझ में आया ? शुभ-अशुभराग आया, उसका सेवक नहीं होता है। उसका सेवक होता है, वह परमात्मा का सेवक नहीं रह सकता। समझ में आया या नहीं ? अरे.. भगवान ! सुन तो सही। तेरी चैतन्य की लीला क्या है। कभी सुनी नहीं। आचार्य तो ना कहते हैं कि तूने कभी हमारी बात सुनी नहीं। हम क्या कहते हैं, उसे तूने कभी लक्ष्य में लिया नहीं। तूने कभी सुनी नहीं।

अनन्त सिद्ध ! ओहोहो ! अनन्त काल से परमेश्वर होते आ रहे हैं। अनन्त परमेश्वर को हमारी ज्ञान की पर्याय क्षयोपशम है... क्षयोपशम समझे ? शास्त्रभाषा क्षयोपशम है, तुम्हारी भाषा में विकास कहते हैं। विकास है न ? ये शरीर है, ये है, ऐसी वर्तमान पर्याय प्रगट दिखती है न ? तो प्रगट पर्याय अल्प है, उसमें अनन्त सर्वज्ञों को स्थापना है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं अनन्त सर्वज्ञों को स्थापित करता हूँ। अर्थात् अनन्त सर्वज्ञों को तेरी ज्ञानपर्याय में आदर होना चाहिए। राग और निमित्त का आदर नहीं होना चाहिए, तब अनन्त सिद्ध को आत्मा की पर्याय में स्थापन किया, ऐसा सच्चा हो सकता है। जब तक राग और निमित्त का आदर है तो अनन्त सिद्ध का आदर ज्ञान में हुआ—ऐसा हो सकता नहीं। कठिन बातें, भाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चालू व्यवहार अन्दर में ऐकाकार रहे, वह चालू व्यवहार। पर्याय स्वभाव सन्मुख होती है, सर्वज्ञपद को स्थापन किया तो मैं भी सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसे लक्ष्य बिना सर्वज्ञ को पर्याय में स्थापन कर सकता नहीं और चालू आत्मा की ओर लक्ष्य की धारा बहती है, उसका नाम व्यवहार है। पर्याय का अंश निर्मल निर्मल होता है, उसको जानना व्यवहार। स्वभाव को त्रिकाल जानना, उसका नाम निश्चय है। समझ में आया ? १२वीं गाथा में वह कहा है। १२वीं गाथा है न ? उसमें वह कहा है। जितना निर्मल का अंश प्रगट होता है और जितना राग रहता है, उसको जानना, उसका नाम व्यवहार। उस काल में जाना

हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा पाठ टीका में है। '**यदात्वे**' जाना हुआ प्रयोजनवान है। आत्मा अपना स्वभाव, अनन्त सर्वज्ञ जैसा स्वभाव है, ऐसे आदर किया।

उसका अर्थ तो एक बार कहा था। प्रवचनसार में आता है, प्रवचनसार में। हे नाथ! हमारी स्वयंवर-दीक्षा होती है। ये स्वयंवर। कन्या की शादी नहीं होती? प्रसन्न होकर स्वयंवर मण्डप में जिसको पसन्द करे उस पर हार डालती है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! हमें आत्मज्ञान तो हुआ है, चारित्र तो था, परन्तु समझना है न, तो (कहते हैं), हमने स्वयंवर की दीक्षा की है। हम स्वयं दीक्षा को वरते हैं। चारित्र अंगीकार करते हैं। परन्तु हे नाथ! हमारे स्वरूप की आनन्द की दीक्षा, उसकी रमणता में आपकी साक्षी होनी चाहिए। आप विराजो प्रभु! हमारे पास। हमारी स्वरूप रमणता के पास आप विराजे।

जैसे गृहस्थ में साधारण प्राणी को कन्या विवाह करने जाती है तो अच्छे गृहस्थ को साथ ले जाते हैं। नवनीतभाई! अच्छे गृहस्थ को साथ में जाते हैं। कदाचित् कन्या का बाप बदल जाये, कन्या के बाप ने पैसा नहीं रखा हो और आठ बजे का पाणिग्रहण का समय आये तो अन्दर गुप्तता से (बात करे कि) पचास हजार होंगे तो कन्या मिलेगी, नहीं तो आपकी इज्जत जायेगी। हाय... हाय! करना क्या? नवनीतभाई! फिर नवनीतभाई जैसे को अन्दर साथ में ले जाये। क्या है? आप आये हो और ऐसा हो रहा है, क्या करना? वह कहता है, कन्या का समय हो गया, आठ बजे का। क्या कहते हैं उसे? ये कहता है, पहले लाईये पचास हजार। ये गरीब आदमी है, कहाँ से लाये? सेठ कहता है कि मैं साथ में हूँ और उसकी कन्या का काल चला जाये, ऐसा बने नहीं। हार निकालकर दे उसे। ले, हार। कन्या को समय पर ले आ।

ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हे नाथ! हमारे ज्ञान की महिमा में हम चढ़े हैं और स्वरूप की रमणता में आपको साक्षी रखकर विराजमान किया है। हमारी शिवरमणी अब वापस नहीं जायेगी, आपकी साक्षी रखी है। स्वयंवर के साथ लिया है, प्रवचनसार में। प्रवचनसार में। समझ में आया? हमने आली दुआली-कायर को साथ में नहीं लिया है। मेरा केवलज्ञान लेने को मैं तैयार हूँ, चारित्र-स्वरूप में रमण करना। उसके साथ अनन्त सिद्ध साक्षी आओ, पधारो।... है। हमारी शिवरमणी पूर्णानन्द की पर्याय प्राप्त करने में आप साक्षी हैं। हमें विघ्न आये और वापस मुड़ जाये, ऐसा होता नहीं। जिस भाव से हम चढ़े

हैं, उस भाव से हम केवलज्ञान लेंगे। आपको साक्षी रखा है, भगवान! अनन्त सिद्ध को साक्षी है। मेरे केवलज्ञान की रमणी वापस मुड़े? समझ में आया?

शिवरमणी। शिवरमणी कहते हैं न? याद आया न। बहुत साल पहले का। बहुत वर्ष पहले वह शब्द, बहुत छोटी उम्र में—१८ वर्ष की उम्र में वह शब्द निकल गया था। १८ वर्ष की उम्र में। पालेज में दुकान पर थे। ऐसा शब्द निकला। ... उसमें। 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देवनो देव।' उसमें छह पंक्ति बनायी थी, परन्तु उस समय तालाब में पानी आया था और डूग गयी होगी। परन्तु यह एक (पंक्ति) याद रह गयी। १९६६ की बात है। संवत् १९६५-६६। एक लीला देखते थे। रामलीला आती है न? रामलीला। उसको देखते थे तो अन्दर दूसरा पावर चढ़ गया। ऐसा शब्द निकल गया, अन्दर से, हों! ६६ के वर्ष।

शिवरमणी रमनार तू, तू ही देवनो देव।

ये एक पद याद रह गया। ६२ किये थे। कवि नहीं था, हों! परन्तु उल्लास आया था रामलीला देखकर। ये आत्मा शिवरमणी अर्थात् मुक्ति-लक्ष्मी को वरनेवाला आत्मा है। और तू ही देव का देव है। तू ही देवाधिदेव है। पर देव तो तेरा व्यवहार देव है। परमार्थ से तेरा देवाधिदेवपना तेरा स्वभाव है। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं, हमारी शिवरमणी में चलने में, हे सिद्धो! लक्ष्मीवन्त को साथ में लिये हैं। गरीब को साथ में नहीं लिया है। हमारी लक्ष्मी-केवलज्ञान वापस नहीं मुडेगी। केवलज्ञान की साक्षी है। आपके ज्ञान में भी ऐसा देखा है कि हमारा केवलज्ञान अल्पकाल में (प्रगट होगा)। ऐसे भक्तों की भक्ति उछलने पर परमात्मा को आरोप देकर कहते हैं, परमात्मा आपके साथ हमें शिवरमणी अर्थात् मोक्ष लेना है। लेना तो यहीं से है, हों! परन्तु व्यवहार से (कहते हैं), आपसे लेना है, आप लक्ष्मीवन्त हैं, अनन्त केवलज्ञान प्राप्त हैं।

यहाँ कहते हैं, **हे जिनेश!** ३६ गाथा। हे प्रभु! **संसार में ऐसा कौन पुरुष समर्थ है कि जिसकी जिह्वा, उत्तम ज्ञान के धारक आपका वर्णन करने में समर्थ हो?** देखो! वाणी क्या काम करे? प्रभु! हमारी वाणी क्या करे? श्रीमद् ने कहा न?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो;
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे ?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो॥

एक बार आनन्दघनजी कहते, भाई!

'साधु ... अपना रूप जब देखा, साधु ... अपना रूप जब देखा,
कर्ता कौन कौन पुनी करनी ? कौन ... लेखा साधु ... अपना रूप जब देखा।'

अपना निज स्वरूप पूर्ण शुद्ध परमात्मा की साक्षी में जब देखने में आया और परमात्मा की साक्षी लेकर स्थापित किया... 'साधु ... अपना रूप जब देखा'। केवलज्ञान की प्रतीति में अपना रूप आता है।

कर्ता कौन कौन पुनी करनी, कर्ता कौन कौन पुनी करनी,
कौन ... लेखा, साधु ... अपना रूप जब देखा।

जब आत्मा सर्वज्ञ की प्रतीति करने जाता है, मैं सर्वज्ञस्वभावी—ऐसा ज्ञाता-दृष्टा भान होता है। ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ समकिती को, कहते हैं, 'साधु ... अपना रूप जब देखा, कौन कर्ता, कौन...' कौन करता है ? सुन तो सही। राग व्यवहार तो करते हैं। अरे! सुन तो (सही)। कौन करता है ? व्यवहार आता है, उसको ज्ञानी जानते हैं। 'कर्ता कौन, कौन पुनी करनी' ऐसा किया, करना पड़ता है, व्यवहार ऐसा करना पड़ता है, पाँचवें में ऐसा करना पड़ता है, छठ्ठे (ऐसा करना पड़ता है), अरे! सुन तो सही। 'कर्ता कौन, कौन पुनी करनी, कौन मागे... लेखा, साधु... अपना रूप जब देखा।' ...लालभाई! समझ में आता है ? भगवान की भक्ति अध्यात्म की ऐसी होती है। ऐसे-ऐसे भगवान को साध ले, ऐसी भक्ति करनी, वह तो शुभभाव अभव्य भी करता है। अभव्य भी ऐसी भक्ति करता है। वह भक्ति सच्ची नहीं है।

यहाँ कहते हैं, नाथ! आपके गुण की क्या बात करें ? विकल्प से क्या पार पड़े ? ऐसा कहते हैं। **बृहस्पति आदि जो उत्तम कवि हैं,...** इन्द्र का गुरु कहने में आता है। बृहस्पति शब्द पड़ा है न ? 'सुरगुरु' वह थे। सुर अर्थात् देव के गुरु हैं। वे भी प्रभु! आपके

ज्ञान की व्याख्या और आपके गुण की व्याख्या क्या करे ? हम तो पामर हैं। सुरगुरु-इन्द्र के गुरु भी आपकी **उत्तम कवि हैं, वे भी आपका वर्णन करने में मन्दबुद्धि सिद्ध होते हैं।** ऐसा कहते हैं, क्या कहते हैं अब ? विकल्प से आपके जितने गुण का ख्याल आया, उसमें प्रभु ! पार नहीं पड़ता। विकल्प छोड़कर जब स्वरूप में स्थिरता होगी, तब केवलज्ञान में सब गुण जानने में आयेंगे। हे नाथ ! आपके पास मैं इतना माँगता हूँ, आपके अनन्त गुण प्रत्यक्ष हैं, वह मेरे ज्ञान में आवे, बस इतना। क्या माँगा ?

भगवान ! मैं आत्मा हूँ। मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। आप केवलज्ञानी हैं। मैं आपके पास इतना माँगता हूँ, अभी मेरे ज्ञान में, केवलज्ञान में आपने प्रत्यक्ष गुण देखे, ऐसा मुझे प्रत्यक्ष नहीं है। परन्तु मैं माँगता हूँ कि आपके जितने गुण हैं, वह मुझे प्रत्यक्ष हो जाये। उसका अर्थ मुझे केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया ? भक्तों की भक्ति भी अलग प्रकार की होती है। जगत का और उसका मेल खाये, ऐसा नहीं है। 'जगतडा कहे छे रे, भगतडा काला छे।' सुन रे सुन ! 'काला न जाणशो रे, प्रभु ने त्यां अे व्हाला छे।' समझ में आया ?

वह वस्तु एक समय में पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, अनन्त गुण का पिण्ड और एक समय में उसकी पर्याय पूर्ण होती है, ऐसी प्रतीति करनेवाला ज्ञानी, वही भगवान का सच्चा भक्त होता है। समझ में आया ? कहते हैं, हे नाथ ! **संसार में ऐसा कौन पुरुष समर्थ है कि जिसकी जिह्वा, उत्तम ज्ञान के धारक आपका वर्णन करने में समर्थ हो ? क्योंकि बृहस्पति आदि जो उत्तम कवि हैं, वे भी आपका वर्णन करने में मन्दबुद्धि सिद्ध होते हैं।** उसका अर्थ क्या कहते हैं ? सर्वार्थसिद्धि में समकिती है न ? सुना है ? सर्वार्थसिद्धि देव है न ? ३३ सागर की स्थिति। वहाँ देव है। समकिती है, ज्ञानी है, तीन ज्ञान के धनी हैं। वे ३३ सागर तक स्वाध्याय करते हैं। सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है, अनुभव है। ३३ सागर तक। उसको कुछ खाना-पीना नहीं, स्त्री-पुत्र नहीं है, व्यापार-धन्धा नहीं है वहाँ। वहाँ व्यापार-धन्धा नहीं है। ये भटकने का व्यापार वहाँ नहीं है। वहाँ सर्वार्थसिद्धि के देव अनुत्तर विमान, अपने सर्वार्थसिद्धि के ऊपर के लेने हैं, ३३ सागर तक स्वाध्याय करते हैं। अन्त में कहते हैं, हे नाथ ! तेरे गुण की विकल्प से कितनी स्वाध्याय करें ? जब विकल्प तोड़कर समा जायेंगे, तब तेरी स्वाध्याय पूरी हो जायेगी। समझ में आया ?

यहाँ तो दो-चार घण्टे स्वाध्याय करनी हो, तो उकताहट आये। धन्धे के पाप के कारण समय नहीं मिलता। दो घण्टा। ३३ सागर तक स्वाध्याय (करते हैं)। ३३ सागर किसको कहते हैं? समझ में आया? एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाये)। एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम में एक सागरोपम। ऐसे ३३ सागर पर्यन्त आत्मा के ज्ञान-भान में स्वाध्याय का विकल्प आता है। अन्त में कहते हैं, प्रभु! विकल्प से पार नहीं आता। मैं विकल्प तोड़कर स्वरूप में समा जाऊँ तो केवलज्ञान की स्वाध्याय हो जायेगी।

इस प्रकार यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! वाणी से तेरी कितनी प्रशंसा करे? बृहस्पति भी नहीं कर सकते, मेरी कहाँ ताकत है? ऐसा कहकर अपने ज्ञान में जो अल्पता है, उसे उत्कृष्ट करना चाहते हैं। राग छोड़कर उत्कृष्ट हो, ऐसी भक्ति करते हैं। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल-६, रविवार, दिनांक - १७-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ३६ से ४०, प्रवचन-७९४

यह पद्मनन्दि पंचविंशतिका शास्त्र है। उसमें १३वें अधिकार में ऋषभदेव भगवान की स्तुति चलती है। वे मुनि आत्मा थे। ९०० साल पहले जंगल में वनवासी मुनि थे। आत्मा अन्तर में पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, उसका सम्यग्दर्शन में पहले अनुभव किया। बाद में स्वरूप की लीनता होकर चारित्र की आनन्द की विशेषता प्राप्त की। ऐसे चारित्रवन्त मुनि अपने में पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञपद नहीं है, तो जिसको सर्वज्ञपद में पूर्णानन्द की प्राप्ति है, ऐसे परमात्मा को चित्तपट में स्मरण करके भक्ति करते हैं। समझ में आया? भक्ति तो मुनि भी करते हैं।

पूर्ण परमात्म पद जिसको प्राप्त हुआ और अपने पूर्ण आत्मपद की प्राप्ति वर्तमान में है नहीं तो जिसको हुई है, उसके प्रति धर्मीजीव को बहुमान, भक्ति, विनय और अनेक प्रकार की स्तुति एवं स्तोत्र करने का भाव धर्मात्मा मुनि को भी आता है। आचार्य हैं, आचार्य। जंगल में रहनेवाले। समझ में आया? जंगल में उतारा है ऋषभदेव भगवान को। प्रभु! आप तो मोक्ष पधारे हैं, ऐसा हम नहीं कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आप तो मानो वर्तमान में समवसरण में विराजते हो और आपके केवलज्ञान में ध्वनि निकलती हो, ऐसा लक्ष्य कर आचार्य महाराज ने परमात्मा ऋषभदेव भगवान की स्तुति का प्रारम्भ किया है। ३६ गाथा चली है। आज तो उनकी भक्ति का १४वाँ दिन है। तेरह (दिन) तो भक्ति हो गयी है, आज १४वाँ दिन है।

३६वीं गाथा में कहा, हे नाथ! आपमें जो अनन्त गुण हैं, शुद्ध आनन्द आदि, उसकी आपने शक्ति में से व्यक्तता प्रगट पूर्ण हो गयी, प्रभु! जो आत्मा में स्वभाव में भण्डार अनन्त गुण की शुद्धता का पड़ा था। उसमें आपने एकाग्र करके पूर्ण शक्ति की व्यक्तता प्रगट आत्मा की दशा में अनन्त गुण की दशा प्रगट की। समझ में आया? पूर्ण। सम्यग्दर्शन में, पहले सम्यग्दर्शन में सर्व गुण पूर्ण प्राप्त नहीं होते। आत्मा में जितने अनन्त शुद्ध आनन्द गुण हैं, उसकी अन्तर्मुख होकर सम्यक् प्रतीति अनुभव करके करते हैं, तो सम्यग्दर्शन में 'सर्व

गुणांश, वह समकित।' गुण के, प्रत्येक गुण का निर्मल अंश सम्यग्दर्शन के साथ प्रगट होता है। समझ में आया?

एक समय में आत्मा अनन्त-अनन्त गुण की संख्या धरनेवाला आत्मा है। यह दो बार पहले आ गया है। कितने गुण हैं एक आत्मा में? समझ में आया? आकाश के जो अनन्त प्रदेश हैं, उससे अनन्त गुना एक जीव में गुण है। आहाहा! ...चन्दजी! समझ में आया? एक समय में भगवान आत्मा में इतने गुण हैं, कभी सुना नहीं संख्या क्या है। अनन्त अनन्त सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुना तो संसारी प्राणी हैं। उससे अनन्तगुना तो परमाणु जड़ की संख्या है। और उससे अनन्तगुनी त्रिकाल समय की संख्या काल की है। उससे अनन्तगुना अनन्त आकाश के प्रदेश की संख्या है। उससे अनन्तगुना एक जीव में गुण है। समझ में आया? आहाहा! उसकी ऋद्धि में क्या पड़ा है, कितनी है, उसकी खबर नहीं। घर में पैसे कितने हैं और अभी तो नलिया-बलिया नहीं होते हैं। नलिया को क्या कहते हैं? (नरिया)। ऊपर डालते हैं न नलिया? पाँच हजार, दस हजार डाले हो उसकी खबर है। मेरे आत्मा में कितनी गुण की संख्या है और मैं कितना बड़ा हूँ, खबर नहीं।

जिसको अनन्त गुण का भान हुआ, कैसे भान होता है? कल सबेरे प्रश्न किया था न? तत्त्वज्ञान की बात तो सवेरे बहुत चलती है। अभी तो भक्ति की चलती है। निश्चयभक्ति होती है, उसकी क्या व्याख्या? उसका क्या स्वरूप? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो अनन्त गुण कहे, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप ध्रुव, उस ओर की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। उसमें सर्व गुण के निर्मल अंश साथ में प्राप्त होते हैं। समझ में आया? समझ में आती है या नहीं भाषा? हिन्दी भी थोड़ी-थोड़ी आती है, हों! बहुत हिन्दी नहीं आती। ये तो बहुत हिन्दी आये हैं न, तो थोड़ी करते हैं। हमारी तो काठियावाड़ी गुजराती भाषा है।

एक आत्मा में जितने गुण शब्द पड़े हैं, वह एक समय में राग और मन और शरीर और कर्म, सबसे अपनी दृष्टि हटाकर, अपनी दृष्टि पूर्ण गुण का पिण्ड प्रभु ध्रुव ज्ञायक अखण्ड आनन्द में लगाने से अनन्त गुण का निर्मल अंश प्रगट होता है। उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? यहाँ ऐसा क्यों कहा? सम्यग्दृष्टि को सर्व गुण का अंश प्रगट है। तो सर्व गुण का प्रगट व्यक्त जिसको पूर्ण हो गया, ऐसे परमात्मा की सम्यग्दृष्टि भक्ति

करते हैं। समझ में आया कुछ ? कैसे करना, ऐसा प्रश्न है। सवेरे तो भेदज्ञान की (बात) बहुत चलती है।

आत्मा पूर्णानन्द है और विकार एवं संयोग से पृथक् है। ऐसी वर्तमान में दृष्टि, जो विकार, अल्पज्ञ और निमित्त पर पड़ी है, उसको हटाकर अन्तर पूर्ण एक समय में अखण्ड अभेद चैतन्य है, उस पर दृष्टि लगाने से राग की एकत्वबुद्धि छूट जाती है और स्वभाव अनन्त गुण है, उसमें से प्रत्येक गुण की निर्मल अंश दशा प्रगट होती है। उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन क्या, उसकी खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि जिसको ऐसे अनन्त गुण का आंशिक स्वाद आया, ज्ञान का स्वाद, दर्शन का स्वाद, आनन्द का स्वाद, वीर्य का स्वाद, अनन्त गुण स्वाद, क्या है ? जो अनन्त गुण का विपरीत विकार का स्वाद मिथ्यादृष्टिपने अनन्त काल से लेता था, वह गुलाँट खाकर आत्मा अनन्त गुण की प्रीति और भक्ति में आया, समझ में आया ? बाहर की क्रियाकाण्ड उसमें साधन नहीं है। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है। उस पर अन्दर ध्येय लगाकर एकत्व होता है तो अकारण-पर का कारण नहीं और अपना त्रिकाल स्वभाव कारण होकर एक समय में जितने गुण हैं, उतने अंश से निर्मल सम्यक् (होकर परिणमते हैं)। सम्यक्श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्वीर्य, सम्यक्शान्ति, आंशिक आनन्द, आंशिक स्वच्छता, आंशिक प्रभुता, आंशिक पृथकता, ऐसी अनन्त शक्ति की प्रगटता एक अंश में सम्यग्दृष्टि को ... होता है।

ऐसा सम्यग्दृष्टि; परमात्मा—जिसको पूर्ण प्रगट दशा हो गयी, अंश न रहा, पूर्ण हो गयी—ऐसे परमात्मा को लक्ष्य में लेकर भक्ति, विनय, बहुमान और स्तुति, स्तोत्र करते हैं। समझ में आया ? ऐसा भाव धर्मीजीव को परमात्मा, देव-गुरु-शास्त्र (प्रति) ऐसी भक्ति का भाव आये बिना रहता नहीं। जब तक सर्वज्ञपद और वीतरागदशा न हो, तब तक ऐसा भक्ति, विनय, बहुमान का भाव आता है, अशुभ को टालने के कारण। ऐसी दशा में आचार्य भी परमात्मा की स्तुति करते हैं।

३६वीं गाथा में यह आया, हे नाथ! मैं वाणी द्वारा आपके कितने गुण कहूँ ? और मेरा जो भक्ति का विकल्प उठता है, उस विकल्प द्वारा आपके अनन्त गुण की संख्या का क्या कथन करूँ ? आपके गुण के स्तवन की स्तुति बृहस्पति... समझ में आया ? एक

समय में आत्मा के जितने गुण अनन्त कहे, वह अनन्त गुण। आकाश अलोकाकाश है, उस अलोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उससे अनन्त गुना एक द्रव्य में गुण हैं। ऐसे अनन्त गुण का पिण्डरूप आत्मतत्त्व, राग, मन, वाणी और शरीर से पृथक् होकर भगवान पूर्णानन्द एकरूप **'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो'** भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण भूतार्थ अर्थात् त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उस पर दृष्टि देने से उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, सर्व गुणांश, वह समकित प्रगट होता है। सर्व गुणांश में से अंश आया तो उसको, पूर्ण गुण जिसने प्रगट किये हैं, ऐसे परमात्मा की समकिती, पंचम गुणस्थानवाला श्रावक, छठवें गुणस्थानवाले मुनि, आचार्य, उपाध्याय की वह भक्ति करते हैं।

यहाँ पद्मनन्दि पंचविंशति का १३वाँ अधिकार, ऋषभदेव भगवान की स्तुति चलती है। ३६ गाथा आ गयी है। आज तो १४वाँ भक्ति का दिन है। तेरह घण्टे तो चल गया। ३६वीं गाथा में क्या कहा है ? हे नाथ!

गाथा ३६

अण्णस्स जए जीहा कस्स सयाणस्स वण्णणे तुज्झ।
जच्छ जिण तेवि जाया सुरगुरुपमुहा कई कुंठा।।३६।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! ऐसा संसार में कौन-सा पुरुष समर्थ है कि जिसकी जिह्वा उत्तम ज्ञान के धारक आपका वर्णन करने में समर्थ हो ? क्योंकि बृहस्पति आदि जो उत्तम कवि हैं, वे भी आपका वर्णन करने में मन्दबुद्धि हैं।

भावार्थ - संसार में बृहस्पति के बराबर पदार्थों के वर्णन करने में दूसरा कोई उत्तम कवि नहीं है क्योंकि वे इन्द्र के भी गुरु हैं, किन्तु हे जिनेन्द्र! आपका गुणानुवाद करने में वे भी असमर्थ हैं, अर्थात् उनकी बुद्धि में भी यह सामर्थ्य नहीं, जो आपका गुणानुवाद वे कर सकें क्योंकि आपके गुण संख्यातीत तथा अगाध हैं। जब बृहस्पति की जिह्वा भी आपके गुणानुवाद करने में हार मानती है, तब अन्य साधारण मनुष्यों की जिह्वा आपका गुणानुवाद कर सके - यह बात सर्वथा असम्भव है।

गाथा - ३६ पर प्रवचन

अण्णस्स जए जीहा कस्स सयाणस्स वण्णणे तुज्झ।
जच्छ जिण तेवि जाया सुरगुरुपमुहा कई कुंठा।।३६।।

बृहस्पति देव के गुरु कहने में आते हैं, वे भी आपके गुण कहने में ... अल्पज्ञ उसकी शक्ति ऐसी है नहीं। कितने गुण कहे ? वाणी में कितने लाये ? ऐसे प्रभु आपके गुण हैं। ऐसा प्रमोद करके प्रभु की भक्ति का विकल्प आता है। ये तो कल आ गया। आज अब ३७। ३७वीं गाथा है।

देखो ! भगवान पद्मनन्दि आचार्य महामुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले, क्षण में छठा, क्षण में सप्तम। क्षण में विकल्प उठता है तो शास्त्र आदि लिखते हैं। पुनः विकल्प टूट जाता है तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में आते हैं। ऐसे छठवें-सातवें (गुणस्थान में) झूलनेवाले। उन्होंने भगवान की स्तुति में ३७वाँ श्लोक बनाया। क्या कहते हैं, देखो !

हे नाथ ! जब आप समवसरण में विराजते थे, तब आपने ऐसा मार्ग कहा।

गाथा ३७

सो मोहत्थेण रहि ओ पयासिओ पहु सुपहो तएवईया।
तेणाज्जवि रयणजुआ णिव्विग्घं जंति णिव्वाणं।।३७।।

अर्थ - हे प्रभुओं के प्रभु! हे जिनेन्द्र! आपने उस समय मोहरूपी चोर से रहित उत्तममार्ग का प्रकाश किया था; इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र के धारी भव्य जीव इस समय भी उस मार्ग से ही बिना क्लेश के मोक्ष को चले जाते हैं।

भावार्थ - यदि मार्ग साफ तथा चोरों के भय से रहित होवे तो मनुष्य जिस प्रकार बिना विघ्न के उस मार्ग से चले जाते हैं। उस प्रकार हे भगवन्! आपने भी जिस मार्ग का उपदेश दिया है, वह मार्ग भी साफ तथा सबसे बलवान मोहरूपी चोर से रहित है;

इसलिए जो भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय के धारी हैं, वे बिना किसी विघ्न के सुख से उस मार्ग से मोक्ष को चले जाते हैं।

सारार्थ - मोक्षमार्ग में गमन करनेवाले प्राणियों को यदि कोई रोकनेवाला है तो मोहरूपी चोर ही है, इसीलिए भव्य जीव सहसा मोक्ष को नहीं जाते, परन्तु हे भगवन्! आपने मोहरहित मार्ग का वर्णन किया है, इसलिए भव्य जीव, निर्विघ्नरूप से मोक्ष को चले जाते हैं।

गाथा - ३७ पर प्रवचन

सो मोहत्थेण रहि ओ पयासिओ पहु सुपहो तएवईया।
तेणाज्जवि रयणजुआ णिव्विग्घं जंति णिव्वाणं।।३७।।

देखो! पंचम काल के आचार्य हैं। परन्तु इतना जोर देते हैं। वर्तमान मुक्ति नहीं है। ख्याल में है कि वर्तमान में केवलज्ञान है नहीं। इतना पुरुषार्थ नहीं है। परन्तु भगवान को लक्ष्य कर कहते हैं कि हे नाथ! **'सो मोहथेण' ... आपने मोह-चोर से रहित उत्तम मार्ग का प्रकाश किया...** उस समय किया था, उसको याद करते हैं। हे नाथ! आपने जब वीतरागता की प्राप्ति की, दिव्यध्वनि जब निकली तो आपने वीतरागपने की प्राप्ति कैसे हो, राग का अभाव कैसे हो, ऐसा मोक्षमार्ग आपने प्रकाश में लाये थे। समझ में आया?

मोहरहित। भ्रमणा और राग-द्वेष। मोह (आदि) तीनों चोर हैं। तीनों चोर हैं। प्रवचनसार में भी अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं मुनि हुआ हूँ, परन्तु अभी प्रमादरूपी चोर मेरा रत्न लूट लेता है। तो मैं कमर कसकर अप्रमाद रहने का प्रयत्न करता हूँ। पण्डितजी! उसमें प्रवचनसार में आया है। है तो मुनि। छठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। परन्तु विकल्प जब प्रमाद का आता है तो कहते हैं कि अरे..! यह प्रमादरूपी चोर आया। समझ में आया? राग आया। उस चोर से मेरे अन्तर की ऋद्धि, समृद्धि की रक्षा करने को कमर कसकर मुझे प्रयत्न करना पड़ेगा। ऐसा भाव है। कमर अर्थात् शरीर की बात नहीं है। अन्दर पुरुषार्थ की उग्रता करके मैं अप्रमत्त स्वभाव में आऊँ तो प्रमादरूपी चोर मेरी सम्पदा

लूटते हैं तो मैं स्वभाव में आऊँ तो मेरी सम्पदा रक्षित होती है। यह शब्द लेकर कहा है। देखो! आचार्य है।

'**मोहथेण**' नाथ! '**सो**' '**सो**' अर्थात् वह। आता है न? ... शब्द। वह मोहरूपी चोर। मिथ्यात्वरूपी चोर, राग और स्वभाव को एक माननेवाला मिथ्यात्व चोर। और मिथ्यात्व जाने के बाद भी राग आता है, वह स्वरूप का चारित्र का चोर है। अपनी शान्ति अनाकुल आनन्द का रस, उसमें जितना राग आता है, वह सब चोर है। हे नाथ! मोहरूपी **चोर से रहित उत्तम मार्ग का प्रकाश किया,...** आपने तो रागरहित स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और वीतरागता का प्रकाश किया। समझ में आया? आचार्य वास्तविक तत्त्व की बात भी करते हैं और भक्ति में, आपने कैसा कहा, वह भी वर्णन करते हैं।

इसलिए... हे नाथ! '**तेणज्जवि**'। '**अज्जवि**'। अभी भी। '**अद्यापि**'। अभी भी। उस समय आपने समवसरण में जब यह मार्ग (प्रकाशित किया)... राग और मोह से रहति आत्मा का स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करो, ऐसा जो आपने कहा था, वह '**तेणज्जवि रयणजुआ**'। अभी भी तीन रत्नयुक्त होकर... ये तो ९०० वर्ष पहले हुए हैं। '**तेणज्जवि रयणजुआ**' सम्यग्दर्शन, आत्मा अखण्ड आनन्द, उसका अन्तर आश्रय होकर प्रतीति, स्वसंवेदनज्ञान का ज्ञान का वेदन, वह स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप में लीनतारूपी चारित्रदशा। हे नाथ! आपने जो प्रकाश किया था, वह '**तेणज्जवि रयणजुआ, णिव्विग्धं जंति णिव्वाणं**'। **इस समय भी उसी मार्ग का आलम्बन करके बिना क्लेश के...** '**णिव्विग्धं**' शब्द पड़ा है न। विघ्न बिना, क्लेश बिना आनन्द में आकर आज भी **मोक्ष को चले जाते हैं।** कोई प्रश्न करे कि पंचम काल के आचार्य ऐसे क्यों लक्ष्य करे कि आज भी मोक्ष चले जाते हैं? पाठ तो ऐसा है। पंचम काल के मुनि हैं। अभी ९०० साल पहले हुए हैं। भगवान! सुन तो सही। अपने स्वरूप में दृष्टि, ज्ञान और लीनता होती है, उसको प्रवचनसार में मोक्षतत्त्व कहा है। प्रवचनसार अन्तिम की पाँच गाथा है, (उसमें) मोक्षतत्त्व उसको कहा।

अपना शुद्ध मुक्तस्वरूप राग से, मन से, शरीर से, संयोग से, कर्म से (रहित) ऐसी चीज़ जिसकी दृष्टि में आयी और स्वरूप का ज्ञान हुआ और स्वरूप का आचरण हुआ, उसको कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उस जीव को मैं मोक्षतत्त्व कहता हूँ। संसारतत्त्व कहा, मोक्षतत्त्व कहा, ऐसी पाँच गाथा है। रत्न समान कहते हैं न? पंच रत्न। पंच रत्न पाँच गाथा

को कहा है। संसारतत्त्व किसको कहा? राग और स्वभाव को एक माननेवाला द्रव्यलिंगी साधु संसारतत्त्व है। समझ में आया? विकार और त्रिकाल स्वभाव, दो को एक माननेवाला मिथ्यादृष्टि संसारतत्त्व है। भले जैन को मानता है, जैन में जन्मा हो, द्रव्यलिंगी हो। ऐसा लिखा है, हों! संसारतत्त्व की पहली गाथा में बताते हैं। ये संसारतत्त्व।

विकार से रहित मेरी चीज़ है, ऐसा भगवान ने फरमाया है। तो आज भी अपना स्वरूप प्रभु! मोह, क्षोभरहित अपना स्वरूप आपने बताया, प्रकाशित किया। है न? '**पयासिआ**'। प्रकाश किया। आज भी निर्विघ्न मोक्ष में जाते हैं। अपनी चीज़ में अपना अनुभव हुआ तो वह मोक्ष ही है। एकाध भव हो, उसकी गिनती नहीं है। मोक्ष ही है, आज भी मोक्ष है, सुनो! '**णिव्विग्धं जंति णिव्वाणं**' निर्वाण के पन्थ में हम पड़े हैं तो हमारा निर्वाण ही है, जाओ! समझ में आया? ३७वीं गाथा में ऐसा कहकर परमात्मा का लक्ष्य करके भक्ति की।

अब, ३८वीं गाथा में ऐसा कहते हैं। आपने क्या बताया? पहले तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रागरहित, चोररहित बताया। उसको साधते हैं। अब, आपने मोक्ष का निधान खोल दिया। वह बात ३८ में कहते हैं।

गाथा ३८

उम्मुद्दियम्मि तम्मि हु मोक्खणिहाणे गुणणिहाण तए।
केहिं ण जुणतिणा इव इयरणिहाणाइ भुवणम्मि।।३८।।

अर्थ - हे भगवन! हे गुण-निधान! जिस समय आपने मोक्षरूपी खजाने को खोल दिया था, उस समय ऐसे कौन से भव्य जीव हैं, जिन्होंने सड़े तृण के समान दूसरे राज्य आदि निधानों को नहीं छोड़ दिया?

भावार्थ - हे जिनेश! हे गुण-निधान! जब तक भव्य जीवों ने मोक्षरूपी खजाने को नहीं समझा था तथा उसके गुणों को नहीं जाना था, तभी तक वे राज्य आदि को उत्तम तथा सुख का करनेवाला समझते थे, किन्तु जिस समय आपने उनको मोक्षरूपी खजाने को खोल कर दिखा दिया, तब उन्होंने राज्य आदि निधानों

को सड़े हुए तृण के समान छोड़ दिया अर्थात् वे सब मोक्षरूपी खजाने की प्राप्ति के इच्छुक हो गए।

गाथा - ३८ पर प्रवचन

उम्मुद्दियम्मि तम्मि हु, मोक्खणिहाणे गुणविहाण तए।
केहिं ण जुणतिणा इव, इयरणिहाणाइ भुवणम्मि।।३८।।

क्या कहते हैं ? थोड़ा शब्दार्थ संस्कृत का लेते हैं।

उन्मुद्रिते तस्मिन्, मोक्षनिधाने गुणनिधान त्वया।
केहिं ण जुणतिणा इव, इयरणिहाणाइ भुवणम्मि।।३८।।

क्या कहते हैं ? हे नाथ! मानो परमात्मा सामने ज्ञान में तरवरते हो! तरवरता समझते हो ? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। तुम्हारी हिन्दी क्या होगी ? ज्ञान में तरवरते हैं, लक्ष्य में प्रेम में भगवान आ जाते हैं। ऐसे भगवान को लक्ष्य में लिया है और कहते हैं कि हे नाथ! हे भगवान! बाद में कहा, **हे गुणनिधान!...** गुणनिधान। प्रभु! आप तो गुण का निधान हो। आपकी खान में से राग आता है और विकार होता है, ऐसी खान आपकी नहीं। आप तो गुणनिधान हो। अन्तर अनन्त आनन्द, अनन्त केवलज्ञान आदि अनन्त गुण का निधान है। केवलज्ञान आपको हुआ है। वह भी एक समय रहता है, दूसरे समय दूसरा आता है। अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का निधान आत्मा है। अरे! क्या कहा, समझ में आया ?

केवलज्ञान है न ? केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो भगवान को प्रगट हुआ, वह एक समय की पर्याय है। दूसरे समय में वह पर्याय व्यय होती है। वैसी होती है, परन्तु वह नहीं रहती है। ऐसी अनन्त गुण की पर्याय का निधान आत्मा है। एक समय में एक ज्ञानगुण अनन्त केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हो, ऐसा एक ज्ञानगुण है। ऐसी अनन्त दर्शन की पर्याय प्रगट हो, ऐसा एक दर्शन है। ऐसी अनन्त शान्ति, एक समय में है, दूसरे समय सादि-अनन्त। अनन्त शान्ति प्रगट हो, ऐसा एक चारित्रगुण है। आनन्द अनन्त प्रगट हुआ। एक समय, दूसरा समय, तीसरा समय... ऐसे अनन्त आनन्द की पर्याय प्रगट हो, ऐसे आनन्दगुण का निधान है। ऐसा अनन्त गुण का निधान आपको प्रगट हो गया। परन्तु

हे नाथ! **जिस समय आपने मोक्षरूपी खजाने को खोल दिया...** देखो! आहाहा! आपने बताया, अरे... आत्मा! राग और चैतन्यस्वभाव के बीच एकत्वबुद्धि का ताला लगा है, खोल दिया एकदम से। क्या कहा, समझ में आया?

भगवान एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें एक समय का विकल्प अर्थात् राग और स्वभाव, दोनों को एक मानते हैं, वहाँ ताला लगा है। गुण की पर्याय खुलती नहीं। वह ताला आपने खोल दिया। प्रभु! आपने तो खोल दिया, परन्तु दुनिया को खोल देने का प्रकाश किया। आहाहा! देखो! आचार्य को भगवान के प्रति प्रमोद आता है। आहाहा! हे नाथ! हमारे भरतक्षेत्र में विरह है, ऐसा हम नहीं मानते। हमें तो साक्षात् परमात्मा नजर में है, ऐसा मानते हैं।

हे नाथ! '**उम्मुद्दियम्मि**' '**उन्मुद्रिते**' जो निद्रित था, उसको खोल दिया। अरे! चैतन्य! अरे.. भगवान! भगवान कहते हैं। सबेरे कहा था न? ७२वीं गाथा में, कर्ता-कर्म अधिकार में। विकार है, वह मलिन-अशुचि है, भगवान आत्मा पवित्र है। भगवान आत्मा पवित्र है। ७२वीं गाथा में आता है, वह चलती है। भगवान ने कहा, हे नाथ! आप आत्मा को भगवान कहकर उसके गुण कितने हैं, यह खजाना खोल दिया। बताया, मोक्षरूपी खजाने को खोल दिया। इसलिए ऐसे कौन-से भव्य जीव नहीं... आहाहा! ऐसा कौन भव्य नहीं, जिन्होंने **सड़े तृण के समान...**' '**जुणतिया इव**'। ऐसा शब्द पड़ा है। '**जुणतिया**' जीर्ण तृण। सड़ा हुआ तृण। सड़ा हुआ कहते हैं? कूड़े का तृण होता है न? उकरडा को क्या कहते हैं? कचरे का ढ़ेर। कचरे का ढ़ेर होता है न? कचरे का ढ़ेर। सड़ा हुआ तृण। देखो! क्या कहते हैं? हे नाथ! आपने अपनी लक्ष्मी जब बतायी। सम्पदा-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द अपने में पड़ा है, ऐसा बताया तो कौन ऐसा प्राणी है कि रागादि, राजादि को सड़े हुए तृण जैसा देखकर न छोड़े? समझ में आया? राजपाट सड़े तृण जैसा है। देखो यहाँ। '**इयरणिहाणाइ भुवणम्मि**' ऐसा शब्द पड़ा है।

आत्मा अनन्त गुण का निधान। उसके सिवा राग, शरीर और लक्ष्मी ... सब। करोड़ों और अरबों का चक्रवर्ती का राज, सड़ा हुआ तृण है। आहाहा! हे नाथ! आपने जब आत्मा के अनन्त गुण की खान बतायी और निधान खोला तो ऐसा कौन प्राणी है कि '**जुणतिणा इव, इयरणिहाणाइ भुवणम्मि**' कौन नहीं छोड़ेगा? कौन नहीं छोड़ेगा और

अपने आनन्दनिधान को कौन प्राप्त नहीं करेगा ? देखो ! यहाँ प्रश्न करके आत्मा में पुरुषार्थ का उल्लसित वीर्य प्रगट करते हैं। आहाहा ! अपना स्वभाव अनुभव से प्राप्त होता है। प्रभु ! **'स्वानुभूत्या चकासते'।** स्व अनुभूति क्रिया से आत्मा की प्रगट दशा प्राप्त होती है। तो ऐसा निधान आपने बताया (तो) कौन ऐसा जीव है कि राग, पुण्य, शरीर, राजपाट। निधान आदि शब्द पड़ा है। उसको सड़ा हुआ तृण देखकर कौन नहीं छोड़ेगा ? और अनन्त आनन्द का पिण्ड आत्मा का कौन आदर नहीं करेगा ? समझ में आया ? देखो ! इस जाति की भक्ति की है, ३८वीं गाथा में।

यहाँ तो कहते हैं, हे नाथ ! **जब तक भव्य जीवों ने मोक्षरूपी खजाने को नहीं समझा था...** मेरी चीज में आनन्द और शान्ति पड़े हैं, ऐसी खबर नहीं थी। मृग को मृग की नाभि में कस्तूरी है। खबर नहीं, खबर नहीं, खबर नहीं। और एक ... पीपल का पत्ता होता है न ? सूखा होता है, सूखा। खड... खड... खड... खड... (आवाज आये तो) भयभीत होता है। ऐसा भयवन्त प्राणी उसकी नाभि में कस्तूरी है, उसकी कीमत नहीं आती है। नाभि में कस्तूरी है, कीमत नहीं आती है। एक सूखे पत्ते की आवाज आये तो भयभीत हो जाता है। बन्दूक हो तो भयभीत होवे ही, परन्तु सूखा पत्ता पवन लगने से आवाज करे तो डर जाये। ऐसा भयवन्त प्राणी, उसकी नाभि में कस्तूरी है, उसकी कीमत आती नहीं।

ऐसे हे नाथ ! अज्ञानी राग, पुण्य को, पाप को बहुत महत्ता देनेवाला ऐसा अज्ञानी, उसके अन्तर में निधान पड़ा है, उसकी उसे कीमत नहीं आती। आपने बता दिया, अरे ! कीमत तो कर अन्दर। चैतन्यरत्न की परीक्षा तो कर। विकार और संयोग की परीक्षा तो अनन्त बार की। तो हे नाथ ! ऐसा कौन **राज्यादि को उत्तम तथा सुख का कारण मानते थे; किन्तु जिस समय आपने मोक्षरूपी खजाना खोल दिया तो... सब मोक्षरूपी खजाने की प्राप्ति के इच्छुक हो गये।** देखो ! स्वयं इच्छुक हुए हैं तो हम तो ऐसा मानते हैं कि आपकी वाणी में जब आत्मा का स्वभाव आया तो सब प्राणी मोक्ष के खजाने के इच्छुक हो गये। उसका अर्थ राग का इच्छुक न रहा। पुण्य का फल का इच्छुक न रहा। अपना स्वभाव शुद्ध की भावना करनेवाला रहा। उसको भगवान की भक्ति सच्ची कहने में आती है। ३८ (हुई) ? ३९। आचार्य ने भिन्न-भिन्न (प्रकार से भक्ति की है)। ये तो अध्यात्म भक्ति का (वर्णन है)। निश्चयसहित भक्ति कैसी है, ऐसा भगवान आचार्य वर्णन करते हैं।

गाथा ३९

मोहमहाफणिडक्को जणो विरायं तुमं पमुत्तूण।
इयराणाए कह पहु विचेयणो चेयणं लहइ।।३९।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेश! जो पुरुष मोहरूपी प्रबल सर्प से काटा गया है, अर्थात् जो अत्यन्त मोही है, वह मनुष्य समस्त प्रकार के राग से रहित वीतराग को छोड़कर, आपसे भिन्न कुदेवों की आज्ञा से कैसे चेतना को प्राप्त कर सकता है? अर्थात् वह कैसे ज्ञानी बन सकता है?

भावार्थ - जो जीव, 'यह पुत्र मेरा है, यह स्त्री मेरी है तथा यह सम्पत्ति मेरी है' - इस प्रकार अनादि काल से मोह से ग्रस्त हो रहा है, अर्थात् जिसको अंशमात्र भी हिताहित का ज्ञान नहीं है; हे प्रभो! उस मनुष्य को कभी भी आपसे भिन्न कुदेवादि की आज्ञा से चेतना की प्राप्ति नहीं हो सकती है, अर्थात् वह मनुष्य, कुदेवादि के मार्ग में गमन करने से कदापि ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता।

गाथा - ३९ पर प्रवचन

मोहमहाफणिडक्को जणो विरायं तुमं पमुत्तूण।
इयराणाए कह पहु विचेयणो चेयणं लहइ।।३९।।

हे प्रभु! हे जिनेश! हे परमात्मा त्रिलोकनाथ! **जो पुरुष, मोहरूपी प्रबल सर्प से काटा गया है... 'डक्को' 'महाफणिडक्को'।** सर्प का डंक जिसे लगा है। अज्ञानियों को राग, विकार और संयोग से लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टि बताया। अनेकान्त चैतन्यतत्त्व जो शुद्ध आनन्दकन्द है, उसमें विकार स्वभाव में नहीं और विकार में त्रिकाल स्वभाव नहीं। विकार में संयोग में नहीं, संयोग में विकार नहीं, विकार में स्वभाव नहीं, स्वभाव में विकार नहीं। ऐसी बात सर्वज्ञ परमात्मा आप ही बता सकते हैं। अज्ञानी उसे बता सकता नहीं। तो ऐसे अज्ञानी को मोहरूपी प्रबल सर्प ने डंक मारा है।

अत्यन्त मोही है... राग मेरा, शरीर मेरा, कर्म मेरा, ऐसी धूल मेरी। धूल अर्थात्

ये लक्ष्मी। **समस्त प्रकार से राग-द्वेष से रहित आप वीतराग को छोड़कर, अन्य कुदेवों की आज्ञा से कैसे चेतना को प्राप्त कर सकता है? 'इयराणाए कह पहु, विचेयणो चेयणं लहइ'** अज्ञानी के कथन में, विचेतन अनादि का जो प्राणी है, उसमें चेतन कहाँ से लायेगा ? क्या कहा, समझ में आया ? पाठ में पड़ा है, **'विचेयणो चेयणं लहइ'** कहाँ से ? अज्ञानी के कथन में एक समय में अनन्त गुण है और पर्याय में विकार है। उसमें भी अनन्त गुण का विकार सबमें नहीं। कुछ गुण की पर्याय विकारी है और कुछ गुण की तो निर्विकारी अनादि की है। समझ में आया ? अस्तित्वगुण आदि जो है, उसकी तो निर्विकारी पर्याय है। विकारी पर्याय अमुक गुण की विकारी है। ऐसा जिसको ज्ञान नहीं है, ऐसा अज्ञानी ने पूर्ण विकारमय आत्मा बता दिया अथवा अकेला निर्मलानन्द स्वभाव है, ऐसी पर्याय भी पवित्र है, ऐसा बताया। ऐसे अज्ञानी से विचेतन अर्थात् अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हुआ तो उसके उपदेश से चेतनपना कहाँ से पायेगा ? समझ में आया कुछ ?

सर्वज्ञ की, सन्तों की वाणी में ऐसा आया कि अहो! तेरा एक समय में पूर्ण शुद्ध आत्मा है। गुण शुद्ध, वस्तु शुद्ध, पर्याय में शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार है। उसमें मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष, दु:ख की पर्याय, कर्ता-कर्म आदि विकृत पर्याय में जो है, वह तेरी दु.खरूपी पर्याय है। वह अवस्था है। शुद्ध नहीं है। शुद्ध तो त्रिकाल द्रव्य और गुण शुद्ध है। पर्याय में अशुद्धता है, ऐसी अशुद्धता बताकर अशुद्धता की रुचि छुड़ाकर चेतन की रुचि करवायी है, वह प्रभु! आपने करवायी है। अज्ञानी ऐसी बात कर सकते नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ?

'इयराणाए' आपके अतिरिक्त दूसरे मार्ग में **'कह पहु, विचेयणो चेयणं लहइ'।** अज्ञान को प्राप्त प्राणी को अज्ञान छोड़कर सम्यग्ज्ञान कहाँ से होगा ? क्योंकि सर्वज्ञ को जैसा वस्तु का स्वरूप कहा, वैसा है, ऐसा अनुभव किया, ऐसा कहा। इसके अतिरिक्त अज्ञानी ऐसी बात कह सकते नहीं। जहाँ अनुभव ही नहीं है, ख्याल में आया नहीं, एक समय में तीन काल-तीन लोक क्या है जानने में आया नहीं और कथन करे, वह सब मिथ्या और अज्ञान ही होता है। सम्यग्दृष्टि करे, वह तो सर्वज्ञ अनुसार दृष्टि है और सर्वज्ञ अनुसार ही करते हैं। अज्ञानी को सर्वज्ञ के अनुसार नहीं, सर्वज्ञ को माना नहीं।

हे नाथ! अज्ञानी, आपको छोड़कर, जिसकी दृष्टि मिथ्या और अज्ञान है, उसका

चेतनपना कहाँ से आयेगा ? आपने बताया, अरे ! विकारी क्षणिक है, अभूतार्थ है, छूटनेयोग्य है और स्वभाव की शान्ति प्रगट होनेयोग्य तेरी चीज़ है। पर्याय में प्रगट होने की तेरी ताकत है। समझ में आया ? जिसको एक समय में...

समन्तभद्राचार्य ने एक बार कहा था न ? हे प्रभु ! मैंने आपको सर्वज्ञ क्यों निश्चित किया है ? कि प्रत्येक पदार्थ, एक समय है काल और तीन है अंश। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी कभी तीन काल में होती नहीं। प्रत्येक पदार्थ समय एक और तीन अंश है एक समय में। ध्रुव तत्त्व है और उत्पाद-व्यय है। समय एक। काल का छोटे से छोटा एक समय और अंश तीन। भगवान ! आपने तीन अंश को एक समय में जाने, वह सर्वज्ञ का लक्षण निश्चित किया है। आप सर्वज्ञ हैं। समझ में आया ? स्तुति है न ? स्वयंभूस्तोत्र। उसमें वह लिया है। मैंने सर्वज्ञ को निश्चित किया है। यहाँ चाकला है न ? यहाँ चाकला था सही। मन्दिर में (था)। चाकला कहीं पर देखा है।

जन्म, व्यय, ध्रुव एक समय में है। भगवान की स्तुति करते हुए समन्तभद्राचार्य कहते हैं। मुनि हैं न, मुनि अर्थात् ज्ञान और ... अर्थात् चारित्र। उसका लक्ष्य करके जब स्तुति की है कि हे नाथ ! आपका ज्ञान ऐसा है, वह सर्वज्ञ है, ऐसा निश्चित किया है। क्यों ? एक समय काल का सूक्ष्म छोटा भाग, उसमें आत्मा के तीन अंश, परमाणु के तीन अंश, अनन्त द्रव्य के तीन अंश। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्। एक समय में तीन। समय एक और तीन अंश आपने देखे, सर्वज्ञ के सिवा ऐसा तीन काल-तीन लोक में देखने में आता नहीं। समझ में आया ?

सिद्ध का भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव। परमाणु का भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव। ऐसे छह द्रव्य हैं। अनादि-अनन्त है। किसी ने बनाये नहीं हैं। है, है और है। अनादि-अनन्त है। ऐसा पदार्थ ध्रुवता रखकर उत्पाद-व्यय होता है, एक समय में तीन। लाओ ! ऐसी वाणी कहाँ है ? सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी बात तीन काल-तीन लोक में कहीं होती नहीं।

ऐसी बात आपने बतायी कि मिथ्यात्व एक समय में उत्पन्न होता है, वह दूसरे समय में व्यय होने के योग्य है। अपने स्वभाव की दृष्टि करे तो मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। और मिथ्यात्व-एकत्वबुद्धि रखकर दूसरे समय में आये तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है। ऐसी बात आपने बतायी है। और अज्ञानी, अनादि का तो अज्ञानी प्राणी

है और अज्ञानी को जाना नहीं है, वह भी बताता है, तो विचेतन में अज्ञान है, उसमें चेतन कहाँ से लायेगा ? सम्यग्ज्ञान कहाँ से होगा ? अज्ञानी विचेतन अनादि का है। विचेतन समझे ? मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ऐसा भान नहीं। आपके बताने से चेतन होता है। आत्मा ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा भान होता है। ऐसा करके आचार्य महाराज भगवान की स्तुति करते हैं।

एक तो ऐसा लिया है, आगे एक श्लोक है वहाँ। ४५वाँ श्लोक है, भाई! वहाँ तो ऐसा लिया है, प्रभु! आपके गुण की बात क्या करूँ ? आचार्य कहते हैं,

सइहरिकयकण्णसुहो, गिज्जउ अमरेहिं तुह जसो सग्गे।
मण्णे तं सोउमणो, हरिणो हरिणंकसल्लीणो।।४५।।

क्या कहते हैं ?

शचीन्द्रकृतकर्णसुखं, गीयते अमरैस्तव यशः स्वर्गे।
मन्ये तुच्छ्रोतुमनाः, हरिणः हरिणांकसल्लीनः।।४५।।

क्या कहते हैं ? प्रभु! तेरे गुण की क्या बात है ? इन्द्र आपके गुण जहाँ स्वर्ग में गाते हैं, तो मुझे तो चन्द्र को देखकर ऐसा लगता है कि उस चन्द्र में जो हिरन है न ? हिरन। देखो! यहाँ तो धर्म श्रवण करनेवाले की प्रीति कैसी होती है, यह बताते हैं। हे नाथ! उस चन्द्र में हिरन है न ? लांछन दिखता है न ? ... है न ऐसा ? आचार्य उसका लक्ष्य करके कहते हैं, प्रभु! आपके अनन्त गुण की परिणति की शुद्धता, उसके स्वर्ग के इन्द्र गाना गाते हैं, मैं तो जानता हूँ कि हिरन को वह गाना सुनने का प्रेम है न, तो आपका गाना सुनने को यहाँ से उछलकर चन्द्र में गया है। फिर से कहेंगे। एक-दो बार में नहीं छोड़ देंगे। ४५वाँ श्लोक है। ४५ श्लोक है। शास्त्रीजी! क्या कहते हैं ? देखो! यह शब्द पहले बोले थे, आपके संस्कृत में। देखो! फिर से।

सइहरिकयकण्णसुहो, गिज्जउ अमरेहिं तुह जसो सग्गे।
मण्णे तं सोउमणो, हरिणो हरिणंकसल्लीणो।।४५।।

शचीन्द्रकृतकर्णसुखं, गीयते अमरैस्तव यशः स्वर्गे।
मन्ये तुच्छ्रोतुमनाः, हरिणः हरिणांकसल्लीनः।।४५।।

हे नाथ! हे प्रभु! क्या कहूँ ? आपके अनन्त गुण को सुनने का ऐसा प्रेम है, तो उस

प्रेम लगा देते हैं अलंकार दूसरे पर। आहा! हे नाथ! स्वर्ग में इन्द्र समकिती है। ज्योतिष में चन्द्र का देव भी कोई समकिती है। भगवान का केवलज्ञान आदि अनन्त गुण की वीणा द्वारा जब ऐसा प्रेम करते हैं, प्रभु! मैं तो उस हिरन को देखकर ऐसा मानता हूँ कि हिरन यहाँ मनुष्यपने (मध्यलोक से) में से उछलकर चन्द्रमा में आपका गुण सुनने को गया है। समझ में आया?

यहाँ तो सुनना हो तो कहे, अभी काम है। थोड़ा काम है। फिर पुत्र को पूछे, कोई काम नहीं है न? अब सुनने जाता हूँ। पूछे, कोई काम नहीं है न? सब्जी आदि लानी हो तो सब करके बाद में सुनने आना। ये भगवान के गुण का सुनने का प्रेम। कुछ काम नहीं है न, तो अब जाऊँ। ऐसा कहते हैं, पूछते हैं न? कोई काम बचा है? अब जाऊँ सुनने को। काम हो तो सुनने नहीं जाना है।

यहाँ आचार्य ठपका देते हैं। ठपका को क्या कहते हैं? ठपका कहते हैं? ओलंभा। अरे जीव! हम सन्त भी छठवें गुणस्थानवाले भगवान का गुण सुनने को इतने तत्पर हैं तो हम अलंकार करके कहते हैं। यह हिरन है न? ना, ना। लांछन है न? लांछन नहीं है। वह हिरन है। क्यों? हिरन सुनने का शौकीन है। वाजिंत्र सुनने का शौकीन है। और वहाँ भगवान का गुणग्राम ध्वनि चलती है। इन्द्रों में भगवान की स्तुति की ध्वनि चलती है। वीणा द्वारा, इन्द्राणी और इन्द्रादिक, प्रभु! वह सुनने को हिरन उछलकर वहाँ गया है। चन्द्रमा में चिपक गया, वह सुनने को चिपक गया है। समझ में आया?

ऐसा कहते हैं कि जिसको भगवान की वाणी में अनन्त गुण आत्मा के आये और उसका भान हुआ, उसके पूर्णांश में से जो निकलती वाणी, उसका प्रेम समकिती ज्ञानी को होता है। चार ज्ञान के धनी गणधरदेव, चार ज्ञान, चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में कहते हैं, वे भी भगवान की वाणी सुनते हैं। समझ में आया? विकल्प उठता है और सुनते हैं। विकल्प चला जाता है (तो) निर्विकल्प सप्तम हो जाता है। वहीं, हाँ! सुनते-सुनते। परन्तु ज्ञान की जो अन्दर पर्याय विकल्प के लक्ष्य में सुनते थे, विकल्प टूट गया, निर्विकल्प हो गये। तो भी ज्ञान की सन्धि की निर्मलता अन्दर प्रगट हो गयी। विशेष। उसकी सन्धि छूटी नहीं। भगवान क्या कहते हैं, वह उसके ज्ञान में बात आ जाती है। क्या कहा, समझ में आया?

चार ज्ञान के धनी गणधर,... पहले कहा था। प्रवचनसार में है न ? भाई ! ...में जैसे उत्कीर्ण है, ... आदि, ऐसे गणधर जैसे महामुनि, उनके चित्त में हे नाथ ! आप तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। कोतरायेल को क्या कहते हैं ? कोतरायेल कहते हैं न ? उत्कीर्ण। आपकी भाषा बराबर नहीं आती। उत्कीर्ण हो गये हैं। उत्कीर्ण हो गय हैं, (ऐसा) वहाँ शब्द है। प्रवचनसार में भक्ति के (अधिकार में)। आपकी भक्ति गणधर जैसे के हृदय में उत्कीर्ण हो गयी है। उत्कीर्ण, हाँ उत्कीर्ण। गणधर जैसे मुनि, चार ज्ञान जिनको अन्तर्मुहूर्त में हुआ और अन्तर्मुहूर्त में भगवान की वाणी सुनकर बारह अंग की रचना की। हे नाथ ! आपकी भक्ति उनके ज्ञान के चित्त स्तम्भ में उत्कीर्ण हुई है। तो हमारे जैसे प्राणी आपकी भक्ति करे उसमें कोई आश्चर्य है नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

भक्ति आती है, पूजा आती है, बहुमान आता है। ज्ञानी समझते हैं, जितना पर ऊपर लक्ष्य जाता है, उतना शुभराग है और जितना रागरहित अपना स्वभाव का आश्रय होता है, उतनी निर्मलता है। दोनों का विवेक ज्ञानी को दिखता है। अज्ञानी को दो का पता नहीं है। दिखता है वह भगवान की भक्ति करते हैं, यथार्थ निश्चयपूर्वक व्यवहार है। इसलिए आचार्यदेव भक्ति करते हैं। समझ में आया ?

हिरन, आपका गुण सुनने को वहाँ गया है। वह तो अपने पहले से लिया है। आचार्य ने ऐसी स्तुति का प्रारम्भ किया है, बहुत आ गया है। जब आप सर्वार्थसिद्धि में थे, प्रभु ! वहाँ से बात का प्रारम्भ किया है। स्तुति वहाँ से ली है। आप जब सर्वार्थसिद्धि में थे (तो) भगवान ! मुझे दिखता था कि आप सर्वार्थसिद्धि में थे तो सर्वार्थसिद्धि की शोभा थी। और जब वहाँ से निकल गये तो शोभा निकल गयी और यहाँ शोभा आयी। पहले वह सब आ गया है। समझ में आया ? वह सब आ गया। यह तो तेरहवीं बार व्याख्या है न। देखो ! यहाँ आया।

जासि सिरी तइ संते, तुव अवयणमित्तिये णट्ठा।
संके जणियाणिट्ठा, दिट्ठा सव्व ट्ठसिद्धा वि।।६।।

हे भगवन ! आप जब सर्वार्थसिद्धि में थे, तीन और आनन्द में झूलनेवाले। सम्यग्दर्शन, तीन ज्ञान है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। तो हे नाथ ! सर्वार्थसिद्धि की शोभा आपकी उपस्थिति में दिखने में आती थी। जब ऊपर से नीचे नाभिराजा के घर आये। नीचे है,

णाहिघरे वसुहारा, वडणं चं सुइरमहि तुहोयरणा।
आसि णहाहि जिणेसर, तेण धरा वसुमई जाया।।७।।

प्रभु! आपकी वहाँ उपस्थिति के कारण सर्वार्थसिद्धि की सम्पदा शोभित दिखती थी। जब आप वहाँ से निकलकर यहाँ नाभिराजा के घर आये और पन्द्रह महीने जो वसुधारा बरसी, प्रभु! यह पृथ्वी वसुमति नहीं थी। आप आये तो वसुमति हुई। और सर्वार्थसिद्धि की लक्ष्मी नष्ट हो गयी। भक्तों की भक्ति में उसके ज्ञान और आनन्द की शोभा है। बाहर का राग और राग के फल की शोभा है नहीं। ऐसा बताते हुए स्तुति और भक्ति करते हैं। समझ में आया? यहाँ तो बहुत लिया है। एक-एक बात लेकर यहाँ तक आये हैं। केवलज्ञान तक आये हैं। पूर्व से लेकर फिर... वहाँ तक लिया था न?

एक बार कहा था न? हे प्रभु! आषाढ़ कृष्णा दूज में उनका गर्भ था। भगवान गर्भ में आये न, उस दिन आषाढ़ कृष्णा दूज थी। उसमें लिया है। पहले सब आ गया है। प्रभु! उस समय पहली वर्षा हुई। वर्षा हुई तो जमीन में अंकुर बहुत हो गये। अंकुर समझते हो न? छोटे-छोटे। पहली बरसात में बहुत होते हैं। गाथा आ गयी है। प्रभु! मैं तो ऐसा मानता हूँ, आप जब यहाँ गर्भ में आये तो नवविवाहित परिणत स्त्री पति को पाकर, शरीर रोम-रोम उल्लसित दिखते हैं, ऐसे आप जब यहाँ पधारे, तब यह पृथ्वी पतिव्रता को पति मिला। जिसके शरीर में रोम-रोम ... दिखते हैं, अंकुर दिखते हैं, वह आपके प्रताप की भव्यता है। आहाहा! देखो! ज्ञानी को पूर्ण ज्ञानी प्रति जहाँ-तहाँ भक्ति और बहुमान दिखता है। वह लक्ष्य में लेकर भी वही कहा। वह अंकुर नहीं है। विवाहित स्त्री का शरीर जैसे विषय से अथवा पति मिलने से... नागरसुख आता है न? एक श्लोक आता है। नागरसुख पामर नहीं जाने, बल्लभसुख कुँवारी। बल्लभ अर्थात् पति का सुख कुँवारी क्या जाने? समझ में आता है? फिर क्या है? 'अनुभव विण ज्ञान तणुं सुख कोण जाणे नरनारी।' ऐसे शब्द हैं। सब नहीं आते। ऐसे शब्द हैं। यशोविजयजी के शब्द हैं।

यहाँ नागरिक का सुख साधारण गाँववाला क्या जाने? और पति बिना की कुँवारी को पति का सुख क्या खबर है? ऐसे आत्मानुभव बिना आत्मा कैसा है, उसका आनन्द के सुख की उसको कहाँ खबर है। समझ में आया? विकार और शरीर बिना का आत्मा सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर... अभी दस मिनिट है। आत्मा को जो आनन्द

आता है, प्रभु!

अनुभव विण आत्मा का सुख कौन जाने नरनारी,
नागर सुख पामर क्युं जाने, वल्लभसुख कुंवारी।
अनुभव विण आत्म तणुं सुख कोण जाणे नरनारी।

किसे खबर है कि क्या है आत्मा? कहते हैं, हे नाथ! हमारा आत्मा... ओहोहो! पूर्ण आनन्दकन्द है। ऐसा मेरे भास में मुझे आ गया। परचा हो गया, परचा हो गया। समझ में आया? उस आनन्द के बोध की अज्ञानी को क्या खबर पड़े? और वह आनन्द आया वह सर्वज्ञ की पूर्णानन्द की भक्ति का उछाला मारता है। आहाहा! अल्प काल में केवलज्ञान लेना है, उसका यह लक्षण है। ये तो मनुष्य देह है, पंचम काल है, इसलिए केवलज्ञान नहीं है। तो भी पहले कहा, ... निर्वाण है, निर्वाण है, सुन तो सही। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... आत्मा, ऐसी रागरहित दृष्टि और ज्ञान में लीनता। यह तो चारित्र है। आचार्य तो चारित्रवन्त हैं! ओहो! धन्य-धन्य अवतार! समझ में आया? आनन्द का सम्यग्दर्शन में अनुभव, उससे उपरान्त चारित्र के आनन्द की उग्रता, उसकी बात क्या! अलौकिक बात! जिसको परमेश्वर पद में जोड़ दिया। ऐसे भगवान को जो आनन्द आचार्य को हैं, अज्ञानी को क्या मालूम पड़े कि वह आनन्द क्या है, वस्तु स्वभाव क्या है। परन्तु प्रभु! आपको जो अनन्त आनन्द हुआ, उसका गुणग्राम सुनने के हम रुचि वाले प्राणी हैं। हमारे गुण की रुचि, अनुभव हुआ तो आपके पूर्ण गुण को सुनने में हम लायक और पात्र हैं। हिरन वहाँ जाता है, तो हम यहाँ नहीं सुने, कैसे चले? आहाहा!

सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागरपर्यन्त स्वाध्याय करते हैं। समकिती हैं, एक भवतारी हैं। सुना है? ३३ सागरवाले लाखों, असंख्य नहीं है, सर्वार्थसिद्धि है न? उसमें असंख्य जीव नहीं है। दूसरे चार अनुत्तर विमान हैं। भाई! संख्यात है, लेकिन प्रत्येक एकावतारी है। एक भव से मुक्ति जानेवाला। ३३ सागर आत्मा का गुण और वीतराग का गुण सुनते थे। चर्चा करते थे, वाँचन करते थे, क्षायिक समकिती करते हैं। करते थे तो भूत का हो गया। समझ में आया? करते हैं। अन्त में कहते हैं, हे नाथ! ३३ सागर। एक सागर में १० कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष। बड़ी बात नहीं है, हों! ये सब तो छोटी बात है। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाये), ऐसा

एक पल्योपम। ऐसा दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का सागरोपम। ऐसा ३३ सागर शास्त्र का भगवान का गुण वहाँ गाते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो दो घड़ी बैठे तो कंटाला आ जाये कि अरेरे! मन नहीं लगता, मन नहीं लगता। कहाँ से लगे? गुण का प्रेम नहीं, विकार का प्रेम है। गुण के प्रेम बिना गुण की स्तुति यथार्थ करने में आती नहीं। समझ में आया? एक गाली दे तो कैसी लगती है? शादी का प्रसंग हो और एक गाली दे गाली। सरखाई की, सरखाई की अर्थात् कड़क। कड़क गाली को क्या कहते हैं? तीव्र गाली। तो गाली को मन में रखता है। अरे! मुझे २५ साल पहले हमारी बेटी की शादी थी, तब उस आदमी ने ऐसी गाली थी। गाली मन में रखता है, गुण मन में रखता है तू? ऐसी गाली बोलने में आयी तो मन में रख लिया कि अरे! मुझे ऐसा कहा। भगवान कहते हैं, हम तुझे अनन्त गुण का पिण्ड कहते हैं। मन में तो ले। समझ में आया? गठड़ी है तेरा आत्मा अनन्त गुण की गठड़ी है। आहाहा!

सूरण के कन्द की जो भेली होती है न? सूरणकन्द की। क्या कहते हैं? सूरण का कन्द। ऐसा बड़ा-बड़ा होता है। जहाँ छुरी मारो वहाँ अकेला रस ही है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर भेली पड़ी है। भेली समझे? गुड़ की भेली कहते हैं। गुड़ की भेली कहते हैं न? ऐसे भगवान आत्मा देह से भिन्न प्रभु, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प से भी भिन्न। अखण्ड आनन्दरस की भेली पड़ी है। उसकी हम प्रशंसा करते हैं और कहते हैं... उकताहट आती है, नहीं समझ में आता, एक घण्टे के बाद तो थकान लगती है। बड़ी अच्छी बात है। गाली बरसों तक याद रहती है और गुण सुनने में तुझे उकताहट आती है। मिथ्या भ्रम में पड़ा है। तुझे आत्मा के गुण पर प्रेम नहीं है।

यहाँ कहते हैं आचार्य! ओहोहो! आगे तो अभी कहेंगे, आलोचना में भी ऐसी बात ली है, ये सब अलौकिक बात है। आखिर में आलोचना का एक अध्ययन है। करते... करते... करते... आखिर में ऐसा लिया है कि हे नाथ! समकिती धर्मी को स्वर्ग तो मिलता है। क्योंकि ख्याल है कि अभी तो केवलज्ञान है नहीं। राग बाकी रहता है। लेकिन ज्ञानी उस भव और राग को इच्छते नहीं। ऐसा करते-करते वहाँ जाते हैं। ऐसा एक श्लोक है। राग और राग का फल ज्ञानी की अभिलाषा में, भावना में है नहीं। परन्तु आये बिना रहेगा नहीं, तो निषेध करके वहाँ जन्म लेंगे। आहाहा! क्या कहते हैं?

राग और राग का फल... आलोचना में आखिर की अन्तिम गाथा है। सब व्याख्यान हो गया है। एक-एक गाथा। नाथ! राग और राग का फल आयेगा, हमको मालूम है। हम पंचम काल के मुनि हैं, केवलज्ञान नहीं होगा। परन्तु हम पहले से निषेध करते हैं कि स्वर्ग का भव हमारा नहीं, हमारा नहीं। और उसका कारण राग, हमारा नहीं। हमारा है, उसमें हमारी प्रीति है; हमारा नहीं है, उसमें प्रीति नहीं। ऐसा करके स्वर्ग में जाते हैं तो निषेध करके वहाँ रहते हैं। और बाद में मनुष्यपने आयेगा, तब राग का अभाव करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष चला जायेगा। समझ में आया?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं, हे नाथ! जैसे वहाँ हिरन है, ऐसे अज्ञानियों ने कहे तत्त्वों की विपरीत बात, उससे तो अचेतन अनादि से मिथ्यादृष्टि है। अचेतन कहो या मिथ्यादृष्टि कहो (एकार्थ है)। वह आपकी वाणी से चेतन होता है। अज्ञानी की वाणी से अचेतन अर्थात् मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि होता नहीं। ऐसा कहने में आया। सर्वज्ञ की वाणी / अभिप्राय, वही सम्यग्दर्शन पाने में निमित्त होता है। दूसरे की वाणी कोई निमित्त होती नहीं। समझ में आया? और ऐसे सर्वज्ञ के अनुसार सम्यग्ज्ञानी हुआ, उसकी वाणी सम्यग्दर्शन में निमित्त होती है, अज्ञानी की वाणी निमित्त होती नहीं, ऐसा कहते हैं, लो। समझ में आया? ३९ वीं गाथा कही। अब, ४०वीं ऐसी है,....

गाथा ४०

भवसायरम्मि धम्मो धरइ पडंतं जणं तुहच्चेव।
सवरस्स व परमारण-कारणमियराण जिणणाह।।४०।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेश! आपका धर्म ही संसाररूपी समुद्र में गिरते हुए जीवों को धारण करता है; किन्तु हे जिनेन्द्र! आपसे भिन्न जितने धर्म हैं, वे भील के धनुष के समान दूसरों को मारने में ही कारण हैं।

भावार्थ - जिस प्रकार भील का धनुष, जीवों को मारनेवाला ही है, रक्षा करनेवाला नहीं; उसी प्रकार हे जिनेन्द्र! यद्यपि संसार में बहुत से धर्म मौजूद हैं, परन्तु वे सर्व धर्म, प्राणियों को दुःखों के ही कारण हैं, अर्थात् जो प्राणी उन धर्मों को धारण करता है,

उसको अनेक गतियों में भ्रमण ही करना पड़ता है तथा उन गतियों में नाना प्रकार के दुःखों को उठाना पड़ता है क्योंकि उन धर्मों में जीवों को हितकारी वस्तु का वास्तविक स्वरूप नहीं बतलाया गया है, किन्तु हे प्रभो! आपके धर्म में वस्तु का यथार्थ स्वरूप भलीभाँति बतलाया गया है, अर्थात् वास्तविक मोक्षमार्ग आदि को विस्तृत रीति से समझाया गया है। इसलिए जो प्राणी आपके धर्म के धारण करनेवाले हैं, वे शीघ्र ही इस भयंकर संसाररूपी समुद्र को तिर जाते हैं; इसलिए आपका धर्म ही उत्तम धर्म है।

गाथा - ४० पर प्रवचन

भवसायरम्मि धम्मो धरइ पडंतं जणं तुहच्चेव।
सवरस्स व परमारण-कारणमियराण जिणणाह।।४०।।

हे नाथ! **संसाररूपी समुद्र में गिरते हुए... 'धम्मो, धरइ पडंतं'। जीवों को आपका धर्म ही धारण करता है।** आपने वीतरागस्वभाव, वीतरागदृष्टि, वीतरागज्ञान, वीतरागीचारित्र, ऐसा जो धर्म बताया, आप ही धर्म के कारण हो और गिरते हुए को धारण करने का आपका धर्म यथार्थ है। **किन्तु...** हे नाथ! '**सवरस्स**' '**सवरस्स**' को भील कहते हैं। **आपसे भिन्न जितने भी धर्म हैं, वे भील के धनुष के समान दूसरों को मारने में ही कारण हैं। 'सवरस्स व परमारण-कारणमियराण जिणणाह।**' हे प्रभु! सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा! आपने कहा ऐसा आत्मस्वभाव, विभाव, संयोग जो आपने बताया वही आत्मा का धर्म शरण है। अज्ञानी को मालूम नहीं है कि क्या है आत्मा, क्या है पवित्रता, क्या है मलिनता, कैसे मलिनता छूटती है, किसका आश्रय लेना, यह अज्ञानी को मालूम नहीं। अज्ञानी ने जो मार्ग बताया, वह भील के धनुष के समान मारने का कारण है। उसमें बचने का कारण नहीं है।

आचार्य,... '**सवरस्स**', '**सवरस्स**' अर्थात् भील। भील जैसा अज्ञानी का मार्ग है। आपका मार्ग... आहाहा! जैसा कहा, ऐसा हमको ख्याल में आया है और उस मार्ग से हम तिरकर हम संसार का पार पायेंगे। दूसरे की वाणी हमें निमित्त होती नहीं। ... विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल-९, बुधवार, दिनांक - २०-०५-१९६४
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ४० से ४५, प्रवचन-७९५

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। उसमें भगवान परमात्मा की स्तुति चलती है। आज वर्तमान पार्श्वनाथ भगवान का केवलज्ञान का दिन गिनने में आया है। आज केवलज्ञान कल्याणक हुआ न? पार्श्वनाथ भगवान आज से पहले करीब २७५० वर्ष पहले एक तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा हो गये। सर्वज्ञ परमात्मा किसको कहते हैं? आज केवलज्ञान कल्याणक हुआ। एक समय में आत्मा, इस देह से भिन्न चैतन्य प्रभु, उसमें सर्वज्ञ स्वभाव शक्तिपने स्वभावपने अनादि से पड़ा है। उसका अन्तर में पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। केवलज्ञान का दिन तो आज गिनने में आया। परन्तु केवलज्ञान से पहले क्या होता है, केवलज्ञान के पहले क्या होता है और केवलज्ञान कैसे होता है।

यह आत्मा... सूक्ष्म बात है। अन्तर चिदानन्द भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा का है। अनादि शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का अन्तर में अनुभव करके पुण्य और पाप का राग का लक्ष्य छोड़कर, मैं अखण्ड आनन्द एक शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा अन्तर में स्वभाव शुद्ध त्रिकाल के सन्मुख होकर आत्मा में प्रथम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या? कि राग और पुण्य-पाप का राग है, उससे लक्ष्य छोड़कर चैतन्य भगवान पूर्णानन्द और ज्ञान की मूर्ति है, ऐसा अन्तर में अनुभव में आता है और आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का अनन्त काल में समयमात्र स्वाद-अनुभव नहीं आया, वह सम्यग्दर्शन के काल में राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, एक क्षण की वर्तमान अवस्था अल्पज्ञ की है, उतना भी मैं नहीं; मैं अखण्ड पूर्ण अन्दर द्रव्य चैतन्य अखण्डानन्द हूँ। पदार्थ एक होने से उसका स्वभाव अखण्ड होने से अखण्ड जिसकी दृष्टि अन्दर में होती है, उसको सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। बहुत सूक्ष्म बात है। कभी परिचय किया नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ समझ में नहीं आता, ऐसा होता है? पहले अभ्यास तो करे, ख्याल तो करे कि क्या चीज़ है। वह तो सवेरे दृष्टान्त नहीं दिया था। पीपर के दाने में चौसठ

पहरी चरपराहट अन्दर में भरी है। पीपर, छोटीपीपर होती है या नहीं? उसमें अन्दर में चौसठ पहरी चरपराहट-तीखा रस पड़ा है। तो घोंटने से बाह्य में प्रगट आता है। है तो आता है। प्राप्त की प्राप्ति है। न हो, उसमें से आता नहीं। इतना नहीं समझते?

ऐसे भगवान आत्मा, जैसे उस पीपर के दाने में चौसठ पहरी अर्थात् चौसठ अर्थात् रुपया, सोलह आने, पूर्ण अखण्ड अभेद। अन्तर में पूर्ण तीखास-चरपराहट और हरा रंग पड़ा है, शक्ति में है तो प्रगट चौसठ पहरी होता है। ऐसे... वह तो दृष्टान्त जड़ का हुआ। ऐसे देह में विराजमान चैतन्य, उसमें अन्तर में ध्रुव स्वभाव में सर्वज्ञपद और पूर्णानन्द चौसठ अर्थात् पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द अन्दर स्वभाव में पड़ा है। पीपर के दृष्टान्त के सिद्धान्तरूप। पीपर का तो दृष्टान्त है। उसका सिद्धान्त... खबर नहीं कभी अनन्त काल में। मैं कौन हूँ, कैसा हूँ, कहाँ हूँ, क्यों हूँ, (इसका विचार नहीं किया)।

एक चैतन्यप्रभु, जिसका ज्ञानस्वभाव है। उसके स्वभाव में पूर्ण ज्ञान पड़ा है और पूर्ण अन्दर आनन्द पड़ा है। ऐसी वर्तमान दृष्टि अल्पज्ञ में, राग में और निमित्त में है, उसकी दृष्टि—लक्ष्य छोड़कर पूर्णानन्द अन्दर में है, उसमें दृष्टि लगाने से अपने में पहले आत्मा का साक्षात् अनुभव निर्विकल्प रागमिश्रित बिना निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है। इतना समझते हैं या नहीं? मुम्बई में तो बुद्धिवाले लोग कहलाते हैं। कहलाते हैं, ऐसा कहते हैं, हाँ! आत्म चीज़ क्या इस देह में है? दुनिया के पदार्थ की परीक्षा करते हैं। 'परख्या माणेक मोती, परख्या हेम कपूर, एक न परख्यो आत्मा' क्या है आत्मा अन्दर चीज़?

एक बार, दृष्टान्त देते हैं, लालन था न लालन? हीरा है न हीरा? कोहिनूर। कोहिनूर। प्रकाश का पर्वत। पाँच करोड़ का कहते हैं? धूल करोड़ का, ऐसा कुछ कहते हैं न? वह देखने को गये थे। पण्डित को पूछा, क्यों पण्डितजी! कैसा लगता है? कोहिनूर कैसा लगता है? तो कहा, कहूँ? कोहिनूर की कीमत करनेवाली तो आँख है। कोहिनूर हो और यदि आँख नहीं हो तो कीमत करे कौन? और आँख हो और ज्ञान नहीं हो अन्दर में, चैतन्य न हो तो कीमत करे कौन? मैं कोहिनूर की कीमत करूँ, आँख की करूँ या मैं चैतन्य की करूँ? समझ में आया? कोहिनूर का जाननेवाला तो आत्मा है, जो जानने में आया कि यह चमकती चीज़ है, टिकती है, बहुत थोड़ी मिलती है तो उसकी कीमत गिनने में आती है। मैं उसका जाननेवाला (हूँ)। जड़ उसको जानते नहीं, आँख जानती नहीं,

उसकी उसको खबर नहीं। मैं जाननेवाला चैतन्य प्रकाशमय मैं अपने को जानता हूँ और अपने में पर क्या है, वह भी मैं जानता हूँ। ऐसी मेरे में—चैतन्य में—ताकत स्व-पर जानने की अन्तर में पूरी है। ऐसा स्वभाव जिसको अन्तर्मुख होकर सम्यक् अनुभव होता है, उसको सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी-धर्म की पहली भूमिका कहने में आती है। आहा! कभी खबर नहीं (की)। दुनिया क्या है और दुनिया में मैं क्या हूँ।

'घट पट आदि जाण तुं तेथी तेने मान'। दूसरी चीज़ को माने, लेकिन 'जाणनारने मान नहि...' ये जाननेवाला कैसा है, सच्चिदानन्द आत्मा कैसा है, उसको वह जानता नहीं। वह ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा है। ज्ञान का प्रभु है। वह राग का नहीं, शरीर का नहीं। ऐसी अन्तर में चीज़ है। सत् अर्थात् शाश्वत ज्ञान और आनन्द जिसका अन्तर स्वभाव है, ऐसी प्रथम (श्रद्धा होनी चाहिए)। अभी तो केवलज्ञान ले जाना है, सम्यग्दर्शन नहीं समझता। एक समय में... समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसा पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरा है। वस्तु है या नहीं? वस्तु है तो उसका स्वभाव है या नहीं? और स्वभाव है तो वस्तु अखण्ड है तो उसका स्वभाव भी अखण्ड है। अखण्ड अर्थात् पूर्ण है। अन्तर में ज्ञान और आनन्द पूर्ण है। ऐसी अन्तर में पहले राग और विकल्प की रुचि छोड़कर अपना अखण्डानन्द स्वभाव है, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से आत्मा निर्विकल्प दृष्टि में आनन्द के अनुभव में आत्मा की प्रतीति होती है। उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक् अर्थात् सत्य स्वरूप जो त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा अन्तर में वेदन होकर प्रतीति होना, उसका नाम भगवान प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। बाद में स्वरूप में लीनता करते-करते चारित्र होता है। चरना, रमना, जमना, अनुभव करना। बहुत अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते-करते लीन होते हैं, उसका नाम चारित्र है। और बहुत उग्र होते हैं लीनता में, उसको शुक्लध्यान कहते हैं और शुक्लध्यान के कारण एकाकार चिदानन्द में होने पर केवलज्ञान प्रगट होता है।

एक समय में तीन काल तीन लोक को जाननेवाली आत्मा की एक समय की पर्याय पूर्ण ज्ञान की प्रगट होती है, उसको केवलज्ञान कहने में आता है। अभी तो केवलज्ञान किसको कहना, अब केवलज्ञान को क्या कहा, उसे कहना है। आज केवलज्ञान का दिन है। पार्श्वनाथ भगवान का केवलज्ञान कल्याणक हुआ तो केवलज्ञान क्या है, यह पहले बताया। समझ में आया? लक्ष्य में तो लो कि कुछ कहते हैं, कोई चीज़ है।

केवलज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक देखने में आये, वाणी-इच्छा बिना दिव्यध्वनि निकली। दिव्यध्वनि। 'ॐकार धुनी सुणी अर्थ गणधर विचारे।' ध्वनि निकलने पर सन्त, जो गण अर्थात् सन्त साधु का समूह, उनके जो अग्रणी थे, उन्होंने बारह अंग की रचना दिव्यध्वनि में से रचना की।

उस दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि तू अनादि-अनन्त है। तू आत्मा अनादि-अनन्त है, जड़ अनादि-अनन्त है। ऐसी छह वस्तु अनादि-अनन्त हैं। और प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण हैं, वह भी अनादि-अनन्त हैं। और प्रत्येक वस्तु वर्तमान में पर्याय अर्थात् परिणमन बदला करती है, ऐसी पर्याय अर्थात् अवस्था भी एक समय में अनन्त है। समझ में आया? धर्म की बात भी कभी सुनी नहीं हो, उसे तो हंबग जैसा लगे। क्या कहते हैं? ग्रीक लेटिन जैसी। क्या है, सुन तो सही, तूने कभी सुना नहीं। तेरी चीज़ क्या और तेरे में क्या है, जाननेवाला आत्मा पूर्णानन्द से भरा मैं ज्ञान का चमत्कार मात्र चीज़ है। चैतन्य चमत्कार! उसमें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक जानने की ताकत है। ऐसी ताकत अन्तर के अनुभव से प्रगट होती है। उसको केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त कहने में आता है।

केवलज्ञान हुआ, उसमें छह पदार्थ आये। छह द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व, पंचास्तिकाय। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की व्याख्या जो भगवान के मुख में से निकली। शास्त्रकार ग्रन्थकार गणधरदेव ने रचना की, उसका नाम शास्त्र कहने में आता है। यह शास्त्र भी भगवान ने कहा, उसके अनुसार शास्त्र है।

यहाँ तो अपने भक्ति की बात चलती है।.... यहाँ तो अपने भक्ति का अधिकार भी चलता है। तत्त्वदृष्टि का अधिकार तो सवेरे चलता है। जब आत्मा का सम्यक् चैतन्य की अनुभव दृष्टि होती है, तब पूर्णानन्द को प्राप्त परमात्मा के प्रति उसको प्रेम आता है। समझ में आया? अपनी अल्प शक्ति में पूर्ण आत्मा मैं हूँ, ऐसी प्रतीति अनुभव में आती है। तो शक्ति की प्रगटता अल्प है और केवलज्ञानी की शक्ति की प्रगटता पूर्ण है। ऐसे परमात्मा के प्रति सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की भक्ति, प्रेम, अनुमोदन, स्तुति, स्तवन का भाव धर्मी को आये बिना रहता नहीं।... नहीं मिले तो उसे प्राप्त करने को, मिली उसकी रक्षा करने को, प्रेम है तो होती है या नहीं? तो वह तो ... है। पूर्ण जहाँ परमात्मदशा, आत्मा जलहल ज्योति

एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलदशा जहाँ प्रगट हुई तो धर्मी सम्यग्ज्ञानी, जिसको अपनी दृष्टि का भान है कि मैं पूर्णानन्द शक्ति में हूँ, अवस्था में पूर्ण नहीं हूँ, तो अवस्था में जिसको पूर्ण प्रगट हुआ है, उनके प्रति भक्ति, प्रेम और अनुमोदना, स्तुति एवं स्तवन का भाव आये बिना रहता नहीं। यह सब बात अभी निश्चित करने जाये और बाद में भक्ति करे तो चले नहीं। यहाँ तो यह अधिकार चलता है, देखो! ४० गाथा चली है। ४१वीं गाथा आयी है, ४१।

क्या कहते हैं? ख्याल में आये उतनी लो। बात तो त्रिकाल सत्य... सत्य... सत्य है। उसे ख्याल में आये तो भी सत्य है और नहीं समझ में आये तो भी सत्य है। वस्तु तो वस्तु है। समझ में आया? वह तो पहले एक बार दृष्टान्त दिया है। जन्म होने के बाद पहले बारह महीने क्या हुआ खबर है तुमको? बताओ। जन्म होने के बाद बारह महीने में क्या था? क्या खाया था, माता का क्या स्थान, खबर है? खबर नहीं है इसलिए वह चीज़ नहीं है? वह खबर नहीं इसलिए वह चीज़ नहीं थी, ऐसा कहाँ से लाया? समझ में आया? जो बात की खबर नहीं है वह बात नहीं है, ऐसा कहाँ से आया? बारह महीने में क्या हुआ, क्या बोला खबर नहीं। खबर है? तो नहीं थी उस समय? शरीर, शरीर की अवस्था, माता-पिता क्या करते थे, सब ख्याल में नहीं है। थी या नहीं? खबर नहीं है, इसलिए वह चीज़ नहीं है, ऐसा सिद्धान्त नहीं हो सकता। खबर नहीं है, इसलिए उस चीज़ का अस्तित्व नहीं है, ऐसा नहीं है। अनन्त काल में त्रिकाल अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, अनन्त ज्ञानियों, अनन्त अज्ञानियों अनादि संसार में है। उसको खबर नहीं है, इसलिए नहीं है, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि जब सर्वज्ञ परमात्मा हुए, तब उनकी प्रशंसा करनेवाला भक्त अन्तर के गुण की तो भक्ति एवं स्तुति करता है, परन्तु उनके शरीर को देखकर ऐसा कहते हैं... ४१वीं गाथा चलती है। हे नाथ! आत्मा में पूर्णानन्द की प्राप्ति जब होती है परमात्मा को, तब शरीर के रजकण स्फटिक जैसे हो जाते हैं। शरीर के रजकण स्फटिक जैसे हो जाते हैं। केसर रखने की डिब्बी ही अलग होती है। केसर बारदान में नहीं रहता। क्या समझे? ये केसर होता है न? केसर। वह चावल जिसमें रखते हैं, ऐसे बारदान में केसर रहता है? केसर को रखने की डिब्बी और पात्र अलग होती है। उसको रखने की चीज़ ही अलग है। हीरा-माणेक को रखने की डिब्बी है, वह भी भिन्न चीज़ है। अलौकिक

चीज़ होती है। जवेरी है या नहीं कोई ? हमने देखा है। ८० हजार का हीरा एक ऐसी डिब्बी में रखा था। मखमल की डिब्बी। अन्दर खड्डा था। ८० हजार। एक रति का १० हजार रुपया। ८० हजार का एक हीरा बेचरभाई राजकोट में बताने को लाये थे। आठ रति का है। एक रति का १० हजार रुपया लेते हैं। एक रति का, हाँ! आठ रति के ८० हजार। जिसमें पड़ा था, वह डिब्बी ऐसी थी। देखने लायक थी। ऊपर मखमल, नीचे मखमल और खड्डा। उसको कोई छूए नहीं, ऐसी डिब्बी थी। हीरा की बात की। है या नहीं नानालालभाई कहाँ गये ? आणन्दभाई है या नहीं ? ऐ... आणन्दभाई ! आणन्दभाई के चाचा लाये थे। (संवत्) १९९९ की साल में लाये थे। डिब्बी। वह डिब्बी भी अलग चीज़ थी।

ऐसे चैतन्य-हीरा, अपना चैतन्य-हीरा अन्दर में से चमक होकर पूर्णानन्द और केवलज्ञान की प्राप्ति होती हो तो यह डिब्बा भी अलग जाति का हो जाता है। भगवान ! वह बात ही कोई अलौकिक है। प्रभु ! तूने सुनी नहीं। नहीं सुना चैतन्य, नहीं सुना जड़, नहीं सुना पुण्य का प्रभाव, नहीं सुना पवित्रता का प्रभाव। समझ में आया नहीं, उसमें तो किससे माप करे ? माप ही छोटा है, छोटा माप करे तो उसे माप आता नहीं। यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा एक समय में जिसको केवलज्ञान हुआ तो शरीर स्फटिक रत्न जैसा, शास्त्रभाषा से कहें तो परम औदारिक हो जाता है। वह शास्त्रभाषा है। शास्त्र तो शास्त्र की रीति से कहते हैं। तुम्हारी भाषा में ऐसा कहा कि स्फटिक जैसा परमाणु हो जाता है।

अन्तर में चैतन्य-स्फटिक निर्मल हुआ। बाहर में शरीर भी स्फटिक जैसा हो गया है। उसको उद्देशकर आचार्य महाराज भी स्तुति करते हैं। सम्यग्दृष्टि तो भगवान की स्तुति करे, श्रावक पंचम गुणस्थानवाला तो करे, मुनि भी करे, ये तो आचार्य स्वयं भक्ति करते हैं। समझ में आया ? पूर्णानन्द की प्राप्ति प्रभु ! ओहोहो ! चन्द्र पूर्ण कला से खिलता है... सुना है ? चन्द्र। ये चन्द्र है या नहीं ? दूज का उदय होता है, दूज के काल में तीन कला खिली है। अमावस्या हो तो भी एक कला तो खुल्ली ही रहती है। और जब पूर्णिमा होती है, तब सोलह कला से चन्द्रमा खिल जाता है। और वह चन्द्रमा पूर्णिमा के दिन खिलता है, एक समय मात्र रहता है। सुनो, न्याय तो सुनो लक्ष्य में लेकर। पूर्णिमा के दिन सोलह कला उसकी सोलह कला एक समय रहती है। बाद में घट जाती है। क्योंकि ... बाद सोलह कला कम हो जाये। पहले कम हुई है, एक समय कम हुई हो तो बाद में सोलह

कला पूर्ण हो जाती है। एक समयमात्र वह कला रहती है। क्योंकि उसमें घट-बढ़ का निमित्त का आवरण होता है।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द है। ऐसा जब अनुभव हुआ तो उसको सम्यक् दूज कहते हैं। चन्द्र की दूज की उपमा उसको देते हैं। बोधिबीज। और जब अन्तर एकाकार, जैसे दूज की पूर्णिमा हुई, वैसे आत्मा में पूर्ण, पूर्णिमा, पूर्णत (होती है)। अभी अपने यहाँ चलता है, पूर्णिमा में आधा महीना और अमावस्या को पूर्ण महीना। ऐसा अपने यहाँ चलता है। ऐसा है नहीं। पूर्णिमा में पूर्ण महीना, अमावस्या में आधा महीना। उसका शब्दार्थ ऐसा है—अमा वास। अर्ध मास। पूर्णिमा—पूर्ण मास। कृष्ण पक्ष के प्रथम दिन महीने की शुरुआत होती है। पूर्णिमा के दिन पूर्ण एक समय में चन्द्रमा होता है। ऐसे भगवान आत्मा... वह (कला) एक समय रहती है। भगवान आत्मा अन्तर एकाकार होकर केवलज्ञान की कला सोलह कला से जब पूर्ण होता है, तो सादि अनन्त काल केवलज्ञान रहता है। जब से हुआ, तब से अनन्त काल ऐसा रहता है। समझ में आया? अरे! भगवान! कितना अस्तित्व क्या है, उसकी प्रतीति की खबर बिना अपने स्वभाव की प्रतीति कैसे आयेगी उसको?

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! आपको जब केवलज्ञान होता है, तो आपके नाखून और केश... गाथा वह आयी है तो वह चलता है, दूसरी बात कैसे चलायें? तो कहते हैं,

गाथा ४१

अण्णो को तुह पुरओ वग्गइ गुरुयत्तणं पयासंसो।
जम्मि तइ परमियत्तं केशणहाणं पि जिण जायं।।४१।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जब आपके केश तथा नख भी परिमित हैं, अर्थात् बढ़ते नहीं; तब ऐसा कौन है जो आपके सामने अपनी गुरुता को प्रकाशित करता हुआ बोलने की सामर्थ्य रखता हो?

भावार्थ - जब अचेतन नख तथा केश भी आपके प्रताप से सदा परिमित ही रहते

हैं, अर्थात् कभी बढ़ते नहीं हैं; तब जो आपके प्रताप को जानता है, वह कैसे आपके सामने अपनी महिमा को प्रगट कर सकता है? तथा आपके सामने अधिक बोल सकता है?

गाथा - ४१ पर प्रवचन

अण्णो को तुह पुरओ वग्गइ गुरुयत्तणं पयासंसो।
जम्मि तइ परमियत्तं केसणहाणं पि जिण जायं।।४१।।

अन्यः कः तव पुरतो, वल्गति गुरुत्वं प्रकाशयन्।
यस्मिन् त्वयि प्रमाणत्वं, केशनखानामपि जिन! जातम्।।४१।।

क्या कहते हैं? अरे! आचार्य जंगल में रहकर आत्मा का आनन्द का अनुभव था, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे। उसमें भगवान की भक्ति करने का एक शुभराग आया। भगवान के लक्ष्य से प्रशंसा की स्तुति का ... व्यवहार आया है। वह भाव आये बिना रहता नहीं। है। आत्मा के सम्यग्ज्ञान में अपना कर्म और कर्ता है नहीं। फिर भी कमजोरी से वह आये बिना (रहता नहीं)। शुभभाव, भक्ति का भाव, दया का भाव शुभभाव आये बिना रहता नहीं। उसको पुण्यास्रव और पुण्यबन्ध का कारण ज्ञानी जानते हैं। आते हैं तो वे भक्ति में क्या कहते हैं? हे प्रभु! **हे जिनेन्द्र! जब आपके सामने केश तथा नख भी परिमित हैं...** आपके नख और केश परिमित (अर्थात्) बढ़ते-घटते नहीं। केवलज्ञान जब हुआ, (उसके बाद) शरीर का केश, नख बढ़ते नहीं। ऐसा तो अज्ञानी को भी है। रामजीभाई! रामजीभाई को खबर है। एक आदमी हमें मिला था। पन्द्रह दिन तक गड्ढा करके अन्दर में पड़ा रहे। क्या कहते हैं उसको? समाधि लगाते हैं, ऐसा कहते हैं। समाधि-बमाधि नहीं है वहाँ। मूढ़ है। हमने देखा है, रामजीभाई मिले हैं। पन्द्रह-पन्द्रह दिन। जवान आदमी था। व्यभिचारी था। फिर भी ऐसा अभ्यास किया था। सुनो! पन्द्रह दिन बड़ा गड्ढा करके उसमें रहता था। और ऊपर धूल डाल देता था। ऊपर में। पन्द्रह दिन के बाद निकले तो जैसा नख और केश था, वैसा का वैसा रहे। बढ़े नहीं। अज्ञानी को भी ऐसा है। समझ में आया?

वहाँ हमारे सोनगढ़ में गुरुकुल है, गुरुकुल आर्य समाज का। वहाँ वह आया था। बाद में हमने देखा था। रामजीभाई के साथ वडोदरा गये थे न ? नहीं वहाँ था। वडोदरा गये थे तब मिला था। यहाँ दूसरा कहना है। ये तो तुम्हारे दृष्टान्त देना है। पन्द्रह दिन तक श्वास हठ से रोककर। ज्ञान से नहीं, सम्यक् से नहीं, श्रद्धा से नहीं, अनुभव से नहीं। हठ से, व्यभिचारी होने पर भी ऐसा अभ्यास था कि पन्द्रह (दिन) गड्ढे में रहता था। लोग ऐसा कहे, आहाहा! पन्द्रह दिन। उसमें क्या है ? वह तो एक अज्ञान का अभ्यास है। श्वास मन्द चलता हो। पन्द्रह दिन बाद निकले। यहाँ आपको आठ दिन में दाढ़ी बढ़ जाये।

मुमुक्षु : एक रात में बढ़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक रात में बढ़ जाये। रोज दाढ़ी करते हैं। कितने ही देखे हैं न, रोज हजामत। सुबह होते ही हजामत। ... हमने तो देखा है, सब देखा है। सबकी खबर है। सब बात। सुबह से शाम तक कुछ ... लगे, शरीर अच्छा नहीं दिखे, बराबर दिखे नहीं। एक-एक दिन में हजामत। रामजीभाई कहते थे, पार्टी में जाना हो तो उस समय हजामत करके जाये। साफ दिखाने को। ये पन्द्रह दिन गड्ढे में रहने के बावजूद नख और केश बिल्कुल बढ़े नहीं। ऐसा उसने कहा और प्रत्यक्ष देखा था। समझ में आया ?

अज्ञानी को भी ऐसी श्वास क्रिया (होती है)। जिसको धर्म-बर्म नहीं है। रामजीभाई ने कुछ पूछा था। तुम भगवान का नाम... ऐसा कुछ पूछा था न ? भगवान के नाम को लक्ष्य कर रह सके या नहीं ? नहीं। भगवान का नाम लेकर नहीं रह सकूँ। मेरा अभ्यास है तो उसमें रह सकता हूँ। कभी-कभी, हों! धर्म नहीं, ज्ञान नहीं, क्रिया नहीं, समाधि-फमाधि कुछ नहीं। ऐसा अज्ञान का अभ्यास पन्द्रह दिन में गड्ढे में धूल डाल दे। ऊपर लकड़ी डाल दे। नख बढ़े नहीं, केश बढ़े नहीं।

ये तो परमात्मा हैं। सुनो! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमात्मा पूर्णानन्द अन्तर समाधि लगाकर... समाधि अर्थात् ये श्वास का ... नहीं। निर्विकल्प आनन्द की समाधि रहते हुए पूर्ण शांन्ति जो आत्मा में वह जब प्रगट होती है, तब पूर्णात्मा-पूर्ण आत्मा, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द को प्राप्त, उसको परमात्मा कहते हैं। वह परमात्मा जिस शरीर में रहते हैं, यहाँ देह में भी उसका नख और केश परिमित-प्रमाण में रहते हैं। नख बढ़ते नहीं। समझ में आया ? केश बढ़ते नहीं। ऐसी सब प्रतीति उसे कहाँ है ? समझ में आया ?

हम कभी-कभी दृष्टान्त देते हैं। उसका पिता था न, पिता। बालक का पिता। पचास हाथ का आलपाक लेकर आया। आलपाक समझते हो? कपड़ा... कपड़ा। पचास हाथ का लाया। रविवार था तो बालक ने अपने हाथ से माप लिया। हुए सौ हाथ। वह पिताजी को कहता है, पिताजी! आप कहते हो, पचास हाथ कपड़ा लाया हूँ। मैंने सौ हाथ माप किया। सौ हाथ है। बेटा! तेरा हाथ हमारे व्यवहार में काम नहीं आवे। हमारे माप के व्यापार में तेरा हाथ काम नहीं आता। हमारा हाथ और गज काम आता है। समझ में आया? ऐसे ज्ञानी कहते हैं, अज्ञानी का गज सत् के माप में काम आता नहीं। अज्ञानी का तर्क के माप में काम आता नहीं। समझ में आया? रविवार का दिन था तो मापने लगा। आलपाक नहीं आता? आलपाक कपड़ा होता है न? नवनीतभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराना हो गया? हम तो आलपाक लाते थे। सफेद आलपाक आता है। पुराना हो गया। कोई नयी चीज़ आती होगी। हम तो पचास साल पहले की आलपाक की बात कहते थे। आलपाक का कोट हमने भी बनाया था। पीछे गद्दी डालकर रुई डालते हैं न? पीछे रुई डालते हैं। रुई डालकर बनाया था। १९६४ के वर्ष की बात है। संवत् १९६४। ठण्डी के दिन के कारण आलपाक का बनाया था। पीछे रुई की गद्दी रखते थे, ताकि ठण्डी नहीं लगे। आलपाक का हमको ख्याल में आया। तो वह पचास हाथ आलपाक लाया। अपने हाथ से आदमी मापता है। बालक ने अपने हाथ से माप किया और कहा, नहीं। तुम्हारी बात झूठी है। सुन तो सही। तेरा माप हमारे व्यापार के व्यवसाय में व्यवहार में काम नहीं आता।

ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि हमारे ज्ञान-गज से जो चीज़ हमें माप में आयी है, वह अज्ञानी के माप से काम नहीं आता। समझ में आया? एक समय में भगवान का ज्ञान तीन काल-तीन लोक जानता है। ऐसी प्रत्येक आत्मा में शक्ति है। ऐसा भगवान ने फरमाया। इस शक्ति का जिसको भान हुआ, यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। यहाँ सम्यग्दृष्टि है न मुनि? पूर्णानन्द परमात्मा की भक्ति करते हुए कहते हैं, हे नाथ! आपका नख-केश बढ़ता-घटता नहीं। **तब ऐसा कौन है...** अचेतन नख। अचेतन नख और केश बढ़े नहीं, घटे नहीं। ऐसा **आपके सामने अपनी गुरुता को प्रकाशित करता हुआ**

कुछ बोलने की सामर्थ्य रखता हो? पाठ में है, हाँ! '**जम्मि तइ परमियत्तं केसणहाणं पि जिण जायं। तुह पुरओ वग्गइ गुरुयत्तणं पयासंसो**' आपके पास, केवलज्ञान के पास कौन अधिकता बतानेवाला... होता है ? जगत में ऐसा कोई हो सकता नहीं। पूर्णानन्द परमात्म दशा की ॐ ध्वनि। अनेक जाति की भाषा जगत के प्राणी अपनी योग्यता से समझते हैं। अपनी-अपनी योग्यता से समझते हैं और भाषा तो जो निकलती है, वह निकलती है। सुननेवाले को ऐसा लगे कि हमारी भाषा में भगवान कहते हैं। पानी तो एक ही कुएँ में से निकलता है। लेकिन जैसा बीज हो वैसा परिणमित हो जाता है। गन्ना आदि।

ऐसे भगवान की वाणी ॐकार एक समय में अखण्डानन्द प्रभु महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। आज पार्श्वनाथ भगवान केवलज्ञान (कल्याणक) दिन है। उस समय भी भरतक्षेत्र में २७५० हजार वर्ष पहले पूर्ण प्रकाश जहाँ भगवान आत्मा की महिमा प्रगट हुई। वाणी निकली। कहते हैं... वाणी तो थोड़ी बाद में लेंगे। वाणी का पहले थोड़ा आ गया है। हे नाथ! आपकी गिरा कैसी है ? अनन्त पदार्थ को कहने में ताकत रखती है। वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। ज्ञान में स्व-पर जानने की ताकत है। क्या कहा, समझ में आया ? भगवान आत्मा का ज्ञान, ज्ञान में स्व-पर जानने की ताकत है। वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। आहा! यह क्या आया ? समझ में आया ? वाणी जड़ है, परन्तु ऐसी जड़ की दशा होती है कि वह जड़ अपने को बताती है और जड़ दूसरी चीज़ क्या है, ज्ञान क्या है, आत्मा क्या है, आनन्द क्या है, वह भी बताने में वाणी निमित्त पड़ती है। वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की पर्याय में ताकत है। समझ में आया ?

शक्कर शब्द है, शक्कर शब्द। शक्कर शब्द वाचक है। शक्कर पदार्थ भिन्न है। परन्तु शक्कर शब्द शक्कर पदार्थ को बताने में संज्ञा बताने में वाचक शब्द है। शक्कर शब्द में शक्कर नहीं है। शक्कर पदार्थ में शक्कर नहीं है। शक्कर शब्द में शक्कर पदार्थ नहीं है, शक्कर पदार्थ में शक्कर शब्द नहीं है परन्तु शक्कर शब्द शक्कर पदार्थ को बताने में निमित्त संज्ञा है।

ऐसे भगवान की वाणी, उस वाणी में जगत का पदार्थ नहीं है। समझ में आया ? वाणी में ज्ञान-सर्वज्ञपना नहीं है। परन्तु वाणी में पूर्णानन्द केवल कौन है और पूर्ण आत्मा अनन्त कौन है, ऐसी बताने की ताकत वाणी में भी है। गजब बात! सुननी कठिन लगे।

अरे! भगवान! वह बात तो स्वयंसिद्ध वस्तु का स्वरूप है। वाणी जड़ है, उसकी पर्याय परिणमित होती है, उसमें अपनी शक्ति रखकर स्व-पर की वार्ता वाणी कहती है। भगवान की वाणी अलौकिक बात करती है। ओहो! तेरा स्वभाव पूर्ण शुद्ध है। मेरी नाति और जाति का तू है। मेरी नाति और जाति और तेरे में फर्क है नहीं। तेरे अज्ञान से तूने अल्पता और राग मान रखा है। पूर्ण स्वभाव में अल्पता है नहीं। समझ में आया? जितने नये हो, उसे थोड़ समझ में आये और लक्ष्य में रखना। भाई! ये सब तो पुराने के लिये बात है। बिल्कुल नये हो उसे तो सवेरे समझ में आये, ऐसी बात होती है।

यहाँ कहते हैं, हे भगवान! आपकी वीतरागता और चैतन्य की प्रकाशता उसकी तो क्या बात कहनी? परन्तु आपके शरीर में जो नख और केश हैं, वे भी बढ़ते-घटते नहीं। अचेतन बढ़े-घटे नहीं। आहा! प्रभु! आपके पास ऐसा कौन अज्ञानी है कि अपनी अधिकता बताने को बोल सके कि हम अधिक हैं? सर्वज्ञ परमात्मा के पास बोलने का अधिकारी जगत में कोई चीज़ है नहीं। ऐसा कहकर परमात्मा सर्वज्ञ की स्तवन, भक्ति और गुणग्राम करते हैं। कहो, समझ में आया? अब, थोड़ी शरीर की बात करते हैं। अभी तो भक्ति का विषय है न!

गाथा ४२

सोहइ सरीरं तुह पहु तिहुयणजणणयणबिंबबिच्छुरियं।
पडिसमयमच्चियं चारुतरलनीलुप्पलेहिंव।।४२।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! तीनों लोक के जीवों के जो नेत्र, उनका जो प्रतिबिम्ब, उनसे चित्र-विचित्र आपका शरीर ऐसा मालूम पड़ता है; मानो सुन्दर तथा चंचल नीलकमलों से प्रति समय पूजित ही है।

भावार्थ - हे जिनेन्द्र! आपका शरीर अत्यन्त स्वच्छ सोने के रंग का है। जीवों के नेत्रों की उपमा नीलकमलों से दी गई है। इसलिए जिस समय जीव आपके दर्शन करते हैं, उस समय उनके नेत्रों के प्रतिबिम्ब आपके शरीर में पड़ते हैं। उन नेत्रों के प्रतिबिम्ब को अनुभव कर, ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! वे नेत्रों के प्रतिबिम्ब

नहीं हैं, किन्तु प्रति समय समस्त जीव आपकी नीलकमलों से पूजा करते हैं; इसलिए वे नीलकमल हैं।

गाथा - ४२ पर प्रवचन

सोहइ सरीरं तुह पहु तिहुयणजणणयणबिंबबिच्छुरियं।
पडिसमयमच्चियं चारुतरलनीलुप्पलेहिंव।।४२।।

क्या कहते हैं ? पूर्ण परमात्मा आनन्दकन्द की दशा जहाँ प्रगट हुई, भक्तों को भक्ति का करने का भाव उछलता है तो कहते हैं, हे नाथ! आपका शरीर कैसा है ? कैसा सुन्दर है ? कि सर्व जीव के नेत्र आपकी स्तुति करने में, भक्ति करने में आते हैं। जिनेन्द्र! तीन लोक के जीव, हम आपकी भक्ति करनेवाले हैं तो तीन लोक के जीव आपकी भक्ति करते हैं, ऐसा हम मानते हैं। क्या कहा ? '**त्रिभुवनजननयनबिम्ब**' भाषा ऐसी है। देखो! मुनि है। फिर भी त्रिभुवन के जीव-तीन लोक के जीव। पंचेन्द्रिय होते हैं, वही आते हैं, सब नहीं आते हैं तो हम तो मानते हैं कि जो अधिक प्राणी सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्राप्त इन्द्र आदि, चक्रवर्ती आदि आपको नमन करते हैं, अधिक पदवाले नमन करते हैं तो ऐसे हल्के और साधारण पदवाले उसमें आ जाते हैं। तो हम तो ऐसा मानते हैं, तीन लोक के जीव आपकी स्तुति और वन्दन करते हैं। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

'**त्रिभुवनजननयनबिम्ब**' हे नाथ! 'तीन लोक के जीवों के नेत्रों में पड़े हुए प्रतिबिम्बों से चित्र-विचित्रमय आपका शरीर..' शरीर बहुत सुन्दर है। जीव आकर वन्दन करते हैं तो उसकी आँख को कमल गिना है, आँख को नीलकमल गिनकर उस कमल के अन्दर पड़ते हैं, **ऐसा जान पड़ता है, मानो सुन्दर एवं चंचल नीलकमलों से प्रतिसमय पूजित ही है।** आपका शरीर ही तीन लोक के जीवों से पूजित है, तो आपके आत्मा की तो बात क्या ? आहाहा! विकल्प से है न ? व्यवहार से कहते हैं। आपका पूर्णानन्द प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरा है। झरना समझते हो ? पर्वत में से पानी झरता है न ? ऐसे भगवान अन्तर आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द ध्रुव है। पर्याय उसमें से आती है। अवस्था—दशा प्रगट होती है प्रवाहरूप से, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द

और केवलज्ञान का प्रवाह बहता है। परन्तु प्रभु! आपका शरीर हम देखते हैं तो शरीर में तीन लोक के जीव आपको नमन करते हैं तो शरीर में मानो नीलकमल से पूजा करते हो, शरीर में आँख का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो नीलकमल आँखें और आपके शरीर की पूजन करते हो, ऐसा मैं मानता हूँ। आहाहा! नवनीतभाई!

एक बार कहा था। कहा था न? बहुत वर्ष पहले हमारे वहाँ पालेज में। छोटी उम्र थी। हम भक्ति करने जाते थे और पहले से छोटी उम्र से भगत कहलाते थे। फिर दूसरी कोई जगह भक्ति हो तो वहाँ सुनने को जाते थे। छोटी उम्र थी। वहाँ एक गाना गाते थे।

जगतडा कहे छे रे... भगतडा काला छे,
पण काला न जाणशो रे, प्रभु ने ते व्हाला छे।

पागल जैसा लगता है। सुन तो सही! तू पागल है।

जगतडा कहे छे रे... भगतडा घेला छे,
घेला न जाणशो रे, प्रभु ने त्यां अे पहेला छे।

गुजराती भाषा है। छोटी उम्र में वैष्णव में भक्ति होती थी न। हमारे रिश्तेदारों में। वहाँ वे ऐसा गाते थे। जगतडा अर्थात् दुनिया कहती है कि भक्त तो पागल है। भगवान की ऐसी भक्ति, भगवान ऐसे हैं, पूर्णानन्द ऐसा है। पागल है। सुन तो सही। जगतडा अर्थात् जगत कहता है, भक्ति करनेवाले समकितदृष्टि धर्मात्मा पागल है। ऐसे परमात्मा को मानते हैं, परलोक है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, हमें आत्मा का भान हुआ है, ऐसा जगत के जीव अज्ञानी ज्ञानी को-भगत को-भक्तों को घेला अर्थात् पागल कहते हैं। परन्तु कहते हैं, 'घेला न जाणशो रे...' प्रभु की प्राप्ति में प्रथम है।

अपने स्वरूप की पूर्णानन्द की प्राप्ति में प्रथम मुख्य है। अज्ञानी पीछे रह जायेगा और परमात्मपद की प्राप्ति में मुख्य है। आहाहा! समझ में आया? वह तो बहुत छोटी उम्र की बात है। १४-१५ वर्ष में वह भक्ति करते थे, उसे सुन लिया था। 'जगतडा कहे छे रे, भगतडा काला छे।' काला समझते हो? अपनी काठियावाड़ी भाषा है। काला अर्थात् कालां नहीं होते? घेला अर्थात् पागल। काला... काला। ये काला जैसा है, नहीं कहते? भोला हो, उसे काला कहते हैं, ये काला है। काला अर्थात् कपास का जींडवा (डोंडा)

होता है न ? कपास नहीं ? कपास होता है। कपास का जींडवा होता है। कपास निकालकर जो काला रहता है न ? इतना खाली, उसको काला कहते हैं। माल बिना का। काला का अर्थ माल बिना का।

जगतडा कहे छे रे, भगतडा काला छे
पण काला न जाणशो रे, प्रभु ने ते व्हाला छे।

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा प्रशंसा करते हैं, ओहो! तेरी दृष्टि-तेरी श्रद्धा हमें मान्य है। समझ में आया ?

एक बार आनन्दघनजी कहते हैं,

सही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।

क्या कहते हैं ?

सही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।

परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर की वाणी में कोई व्यक्ति के लिये ऐसा आया कि यह जीव भव्य और पात्र है। कहते हैं, तुझे किसका मान लेना है ? परमात्मा का फरमान है कि यह जीव भव्य, पात्र और ज्ञानी है। समझ में आया ? 'लही भव्यता मोटुं रे मान'। भगवान के मुख में से, सन्तों के मुख में से निकला कि यह जीव पात्र है। तो कहते हैं कि किसका मान चाहिए तुझे ? जो राजा महाराजा, इन्द्र जिसको मान देते हैं, ऐसे सर्वज्ञ और सन्त जिस व्यक्ति को धर्मात्मा कहते हैं और ये धर्मी है, (ऐसा कहते हैं), तुझे मान किसका लेना है ?

'सही भव्यता मोटुं रे मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' सन्त और ज्ञानी के मुख में से ऐसा आया कि यह प्राणी अपात्र और अभव्य है। किसका अपमान लेना है तुझे ? किसका अपमान लेना है ? धर्मात्मा तुझे अपात्र कहते हैं, तो उसके जैसा अपमान जगत में कोई है नहीं।

ऐसे (यहाँ) कहते हैं कि भगत-आत्मा की भक्ति करनेवाला, उस भक्त को अज्ञानी काला-काला-मान बिना का कहते हैं। सुन तो सही। तेरा माल-बाल निकल जायेगा। समाप्त हो जायेगा, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी। इन्द्रिय से ज्ञान किया है। इस जड़ से लक्ष्य करके, राग मन्द करके। वह ज्ञान आयुष्य पूरा होगा, तब लुट जायेगा। अतीन्द्रिय

अन्दर आत्मा है, उसका ज्ञान किये बिना ज्ञान सम्यक्पने टिकता नहीं। समझ में आया? भले अतीन्द्रिय ज्ञान थोड़ा हो, इन्द्रिय से, शरीर के अवलम्बन से राग भले मन्द करके क्षयोपशम ज्ञान का विकास किया हो, बहुत विकास हुआ हो, मृत्यु काल में धबोनमाहा हो जायेगा। धबोनमाहा हमारी काठियावाड़ी भाषा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी अन्धेरा हो जाता है। देखे हैं बड़े-बड़े वकील। बड़े-बड़े वकील हो, अकस्मात् हो तो बुद्धि समाप्त हो जाती है। भाई! चतुरदास वकील थे न? अमेरली। बड़ा वकील। कोई अकस्मात् हुआ। क्या कहते हैं? मोटर का एक्सीडेन्ट (हुआ)। भाई को नहीं मालूम नहीं होगा। चतुरदास वकील थे। लेकिन ये तो बहुत साल पहले (थे)। ये भाई है न? क्या कहते हैं? प्रवीणभाई के पिताजी के पिताजी। बहुत बुद्धिमान कहलाते थे। लोगों में कहलाये। लोगों की बात है न। लोग पागल में तो पागल ही अच्छा कहलाये ना। लोगों में कहलाये। एक बार अकस्मात हुआ था। सब भूल गये। फिर से सीखे। सब भूल गये। भाषा भूल गये, गुजराती भूल गये, सब भूल गये। गाड़ी का अकस्मात हुआ। क्या कहते हैं? उसे अकस्मात कहते हैं न? एक्सीडेन्ट आपकी भाषा में लो। उसमें सब भूल गये। फिर नया सीखे। जड़ इन्द्रिय से ज्ञान करनेवाला, जब इन्द्रिय नाश हो जायेगी, तेरा ज्ञान अन्धा हो जायेगा, ज्ञान रहेगा नहीं।

नित्य प्रभु आत्मा अनीन्द्रिय अखण्डानन्द प्रभु राग से और मन से भिन्न है, ऐसा अन्तर में बोध होता है तो वह बोध केवलज्ञान के कण में ले जाता है। ऐसे ज्ञान की सम्यक्ता की महिमा है। वह ज्ञान थोड़ा हो तो भी स्वर्ग में जाता है तो सम्यग्ज्ञान लेकर जाता है। बाद में भी सम्यग्ज्ञान लेकर अवतार धारण करता है तो केवलज्ञान प्राप्त करता है। अज्ञानी का ज्ञान, बड़ा-बड़ा वकील हो, डॉक्टर हो, पाँच-पाँच हजार एक दिन का लेनेवाला हो, अन्धा हो जायेगा। अभी वर्तमान में भी अन्धा है। रामजीभाई! लो, वकील की बात की। तुझे कुछ भान नहीं है, क्या चीज है आत्मा। अपना स्व के ज्ञान बिना पर का बोध सच्चा तीन काल में होता नहीं। जाननेवाला कौन है, (उसे) जाने बिना जाननेलायक वस्तु कैसी है, जानेगा कौन? समझ में आया? जाननेवाला कौन है, उसके ज्ञान बिना जो चीज़ जानने में आयी, वह कैसी है, उसका ज्ञान कहाँ से आया?

अपनी आँख जब अन्धा है तो शरीर को नहीं देखता है। अन्धा कहता है, अपना शरीर नहीं देखता है, पर को देखता है। सच्ची बात है ? मैं अन्धा हूँ लेकिन पर को देखता हूँ। क्या देखता है ? तेरा शरीर देखा नहीं। ऐसे अपने ज्ञान से अपनी चीज़ क्या है, ऐसा जिसको ज्ञान नहीं, उसको पर का सच्चा ज्ञान तीन काल में होता नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! आपका शरीर ऐसा है कि जिस शरीर में तीन लोक के जीव जो आपकी भक्ति करते हैं, तो आपके शरीर में मानो नीलकमल से भक्ति होती हो, ऐसा हमको लगता है। पूरी दुनिया के पूज्य हो तो परमात्मा आप हो, दूसरा कोई पूज्य है नहीं। बाद में थोड़ा कहते हैं। वह तो शरीर की बात की। अब नख की बात कहते हैं। नख, नख भगवान के। ये तो अलौकिक बातें हैं, भाई! आत्मा की बात तो (अलौकिक है), परन्तु उनका शरीर ऐसा होता है, परमात्मा होता है तब उनके नख में किरण उठती है, किरण। नख होता है न ? नख। ताम्बा जैसा नख ऐसा होता है। उसमें से किरण निकलती है, नख में। चैतन्य का किरण केवलज्ञान जब हुआ है, शरीर के नख की भी किरण निकलती है। जड़ की पर्याय जड़ से स्वतन्त्र होती है। ऐसे नख की बात करके भगवान की भक्ति करते हैं। क्या कहते हैं, देखो!

गाथा ४३

अहमहमिआये णिवडंति णाह छुहियालिणोव्व हरिचक्खू।
तुज्झच्चिय णहपहसरमज्झट्ठियचलणकमलेसु।।४३।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! आपके पूजित जो नख, उनकी जो प्रभा (कान्ति), वही हुआ सरोवर, उसके मध्य में स्थित जो चरण-कमल, उनमें भूखे भ्रमरों के समान इन्द्रों के नेत्र अहम-अहम् (मैं-मैं) इस रीति से गिरते हैं।

भावार्थ - जिस प्रकार कमलों में सुगन्ध के लोलुपी भ्रमर बारम्बार आकर गिरते हैं; उसी प्रकार हे जिनेन्द्र! जिस समय इन्द्र आकर आपके चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं, उस समय आपके चरण-कमलों में भी उन इन्द्रों के नेत्ररूपी भ्रमर पड़ते हैं और वे नेत्र काले-काले भ्रमरों के समान मालूम पड़ते हैं।

गाथा - ४३ पर प्रवचन

अहमहमिआये णिवडंति णाह छुहियालिणोव्व हरिचक्खू।
तुज्झच्चिय णहपहसरमज्झट्ठियचलणकमलेसु।।४३।।

हे परमात्मा! **आपके पूजित जो नख, उनकी जो प्रभु (कान्ति), वही हुआ सरोवर, उसके मध्य में स्थित जो चरण-कमल, उनमें भूखे भ्रमरों के समान...** हजारों इन्द्र आकर, अनेक देव, इन्द्र आकर आपकी पूजा करते हैं। तो इन्द्रों के नेत्र आपके नख की किरण में पड़ते हैं तो मानों भ्रमर सरोवर में गिरता हो, ऐसी उसकी आँख उसमें दिखती है। आहाहा! पागलों की बात होगी न? अरे! सुन तो सही, भाई! समझ में आया? चैतन्य का चमत्कार जब अन्दर में प्रगट हुआ और पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो उनके शरीर के नख का तेज इतना है कि जिसमें इन्द्रों की आँख... '**हरिचक्खू**' कहते हैं न? इन्द्रों की आँख ऐसे दिखती है। प्रभु! भ्रमर, मानों भूखे भ्रमर मैं... मैं करके नख में गिरता हो, सरोवर में गिरता हो, ऐसा मैं मानता हूँ। ऐसा अलंकार करके (कहते हैं)। नख का परमाणु ऐसा हो गया है तो आपकी दशा की प्रभु! क्या बात करें? आहाहा! डाह्याभाई!

एक अच्छी चीज़ गहना हो न? दागीना को क्या कहते हैं? जेवर। वह रखे तो... लाख रुपये का जेवर हो तो उसका डिब्बा भी ऊँचा होता है। अच्छे डिब्बे में और अच्छी जगह अच्छे तरीके से रखे। स्त्रियों का देखा है न, उनके कपड़े अच्छे हो तो उसके लिये अलमारी, ऐसे घड़ी की हो, अरे! कपड़ा अच्छा हो तो उसका डिब्बा भी अच्छा होता है। अब तो ... हो गये। परन्तु पहले तो पिटारा होता था न? वह पिटारा भी ऊँचा होता है।

ऐसे जहाँ भगवान आत्मा में परमात्मदशा प्रगट हुई,... देखो! सम्यग्दृष्टि को परमात्मपद की प्रतीति है। मोक्षतत्त्व की प्रतीति है या नहीं? सात तत्त्व में आत्मा के भान में मोक्षतत्त्व की प्रतीति हुई है। मोक्षतत्त्व, परमात्मा का केवलज्ञान (एक ही है)। उसके प्रतीति ज्ञान में आ गयी है। एक समय का केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानता है। समझ में आया? ऐसे केवलज्ञान की पर्याय जिस शरीर में प्राप्त हुई अपने से, उस शरीर के नख की कीमत इतनी कि सरोवर में भूखा भ्रमर गिरता है, ऐसे आपके किरण में इन्द्रों के चक्षु गिरते

हैं, ऐसी बात हम देखते हैं। इन्द्र की आँखें भक्ति करते हैं, तो हम भक्ति करे, उसमें आश्चर्य नहीं है। कहो, समझ में आया?

अब आपके चरण की थोड़ी बात करते हैं। चरणकमल। चरण है न? भगवान चलते हैं न? इच्छा बिना उदय से चलते हैं। परमात्मा होने के बाद चरणकमल चलते हैं। इन्द्र नीचे सुवर्ण के कमल रखते हैं। वह बात करके भक्ति करते हैं। जहाँ परमात्मा की चैतन्य शक्ति का विकास (हुआ), वहाँ पुण्य प्रस्फुटित हो जाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, सुनो! आत्मा की पवित्रता जितने प्रमाण में होती है, उतने प्रमाण में पुण्य में रस भी अधिक बढ़ जाता है। स्थिति घट जाती है। परन्तु पुण्यरस बढ़ जाता है। अनुभाग। अनुभाग शास्त्रीय शब्द है। समझ में आया? क्या कहा?

कर्म की पुण्य की स्थिति है न? वह संसार है। स्थिति मन्द पड़ जाती है। परन्तु जैसे शुद्धोपयोग आगे बढ़ता है, वैसे पुण्य के रजकण में अनुभाग रस बहुत बढ़ जाता है। और केवलज्ञान जब हुआ (तो) प्रकृति में अनुभाग इतना आता है कि असाता भी सातारूप परिणमित हो जाती है। गोम्मटसार कहता है। वस्तु का स्वरूप है, वैसा बताते हैं। असाता हो तो साता के अनुभागरूप परिणमित हो जाता है। रस इतना बढ़ जाता है जड़ में। आत्मा का आनन्द का अनुभव जहाँ पूर्ण हुआ (तो) जड़ में उतना अनुभाग रस पड़ता है... यहाँ अनुभाग अर्थात् आत्मा का अनुभव, वहाँ अनुभव अर्थात् रस। दोनों भिन्न होकर मोक्ष चले जाते हैं। क्या कहा? ये तो लॉजिक से अन्तर की बात है, भैया! भगवान आत्मा अपने पुण्य और पाप से जहाँ भिन्न जानने में आया, तब उसको शुभ होता है। तब ऐसा पुण्य बँध जाता है, अरे..! शुद्धोपयोग ज्ञानी को होता है, पुण्य-पाप के बिना, शुद्धोपयोग में भी पुण्य में रस तो पड़ता है। आहाहा!

दो चक्कर चलते हैं। यहाँ निर्मल धारा चलती है, वहाँ पुण्य में रस बढ़ता है। जहाँ पूर्ण रस और यहाँ पूर्ण हो गया तो छूट जायेगा। ऐसा कहकर, हे नाथ! आपके नख की किरणों में अथवा आपके चरण जहाँ पड़ते हैं, इन्द्र वहाँ सोने का कमल लाते हैं और उसमें ... करते हैं।

गाथा ४४

कणयकमलाणमुवरिं सेवा तुह विबुहकप्पियाण तुहं।
अहियसिरीणं तत्तो जुत्तं चरणाण संचरणं।।४४।।

अर्थ - हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपके चरण अत्यन्त उत्तम शोभा से संयुक्त हैं; इसलिए भक्तिवश देवों द्वारा रचित सुवर्ण-कमल के ऊपर उनका गमन करना युक्त ही है।

भावार्थ - जिस समय भगवान, ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों को नष्ट कर देते हैं, उस समय उनको केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात् वे उपदेश देने को निकलते हैं, उस समय यद्यपि वे आकाश में अधर चलते हैं तो भी देव, भक्ति के वश होकर उनके चलने के लिए सुवर्ण-कमलों से निर्मित मार्ग की रचना करते हैं। उसी आकाश को मन में रखकर ग्रन्थकार भगवान की स्तुति करते हैं कि हे भगवन्! आपने जो देव रचित सुवर्ण-कमलों पर गमन किया था, वह सर्वथा युक्त ही था क्योंकि जैसे सुवर्ण-कमल एक उत्तम पदार्थ है, उसी प्रकार आपके चरण भी अति उत्तम शोभा से संयुक्त हैं।

गाथा - ४४ पर प्रवचन

कणयकमलाणमुवरिं सेवा तुह विबुहकप्पियाण तुहं।
अहियसिरीणं तत्तो जुत्तं चरणाण संचरणं।।४४।।

हे नाथ! **आपके चरण, अत्यन्त उत्तम शोभा से संयुक्त हैं, इसलिए भक्तिवश देवों द्वारा रचित सुवर्ण-कमल के ऊपर उनका गमन करना युक्त ही है।** भगवान आपके केवलज्ञान की क्या बात, परन्तु चरण ऐसे सुन्दर हैं कि नीचे नहीं रह सके। वह तो देवों द्वारा रचे गये सुवर्ण-कमल में ही रहे। आहाहा! समझ में आया? कांई कहते हैं, हाँ! क्या है वह बात तो दूर रही। कुछ गन्ध (आती है)? भगवान आत्मा में पूर्णानन्द की प्राप्ति जब होती है, तब चरण चलते हैं तो सुवर्ण कमल रखते हैं। सुवर्ण कमल के ऊपर

५०० धनुष है। नीचे नहीं चलते। ऐसी आत्मा की स्थिति है और रजकण की ऐसी स्थिति पर चलते हैं। ऐसे भगवान को लक्ष्य करके (कहते हैं), हे नाथ! आपके चरण सुवर्ण के - (कमल से) नीचे नहीं रहते, तो आपका निरालम्बी आत्मतत्त्व की क्या बात करनी? समझ में आया? उनका शरीर भी नीचे सिंहासन में नहीं रहता। सिंहासन से ऊपर चार अँगुल ऊपर रहता है। निरालम्बी भगवान आत्मा प्रगट हुआ (तो) शरीर भी निरालम्ब चार अँगुल ऊपर रहता है। आहाहा! पागल बातें हैं अज्ञानी के पास तो, हाँ! गांडी समझे न? पागल जैसी। बात तो ऐसी है, भैया! पागल कहो, उन्मत्त कहो।

ज्ञानी जगत को पागल कहते हैं, जगत ज्ञानी को पागल कहता है। परमात्मप्रकाश में (आया है)। परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने कहा है, धर्मात्मा पागलों के पास-अज्ञानी के पास पागल दिखते हैं। और धर्मात्मा के पास अज्ञानी पागल दिखते हैं। आत्मा क्या है, पुण्य क्या है, पवित्रता क्या है, पवित्रता किसका कहाँ कितनी प्रगट होती है, भान नहीं। बुद्धि कहाँ? ज्ञान कहाँ? श्रद्धा कहाँ? वह पागल ही है। पाटनीजी।

अब श्लोक है। एक बार पहले आ गया था, कहा था। प्रभु को उद्देशकर कहते हैं हे नाथ! हे परमात्मा! हे प्रभु! साक्षात् विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। पार्श्वनाथ भगवान तो मोक्ष पधारे हैं, परन्तु आज उनका केवलज्ञान कल्याणक था, इसलिए उनको उद्देशकर बात है। बाकी भगवान विराजते हैं, उनकी स्तुति है। ऐसे ऋषभदेव भगवान की स्तुति आचार्य महाराज करते हैं। हे नाथ! आपकी शान्ति, आपका आनन्द, आपका ज्ञान, अनन्त गुण की शक्ति प्रगटता हुई, उसका गुणग्राम स्वर्ग में देव करते हैं। स्वर्ग में देव करते हैं। चन्द्रमा में मुझे दिखता है, वह हिरन दिखता है न? चन्द्रमा में लांछन नहीं दिखता? चन्द्र। उसको लक्ष्य करके आचार्य थोड़ी बात करते हैं।

गाथा ४५

सइहरिकयकण्णसुहो गिज्जइ अमरेहि तुह जसो सग्गे।
मण्णे तं सोउमणो हरिणो हरिणंकसल्लीणो।।४५।।

अर्थ - हे भगवन्! हे जिनेन्द्र! जिसके सुनने से इन्द्र तथा इन्द्राणी के कानों को सुख होता है - ऐसे आपके यश को सदा स्वर्गों में देवता लोग गाया करते हैं; इसलिए ऐसा मालूम होता है कि उसी को सुनने के लिए मृग चन्द्रमा में जाकर लीन हो गया है।

भावार्थ - संसार में यह किंवदन्ती भलीभाँति प्रसिद्ध है कि चन्द्रमा में हिरण (मृग) का चिह्न है, इसीलिए उसका नाम मृगांक है, अतः आचार्यवर उत्प्रेक्षा करते हैं कि इस भूमण्डल को छोड़कर जो चन्द्रमा में जाकर हिरण ने स्थिति की है, उसका यही कारण है कि वह स्वर्ग में गाना सुनने के लिए गया है क्योंकि हे जिनेन्द्र! इन्द्र तथा इन्द्राणी के कानों को सुख के करनेवाले आपके यश को स्वर्ग में सदा देव गान किया करते हैं और हिरण गाने का अत्यन्त प्रिय है - यह प्रत्यक्ष गोचर है।

गाथा - ४५ पर प्रवचन

सइहरिकयकण्णसुहो गिज्जइ अमरेहि तुह जसो सग्गे।
मण्णे तं सोउमणो हरिणो हरिणंकसल्लीणो।।४५।।

हे परमात्मा! **जिसके बारे में सुनने से इन्द्र-इन्द्राणी के कानों को सुख होता है ऐसा आपका यश, सदैव स्वर्ग में देवता लोग गाया करते हैं,...** इन्द्र आपका गुणग्राम करते हैं। आहाहा! हम पामर प्राणी मनुष्य तो करें, (लेकिन) इन्द्र आपका गुणग्राम करते हैं। पूर्णानन्द प्रभु। वीणा हाथ में लेकर इन्द्र और इन्द्राणियाँ स्वर्ग में (गुणग्राम करते हैं तो) उस हिरन को गाना सुनने की आदत हो गयी है। तो वह गाना सुनने को भगवान! मुझे तो ऐसा लगता है, ये हिरन को गाना सुनने का प्रेम है न, तो वह हिरन वहाँ जाकर भगवान की स्तुति सुनता है। समझ में आया?

धर्मात्मा तो परमात्मा को जहाँ-तहाँ देखते हैं। एक बार कहा था न?

हरता फरतां प्रभु, हरता फरतां प्रगट प्रभु देखुं
मारूँ जीववुं रे सफल तव लेखुं, मुक्तानन्दनो नाथ विहारी
ओघा जीवनडोरी हमारी रे...

सम्यग्ज्ञानी को, पूर्णानन्द परमात्मा घूमते-फिरते याद आते हैं। समझ में आया? आदमी को प्रेम हो तो स्त्री याद आती है या नहीं? स्त्री कितनी याद आती है। दस वर्ष से परदेश में हो। दस साल से। और स्त्री वतन में हो तो पत्र लिखे। मेरा देह यहाँ है, लेकिन मेरा जीव वहाँ लगा है। मेरा जीव लगा समझे न? अपनी काठियावाड़ी भाषा है। लगा हुआ है। झूठा, हाँ! बिल्कुल झूठा। लिखे कि दस साल से मैं यहाँ हूँ, दस साल से तू वहाँ है। शरीर अपने भिन्न हैं, दस साल से मिले नहीं। स्त्री को पत्र में लिखे, मेरा जीव वहाँ लगा हुआ है, मेरा शरीर यहाँ, जीव (वहाँ) लगा हुआ है। अच्छा! इतना प्रेम बताता है। लेकिन कदाचित् तेरी उम्र चालीस वर्ष की हो, स्त्री पैंतीस साल की और तेरी चालीस वर्ष की उम्र हो और स्त्री मर जाये तो उसे विचार आ जाये कि अरे रे! ये अभी मर गयी, पाँच साल पहले मर गयी होती तो नयी (स्त्री) मिलती तो सही। तू तो कहता था न, मेरी अर्धांगिनी है और याद आती है। कपट करता है। अपनी स्त्री पैंतीस साल में मरे और अपनी उम्र चालीस साल की हो। तो उसे ऐसा ... ऐसा लिखे, अर्धांगिनी मेरा जीव वहाँ लगा है। मर जाये तो विचार आ जाये कि चालीस साल हो गये, पैंतालीस साल हो गये। अभी मर गयी, दस साल पहले मरी होती तो नयी (स्त्री) लाता। अब क्या करना? पुत्र नयी स्त्री लाने नहीं देंगे। पुत्र कहेगा, नहीं, नहीं। पैंतालीस साल में शादी नहीं करना। ऐसा होता है न? ऐसा विचार आ जाये। तू तो कहता था, प्रीति है। तेरी कपटप्रीति है।

भगवान के प्रति ज्ञानी की प्रीति है, वह अलौकिक प्रीति है। समझ में आया? राग के पीछे आत्मा का प्रेम है और राग का भान है। जैसे सुबह की सन्ध्या... सवार समझे न? सुबह की सन्ध्या है तो राग, और शाम की सन्ध्या। सवेरे की सन्ध्या के पीछे सूर्य है और शाम की सन्ध्या के पीछे धबोनमाहा—अन्धकार है। ऐसे भगवान का प्रेम, जिसको आत्मा के ज्ञान के प्रेम सहित हुआ, वह राग है तो सन्ध्या जैसा, लेकिन राग का अभाव करके केवलज्ञान प्राप्त करेगा। और अज्ञानी को स्त्री, कुटुम्ब, पैसे आदि का अशुभभाव है, शाम की सन्ध्या जैसा रंग है। वह रात्रि अन्धकार-धबोनमाहा अज्ञान है। समझ में आया?

राग से नहीं, हाँ! ये तो राग, परमात्मा के ज्ञान का प्रेम है और राग आया है। वह राग हटकर फिर केवलज्ञान हो जायेगा। अज्ञानी का राग आत्मा के भान बिना अकेला पाप है, उस राग के पीछे अज्ञान धबोनमाहा—अन्धकार है। चौरासी के अवतार में जाओ भटकने को। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! **इन्द्र-इन्द्राणी के कानों को सुख होता है, ऐसा आपका यश, सदैव स्वर्ग में देवता लोग गाया करते हैं, इसलिए ऐसा लगता है कि उस यश को सुनने के लिये ही मृग (हिरण) चन्द्रमा में जाकर लीन हो गया है।** चिपक गया। लांछन दिखता है न? उसको उद्देशकर कहते हैं, प्रभु! ये हिरण लीन हो गया। मैं तो अपने स्वरूप में लीन हूँ। आपकी भक्ति का राग आया है, व्यवहार से मैं राग में भी लीन हूँ। समझ में आया? भक्ति में मैं लीन हो गया हूँ। मैं पागल हो गया हूँ आपकी भक्ति में। ऐसा भी धर्मात्मा तो कह सकते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि वह हिरण लीन हुआ, हे नाथ! पूर्णानन्द प्रभु! मेरी भक्ति आपके प्रति इतनी है कि मैं लीन हूँ, मैं लीन हूँ। और मेरा स्वभाव में मेरा प्रेम है। वह राग हटकर, परमात्मा! तेरी जैसी दशा, मेरी होगी। ऐसी भक्ति प्राप्त अपने में अपने स्वभाव से लाभ मानते हैं। राग के पुण्यास्रव में पुण्यबन्ध मानते हैं। समय हो गया....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

माघ कृष्ण-८, सोमवार, दिनांक - १०-०२-१९६९
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १, प्रवचन-७९६

यह पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र है। मुनि हो गये हैं, दिगम्बर मुनि। जंगल में बसते थे। जिन्हें अन्तर आत्मा में प्रचुर स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा के ज्ञान की उग्र दशा आनन्द की वर्तती थी। वे भगवान की स्तुति जंगल में करते हैं। ऋषभदेव भगवान की स्तुति। इसके अधिकार तो इसमें २५ हैं। १३वाँ अधिकार। 'ऋषभस्तोत्र प्रारम्भ' क्या कहते हैं ?

***जय उसह णाहिणंदण तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर।**
जय सयलजीववच्छल णिम्मलगुणरयणणिहि णाह।।१।।

पहले तो पहिचान यह है, ऋषभनाथ अर्थात् वास्तव में तो वृषति गच्छति इति परमपद ऋषभः ऐसा इसका वाच्यार्थ होता है। यह आत्मा है, वह अनन्त बेहद आनन्द का, ज्ञान का स्वरूप जिसका है, ऐसा जो वृषति गच्छति, वह अपने स्वरूप को पूर्ण प्राप्त करता है, उसे वास्तव में तो ऋषभदेव कहा जाता है। प्रत्येक तीर्थंकर को ऋषभ कहो तो भी कहा जा सकता है। समझ में आया ? क्योंकि ऋषभ की व्याख्या यह है। भगवान आत्मा ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर / सरोवर प्रभु आत्मा है। ऐसे स्वभाव में जिसने अन्तर में एकाग्र होकर उस पद को पूर्ण जीव की शक्ति है, ऐसी जिसने वर्तमान दशा में पूर्ण पद की प्राप्ति की है, उसे परमात्मा कहा जाता है। समझ में आया ? परम-आत्मा, परम-आत्मा।

आत्मा के तीन प्रकार अवस्था से वर्णन किये जाते हैं। जो कोई आत्मा बहिर् आत्मा (है वह), वस्तु का स्वभाव भगवान आत्मा का बेहद आनन्द-ज्ञान है, उसे मानने से, शुभ-अशुभ जो विकल्प और राग है, उसे अपना मानता है, उसे बहिर्आत्मा—स्वभाव में नहीं, ऐसे विभाव को अपना मानता है, इसलिए उसे बहिर्आत्मा, बहिर्आत्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द के स्वभाव से भरपूर

* इस गाथा का अर्थ इसी ग्रन्थ में शुरुआत में दिया गया है, इसलिए यहाँ अलग से नहीं दिया जा रहा है।

प्रभु आत्मा है। प्रत्येक का आत्मा। यह अपना अन्तर आत्मा, अन्तर आत्मा अर्थात् कि अन्तर आत्मा का जो स्वरूप है, उसे न मानकर बहिर्भाव जिसमें नहीं, बहिर्भाव उत्पन्न करके शुभ और अशुभराग या शरीर, वाणी, कर्म, यह चीज़ पर है, उसे अपना मानता है और अपना स्वरूप है अन्तर आत्मा का, उसे नहीं मानता। समझ में आया? उसे बहिर्आत्मा मिथ्यादृष्टि चौरासी के अवतार में भटकनेवाला कहा जाता है।

अन्तरात्मा, जो इसके पुण्य और पाप आदि बाहर भले हो, वस्तु भले यह हो परन्तु उसका अस्तित्व मेरी चीज़ में—आनन्द और ज्ञान में उसका अस्तित्व नहीं है। मेरे स्वरूप में तो स्व-रूप है। उसमें मेरा रूप जो स्वभाव त्रिकाल है। ज्ञान, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता और परमेश्वरता ऐसा मेरा त्रिकाली स्वभाव है। अन्तर। अन्तर के स्वरूप को अन्तर में मानता है, अनुभव करता है, प्रतीति करता है, श्रद्धा करता है, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। समझ में आया? और उस आत्मा में अन्तर में जो स्वरूप पूर्ण ज्ञान और आनन्द है, उसका जहाँ अनुभव सम्यग्दर्शन आदि प्रगट करके, तत्पश्चात् स्वरूप में रमणता करके पूर्ण, परम स्वरूप पूर्ण जो शक्तिरूप से है, पूर्ण स्वरूप प्रगट दशा होती है, उसे परम आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? यह आत्मा की तीन प्रकार की अवस्था है।

अवस्था समझ में आता है? इसकी हालत, इसकी दशा। वस्तु तो वस्तु है। अखण्डानन्द प्रभु स्वयं चिद्घन आत्मा, परन्तु उसकी अवस्था में—दशा में—पर्याय में भेद के तीन प्रकार हैं। एक बहिर्आत्मदशा, एक अंतरात्मदशा, एक परमात्म भी एक दशा है। परमात्मा दशा है। इसका शाश्वत स्वरूप अन्दर भले ध्रुव है परन्तु परमात्म प्रगट होता है, वह दशा है। वह गुण और वस्तु नहीं है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है।

एक सिद्धान्त तो जरा ऐसा सूक्ष्म है कि वस्तु जो है ध्रुव, चैतन्य ध्रुव, नित्य वस्तु अविनाशी भाव स्वभाव, उसे भगवान ध्रुव कहते हैं। जो शाश्वत् टिकता तत्त्व। उसमें पुण्य-पाप तो नहीं परन्तु उसमें दशा होती है न धर्म की, मिथ्यात्व की या परमात्मदशा जो अवस्था होती है, वे तीनों अवस्थायें ध्रुव में नहीं हैं। सूक्ष्म पड़े तो ध्यान रखना। परमात्मा की स्तुति चलती है। परमात्मा को पहिचाने बिना की स्तुति सच्ची नहीं हो सकती। समझ में आया? मैं कौन हूँ? और परमेश्वर कैसे, किस प्रकार से हो सके? इसका अन्तर में भान बिना उनके गुणग्राम यथार्थरूप से नहीं हो सकते। समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि वस्तु जो भगवान आत्मा ध्रुव... ध्रुव चैतन्य अविनाशी। सत् है न? अनादि-अनन्त रहता है न? या नाश होता है? अथवा नया होता है? नया होता नहीं, नाश होता नहीं, है ऐसा कायम रहता है। ऐसा जो अन्तर का पूर्ण तत्त्व, उसे परमेश्वर ध्रुव कहते हैं। उसमें तो यह बहिरात्मदशा, अन्तरात्मदशा, परमात्मदशा तीनों ध्रुव में तो नहीं है। भारी! समझ में आया? क्योंकि दशा है, वह अवस्था और वस्तु है, वह ध्रुव नित्य त्रिकाल एकरूप सदृश रहनेवाली है। भीखाभाई! गजब बात, भाई! ऐसा स्वरूप जिसे अन्तर में बैठा है, उसे परमात्मा की पूर्ण दशा, परम आत्मा की पूर्ण अवस्था क्या होती है? ऐसा जिसे अन्तर में राग और पुण्य-पाप की वृत्तियों से भिन्न, उसे चैतन्य अन्तर स्वरूप अन्तर आत्मा, ऐसा आत्मा जिसे अन्तर में, प्रतीति में, भरोसे में-वेदन में, अनुभव में आया है, वह पूर्ण परमात्मा की दशा की स्तुति करता है। समझ में आया?

बहिरात्मा राग को अपना मानता है, वह परमात्मा की स्तुति करने के योग्य ही नहीं है। आहाहा! क्योंकि परमात्मस्वरूप वह वीतराग निर्दोष निजानन्द स्वरूप है। परमात्मा अर्थात् अरिहन्त कहो, सिद्ध कहो, पूर्ण वीतरागदशा अन्तर में है, ऐसी जहाँ प्रगट हुई है, ऐसी दशा को जिसने पहिचाना है, अर्थात् कि भगवान आत्मा यह, जब ऐसी दशा प्राप्त करनेवाला आत्मा है तो उस दशा का स्वरूप शक्तिरूप से मुझमें भी है। मैं राग और पुण्य के विकल्पवाला, वह मैं नहीं। आहाहा! गजब बात! मैं तो पूर्ण, जो यह परमात्मदशा प्रगट हुई है, उस दशा की शक्ति का तत्त्व पूरा ध्रुव में अनन्तगुणा पड़ा है। एक अवस्था नहीं परन्तु अनन्तगुणा का तत्त्व अन्दर पड़ा है। अरे..!

... व्यवस्था है। क्या कहा यह? अवस्था और द्रव्य और पर्याय कहाँ किसकी? इसीलिए तो पहले से तो बात की है कि तीन दशायें हैं। परमात्मा सर्वज्ञपद परमेश्वर भी एक दशा है। तो वह दशा जब से प्रगट होती है ... ऐसी-ऐसी सादि-अनन्त दशा... ... समझ में आया? संसार की जो दशा है—अवस्था, वह तो कहा कि अनादि से विकार ... दशा चली आती है परन्तु उसका अन्त हो जाता है। अर्थात् यह जो एक-एक समय की संसार की दशा अनन्त हुई, उसकी अपेक्षा परमानन्द की परमात्मा की अपनी पूर्ण दशा ऐसी, उस संसार की अवस्था से यह दशा अनन्तगुणी है। समझ में आया इसमें? यह कौन जाने कौन होगा?

भगवान! तेरी तुझे खबर नहीं। तो परमात्मा कैसे हों, इसकी भी इसे खबर नहीं। भाई! कहा न पहले? संसार कोई चीज़ स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब, यह आत्मा का संसार नहीं। संसार एक भूल है। तो भूल इसकी दशा से बाहर नहीं रह सकती। नहीं इसके द्रव्य, वस्तु और गुण में भेद या नहीं भूल स्त्री, पुत्र कर्म में; इसकी भूल इसकी दशा में है। आहाहा! उस भूल को संसार कहते हैं। समझ में आया? संसरण इति संसारः। भगवान ज्ञानघन आत्मा उसके निज दल में से हटकर, निजदल आनन्द का शुद्ध, उसमें से हटकर क्षणिक पुण्य-पाप के विकार, शरीर आदि में ऐसी जो विकृत मान्यता, उसे भगवान संसार कहते हैं। समझ में आया? उस बहिरात्मा की पर्याय को संसार कहते हैं।

कितने ही ऐसा कहते हैं, हमने स्त्री-पुत्र छोड़ दिये, संसार छोड़ा। बापू! संसार कहाँ है, इसकी तुझे खबर नहीं है। यदि स्त्री, पुत्र और शरीर संसार हो, तब तो यह छूट जाता है। देह छूटने पर (छूट जाता है) तो इसका संसार छूट गया तो मोक्ष हो जाये। न्याय समझ में आता है? यह स्त्री, कुटुम्ब, शरीर, कर्म यदि संसार हो तो यह शरीर तो छूट जाता है, उसका भी छूट जाता है मरे तब। इसलिए संसार हो तो उसका नाश हो गया, इसलिए उसकी मुक्ति हो। वह संसार नहीं है। इसे खबर नहीं (कि) मेरा संसार कहाँ रहता है? समझ में आया? कितने ही कहते हैं न यह संसार त्यागा। भगवान! संसार किसे कहना? समझे बिना त्यागा किसे कहना? समझ में आया?

संसार, त्रिकाल आनन्द ज्ञानानन्द मूर्ति को भूलकर क्षणिक विकृतभाव को अपना मानता है, वह उसकी दशा में उसका संसार और भूल है। वह संसार की अवस्था अनन्त है, परन्तु है मर्यादित। मर्यादित अर्थात् बहुत थोड़ी। अनादि काल की वह अभी तक की अन्त आ जाये उसका, तो मोक्ष होगा। इसलिए उस संसार अवस्था की पर्याय की... पर्याय अर्थात् अवस्था है, एक-दो-तीन ऐसे अनन्त गिनो तो अनन्त है। परन्तु उससे भविष्य की जो अवस्था प्रगट होती है, संसार की दशा का व्यय होकर, आत्मा का अन्तर मुक्तस्वरूप भगवान है, उसमें से पर्याय प्रगट पूर्ण हो, वह दशा—वह अवस्था अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... भविष्य में प्रगट हुआ करेगी। भीखाभाई! यह क्या कहते हैं? ऐसी सिद्ध की एक समय की दशा, केवलज्ञान की एक समय की दशा, वह की वह समय की दशा नहीं रहती। दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। जब से पूर्ण प्रगट होती है,

वह अनन्त काल रहती है। वह सब पूर्ण की अनन्त दशा संसार की अपेक्षा अनन्तगुनी इस आत्मा के एक ज्ञानगुण में पड़ी है। शक्तिरूप से, अवस्थारूप से नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसे नहीं खबर द्रव्य की, नहीं खबर शक्ति की, नहीं अवस्था की खबर और धर्म करना है। भगवान अनादि काल से ऐसा का ऐसा धुन में भ्रमता है। कहते हैं कि भगवान! एकबार सुन तो सही, प्रभु! तेरा एक ज्ञानगुण जो अन्दर त्रिकाल है ज्ञान-जानना, उसके अनन्त केवलज्ञान की जो सादि-अनन्त गुणी पर्यायें उसमें समाहित है, पड़ी है। शक्तिरूप से। समझ में आया इसमें कुछ?

कहते हैं, ऐसा जो मेरा भगवान, ऐसी जिसकी अन्तर में दृष्टि होकर राग और विकल्प को पृथक् करके स्वभाव का भान, ऐसा आत्मा है, ऐसी जो प्रतीति अनुभव में प्रतीति की, जानकर ऐसा वेदन किया, उसे अन्तरात्मा और उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहा जाता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव अपनी पूर्ण दशा प्रगट नहीं हुई, वह जिसे प्रगट हुई है, वह उनकी भक्ति करता है, इसका नाम स्तवन और स्तुति कहा जाता है। समझ में आया? स्तुति में भी सूक्ष्मता है। बापू! स्तुति अर्थात् यह तो विकल्प उठता है, धर्मात्मा को अपने स्वरूप की दृष्टि का भान है। प्रवचनसार में कहते हैं पहली गाथाओं में। प्रभु! मैं कौन? और जिसे वन्दन करता हूँ, वह कौन? पहली ही गाथा में संस्कृत टीका ली है। अहं—मैं कौन? मैं तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द से भरपूर पदार्थ, वह मैं। मैं राग और पुण्य और शरीर मैं नहीं। जिसमें मैंपना आवे, उसमें से शुभ कब हटे नहीं। राग-द्वेषादि मैंपने में—आत्मा में नहीं है। आहाहा! वह नहीं तो टलता है। यदि हो तो टले नहीं। इसकी दशा में है। भाई! इसे खबर नहीं। मूल बात की बात है यहाँ तो, भाई!

इसकी दशा में यह विकार है, भ्रमणा है, दुःख है, वह वस्तु के स्वभाव में नहीं है। ऐसा जिसने स्वभाव का भान करके दुःख की दशा मेरी नहीं, ऐसा पूर्णानन्द हूँ—ऐसी प्रतीति, अनुभव, सम्यग्दर्शन, सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान किये हैं, वह पूर्ण परमात्मदशा जिन्हें प्रगट हुई है, उसे पहिचाना है। यह उनकी स्तुति करते हैं। इसका नाम भगवान की स्तुति कहा जाता है। बाकी अंक बिना के शून्य हैं। अकेले भगवान के गीत गाया करे कि ऐसे भगवान, ऐसे भगवान। परन्तु उसे अन्दर में तो भगवान महिमावन्त है, ऐसा तत्त्व तो बैठा नहीं। समझ में आया?

यह मुनि स्वयं सम्यग्दृष्टि उपरान्त आनन्दमय थे। जंगल में दशा बसती थी। मुनि तो जंगल में ही रहते हैं। जिनकी दशा मुनिपने की हो, वे जंगल में आत्मा के आनन्द में ब्रह्मानन्द स्वरूप में इतनी लहर और आनन्द होता है कि जिसे वस्तु के पगर में प्रसार जहाँ हो, वहाँ रहना, अन्दर विकल्प हो नहीं सकता। ऐई! वनवास में आनन्द की... बसते हैं। आनन्द के भान में बसते हैं। उन्हें जरा विकल्प-शुभराग आया है तो परमात्मा की स्तुति करते हैं। परन्तु उस शुभराग को समझते हैं कि यह पुण्यबन्ध का कारण है। मेरे स्वभाव की दृष्टि में मैं स्थिर रह (नहीं) सकता। दृष्टि हुई है, परन्तु स्थिर नहीं हो सकता, इससे यह एक शुभराग आया है। उसे हेयबुद्धि से (जानकर) स्तुति करते हैं। आहाहा! समझ में आया? उपादेयबुद्धि जानकर स्तुति करे तो वह दृष्टि मिथ्यात्व है। वह भगवान की स्तुति करने के योग्य नहीं है। आहाहा! गजब काम, भाई! सूक्ष्म बात है परन्तु अब सुननी तो पड़ेगी न इसे। यह अनन्त काल से भटकता है। आहाहा! उसकी इसे खबर नहीं होती। क्या करता हूँ और क्या है, इसकी कुछ खबर नहीं होती। अन्ध-अन्ध ऐसे का ऐसा चला जाता है।

यह यहाँ कहते हैं, आत्मा अपने स्वरूप में स्वभाव को पहिचानता है। क्यों? शास्त्र में लेख है न? ८०वीं गाथा प्रवचनसार में '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।। सो जाणदि अप्पाणं**' जिसने सर्वज्ञ परमेश्वर के द्रव्य-गुण और पर्याय जाने... द्रव्य-गुण-पर्याय क्या होंगे? कौन जाने? यह द्रव्य अर्थात् पैसा होगा यह? भगवान द्रव्य अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़। और द्रवतुं द्रवता है, पर्यायदृष्टि की अपेक्षा से यह द्रव्य का कथन है। ध्रुव की दृष्टि से तो द्रवता नहीं तो पर्याय भिन्न होती है। परन्तु यह बात अभी जीव को-लोगों को कठिन पड़ती है।

द्रव्य जो वस्तु है, शाश्वत् चीज़ है, वह द्रवती है पर्यायदृष्टि द्वारा। ध्रुव है, वह वास्तव में द्रवता नहीं। परन्तु ध्रुव को जब भेद दृष्टि से कहते हैं तो वह स्वयं है ऐसा द्रव्य। जैसे पानी है, उसमें से प्रवाहित होता है, पानी द्रवता है, द्रवता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण वस्तु—द्रव्य है, उसमें से पर्याय द्रवती है, बहती है, प्रवाहित होती है, होती है। समझ में आया? उसे द्रव्य कहते हैं। और उसकी त्रिकाली गुण को-शक्ति और स्वभाव कहते हैं और उसमें से दशा होती है, उसे पर्याय कहते हैं। समझ में आया?

संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष सब तीनों पर्याय है। द्रव्य-गुण नहीं। समझ में आया?

किसे खबर यह क्या होगा ? सिरपच्ची करके मर जाये बाहर ही बाहर में। और विकल्प के नाम से अनादि से मर गया। समझ में आया ? भगवान आत्मा, ये तीनों दशायें हैं। वस्तु-गुण नहीं। द्रव्य नहीं। बहिरात्मा पुण्य को-पाप को अपना माने, वह मिथ्यात्वदशा भी एक दशा है—अवस्था है। स्वरूप का भान होकर राग से भिन्न का भान हो, वह भी सम्यग्दर्शन एक दशा है। मोक्षमार्ग एक आत्मा की अवस्था / दशा है और मोक्ष होता है, वह भी आत्मा की एक वेश / दशा है। उसके त्रिकाली द्रव्य-गुण का स्वरूप तो त्रिकाल जैसा है, वैसा है। वजुभाई ! कहीं भी इसमें निवृत्ति कहाँ। रुपये ऐसे लगे न। जहर जैसे हैं परन्तु इसे मीठे लगते हैं। दो-तीन लाख की आमदनी हो और पाँच-पचास, साठ लाख हुए। तुम्हारे गये ? हैं ? कैसे आये नहीं हैं तो ? कहो, समझ में आया ? यह सुने तो सही कि रुपये जड़ के और तू तेरा मानता है, ऐसा कहाँ से... ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा !

भगवान ! जड़ तो जड़रूप होकर रहे हैं। तेरे एक समय में होकर रहे नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प जो विकार है, वह विकार एक समय में मानकर तू रहा है। समझ में आया ? क्या कहा यह ? आत्मा परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने ऐसा देखा और ऐसा है। स्तुति में आता है, ... स्तुति करते हैं उसमें (आता है)। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, प्रभु तुम जाणग रीति...' सर्वज्ञदेव परमेश्वर को कहते हैं, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ता से शुद्ध सौने पेखता हो लाल।' हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! हे परमात्मा ! आप तीन काल-तीन लोक के जगत को जानते हो, नाथ ! मेरे आत्मा को आपने ऐसा देखा है, अनन्त आत्मा को ऐसा देखा है, निजसत्ता से शुद्ध (देखा है)। पुण्य-पाप वह कहीं आत्मा नहीं। देह कहीं आत्मा नहीं। देह अजीव है, कर्म अजीव है, पुण्य-पाप के भाव वे आस्रव भिन्न तत्त्व हैं।

भगवान के ज्ञान में आत्मा यह ज्ञात हुआ है... भगवानजीभाई ! कौन जाने क्या होगा ? 'निज सत्ता से शुद्ध...' हे नाथ ! आपने पूर्ण ज्ञान में, सर्वज्ञ के ज्ञान में आपने मुझे ऐसा देखा है कि मेरी सत्ता शुद्ध है। वह शुद्धपना उसे आपने आत्मारूप से देखा है। ऐसा भगवान को कहते हैं। वास्तविक तब स्तुतिकार उसे कहते हैं कि मैं... जैसी भगवान को शुद्ध सत्ता, पुण्य-पाप अशुद्ध सत्ता, कर्म पर सत्ता, भगवान आत्मा की शुद्ध सत्ता—ऐसी शुद्धता दृष्टि में ले, तब उसने आत्मा को जैसा भगवान देखते हैं, ऐसा वह माने, तब उसने

आत्मा को माना और उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया ? कौन जाने क्या होगा यह ? भगवान जाने। भगवान तो जानते हैं, ऐसा तो यह कहते हैं। सुन न ! शुद्ध सत्ता। आत्मा अन्दर निर्मलानन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का रूप है। ऐसा भगवान ने देखा। भगवान ने ऐसा देखा और तू दूसरे प्रकार से देख (तो तू) मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया ? आहाहा ! अरे... भगवान ! क्या होगा, इसकी इसे खबर नहीं।

भगवान ने देखा कि शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्फटिक रत्न। जैसे पत्थर का स्फटिक रत्न निर्मल और स्वच्छ है; वैसे भगवान आत्मा निर्मल ज्ञानानन्द और स्वच्छ और शुद्धता का परमेश्वर स्वयं है। ऐसा भगवान आत्मा को देखा है। ऐसा वह आत्मा अपने को देखे, तब सर्वज्ञ और अपनी ज्ञान की दशा दोनों एक सरीखी कहलाती है। जेठाभाई ! गजब बातें, भाई ! स्तुति करने दो न। परन्तु समझे बिना किसकी स्तुति करेगा ? परमात्मा का स्वरूप क्या है और मेरे पास क्या चीज़ है ? और मैं परमात्मा होने के योग्य हूँ तो वह योग्यता की दशा आयेगी कहाँ से ? और मैं जो परमात्मा की स्तुति करता हूँ, वह कहीं मुझमें... है ? नहीं। वह तो भिन्न तत्त्व है। समझ में आया ?

एक बोल ऐसा है प्रवचनसार में कि आत्मा के जो ज्ञान-दर्शन का उपयोग है, वह बाहर से नहीं लाया जाता। अर्थात् कि वह उपयोग बाहर के निमित्त के लक्ष्य से आता है, वह आत्मा का उपयोग है ही नहीं। आहाहा ! क्या कहा, समझ में आया ? जो ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... कहलाता है दशा में, वह दशा निमित्त के लक्ष्य से हो तो वह ज्ञान ही कहलाता नहीं। वह ज्ञान की दशा निमित्त के लक्ष्य से आवे, वह ज्ञान ही नहीं है। वह आत्मा का उपयोग नहीं। आहाहा ! जो ज्ञान का व्यापार ज्ञानगुण के स्वभाव के आश्रय से होकर जो ज्ञान की दशा हो, उसे भगवान ने ज्ञान का उपयोग उसका है, बाहर से नहीं लाया जाता, वह अन्दर में से आता है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा जरा सूक्ष्म लगेगी परन्तु है यह, हों बापू ! सत्य इस प्रकार से समझे बिना इसे हल आवे, ऐसा नहीं है। कहते हैं, ऐसा आत्मा शुद्ध सत्ता से भगवान ने देखा, ऐसा आत्मा स्वयं अपने को देखे। मैं राग और पुण्य की क्रिया के राग से भिन्न हूँ और मेरे पूर्ण स्वभाव से अभिन्न हूँ। ऐसी दृष्टि हो, उसे अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया ? वह अन्तरात्मा परमात्मा की स्तुति करता है, वह यहाँ व्याख्या चलती है।

ऋषभ भगवान की स्तुति है। १३वाँ अधिकार है। पद्मनन्दि पंचविंशति का। वह यह मुनि सम्यग्दृष्टि स्वयं अपने स्वभाव को पहिचानकर, एक विकल्प उठा है, इसलिए भगवान ऐसे हैं... ऐसे हैं... ऐसे हैं... ऐसा करते हुए मैं ऐसा हूँ, ऐसा इसमें है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार से—निमित्त से कथन करते हैं।

क्या कहते हैं? ऋषभदेव स्तोत्र का पहला श्लोक। यह पुस्तक नहीं पद्मनन्दि पंचविंशति।

जय उसह णाहिणंदण तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर।
जय सयलजीववच्छल णिम्मलगुणरयणणिहि णाह।।१।।

यहाँ से निमित्त से कथन उठाया है। नहीं तो वे नाभिराजा और मरुदेवी के पुत्र, वह कहीं आत्मा नहीं है। आत्मा की वह पहिचान देना, वह तो बाहर के संयोग से दी जाती है। परन्तु वे भगवान ऐसे थे कि जिन्हें माता-पिता के निमित्तरूप से ऋषभदेव को... समझ में आया? नाभिराजा रूप से निमित्त थे पिता। मरुदेवी माता थी निमित्तरूप से। यह कहीं उनसे हुए नहीं। समझ में आया? आत्मा, वीर्य और रक्त का बिन्दु से आत्मा नहीं होता। आहाहा! आत्मा उपजता नहीं। आत्मा है। वह अपने अन्दर में... रक्त का बिन्दु और वीर्य में उपजता है, वह आया ऐसा कहना, वह तो संयोग की बात है। रक्त का बिन्दु और वीर्य तो रजकण जड़ की दशा है। उस जड़ में आत्मा आवे और आत्मा जड़ में उपजे, ऐसा है नहीं। वह आत्मा अन्दर में ज्ञानानन्दस्वभाव की रमणता करते हुए पूर्ण रमणता नहीं हो तब... आवे। संयोग का भाव है। उस संयोग से इन्हें पहिचान कराते हैं कि यह आत्मा तो है यह। परन्तु निमित्तरूप से किस क्षेत्र में और कौन से माता-पिता थे, उनकी व्यवहार से पहिचान करके उसे कहते हैं।

'**जय उसह**' हे ऋषभनाथ! आपकी जय हो। यह स्तुति है मुनि की। महामुनि सन्त हो गये दिगम्बर जंगल में बसनेवाले। उन्होंने यह पहली पहिचान करके फिर यह स्तुति की है। '**जय उसह णाहिणंदण**' नाभिनन्दन। नाभि राजा का निमित्त था, उसमें तुम पर्यायरूप से यहाँ आये, तो नाभिनन्दन कहने में आया। आत्मा किसी का नन्दन भी नहीं और किसी का पिता भी नहीं और किसी का पुत्र भी नहीं। समझ में आया?

आत्मा है, वह किसी का पिता है ? क्या आत्मा किसी पुत्र को उपजाता है ? वह तो आत्मा और शरीर तो भिन्न तत्त्व है। और वह शरीर और आत्मा दूसरे के आत्मा उससे आत्मा उपजता है ? आहाहा ! निमित्त से पहिचान कराते हैं कि यह आत्मा इस काल में, इस क्षेत्र में, इस स्थिति में थे, उनका अस्तित्व स्थापित करके बात करते हैं। समझ में आया ? अध्धर से आये हैं और उपजे हैं, ऐसा नहीं इतना सिद्ध करना कि कोई परमेश्वर है और अध्धर से माँ-बाप निमित्त नहीं था और ऐसे हुए। यह नहीं था, ऐसा समझाने के लिये बात करते हैं। बाकी कोई नाभि के नन्दन है, यह पहिचान आत्मा के लिये नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! '**जय उसह**' नाभिनन्दन '**तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर**' अब यह उनका स्वरूप है।

हे नाथ ! हे परमात्मा ! त्रिभुवन निलय। तीन लोकरूपी घर, उसका आप एक दीपक हो। यह उनके आत्मा की पहिचान कही। वह निमित्त से बात की। हे परमात्मा ! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ! आप '**तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर**' तीन भुवन— ऊर्ध्व, मध्य और अधो। इन तीन लोक में आप सूर्य, चन्द्र और दीपक हो। तीन काल और तीन लोक को जाननेवाले वह आप दीपक समान हो। समझ में आया ? तीन लोक में रहे नहीं। परन्तु तीन लोक को जाननेवालेरूप से, दीपकरूप से आप रहे हो। समझ में आया ? अरे रे ! यह किस प्रकार के ? वह तो कहे। हे भगवान ! तिराना, शिवपद हमको दीज्यो रे महाराज ! सेठ ! हमारे जीवणलाल सेठ... समझ में आया ? समझे बिना जय भगवान।

यहाँ तो कहते हैं, परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा आया। भाई ! तू तो मुझसे भिन्न तत्त्व है न, और तुझसे मैं भिन्न हूँ, तो भिन्न में से भिन्न को कुछ मिले, ऐसा तो है नहीं, परन्तु जब आत्मा का ज्ञान और भान पर से भिन्न होता है, तब तुझे अन्तर में एकाग्र होकर परमात्मा मुक्तस्वरूप है, इसलिए जो तुझसे अधिक परमात्मदशा को प्राप्त है, उनके गुणग्राम का विकल्प उसे आये बिना नहीं रहता। समझ में आया ? यह उसका नाम व्यवहारभक्ति कहा जाता है। आहाहा !

निश्चयभक्ति तो उसे कहते हैं कि जो आनन्दकन्द ज्ञानानन्द मूर्ति में एकाग्र होकर शुद्धता, शान्ति प्रगट करे, वह भक्ति। परन्तु परमात्मा को वश करके परद्रव्य के अनुसार जो वृत्ति उठे, वह व्यवहारभक्ति है। किन्तु जिसे ऐसा निश्चय हो, उसे ऐसी व्यवहारभक्ति

आती है, होती है, यह बात सिद्ध करते हैं। जिसे भान नहीं, राग और विकल्प से भिन्न मेरा तत्त्व है, ऐसा भान नहीं और राग को अपना स्वरूप मानता है, वह बहिरात्मा है। वह भगवान की स्तुति करने के योग्य नहीं है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है जरा।

ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान,
समवसरण के मध्य में कहा सीमन्धर भगवान।

समवसरण के मध्य में परमात्मा... कह रहे हैं। अभी विद्यमान / मौजूद हैं। ऐसा मार्ग वीतराग का अर्थात् आत्मा का। वीतराग अर्थात् वीत्—नहीं, राग। राग का विकल्प भी जिसमें नहीं, ऐसा जो स्वरूप, उसका जिसे अन्तर भान और सम्यग्दर्शन है, यह निश्चय। और परमात्मदशा और भक्ति से स्तवन करता है, वह विकल्प, उसे व्यवहार कहा जाता है। यह निश्चय हो, उसे ऐसा व्यवहार होता है। परन्तु वह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

ऐसा भाव धर्मी को अपने स्वरूप में जब तक वीतरागरूप से स्थिर न हो, तब तक ऐसा भाव शुभ आता है। परन्तु उसे समझता है कि यह एक राग है। और राग है, वह श्रद्धा में मुझे धर्म है—ऐसा वह नहीं मानता। तब उस राग को व्यवहारधर्म का आरोप दिया जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं कि हे नाथ! '**तिहुवणणिलए**' ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक रूपी घर। उस घर के आप दीपक हो, नाथ! प्रकाश के पुंज हो। समझ में आया? एक दीपक होवे तो एक घर में उजाला करे। चन्द्र-सूर्य भी उसकी मर्यादित जमीन में उजाला करे। भगवान का ज्ञान तीन लोक में उजाला करे, ऐसा ज्ञान भगवान का है - ऐसा कहते हैं। यह ऐसा भगवान मैं हूँ। मेरे स्वभाव में ऐसी प्रतीति करके ऐसी स्तुति करते हैं। आहाहा! कहो, जेठालालभाई! गजब भाई! भक्ति में ऐसा सूक्ष्म डाला। भक्ति में मानो कुछ ... होवे तो ठीक। परन्तु बापू! भक्ति ही उसे कहा जाता है, भाई!

भक्ति के दो प्रकार—निश्चय और व्यवहार। निश्चयभक्ति स्व-आश्रय से होती है, व्यवहारभक्ति पराश्रय से होती है। निश्चयभक्ति स्वरूप की एकाग्रता, वह अशुद्धता की निर्जरा। व्यवहारभक्ति पुण्यबन्ध का कारण। ऐसे निश्चय-व्यवहार की सामने व्यवहारभक्ति हो, दूसरे को हो नहीं सकती। ऐसा सिद्ध करने के लिये यह गाथा ली है। समझ में आया?

कहते हैं, और '**तित्थयर**' ऐसा शब्द है। हे भगवान! आप तीर्थ के तारणहार हो।

व्यवहार से है न। वास्तव में निश्चय से अपने तिरने के स्वभाव को आपने तो किया है। प्रवचनसार में ऐसा है पहली गाथा में। अपना तीर्थस्वरूप तिरने का ज्ञानानन्दस्वभाव, उसे आपने किया, इसलिए आप तीर्थ के कर्ता कहे जाते हो। परन्तु व्यवहार से आपने जो केवलज्ञान से वाणी आयी और उसे जो कोई समझे, उसे समझनेवाले को आपकी वाणी और आप निमित्त होते हो, इसलिए व्यवहार से धर्म के कर्ता कहा जाता है। समझ में आया? '**तित्थयर**' धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करनेवाले।

हे भगवान! आप इस लोक में जयवन्त रहो। जय शब्द पहले पड़ा है, जय-जयवन्त रहो। जो आपकी दशा हुई है, ऐसी की ऐसी रहो। ऐसा करके मांगलिक करते हैं। ऐसी हमारी दशा राग से भिन्न पड़कर जो सम्यग्दर्शन आदि हुई, वह दशा ऐसी की ऐसी रहो और आगे बढ़कर हम परमात्मा होंगे, ऐसी भावना करते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब भाषा!

कहते हैं, **आप इस लोक में सदा जयवन्त रहो।** पहला शब्द है न? '**जय उसह णाहिणंदण तिहुवणणिलएक्कदीव तित्थयर। जय सयलजीववच्छल**' हे परमेश्वर! क्या गाथा है, देखो तो सही! मुनि हैं, दिगम्बर हैं, नग्न दशा, अन्तर में आनन्दकन्द में उतरते हैं। उन्हें विकल्प आया है, इसलिए भक्ति जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। कैसे हैं नाथ? '**सयलजीववच्छल**' हे नाथ! हे परमात्मा! सकल जीव के वात्सल्यकारी आप हो। भगवान को राग होगा? यह तो पीछे लिया, देखो! **इसी प्रकार समस्त जीवों पर वात्सल्य को धारण करनेवाले...** इसका अर्थ कि जो धर्मात्मा अपने स्वरूप की प्रीति और रुचिवाले हैं, उन्हें पूर्ण परमात्मा के प्रति व्यवहार-प्रेम आता है। इसलिए आता है, उसे भगवान का आरोप करके प्रभु! आप वात्सल्य के धारण करनेवाले हो। सर्व जीवों के ऊपर वात्सल्य करनेवाले हो। आहाहा! थोड़ा-थोड़ा सूक्ष्म पड़े परन्तु समझना, हों! यह समझे बिना कहीं सुलझाव नहीं है। यह सब दुःखी के सरदार हैं। समझ में आया? कोई कहे कि हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं, ले! तेरे पैसे में नहीं। कहीं आया नहीं वापस? क्या हुआ? छुप गया? चला गया? अब इस आमन्त्रण में यह करने का हो कि पहले धूल का करने का हो? वह तो सब है, उसका सब करते हैं वहाँ। कहो, समझ में आया? होली अर्थात् कषाय। चारों ओर करते ही हैं। अब उसमें नया क्या हुआ? मार डाला परन्तु। दो-चार

करोड़ के कंकर हो न जहाँ... किसके ? जड़ के, हों ! इसको कहाँ थे आत्मा में। यह मूरख होकर मानता है कि मैं पैसेवाला। भगवान तो ऐसा कहते हैं, पुरुषार्थसिद्धिउपाय है न ? उसकी १४वीं गाथा है। अमृतचन्द्राचार्य महामुनि ! जो अपने सवेरे टीका पढ़ते हैं। उन्होंने १४वीं गाथा ली है। यह आत्मा कर्म अजीव और पुण्य-पाप के आस्रव से रहित है। '**असमाहितो**' ऐसा पाठ है।

भगवान आत्मा कर्म अजीव और पुण्य-पाप आस्रव, (इन) दो तत्त्व से आत्मतत्त्व भिन्न है। नहीं तो तीन तत्त्व एक हो जाते हैं। जीव, आस्रव और अजीव ऐसे तीन तत्त्व हैं न नौ में ? तो कर्म, शरीर अजीव और पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति का पुण्य, और हिंसा, झूठ, चोरी के पाप दोनों होकर आस्रव। वह आस्रवतत्त्व भिन्न है। भगवान भिन्न है, परन्तु जो दो तत्त्व से '**असमाहितो**' ... पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) है न ? समझ में आया ?

पण्डितों ने कहा था वहाँ। जयपुर में सब बड़े पण्डित सब बैठे थे। बड़े-बड़े। बंशीधरजी और फूलचन्दजी और कैलाशचन्दजी और उस काशी के क्या कहलाते हैं ? भगवान आत्मा, भाई ! तुझे खबर नहीं, वह स्वयं तत्त्व है। यह तो शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के आस्रवरहित है। '**असमाहित**'। उसे '**समाहित**' अर्थात् सहित '**युक्त इव प्रतिभाति**' जो असहित है, तथापि सहित प्रतिभासित होता है, वह मिथ्या संसार का महाबीज है। यह १४वीं गाथा में है। समझ में आया ?

अस्ति है। पुण्य-पाप के भाव की अस्ति है। शरीर की अस्ति है। अस्ति अर्थात् 'है'। वस्तु भी है। परन्तु यह वस्तु भगवान आत्मा ज्ञानानन्द, वह पुण्य-पाप के आस्रव और अजीव से सहित नहीं है। तथापि '**युक्त इव प्रतिभाति**' ऐसा अमृतचन्द्राचार्य का पाठ है। परन्तु सहित हूँ, ऐसा जिसे भास होता है, वह भव का बीज है—ऐसा पाठ है। वह चौरासी में भटकने का बड़ा महाबीज है। गजब बात ! समझ में आया ? पुरुषार्थसिद्धि में देख लेना, १४वीं गाथा है। अमृतचन्द्राचार्य का पुरुषार्थसिद्धि उपाय है।

कहते हैं, हे नाथ ! '**सयलजीववच्छल**' परन्तु यदि भगवान को पर के प्रति प्रेम हो तो वह विकल्प है और वह तो आस्रव है। वे तो वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं। परन्तु प्रभु ! आपका ज्ञान है, वह सर्व को ज्ञेयरूप से देखता है। इस ज्ञेयरूप से, मुझे ज्ञेयरूप से, जड़ को ज्ञेयरूप से, अवगुण को या गुण को ज्ञेयरूप से देखता है। और किसी के प्रति तुम्हारे ज्ञेय के भाग

नहीं कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय ठीक नहीं। ऐसा भाग नहीं है। इसलिए हम आपको ऐसा कहते हैं कि सर्व जीवों के प्रति आपको वात्सल्य-प्रेम वर्तता है। जेठालालभाई! आहाहा!

यह दुश्मन है, सर्वज्ञ को नहीं मानता है; इसलिए दुश्मन है और यह सर्वज्ञ को मानता है, इसलिए मित्र है, ऐसा है भगवान को? बस, यह वात्सल्य है। सभी आत्मायें पूर्णानन्द स्वरूप है। उस जीव को, सब जीव को हे नाथ! वात्सल्य है। आपने जो ज्ञानस्वरूप से वस्तु को अनुभव किया, देखकर पूरी हुई, ऐसा कहा। ऐसा जो सुनकर तत्प्रमाण करता है तो प्रभु! आपको दूसरे के प्रति वात्सल्य है, ऐसा हम आरोप से कहते हैं। समझ में आया?

'**सयलजीववच्छल णिम्मलगुणरयणणिहि णाह**' अब यह एक बड़ा शब्द आया। हे नाथ! हे परमेश्वर! परम-ईश्वर। परम-ईश्वर। परम-ईश्वरता जितनी आपको प्रगट हो गयी है। कितनी? कि **निर्मल गुणरूपी रत्नों के आकार (खजाना) हे नाथ! आप सदैव इस लोक में जयवन्त रहो।** ऐसा कहकर क्या कहते हैं? थोड़ा-थोड़ा सूक्ष्म पड़े परन्तु सत्य यह है, भाई! हों! दूसरा कुछ नहीं। किसी प्रकार से ठगा जायेगा तो मर जायेगा। समझ में आया? आत्मा, एक आत्मा में इतने गुणों की संख्या पड़ी है, उसे कहते हैं कि '**णिम्मलगुणरयणणिहि**' निर्मल गुण की रत्न की निधि हो, नाथ! यह पर्याय प्रगट हुई है, उसे अवस्था कहते हैं। ऐसा कहकर मेरा आत्मा भी अनन्त गुण की निधि है, यह मैंने प्रतीति और अनुभव में लिया है। आपको प्रगट हो गयी दशा है, निर्मल गुणों की निधि। आत्मा क्या है, उसकी इसे खबर नहीं होती।

जितने गुण की संख्या है... न बैठे तो ख्याल में रखना। समझ में आया? केवलज्ञानी परमात्मा ने ऐसा देखा है कि इस जगत के अन्दर जो जीव की संख्या है, संख्या, उसमें से छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव मुक्ति पाते हैं। ऐसे जीव सदा रहते हैं। क्या कहा? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने ज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखे। पहले आ गया। उसमें भगवान ने ऐसा देखा है कि छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ तो मुक्ति को पाते हैं। इतने सब जीव की संख्या में ऐसे जीव तो सदा होते हैं। समझ में आया? यह जो जीव की संख्या अनन्त काल से संख्या हुई, छह महीने और आठ समय... छह महीने और आठ समय... कितने हुए अनन्त काल से!

कहते हैं कि जो अनन्त परमात्मपद सिद्ध को प्राप्त हुए, उनकी अपेक्षा जीव की संख्या अनन्तगुणी है। समझ में आया? संसारी जीव है, वे अनन्तगुणे हैं। अनन्त-अनन्तगुणे। वे (मुक्ति प्राप्त) तो अनन्तवें भाग हैं। संख्या से। संसारी जीव की संख्या सिद्ध भगवान की अपेक्षा अनन्तगुणी है। संसारी की संख्या की अपेक्षा यह परमाणु-मिट्टी के कण के टुकड़े जो टुकड़े अनन्त कहलाते हैं, वे अनन्त जीवों की अपेक्षा, अनन्त जीवों की अपेक्षा परमाणु अनन्तगुणे हैं। घर की संख्या की खबर होती है। कितनी थालियाँ और कितनी कटोरियाँ और कितने बोघड़ा कितने का मकान बनाया? दो लाख का और पाँच लाख का। कूका इतने हुए घर में। कूका समझे न? पैसा। यह लड़कियाँ खेलती हैं न? ऐसे-ऐसे करके। यह आड़े-टेढ़े खेले। उसमें क्या है? उसकी इसे खबर होती है कि मेरे पास पचास लाख है, पाँच लाख पैदा होते हैं। दो लाख का खर्च आता है, तीन लाख इकट्ठे होते हैं। सब अंकों की खबर धूल की। तुझमें गुण कितने, यह खबर है। भगवान जाने। अपने को कहाँ से खबर हो। भगवान तो जानते हैं परन्तु तुझे खबर है?

कहते हैं, संसारी जीव की अपेक्षा परमाणु की संख्या अनन्तगुणी है और परमाणु की संख्या की अपेक्षा भगवान ऐसा कहते हैं कि यह तीन काल जो है, एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। आँख उघाड़कर मीचे, उसमें असंख्य समय (जाते हैं)। एक समय अर्थात् काल का छोटा माप। ऐसे तीन काल के समय जो हैं, वे परमाणु की संख्या की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। अनन्तगुणे हैं। उसकी अपेक्षा एक आकाश है। चौदह ब्रह्माण्ड है न वस्तु। यह तो आकाश लोकप्रमाण है परन्तु दूसरा आकाश है न खाली। बाहर... बाहर... जाये तो क्या है? खाली है या नहीं? पश्चात् आकाश खाली वह कहाँ... आवे? आकाश खाली... है... है... है... ऐसा आयेगा। परन्तु नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं आयेगा। क्या कहा यह?

आकाश एक अरूपी... पदार्थ .... चौदह ब्रह्माण्ड के साथ दसों दिशाओं में आकाश... आकाश... आकाश... नहीं, ऐसा नहीं आता। है, ऐसा आयेगा। वह है, उसके जो प्रदेश एक छोटे में छोटा एक परमाणु रखो, उतना प्रदेश है। उसके अनन्तगुणे हैं। उन तीन काल की अपेक्षा इसके अनन्तगुणे प्रदेश हैं। इसकी अपेक्षा एक जीव में अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! भगवान जाने कितने होंगे। कहाँ खबर है। समझ में आया?

यह पहिचानकर बात करते हैं मुनि, समकिती। हे नाथ! आपके ऐसे अनन्त-अनन्त जो गुण शक्तिरूप से थे, उन्हें आपने दशा में प्रगट किया है। ऐसी मुझे खबर है, कहते हैं, मुझे खबर है। आपको क्या प्रगट हुआ, यह मुझे खबर है। जेठालालभाई! भगवान पास में जाकर (बोले), जय भगवान। ... शुभराग है। परन्तु उनकी पहिचान किये बिना उसे संवर और निर्जरा अर्थात् धर्म-बर्म नहीं होता। इसे वास्तव में जो आत्मा के भानरहित सम्यग्दर्शन बिना का शुभभाव, उसे व्यवहार धर्म भी कहने में नहीं आता। समझ में आया? निश्चय स्वभाव के भानवाले को जो राग आता है, उसे व्यवहारधर्म और व्यवहारभक्ति कहा जाता है। ऐसा वस्तु का स्वरूप त्रिकाल है।

कहते हैं, '**णिम्मलगुणरयणणिहि**'। निर्मल गुण के रत्न की निधि। उस निधि की खबर पड़े धूल की। समझ में आया या नहीं? मेरे पास पचास करोड़ है, धूल लाख है। जो गिनना हो, वह गिने, गिनना है न! वहाँ कहाँ (इसके हैं)। आहाहा! यह कहा था न? रात्रि में प्रश्न किया था। वहाँ सोनगढ़ में कहा था न? सोनगढ़ में प्रश्न किया था। रात्रि में ... कहा, सोने का भाव क्या है? वहाँ वे सब उलझन में आये। सोने का भाव खबर नहीं। क्या आता है तुम्हारे? तोले का। सोने का भाव यह ... सोने का भाव क्या? ऐसा पूछा वहाँ सब उलझन में आये। कुछ खबर नहीं। सोने का भाव उसे कहते हैं कि सोना द्रव्य है—वस्तु। उसका जो गुण है रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, वह उसका भाव कहलाता है। यह तो कल्पित भाव तुम्हारे सवा सौ और जो कुछ कहते हों, वह।

भगवान द्रव्य के भाव-शक्ति को भाव कहते हैं। समझ में आया? शिवलालभाई! समझ में आया यह? यह क्या है? कहते हैं... इतना पूछा था। सोने का भाव क्या? तब कहा, ... तो नहीं। परन्तु आत्मा का भाव क्या, इतना पूछने का है। आत्मा का भाव क्या? भाव उसे कहते हैं कि जो त्रिकाल रहता है। बाकी दशा तो एक क्षण की होती है। केवलज्ञान हो तो एक समय की दशा। दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। समझ में आया? आत्मा के भाव की खबर है? ... इसमें कुछ प्रश्न... कहो, भगवान क्या कहते हैं यह? देखो! क्या कहते हैं?

'**णिम्मलगुणरयणणिहि णाह**' हे नाथ! आपके आत्मा में जो अनन्त गुण की संख्या थी, जो यह कही उतनी, वह सब पर्यायरूप से—अवस्थारूप से निर्मल हो गयी

है। उसके आप नाथ हो। उसके आप रक्षक हो। जगत के नाथ को जगत के रक्षक कहा जाये, वह तो उपचार के कथन हैं। दूसरे के नाथ-बाथ है नहीं। समझ में आया? '**णिम्मलगुणरयणणिहि णाह**' ऐसा शब्द पड़ा है। संस्कृत शब्द है। मुनि का है। जंगल में दिगम्बर सन्त बसते थे और भगवान की स्तुति का विकल्प उठा, उसमें बहुत गम्भीरता भरी है।

कहते हैं, हे नाथ! आप किसके नाथ? नाथ उसे कहा जाता है कि प्राप्त वस्तु को जाने न दे और नहीं प्राप्त को प्राप्त करावे, उसे नाथ कहा जाता है। योग क्षेम के करनेवाले को नाथ कहा जाता है। है, उसकी प्राप्ति में वापस न जाये और नहीं प्राप्त है, उसे प्राप्त करावे, उसे नाथ कहा जाता है। आप हे नाथ! आपको प्राप्त हुई पर्याय वह रक्षित है, भविष्य की नहीं हुई, वह होनेवाली है। है तो उन्हें वह, परन्तु भविष्य की... इसलिए आप नाथ कहे जाते हो। क्या कहते हैं?

केवलज्ञान और केवलदर्शन है, वह एक समय की अवस्था है। वह कहीं त्रिकाल गुण नहीं है। त्रिकाल तो मूल शक्ति ज्ञान है। एक अवस्था समय की है, उसका नाथ है। नाथ अर्थात् ऐसा का ऐसा रहता है। और भविष्य की पर्याय अभी नहीं है परन्तु हुए बिना रहेगी नहीं। उसे प्रगट करके प्रगट सादि-अनन्त हुआ करेगी। ऐसे यह तुम्हारी निर्मलानन्द दशा के नाथ आप हो, ऐसा मेरे ज्ञान में मैं जानता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहकर यह भी कहते हैं, देखो! **निर्मल गुणरूपी रत्नों के आकार (खजाना) हे नाथ! आप सदैव इस लोक में जयवन्त वर्तो।** ऐसी आपकी दशा प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी रहो। ऐसा कहकर अपने आत्मा की द्रव्य शक्ति; द्रव्य अर्थात् कायम रहना, गुण का कायम रहना और मुझे प्रगट हुई दशा को वैसा का वैसा रहना, वापस गिरना नहीं, आगे बढ़कर पूर्ण होना, ऐसा जयवन्त कहकर यह भाव निकालना चाहते हैं। समझ में आया?

एक शब्द ऐसा आता है शास्त्र में—प्रवचनसार में, कि आत्मा का उपयोग हरण नहीं किया जा सकता, उसे आत्मा कहते हैं। एक शब्द आता है। बीस बोल में। अलिंगग्रहण। उसमें बीस अर्थ हैं, इतने शब्द के। पाँच (शब्द) के बीस अर्थ हैं। उसमें एक शब्द यह है कि आत्मा का उपयोग हरण नहीं किया जा सकता। अर्थात? आत्मा उसे कहते हैं कि

जो ज्ञान-दर्शन और आनन्द से आत्मा को जानता है, वह उपयोग वापस पड़ता नहीं, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? भारी बातें, भाई!

आत्मा का उपयोग उसे कहते हैं, ऐसा परमेश्वर कहते हैं। त्रिलोकनाथ, परमात्मा ऐसा फरमाते हैं (कि) उपयोग उसे कहते हैं कि हरण नहीं किया जा सके, घात नहीं हो। जिसका उपयोग घटे नहीं, ऐसे आत्मा को हम आत्मा कहते हैं। अर्थात् क्या कहा? उपयोग एक लक्षण है जानने का। लक्ष्य है द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। उस उपयोग लक्षण से द्रव्य को पकड़ा है। वह उपयोग वापस नहीं फिरता, ऐसा आत्मा है। आत्मा की स्थिति ही ऐसी है, कहते हैं। क्या कहते हैं यह? पड़ते हैं न बहुत? यह पड़े वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा का उपयोग हरण नहीं किया जा सकता। अर्थात् क्या कहा? यह क्या कहते हैं यह? जानने का... जानने का... जानने का... जो लक्षण है, वह लक्षण द्रव्य का है। वह द्रव्य का लक्षण है। वह वस्तु का लक्षण है, वस्तु लक्ष्य है। उस लक्ष्य को जिसने पकड़ा, वह लक्षण लक्ष्य का है, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का लक्षण अब वापस फिरता नहीं। वह पूर्ण होकर रहता है परमात्मा होकर, ऐसा उसका लक्षण है। गजब बात, भाई! समझ में आया? ...भाई! यह उनकी स्तुति करते हैं, लो।

नाथ! आपको जो प्रगट हुआ है, वह ऐसा का ऐसा रहो अथवा मैं भी ऐसा आत्मा हूँ कि मुझे जो प्रगट हुआ ज्ञानानन्द है, उसे लक्ष्य में आया है। अब मेरा द्रव्य वापस नहीं पड़ेगा, तो वह दशा भी वापस नहीं पड़ेगी, ऐसी मैं आत्मा हूँ। और उसे ही आत्मा कहा जाता है। ऐसा आत्मा भगवान की भक्ति करे, उसे व्यवहारभक्ति कहा जाता है। गाथा विशेष...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट : ७९७ नम्बर के प्रवचन में आवाज खराब होने से नहीं लिया गया है।

माघ कृष्ण-१२, शुक्रवार, दिनांक - १४-०२-१९६९
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १३ - १४ प्रवचन-७९८

..... ऐसे आत्मा के अन्दर इस प्रकार से संख्या... हजार है। भगवान आत्मा देह के रजकणों से भिन्न तत्त्व है, कर्म के रजकण जो अन्दर प्रारब्ध है, उनसे भिन्न पदार्थ और पुण्य और पाप की वासना वृत्तियाँ विकल्प उठते हैं, उत्थान वृत्ति होती है, उससे वह भिन्न चीज़ है। और वह पर से भिन्न परन्तु अपने बेहद स्वभाव से अभिन्न है। समझ में आया? ऐसा आत्मा अनादि काल से अपनी जाति को भूलकर, अपने में आनन्द है, उसे भूलकर और शरीरादि परपदार्थ में आनन्द है अथवा शुभ और अशुभभाव होता है, शुभ और पुण्य-पाप की विकल्प वृत्तियाँ, उनमें भी मुझे सुख है, ऐसा मानता है, वह उसकी भ्रमणा और भ्रान्ति और अज्ञान है। समझ में आया?

जैसे कच्चा चना बोवे तो उगता है। खावे तो कसैला स्वाद देता है परन्तु यदि उसे सेका जाए तो फोलवा* की मिठास जो प्रगट होती है, वह उसमें थी, वह प्रगट होती है। कंकर और कोयले को सेकने से कहीं फोलवा की मिठास नहीं आती। समझ में आया? इसी प्रकार इस देह में भगवान आत्मा आनन्द से भरपूर, जैसे चने में मिठास है, उसे सेका जाए तो बोने से उगेगा नहीं, कसैला (स्वाद) जायेगा और मिठास होगी। बराबर है? ... ज्ञान के कारण। यह पुण्य-पाप की विकृत अवस्थाओं में मुझे ठीक है, उनमें मुझे मजा है, ऐसा अनादि से कच्चा चना जैसे उगता है, वैसे स्वभाव के भान बिना अज्ञानरूपी कचास के कारण चौरासी के अवतार में यह उगता है अर्थात् अवतरित होता है। समझ में आया? गजब बात, भाई! न्याय से तो समझना पड़ेगा न! यह आत्मा है या नहीं अन्दर? और इसे कहने में आता है न! यह कहीं जड़ को नहीं कहा जाता।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, भाई! जो सत् है, शाश्वत् है। और शाश्वत् जैसी चीज़ है, वैसी उसमें ज्ञान, आनन्द और शान्ति, वह शाश्वत अन्दर पड़ी है। समझ में आया? उसका स्वाद आनन्द का अन्दर पड़ा है। परन्तु स्वरूप के अज्ञान के कारण उसका आनन्द का स्वाद उसे नहीं आता और राग-द्वेष का अज्ञान का कलुषित-मलिन

* छिलके निकालकर साफ की गयी चीज़।

स्वाद को यह अनुभव करता है। समझ में आया? आत्मा एक बार भी इस कचास—पुण्य-पाप की वृत्ति की मिठास की रुचि छोड़कर, भगवान आनन्दकन्द है, नित्यानन्द आत्मा है, नित्यानन्द है, चिद्घन है—ऐसे आत्मा की अन्तर में रुचि स्वसन्मुख की करके आत्मा का एक क्षण भी यदि अनुभव करे तो उसे अज्ञानरूपी कचास जले और स्वभाव का भान होकर प्रगट पक्का आत्मा हुआ। आनन्द है, वैसी दशा प्रगट करे। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान के अनुभव द्वारा। पश्चात् वह आत्मा कचास का स्वाद था, वह गया, अब वह बोने से उगेगा नहीं—उसे अवतार नहीं और आनन्दस्वरूप जो भगवान आत्मा अन्दर में है, उसकी उसे मिठास आती है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम धर्म कहा जाता है। अरे रे! गजब बात, भाई! समझ में आया?

क्योंकि वस्तु का स्वभाव वह धर्म। तो वस्तु जो भगवान आत्मा, उसका स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर है। आहाहा! डाह्याभाई! कहाँ खोजना? यहाँ बाहर में झपट्टे मार डालता है न! कुछ पाँच-पचास लाख की धूल मिले, वहाँ सुखी हैं। दूसरे भी ऐसे पागल-पागल उसे सुखी कहे। पागल का... पागल ही होते हैं न सब। अब कुछ पैसा हो और कुछ रूपवान शरीर हो और कुछ दो-पाँच-दस लड़के हों, लम्बे कमाऊ। यह सुखी है। भगवान! तेरी व्याख्या खोटी है। समझ में आया?

सुखी तो उसे कहते हैं कि आत्मा आनन्द की खान है, उसमें तो नजर डालने से शक्ति जो आनन्द है, उसकी व्यक्तता अन्दर में से सम्यक् अनुभवदृष्टि द्वारा हो, उसे सुखी और सुख का वेदन करनेवाला कहा जाता है। समझ में आया? कैसे होगा, चिमनभाई यह? सत्य होगा? शरीर में रोग हुआ, इसलिए दुःखी—ऐसा नहीं है। पाँच-पचास लाख, दो-चार करोड़ इकट्ठे हुए, (इसलिए) ब्लड प्रेशर है, यह नहीं। ब्लड प्रेशर न भी हो, शरीर सुन्दर हो, मक्खन जैसा। मिट्टी का पिण्ड है यह धूल। समझ में आया? गजब! स्त्री का जरा मक्खन जैसा रूपवान देखे, वहाँ आहाहा! क्या है परन्तु मूर्ख!

अज्ञान के कारण आत्मा आनन्दमूर्ति को भूलकर जहाँ-तहाँ अज्ञान से सुख मान बैठा है। है नहीं। आहाहा! यह पर में सुख मानना, वह बुद्धि, अधर्मबुद्धि है। समझ में आया? अधर्म की व्याख्या यह है, हों! अधर्म अर्थात्? जो आनन्दमूर्ति ज्ञान का पिण्ड प्रभु है, उससे विपरीत दशा विकार की, उसमें सुख मानना, वह दुःख है। वह दुःख है।

आनन्दमूर्ति की उल्टी दशा—विकृत अवस्था, वह दु:ख है। समझ में आया? उस दु:ख को जिसने अन्तर्दृष्टि आत्मा के ज्ञान द्वारा ध्यान द्वारा दु:ख को जलाया, नाश किया और अन्तर में आनन्द प्रभु है, उसे अन्तर के वेदन में ज्ञान में स्वसंवेदन, स्वसंवेदन (प्रगट किया), यह धर्म की व्याख्या चलती है, हों! और कोई कहे, बड़ी ... होगी। धर्म इसका नाम है।

स्व अर्थात् भगवान आत्मा अपना आनन्द, उसे स्व अर्थात् अपना स्वरूप आनन्द का सं-स्वसंवेदन। सं अर्थात् सम्यक्-प्रत्यक्ष। राग के विकल्प का भाग छोड़कर निर्विकल्प आनन्दमूर्ति प्रभु के ऊपर दृष्टि देने से अपना प्रत्यक्ष रागरहित आनन्द का स्वाद अतीन्द्रिय का अनुभव आवे, उसे भगवान वस्तु का स्वभाव और धर्म कहते हैं। समझ में आया? बृजलालभाई! ऐसी व्याख्या कैसी होगी यह? तुम्हारे हाईकोर्ट में कहीं यह कायदा चले नहीं। सरकार ने कायदा लिखा हो, तुम्हारे दिये रखना। यह सब जज है न वहाँ हाईकोर्ट के। समझ में आया? ...भाई! तुम्हारे वहाँ वे पैसेवाले जहाँ हों, वहाँ बैठे हों, ओहोहो! क्या सेठ साहेब! सेठ साहेब! सेठ साहेब! लाखबार सेठ साहेब कहे वहाँ फूलकर... हो जाता है। अरे! भगवान! सेठ उसे नहीं कहा जाता, नाथ! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, उसकी दृष्टि करके श्रेष्ठ दशा प्रगट करे, उसे सेठ कहा जाता है। बाकी सब वेठ कहने में आते हैं। समझ में आया? यह याद आ गया, लो। सेठ है न।

एक गृहस्थ है। जो अभी है। सरदारशहर है, वहाँ (है)। उसमें चालीस वर्ष पहले, उसके मामा के पास ६० लाख रुपये थे। ६० लाख। ऐई! चालीस वर्ष पहले साठ लाख अर्थात्? यह तुम्हारे अभी १६ लाख हो, तब पहले का एक लाख कहलाये। क्योंकि सोलह गुणी कीमत घट गयी है। दाना-घी का सोलह गुना भाव बढ़ गया है। उसे ६० लाख देते थे। मैं क्या करूँ मामा, ६० लाख को? ४० वर्ष पहले ६० लाख, हों! लोगों को ऐसा हो गया कि ले लेना था और फिर धर्मादे में लेना था। सुन तो सही परन्तु। वह ६० लाख लेने की तृष्णा का माप है, वह पाप है। समझ में आया? उसने इनकार किया। मामा! मामा थे न। उनके तो लड़की थी और भानेज के ऊपर प्रेम था। ६० लाख। ४० वर्ष पहले, हों! उनकी ३० वर्ष की उम्र थी। अभी ७० है। जीवित हैं। वैरागी है। ४० वर्ष पहले ६० लाख का इनकार किया होगा, उसे वैराग्य कैसा होगा! यहाँ तो दस हजार के लिये झपट्टे मारता

है। लाख-दो लाख हो वहाँ तो मानो फुदड़ी होकर... ओहोहो! क्या हो गया! उसे फिर आत्मा के मनन आदि ध्यान आदि में उसने मनाया है। यह बहुत ऊँचे शब्द हैं। वस्तु तो यह, परन्तु तात्त्विक अभ्यासी है। यह तो एक याद आ गया सेठ का इसलिए। है न इसमें? तेरहवें पृष्ठ पर है न? तेरहवें? क्या था?

उनके घर में एक ढाई वर्ष का लड़का मर गया। लड़के का लड़का। अभी बात निकली है। फिर उनके लड़के की बहू को कहा। क्यों बेटा! बेटा ही कहे न। लड़के की बहू अर्थात् लड़की ही हो। लड़की कहलाये। ससुर पिता कहलाये। पिताजी! आप कहो ऐसा करेंगे। क्यों बेटा! रोना है? पिताजी! आपके घर में रोऊँ नहीं। मुर्दा पड़ा है और गृहस्थ व्यक्ति। ढाई वर्ष का लड़का। कहे, मैं गायन बोलूँ, वह बोलो। रोने की बात हमारे घर में नहीं। समझ में आया? पश्चात् उन्होंने गायन बनाया बहुत परन्तु मुझे तो अभी एक कड़ी कहनी है। यह सेठ शब्द आया न इसलिए। सोलहवीं कड़ी है, तेरहवाँ आध्यात्मिक गायन है। 'गुणीजन सम्हाले सोही सेठे, अन्य तो अनुचर जाणजो जी, गुणीजन सम्हाले सोही सेठे।' गुणीजन अर्थात् अनन्त आनन्द का पिण्ड, गुण आनन्द का पिण्ड ऐसा आत्मा। उसे अन्तर में सम्हाले और सावधान होकर उसकी सम्हाल करे, वह 'गुणीजन सम्हाले सोही सेठे।' उसे सेठिया परिवार कहा जाता है। उनके परिवार को सेठिया का... है। इसलिए वह बहू... गुणीजन यह आत्मा आनन्द प्रभु है, उसकी अन्तर दृष्टि करके, उसे सम्हाले और विकार के परिणाम में सुखबुद्धि टल जाये, उसे यहाँ सेठ कहा जाता है।

यहाँ तो पाँच-पचास (लाख) हो, करोड़-दो करोड़ आवे वहाँ तो रास आ जाये, फूल जाये अन्दर। क्या होगा? धूल भी नहीं, सुन न अब। यह तो कंकण सब बहुत जगत के हैं। तेरे घर में क्या है, वह तो सम्हाल। डाह्याभाई! 'अन्य तो अनुचर जाणजो जी।' जिसने आनन्दस्वरूप भगवान को अनुसरकर—अनुसरकर आत्मा के स्व-वेदन से धर्म दृष्टि प्रगट की नहीं, वे सब भिखारी अनुचर-अनुचर भिखारी हैं। ...भाई! सत्य होगा यह? ... रुपये ही दिखते हैं न। उसका पिता आवे तो भी बात करने को फुरसत नहीं होती। यहाँ बैठे हैं। निवृत्त। समझ में आया?

'अन्य तो अनुचर जाणजो जी, मारा ज्ञान...' यह शब्द प्रयोग किया है। अपने रिवाज है न? लड़का मर जाये, तब मारा पेट! ऐसा करते हैं न? पेट भी कहाँ था तेरा। वह

पेट भी नहीं और लड़का भी नहीं। परन्तु महिलाओं को रोने की आदत होती है। इसलिए उस समय ऐसा बनाया है। 'मारा ज्ञान।' मैं तो ज्ञान चैतन्य ब्रह्म हूँ। मेरा स्वरूप तो चैतन्य ब्रह्म वह मेरा स्वरूप है। यह पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर, यह स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये। आहाहा! समझ में आया? फिर मरने के समय बोलते हैं न? इसलिए फिर 'मारा ज्ञान' ऐसा लिया। मारा पेट-ऐसा बोलती हैं न महिलायें? यह 'मारा ज्ञान' लिया है। 'अन्य तो अनुचर जाणजो।' एक ही कड़ी है। ऐसी तो बहुत कड़ियाँ हैं।

दूसरे भगवान आत्मा के आनन्द को अनुसर कर स्वभाव की समृद्धि और सम्पदा की प्रतीति और अनुभव जिसे नहीं, और बाहर की सम्पदा और समृद्धि का स्वामी होता है, वह परमात्मा स्वभाव की अपेक्षा से उसे अनुचर अर्थात् भिखारी कहते हैं। भगवानजीभाई! कठिन पड़े परन्तु, हों! पैसेवाले और रुपयेवाले और सब ... भिखारी है। यह भिखारी का बाप। सुन न अब। माँगे। बाहर का भिखारी माँगता है। मुझे दो... मुझे दो... मुझे दो। यह थोड़ा माँगे, वह थोड़ा भिखारी, अधिक माँगे वह अधिक भिखारी। आत्मा के आनन्द में माँगते हुए दूसरा कुछ न माँगे, वह बादशाह। समझ में आया?

अपने आये थे न दरबार वहाँ व्याख्यान में? सोनगढ़। यह भावनगर दरबार। ...का तालुका। कृष्णकुमार, गुजर गये न? व्याख्यान में आये थे। फिर कहा कि दरबार! यह पाँच हजार महीने माँगे वह छोटा भिखारी—छोटा। पाँच लाख महीने माँगे वह बड़ा भिखारी। यह करोड़ रुपये बारह महीने में तालुका माँगे, वह बड़ा भिखारी है। दरबार आये थे न कृष्णकुमार। मर गये न, गुजर गये। यह क्या? अन्तर तो भगवान आत्मा अन्दर चैतन्यधाम विराजता है। आनन्द की लक्ष्मी अन्दर में है। और भग् अर्थात् स्वरूप की लक्ष्मी, वान अर्थात् जिसका स्वरूप लक्ष्मी का आनन्द का स्वरूप है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी तुझे कीमत नहीं, उसकी तुझे मान्यता नहीं, उसकी तुझे पहिचान नहीं, उसकी तुझे अधिकता नहीं। और उसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ की अधिकता मानता है। परमेश्वर की व्याख्या में उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ में आया?

इसलिए जब धर्म की दशा प्रगट होती है, तब उसे प्रथम आत्मा का भान स्वसंवेदन ज्ञान का होता है। आहाहा! उसे आत्मज्ञान कहते हैं, उसे आत्मदर्शन कहते हैं, उसे धर्म की पहली कला कहते हैं। वह कला साधते... साधते... साधते... पूर्णदशा को जब (प्राप्त

करता है), दूज उगती है, वह पूर्णिमापने को प्राप्त होती है। उसी प्रकार आत्मा का ऐसा अन्तर में भान अनुभव का होता है, तब आगे स्वरूप के साधन में बढ़ता है। बढ़ते-बढ़ते जब पूर्ण दशा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, उसे पूनम अर्थात् पूर्णता, उसे परमात्मदशा, सर्वज्ञदशा कहा जाता है।

ऐसी दशा को प्राप्त करने के अभिलाषी जब ऋषभदेव भगवान थे... यह तो उपोदघात किया। यह ऋषभदेव वर्तमान चौबीसी में सर्वज्ञदेव तीर्थंकर हुए, परन्तु पहले पूर्व में नहीं थे। पूर्व में तो अनादि भटकती जाति में थे। पश्चात् जब आत्मभान हुआ... ओहो! मेरी पूँजी तो मेरे पास है। चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आनन्द का कन्द मैं हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन और अनुभव होने पर धर्मी होता है, पश्चात् आगे बढ़ते हुए, उसे अभी राग बाकी रहता है। पूर्ण परमात्म सर्वज्ञ वीतरागदशा न हो, तब तक साधक को भी अभी रागभाग भक्ति का, पूजा का, दान का, दया का राग रह जाता है। उस राग के फल में पुण्य बँधता है। स्वभाव की शुद्धता की एकाग्रता में आत्मा को आनन्द आता है। समझ में आया? वह पूर्ण आनन्द जब तक प्राप्त न हो, वहाँ तक उसे विकल्प वृत्ति भक्ति की, पूजा की, दान की ऐसी वृत्ति होती है। ऐसे उसमें पुण्य बाँधता है। उस पुण्य के कारण पहले स्वर्ग में गये थे और पश्चात् यहाँ आकर माता मरुदेवी के गर्भ में अवतरित हुए हैं। अभी पूर्ण प्राप्ति हुई नहीं, परन्तु पूर्ण प्राप्ति का अन्तिम अवतार है। उसे लक्ष्य में लेकर यहाँ साधक, साधक हुए पूर्ण प्राप्त करनेवाले की यह स्तुति और महिमा करते हैं। न्याय समझ में आया?

यहाँ अपने आया है। भगवान की भक्ति करते हुए भक्त ऐसा कहता है, प्रभु! जब आपका अवतार हुआ... सब बात सिद्ध नहीं की जाती, हों! लॉजिक से, युक्ति से बात सिद्ध हो सकती है। यह तो अमुक चलती हो, वह बात सिद्ध होती है। प्रवाह के काल में उन्नति क्रम में चढ़ा हुआ आत्मा अन्तर दशा की रमणता में आया हुआ, उसकी पूर्ण रमणता पूरी नहीं हुई हो, तब तक उसे पुण्य का भाव होता है। भक्ति के, दया के, दान के (भाव होते हैं)। समझ में आया? और उस भाव में उसके फल पुण्यरूप से बँधते हैं और पुण्यरूप से फल में उसे स्वर्गादि की गति मिलती है और अभी पुण्य बाकी रहा... वह पुण्य भी वहाँ क्षय हुए और मृत्युलोक में आवे तो भी अभी पुण्य बहुत बाकी है। अच्छे कुल में अवतरित हो। समझ में आया? 'सन्त बीज पलटे नहीं भले जुग जाये, अनन्त एक नित्य

घर अवतरे तोय सन्तनो...' स्वरूप के भानवाले की कला जहाँ खिली है, आत्मवेदन राग से भिन्न, पर से भिन्न, उसे अन्तर वेदन में जहाँ भान आया, अब उसे अवतार अभी राग बाकी है, वह एकाध हो, परन्तु उत्तम कुल में उसका अवतार होता है। यह राजकुल में अवतरित हुए हैं। ऋषभदेव राजकुल में अवतरित हुए हैं। उस समय की स्तुति करते हैं।

प्रभु! जब आपका जन्म हुआ, देह का, हों! आत्मा तो भिन्न है न अन्दर, भान है। आत्मा जन्मता है? जन्मता नहीं? यह देह की स्थिति इतने वर्ष की है। आत्मा की स्थिति है? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। ब्रजलालभाई! अभी कहा था न? वहाँ एक बार मैंने प्रश्न किया सबको। सोने का भाव क्या है? सोने का भाव कितना है? सब उलझन में आये। सोने का भाव कितना है? कहा। कोई कहे सवा सौ, डेढ़ सौ, दो सौ। यह मैंने पूछा था? सोने का भाव अर्थात्? तुम्हारे यह सवा सो, डेढ़ सौ का सोने का भाव कहलायेगा? तुम्हें खबर नहीं? सोना अर्थात् रजकण—धूल। उसका भाव अर्थात् रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, जो उसकी शक्ति, वह उसका भाव कहलाता है। यह तुम्हारा कल्पित किया हुआ भाव कहाँ था उसमें? समझ में आया? यह प्रश्न पूछा, वे मानो महाराज को क्या सोना लेना है? सोने का भाव क्या? तब वे उलझन में आ गये। कौन जाने। एक व्यक्ति कहे... भाई! यह क्या पूछा खबर है तुम्हें? सोना एक रजकण है, पीले परमाणु धूल। वस्तु। उसका भाव अर्थात् रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, चिकनाहट, पीलापन यह उसका भाव है। समझ में आया? उसका भाव यह है तो आत्मा का भाव क्या?

आत्मा का भाव और क्या? भगवान! तू आत्मा है या नहीं? तो तेरी शक्तिरूप स्वभाव त्रिकाल है या नहीं? वस्तु स्वभाववान है, तो उसका स्वभाव है या नहीं? स्व-भाव। तो ज्ञान-आनन्द, वह उसका स्वभाव है, वह उसका भाव है। समझ में आया? उस भाव का भान होने पर भी पूर्ण दशा न हो, तब विकल्प राग का, भक्ति आदि का उठता है। इसलिए भक्त परमात्मदशा को प्राप्त होने से पहले ज्ञानी उसकी प्रशंसा करते हैं। हे प्रभु! आप पूर्णता को पानेवाले हो। आनन्दस्वभाव की पूर्ण दशा प्राप्त होगी, इससे पहले आपने आनन्द प्रगट किया है। आपकी भक्ति करते हुए हम ऐसा कहते हैं। जरा बात ऐतिहासिक है, इसलिए लम्बी बात कहीं सिद्ध नहीं की जाती सब।

एक मेरुपर्वत जम्बुद्वीप के मध्य में है। यह जम्बुद्वीप है, उसके मध्य में एक

मेरुपर्वत है। समझ में आया? तुम्हारी रोकेट-बोकेट की बाते अभी याद नहीं करना। वह सब हमें खबर है कि रोकेट यहाँ जाता है और अमुक जाता है। यह जम्बुद्वीप, वह एक द्वीप है। अपने 'जम्बुद्वीप...' नहीं आता? यह जम्बुद्वीप अर्थात् लाख योजन का द्वीप है, ऐसा लम्बा-चौड़ा। ऐसे-ऐसे चारों ओर गोल चक्कर है। उसके मध्य में एक मेरुपर्वत लम्बा है। उसके अन्दर पूर्ण परमात्मदशा जिन्हें होनेवाली हो और पुण्य में भी बहुत पूरे होते हैं, उनके जन्म के अभिषेक के लिये वहाँ ले जाते हैं। समझ में आया? पवित्रता की प्राप्ति के लिये तो प्रयत्न पूरा करेंगे, परन्तु प्रयत्न पूरा होने से पहले पुण्य के फलरूप से ऐसा शरीर आदि का सुन्दर अवतार होता है कि इन्द्र आकर मेरुपर्वत को प्रदक्षिणा करेंगे। वहाँ मेरु के ऊपर जन्माभिषेक करते हैं। इस बात को लेकर जरा कल कहा था। इन्द्रों ... महाराज प्रभु! यह बादल जो अखण्ड है न, ये टुकड़े कैसे हुए हैं? टुकड़े-टुकड़े दिखते हैं। उनका अलंकार किया है। प्रभु! आप परमात्मदशा को प्राप्त होने से पहले भी जब आपकी दशा थी, उसे हमने लक्ष्य करके इन्द्र ऐसे नाचते थे। नाचते-नाचते उनके हाथ ऐसे लम्बे हो गये। इसलिए अखण्ड जो बादल थे, उनके टुकड़े हो गये। वे टुकड़े मैं देखता हूँ। समझ में आया? आहाहा! अलंकार है।

वस्तु की स्थिति का भान है। अखण्डानन्द प्रभु का भान हुआ, वहाँ राग कर्म थे, उनके टुकड़े हो गये, चूरा हो गया। फिर थोड़े-थोड़े रहे। पूर्ण होंगे, तब कौन संभारे क्या था वह? कल्याणजीभाई! आहाहा! कहते हैं, भगवान! उस समय की स्थिति, हमारा आत्मा जब पूर्णानन्द का नाथ ऐसा हमें सम्हाल में आया, जो कर्म के कठिन कलेजे कठिन थे, उसे हमारे अनुभव द्वारा हमने चूरा कर डाला है। समझ में आया? अब हमारे थोड़ा स्वरूप में स्थिर होकर उन टुकड़ों का नाश करना है (तो) यह हम प्रयत्न में हैं। ऐसे साधकजीव की यह दशा धर्मात्मा की होती है। समझ में आया? यह इतिहास वार्ता नहीं परन्तु वार्ता में धर्म की बात साथ ही सम्मिलित है।

पश्चात् ऐसा कहते हैं। ... पहले जम्बुद्वीप जब अवसर्पिणी शुरु (था, उससे) पहले कल्पवृक्ष थे। असंख्य अरब वर्ष पहले जम्बुद्वीप में कल्पवृक्ष का जीवन था। कल्पवृक्ष थे। उन जीवों को उसमें से चाहिए, वह मिलता था। समझ में आया? पश्चात् कल्पवृक्ष घटने लगे, तब परमेश्वर ऋषभदेव भगवान का जन्म हुआ। तब उस कल्पवृक्ष की

आजीविका टूटने लगी, तब उन्होंने बताया, ऐसा करो, आजीविका होगी। उसे लक्ष्य में रखकर यह स्तुति करते हैं। सब ऐतिहासिक बात है। सिद्ध हुई है परन्तु उसे वर्तमान युक्ति से सिद्ध करने में देरी लगती है। प्रत्येक (बात) सिद्ध हो सकती है। समझ में आया?

इस काल पहले जब कल्पवृक्ष थे, प्रभु! वे कल्पवृक्ष सूख गये। मनुष्य की आजीविका उनके ऊपर थी। तब आप कल्पवृक्षरूप से होकर दूसरे को आजीविका की कला आपने बतायी है। आजीविका की कला, हों! अभी धर्मकला बाद में। समझ में आया? यह बहुत कल्पवृक्ष का काम सूखा, इसलिए आप अकेले ने किया है। इस चौबीसी का काल लम्बा है। उसके पहले बहुत काल पहले की बात है। समझ में आया?

अर्थात् यह आत्मा कल्पवृक्ष समान है। वे तो कल्पवृक्ष थे, हों! ऋषभदेव भगवान परमात्मा जब होनेवाले थे, वह अवतार था, तब कल्पवृक्ष थे। परन्तु सूखने लगे। जो फल दे सहज वे घटने लगे। इसलिए स्वयं ऐसा कहा कि तुम इस प्रकार करो, अनाज पकेगा और ऐसा होगा। उन लोगों को यह कला थी नहीं। बहुत कल्पवृक्ष जब गये, तब हे नाथ! आपने अकेले कल्पवृक्ष से उनकी आजीविका पूरी की। यह बताने को, निमित्त हुए इसलिए।

इसी प्रकार यह आत्मा कल्पवृक्ष-समान है। आहाहा! समझ में आया? कल्पवृक्ष— जो माँगे वह मिले। इसी प्रकार भगवान आत्मा, जितना अन्तर में एकाकार हो, उतनी आनन्द की दशा उसे प्रगट होती है। बाहर की सामग्री की धर्मी की आवश्यकता नहीं रहती है। अरे रे! गजब! जेठालालभाई! क्या होगा यह? कहते हैं, आप अकेले कल्पवृक्ष (थे)। मैं चिदानन्द आत्मा मैं कल्पवृक्ष हूँ। आहाहा! मेरा वज्र जैसा चैतन्यबिम्ब, उसमें मैं जितना अन्तर एकाग्र होऊँ, उतना मुझे आनन्द का झरना झरे। जैसे पर्वत में से पानी झरे, वैसे भगवान आत्मा अस्तिरूप आनन्दरूप वह है, ऐसा जहाँ भान हुआ है, इसलिए अब क्षण-क्षण में आनन्द का वेदन बढ़ता जात है। इसलिए आत्मा को कल्पवृक्ष कहा जाता है। समझ में आया? यह धूल के हों, उन्हें नहीं। यह कामधेनु आता है न? गाय हर रोज दूध दे, धूल दे। इन सबकी अपेक्षा यह आत्मा कामधेनु है। आत्मा कल्पवृक्ष है।

यह अधिकार भक्ति का करके आप जब **पूर्व में प्रजाजनों की आजीविका, बहुत से कल्पवृक्षों के माध्यम से होती थी...** हिन्दी अर्थ है। संस्कृत शब्द है।

जाण बहुएहिं वित्ती जाया कप्पदुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

यह श्लोक है। हजार वर्ष पहले का है। महामुनि जंगल में बसते थे। आत्मा के आनन्द में झूलते थे। उन्हें एक बार यह विकल्प उठा। स्तुति कर डाली है। हो गयी है। जड़ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। हे नाथ! **उन कल्पवृक्षों के अभाव में, उन प्रजाजनों की आजीविका आप अकेले ने ही की।** इसी प्रकार आत्मा जहाँ-तहाँ माँगता था यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए... ऐसा अज्ञानभाव में जो अनेक प्रकार की सामग्री को चाहता था, उस आत्मा के आनन्दस्वरूप के जहाँ अनुभव में सम्यग्दर्शन में आया, तब अकेला आत्मा सब शान्ति को पूरी पाड़े, ऐसा अकेला आत्मा है। उसकी शान्ति के लिये किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं पड़ती। गजब बात, भाई! ऐसा आत्मा परन्तु यह क्यों नहीं सूझता?

एक बार इन रामजीभाई के मित्र थे। ऐई! मोहनभाई! रामजीभाई के मित्र वे भगवानभाई थे। भगवान वकील। तुम्हारे वकील थे न सबके! वे सुनने आवे। महाराज! ऐसी आत्मा की महिमा करते हैं, परन्तु धोया हुआ मूला जैसा आत्मा गया कहाँ है? ऐसा कहते थे। यह बड़े वकील, हों! यह तो भाई पहिचानते हैं। भगवानजी वकील थे। ऐसे दो-चार-पाँच लाख किये होंगे धूल कहीं। वकालात में। बुद्धि वहाँ क्या काम आवे? वह तो पुण्य के कारण होता है। वहाँ बुद्धि कुछ काम नहीं करती। बुद्धि के वारदान होते हैं, वे करोड़पति दिखते हैं। समझ में आया? उसमें कोई माल नहीं है। वारदान समझ में आया या नहीं? खाली थैलियाँ। वह पूर्व के पुण्य के कारण दिखायी दे पाँच-पच्चीस करोड़, धूल करोड़। और बुद्धिवाला बेचारा हो तो महीने में दो सौ और पाँच सो... अभी महँगाई हो गयी। तीन सौ रुपये का वेतन मुश्किल से मिले। अब उसमें आठ लड़के, महँगाई का पार नहीं। बुद्धिवाला होवे तो क्या करे? पूर्व के पुण्य प्रमाण मिलता है। ऐसा कि पैसा तो अमुक इकट्ठा किया हुआ, परन्तु आत्मा की बात कहाँ करे? क्या कहते हैं महाराज? आत्मा ऐसा? धुला हुआ मूला जैसा गया कहाँ? दिखता तो नहीं। अरे! भगवान! तूने देखने की नजर कब की है? समझ में आया? लो, यह वकील। ऐई! डाह्याभाई! भाई! तूने निज नजर कहाँ की है? .... 'मेरे नयन के आलस्य से रे, मैं निरख्या न नयने हरि।' मेरा आत्मा हरि अर्थात्

विकार और अज्ञान का नाश करनेवाला ऐसा मैं। मेरे ज्ञान के नेत्र के आलस्य से मैंने मेरे आत्मा को देखा नहीं। निवृत्ति ही कहाँ है ? यह सब बाहर भभका लगता है।

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रकाश का नूर पूर है। उसकी नजर डालने से उसकी खबर कब पड़े ? ऐसे बाहर नजर में (पड़े) ? एक महिला थी। वह महिला थी तो उसकी सुई सो गयी। अन्धेरे में खोई। अन्धेरे में हाथ नहीं आती, इसलिए बाहर उजाले में ढूँढ़ने लगी। किसी ने पूरा क्या करती हो माँ ? यह सुई खो गयी है। कहाँ खोई है ? अन्धेरे में। परन्तु वहाँ हाथ नहीं आती कुछ। परन्तु खोई वहाँ खोज या यहाँ उजाले में है ? ऐई ! मोहनभाई ! एक वृद्धा थी। सुई खो गयी रात्रि में। अन्धेरे में नजर पड़े नहीं। खोई वहाँ थी। बाहर निकली, उजाला हो वहाँ ढूँढ़ने लगी। किसी ने पूछा कि यह क्या करती हो माँ ? सुई खो गयी है। कहाँ खोई है ? अन्धेरे में। परन्तु अन्धेरे में हाथ नहीं आती। उजाले में खोजती हूँ। परन्तु यहाँ कहाँ मिले ऐसी है। होवे वहाँ खोजे तो मिले। न हो वहाँ खोजे तो मिलेगी ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा को शरीर और पुण्य-पाप के विकल्प में खोजे तो वहाँ अन्धेरे में आत्मा नहीं है। वह अन्धेरे में खो गया है वहाँ। समझ में आया ? इन शुभ-अशुभ राग के प्रेम में भगवान खो गया है। तो वहाँ वापस खोजेगा, वहाँ ऐसे नहीं मिलेगा। शुभ-अशुभ विकल्प के पार भगवान चिदानन्दमूर्ति है, वहाँ खोजे तो मिले ऐसा है। परन्तु क्या खोजना और क्या करना, यह सूझ नहीं पड़ती। इसमें करना क्या ? कोई टोकरी बजाकर पूजा करें तो समझ में आता है। पैसा खर्च करना हो तो समझ में आता है। भाई ! यह लाओ पच्चीस-पचास हजार, लाख-दो लाख खर्च करे। ऐसा तो कुछ भड का पुत्र। पूँजी हो पचास लाख तो कहीं दस लाख खर्च कर डाले, ऐसा तो होगा नहीं। समझ में आया ? इसका अधिकार आता है शास्त्र में। दान का अधिकार आता है। समझ में आया ?

दान का एक अधिकार आता है। वस्तु के स्वरूप के भान की व्याख्या आवे, तब तो आत्मा का ध्यान और आत्मा की श्रद्धा की बात करे, परन्तु जब राग घटाने की व्याख्या आवे तो भक्ति की भी व्याख्या आवे और दान की भी व्याख्या आवे। परन्तु उसका फल कितना ? पुण्य जितना। एक बार ऐसा अधिकार भी... इसमें अधिकार है। भाई ! यह कौवे हैं या नहीं ? पहले ऐसा रखते थे मकान के पास पत्थर की वह रखते थे। कूड़ा (डाले)। खा लेवे फिर कचरा रहे न कचरा, उसे वहाँ बाहर डालते थे। क्या कहलाती है पत्थर की ?

कुण्डी... कुण्डी। हमारे यहाँ पालेज में सब बहुत देखा है न। कुण्डी में डाले। कौवे का ऐसा रिवाज है। कुत्ते का ऐसा रिवाज है कि एक खाय तो दूसरा आवे तो झगड़े। परन्तु कौवे का ऐसा रिवाज है कि यह जो मिला हो तो वह कूड़ा (खुरचन) अकेला नहीं खाता। कांऊ... कांऊ... कांऊ... करके खाता है। ऐई! चिमनभाई! सुन न यह। इसमें दृष्टान्त है, हों! दान अधिकार में है आगे। दान अधिकार का दृष्टान्त है।

कहते हैं कि हे आत्मा! तेरे स्वभाव की दृष्टि और अनुभव दृष्टि, धर्म, वह तो अलौकिक बात है, परन्तु तुझे पूर्व के पुण्य के कारण यह पैसे मिले। दो-पाँच करोड़, दस करोड़, बीस करोड़। यह कूका कहते हैं न? कूका कहलाता है न? यह लड़कियाँ कूका नहीं खेलती? यह ऐसे आड़े खेलती हैं। सब एक के एक प्रकार के हैं। समझ में आया? यह लड़कियाँ नहीं खेलती? कूका कहलाता है न? क्या कहते हैं उसे? हमने देखा है। अपने कहाँ करते हैं। लोग करते हों, वह देखते हैं। ऐसे रुपये कमावे। ऐसे फेंके। नोट ऐसे जाए और अमुक ऐसे जाये, सब पैसे के खेल हैं। समझ में आया?

पश्चात् आचार्यदेव कहते हैं, अरे! आत्मा! ऐसे कौवे को पूर्व के... उसके खानेवाले अनाज तो खा गये और फिर खुरचन (रहती है), उकडिया समझते हो सेठ? नहीं समझते? खुरचन। हिन्दी भाषा में उसे खुरचन कहते हैं। चिपक गयी हो न, उसे उखाड़ डालते हैं। फिर कौवा आकर खाता है। आचार्य कहते हैं, भाई! तुझे ऐसा कोई शुभभाव हुआ, उसमें जला हुआ भाव। आत्मशान्ति से तो पुण्य भी नहीं होता। आत्मा की शान्ति, धर्म की श्रद्धा, ज्ञान रमणता से तो पुण्य नहीं होता। आत्मा के धर्म से पुण्य हो तो फिर धर्म होगा कब? बन्धरहित कब होगा? परन्तु पूर्व में कोई ऐसा शुभभाव दया, दान, भक्ति आदि के किये हों, उसके कारण पुण्य बँधा हो, वह खुरचन का है, खुरचन। माल माल तो राग से भिन्न आत्मा। इस पुण्य के परिणाम से आत्मा भिन्न है, उसे अनुभव करना, यह माल है। परन्तु इस माल में नहीं रह सके, उसे जब शुभभाव हुआ हो, तो उसे पुण्य बँधता है। उस पुण्य बन्धन के फलरूप से यह पाँच-पच्चीस लाख या पाँच-पचास करोड़ धूल करोड़ मिले। उसे अंक गिनना है न, यहाँ कहाँ उसे आना है और लेना है।

कहते हैं, अरे आत्मा! ऐसा तुझे पूर्व के पुण्य के खुरचन के फल यह मिले और यदि अकेला खायेगा और दान, दया में राग की मन्दता में नहीं खर्च करेगा, तो तू कौवे से

भी गया-बीता है। क्या कहा ? ऐ... हरिभाई ! क्या कहा ? साधु को कहीं दुनिया की दरकार है ? उसे अच्छा लगेगा या नहीं लगेगा ? उसके घर में रहा वह। उससे प्रशंसा लेनी है ? चन्दा कराना है हमारे लिये। भिखारी है। चन्दा किसका करे ? वह कहीं साधु को... जाते नहीं कि इस धर्मी को चन्दा करे तो प्रसन्न हो। आचार्य तो स्पष्ट कहते हैं, जिसे पूर्व के पुण्य की जली हुई खुरचन मिली... खुरचन है वह हों। आत्मा शान्त आनन्द है न। उसकी जितनी अन्तर की शुद्धता के वेदन में आनन्द आया, उसका फल तो बन्धन होता ही नहीं। वह तो अबन्धस्वरूपी है, परन्तु जितना अभी रागभाग पुण्य का, दया, दान, व्रत, भक्ति, यह भाव आया, उसमें पुण्य बँध जाता है और उस पुण्य के फलरूप से यह धूल आदि मिलती है। यह रागादि कहलाये, जो कहलाये वह।

आचार्य कहते हैं कि अरे ! भाई ! कौवा खुरचन अकेला नहीं खाता। पाँच-पच्चीस को बुलाकर खाता है। इसी प्रकार तुझे मिले हुए पाँच-पचास करोड़ या धूल करोड़, जो अंक गिना जाता हो वह। समझ में आया ? अकेला राग को खायेगा और उसमें भाग नहीं करेगा, दया, दान, धर्म, प्रभावना ऐसे में यदि भाग नहीं करेगा तो तू कौवे से भी गया-बीता है। सेठ ! बराबर होगा ? बहुत बात की है। और जैसे-जैसे उत्तम पात्र में, उत्तम स्थान में जैसे-जैसे उस पैसे की लक्ष्मी खर्च करता है, वैसे-वैसे उसे पद ऊँचा होता है। अर्थात् ? यह मकान चिनते हैं न मकान ? जैसे-जैसे मकान ऊँचा चिनता जाता है, वह कारीगर, ऊँचे चढ़ता था, वह कारीगर भी ऊँचे होता जाता है। जाता है या नहीं ऐसे ? ... नीचे बैठकर ऊँचे चढ़ेगा ? मकान को करनेवाला कारीगर, कारीगर ऊँचा जाता है। ऐसा कहते हैं।

आचार्य महाराज कहते हैं कि धर्म के पात्र जीवों को हम उत्तम स्थान में जहाँ-जहाँ उनकी लक्ष्मी को प्रयोग करने का भाव हो, वैसे-वैसे उसका भाव ऊँचा होता जाता है। यहाँ मकान जैसे ऊँचा हो, वैसे कारीगर ऊँचा होता है, उसी प्रकार अच्छे पात्र और अच्छे स्थान में... समझ में आया ? आहाहा ! भोगीभाई ! क्या होगा यह ? यह पैसा झंझोरना होगा ? आचार्य हैं, यह तो दिगम्बर मुनि हैं। यह तो जंगल में बसते थे। उन्होंने लिखा है। जंगल में रहनेवाले वनवासी सन्त आत्मा के आनन्द में झूलते थे। एक विकल्प आया करुणाबुद्धि से। उसमें लिखा है पहले (कि) तृष्णा के गहरे कुएँ की भेखड़ में फँसे हुए प्राणी को। मैं एक दान की बात करूँगा ? कुँआ होता है न कुँआ ? उसमें भेखड़ होती है न, नीचे नहीं

(होती) ? उसमें पैर फँस जाए तो भारी मुश्किल पड़े। भेखड़ होती है न नीचे।

उसी प्रकार तृष्णारूपी, ममतारूपी ... राग मन्द करने की तृष्णा, कम करने का भाव ऐसे पुण्य के, उसकी हम व्याख्या करते हैं। परन्तु वह व्याख्या किसे लागू पड़े ? हमारा .... जो दान के व्याख्यान हैं, वे पत्थर के कमल होंगे, उन्हें लागू नहीं पड़ेंगे। कमल नहीं खिलेगा। भँवरा गुंजारण करता है न ? गुंजारण। और गुंजारण करके कली के ऊपर जाता है तो कली खिलेगी। परन्तु गुंजारण करता संगमरमर पर जायेगा ? संगमरमर के यह नहीं बनाते ? है न आगरा में बड़ा चार-पाँच करोड़ का नहीं वह क्या ? दयालबाग। आगरा में है न एक दयालबाग। निकले थे तो देखा था, एक बार गये थे। साढ़े तीन करोड़ तो इसके... फिर तो बहुत खर्च हो गये। संगमरमर के... और संगमरमर के तरबूज और संगमरमर की क्या कहलाती है वह साकरटेटी। साकरटेटी वह संगमरमर के बने हुए। परन्तु भँवरा गुंजारण करके उसके पास जाये तो संगमरमर की कली खिलती होगी ? वह तो वनस्पति की कली हो और भँवरा गुँजरण करता जाये तो खिले।

इसी प्रकार आचार्य कहते हैं, हमारे तत्त्वदृष्टि की बात और दान की बात... दान पुण्य की बात है, तत्त्वदृष्टि धर्म की बात है। यह जिसके कलेजे वनस्पति जैसे होंगे, उनके खिलेंगे। गुँजारण अर्थात् उपदेश की गुँजारण। वह भँवरा गुँजारण करता हुआ वनस्पति के ऊपर जाए तो वनस्पति खिल जाती है। पराग ले लेवे। और पराग... परन्तु पत्थर की कली पर बैठेगा तो उल्टे लगेगी उसे, इसे। इसी प्रकार जिसका कलेज अपात्र है, जिसे समझने की दरकार नहीं और जिसे तृष्णा घटाने की भी दरकार नहीं, उसे हमारा उपदेश लागू नहीं पड़ेगा। वे पत्थर की कली जैसे हैं। कंजूस होते हैं न ? कंजूस। चमड़ी टूटे तो दमड़ी न टूटे। चमड़ी भले जाये परन्तु पैसा नहीं, बापू ! यह नहीं। यह नहीं।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं अरे ! भाई ! जब-जब कोई धर्म के प्रसंग और धर्म के उद्योत के-प्रभावना के प्रसंग हों, तब धर्मात्मा उस दान के लिये सराग की मन्दता करके दान के भावों में उल्लास करता है। कौवे की भाँति। समझ में आया ? यह तो व्यवहार दान की बात है। निश्चयदान ? आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें छह कारक हैं। सूक्ष्म बात है थोड़ी। षट्कारक नहीं आते ? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। विद्यालय में आता था। वह यहाँ आत्मा में उतारने की बात है। पढ़ते थे, तब नहीं आता था ? षट्कारक आते हैं। षट्कारक आते हैं।

मुमुक्षु : विभक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : विभक्ति तो सात बोल है। उसमें छह कारक हैं और एक सम्बोधन है। सातवाँ सम्बोधन। इसी प्रकार आत्मा के अन्दर एक सम्प्रदान नाम का गुण भरा है। कर्ता नाम का गुण है, कर्म नाम का गुण है, आनन्द नाम का गुण है, ज्ञान नाम का गुण है, ऐसे सम्प्रदान नाम का एक गुण आत्मा में है। यह अन्तर की दृष्टि देने से भगवान पूर्णानन्द से भरपूर है, उसकी अन्तर्दृष्टि देने से उसमें से निर्मल दशा हो, उसे स्वयं अपने को दान देता है। गजब बात, भाई! समझ में आया? सम्प्रदान है। कारक में सम्प्रदान है। कर्ता उसे कहते हैं, स्वतन्त्ररूप से करे, उसे कर्ता कहते हैं। कर्म उसे कहते हैं, कर्ता का इष्ट प्रिय, उसे कर्म (कहते हैं)। यह सब सिद्धान्त है। व्याकरण में है और तत्त्व में भी है। समझ में आया? आत्मा भगवान कर्ता स्वतन्त्र होकर अपनी निर्मल विकाररहित दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म प्रगट करे, वह कर्ता और निर्मल दशा हुई, वह कर्ता का इष्ट। धर्मी का इष्ट निर्मल दशा प्रगट करना है। अज्ञानी का इष्ट पुण्य और पाप वह अज्ञानी का इष्ट है। गजब बात। समझ में आया?

जरा-जरा एक-एक का अन्तर बहुत है, भाई! इसने अनन्त काल से स्व चीज़ और पर की भिन्नता का माहात्म्य क्या है और उसकी कीमत क्या है, यह उसने कभी जानी नहीं। बाकी पढ़ सब गया। पाठ भी पढ़ गया वेदिया की तरह। वेद ... आता है न? वेदिया नहीं कहलाता? परन्तु उसे प्रयोग में रखकर काम करना, वह काम नहीं किया।

भगवान आत्मा, यह शुभभाव के दान, क्रिया आदि न हो और शुभभाव हो, वह पुण्य है। वह पुण्य है। उसमें पुण्य बँधता है। अन्तर में ज्ञान की कला और मोर का अण्डा, उसमें मोर सोलह कला से खिले, वह मोर उसमें से होता है। उसमें से होता है या नहीं? या चिड़िया के बच्चे में से मोर होता होगा? अण्डा में वह ताकत है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सत्त्व और तत्त्व है। उसमें पूर्ण ज्ञान और आनन्द खिलने की उसकी शक्ति अन्दर है। समझ में आया? यह भी सब आत्मा कौन जाने कहाँ होगा, खबर नहीं। एक बीड़ी में बिकता है, एक तम्बाकू पाई की... अब तो महँगी मिलती है, परन्तु पहले पाई की बहुत मिलती थी न? ... इसलिए ... आहाहा! तम्बाकू की पाई में इतने भाग की तम्बाकू में तुझे तृप्ति लगे तो उस तम्बाकू के... तुझे डुबो

दे तो क्या होता होगा तुझे ? समझ में आया ? लगता है न ? यह देखो न, कितने ही तो ऐसे होते हैं, बैठा हो पाखाने सिगरेट पीवे, तब दस्त उतरे। यह कैसे रखता हो, यह खबर नहीं अपने को। ऐसे रखे या ऐसे रखे। अन्दर बैठा हो, तब उसे दस्त उतरे। इतने तो जिसके बन्धन। इतना तो विकार में बँध गया है। आहाहा! समझ में आया ? डाह्याभाई! यहाँ तो बात-बात में अन्तर है।

उसे यहाँ कहते हैं, अरे! भगवान! यह तू क्या करता है ? तेरी चीज़ अलग है। उसका तुझे भान नहीं। ऐसी बात में तू अटक गया। इसके बिना तुझे चले नहीं, इसके बिना चले नहीं। ऐसी तुझे दृष्टि की खबर नहीं होती। कहते हैं, पाखाने में भी जहाँ एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं,... एक व्यक्ति कहता था, व्याख्यान सुनने आते हैं न, महाराज! यदि चाय पीकर आवें तो हमारा मन ठिकाने रहे। ... चाय पिये बिना सिर घूमता है। मूर्खाई के यह कहीं गाडा-गाँव अलग होंगे ? चाय के प्याले से तेरा मस्तिष्क स्थिर रहता होगा ? जड़, वह तो मिट्टी धूल है। धूल है या नहीं ? उसे ... वह जड़ है। आत्मा तो अरूपी है। रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ है। वह (स्पर्शादि) तेरी चीज़ है ? नहीं, नहीं वह तो जड़ है। उसका लक्ष्य करके ठीक है, ऐसी राग की वृत्ति खड़ी करता है। उस राग को वेदता है, राग को अनुभव करता है, पर को नहीं। समझ में आया ? भारी बात।

कुत्ता हड्डी चबाता है तो रक्त वहाँ से आता है ? कहाँ से आता है ? उसकी दाढ़ में नोंक लगती है। रक्त वहाँ से आता है। ... उसी प्रकार अज्ञानी बाहर की चीज़ के निमित्त में राग करता है, स्वरूप को भूलता है। राग करता है और राग को वेदता है। तब वह तो अरूपी है। वह कहाँ रंग-गन्ध को आत्मा वेदे। पर को वेदे, ऐसा अज्ञानी भ्रमणा से मान रहा है। समझ में आया ? लो! दो-चार बीड़ी हो तो ठीक पड़े, चाय का प्याला हो तो ठीक पड़े। अरे! भगवान! यह तुझे क्या हुआ ? आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, तेरी कीमत वाणी से होती नहीं, वाणी से पूरा तेरा पड़ता नहीं, ऐसा तू वचनातीत है, विकल्पातीत है। उसकी तुझे कीमत नहीं होती और इस बाहर की चीज़ में तुझे कीमत! क्या हुआ ? भाई! समझ में आया ?

इसलिए यहाँ कहते हैं, कल्पवृक्ष समान मैं आत्मा हूँ। आप कल्पवृक्ष समान... ऐसा पाड़ा था उस समय। मनुष्यों को जब आहार-पानी नहीं मिलता था, तब कल्पवृक्ष ने

पूरा पाड़ा था। स्वयं सब... इसी प्रकार आत्मा सब चीज़ की सामग्री की इच्छा तोड़कर भगवान अकेला आत्मा कल्पवृक्ष समान है। आहाहा! परन्तु उसका आदर और दृष्टि करने से उसमें से शान्ति बहे और झरे, ऐसा है। जिसमें दृष्टि रखे, ऐसा आत्मा दिखेगा। आहाहा! यह तो धर्म की पहली सीढ़ी की बात चलती है, हों! कोई ऐसा कहे कि बड़ी एल.एल.बी. की बातें हैं। ऐसा नहीं, भाई! धर्म की पहली श्रेणी और पहली सीढ़ी और सोपान है, यह तुझे ख्याल नहीं। टुकड़ा बीज हो तो उगा हुआ टुकड़ा उसकी जाति का होगा या नहीं? ... का बीज तो उसकी जाति का होगा या नहीं? या छिछली कड़ाही का टुकड़ा होगा? इसी प्रकार पूर्ण आत्मा की वीतराग सर्वज्ञदशा हो, इसलिए पूर्ण दशा (होगी), परन्तु उसके पहले आत्मा का ज्ञान बोधबीज हो वह आत्मा की जाति की कला अन्दर खिलकर निर्मल होती है, उसे बोधबीज और सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, हे नाथ! आजीविका उसने पूरी की। नीचे एक दृष्टान्त दिया। फिर एक दूसरा दृष्टान्त देते हैं।

पहुणा तए सणाहा धरा सि तीए कहण्णहा बूढो।
णवघणसमयसमुल्लसियसासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

क्या कहते हैं? जब ऋषभदेव तीर्थंकर जमीन पर आये अर्थात् जन्मे, उस समय श्रावण महीना था, इसलिए रोमांच वनस्पति के खिल गये थे। जैसे पहली बरसात में अंकुर खिलते हैं न? पहली बरसात में अंकुर खिलते हैं न? वे अंकुर देखकर आचार्य जरा स्तुति में अलंकार करते हैं। प्रभु! आप जब यहाँ अवतरित हुए, तब इस वनस्पति के अंकुर खिल गये। इस पृथ्वी का कोई नाथ नहीं था। स्त्री का नाथ न हो,... कुँवारी हो, पश्चात् विवाह करे, तब सनाथ होती है। ... समझ में आया? **जो स्त्री, विवाह की अनन्त अभिलाषिणी है, यदि उसका विवाह हो जाये अर्थात् वह सनाथ हो जाये...** शरीर के परमाणु के रजकण अलग प्रकार के दिखते हैं। उसी प्रकार हे नाथ! यह पृथ्वी अनाथ थी। भक्ति करनी है न। आप जब अवतरित हुए, तब सनाथ हुई। इसलिए इस वनस्पति के अंकुर दिखते हैं। समझ में आया? यहाँ तो और भक्ति के अलंकार भी अलग प्रकार के हैं। आहाहा! ऐसे देखे वनस्पति है न यह। हाँ। तो क्या है यह? ऐसा लगता है कि इसे कोई नाथ नहीं था और आप जब परमात्मा होने की दशा का जन्म हुआ और उसके कारण यह

पृथ्वी सनाथ हुई। उस सनाथ के उत्साह में अंकुर फूटे हैं। समझ में आया? अलंकार है, हों!

अन्तर में देखें तो आत्मा जब अनाथ था... समझ में आया? राग और पुण्य को मानकर अपने स्वरूप को अन्दर भूल गया था, वह जहाँ अन्तर का भान होता है, तब पूरे आत्मा में निर्मलता के, शान्ति के, आनन्द के अंकुर फूटते हैं। यह क्या होगा परन्तु? समझ में आया? तब आत्मा सनाथ होता है।

श्रेणिक राजा का एक दृष्टान्त है न। एक राजा था न श्रेणिक। एक मुनि थे। रूपवान शरीर, महासुन्दर शरीर। जंगल में बैठे हुए। राजा निकला बड़ा, हाथी के हौदे। अरे! यह मुनि यहाँ कहाँ? अरे! मुनि! यहाँ कैसे? राजा! मैं अनाथ था। ऐसा पहले कहा। चलो मेरे साथ। ऐसा सुन्दर शरीर और इस जंगल में? चलो, मैं नाथ होऊँ। अरे... राजा! तू अनाथ है... महाराजा। महाराज! तू अनाथ है। महाराज! मुझे पहिचाना नहीं, मेरे घर में हजारों रानियाँ हैं। अरे... राजा! अनाथ है कहता हूँ न तुझे? तेरे दिखाव से खबर नहीं पड़ती हमें कि तेरा सुन्दर शरीर है, यह सब है तो राजा तो है, परन्तु कहता हूँ कि अनाथ है। हें! यह और कहाँ से? भाई! तुझे तेरे स्वरूप के भान के सनाथपने की खबर नहीं है।

नाथ उसे कहते हैं, प्राप्त वस्तु को रखे और नहीं प्राप्त को प्राप्त करा दे। योग क्षेम का करनेवाला आता है न? भाषा तो बहुत नहीं अर्थ अपने। योग क्षेम का करनेवाला, उसे नाथ कहा जाता है। नाथ की व्याख्या यह है। इसी प्रकार आत्मा के आनन्द की प्राप्ति है, उसे रखे और विशेष आनन्द की प्राप्ति करावे, ऐसा आत्मा स्वयं का नाथ है। वह नाथ दूसरी चीज़ का भी नहीं और दूसरी चीज़ इसका नाथ नहीं।

ऐसा आत्मा जब खिलता है, तब कहते हैं हे नाथ! परन्तु यह वनस्पति खिली है, एक आपके सनाथपने के कारण। और हमारा आत्मा ज्ञान और शान्ति से जब भरपूर हमें समकित में भान हो, तब हमारे असंख्य प्रदेश में अंकुर फूट जाते हैं। अन्दर से खिल जाता है। उसके कारण हमें आनन्द आता है। हम सनाथ हैं। अब हम अनाथ नहीं रहे। विशेष भक्ति करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट : प्रवचन नं. १९८ तथा ७९९ एक ही है। इसलिए ७९९ नहीं लिया गया है।

माघ कृष्ण-१३, रविवार, दिनांक - १६-०२-१९६९
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १४ - १५, प्रवचन-८००

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र है। इसमें ऋषभदेव भगवान का स्तवन चलता है। स्तोत्र। अर्थात् क्या ? ध्यान रखो यहाँ। अन्त में आवे और बैठ जाये। अनन्त जीव संसार में भटकते अनादि से है। उसमें कोई प्राणी को आत्मा के भानसहित ऐसे कोई परिणाम होते हैं कि जिससे उसे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध पड़ जाता है। उस में के एक ऋषभदेव भगवान का स्तवन है। यह आत्मा संसार में अनन्त काल से भटकता था। पहले उसे आत्मभान होता है अर्थात् कि सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात् क्या ? कि आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का धाम सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्दस्वरूप है। ऐसी अखण्ड दृष्टि अन्तर में देने से, पुण्य-पाप भी नहीं, शरीर भी नहीं, एक समय की वर्तमान होती अवस्था, वह भी नहीं। मैं एक पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द घन हूँ। ऐसी अन्तर में दृष्टि निर्विकल्प अनुभव हुआ, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन का धर्म कहा जाता है। समझ में आया ?

वह इन भगवान ऋषभदेव के जीव को पूर्व भव में हुआ था। आत्मा आनन्द की खान है। बेहद अपरिमित, जिसके शान्ति और आनन्द जिसका मूल स्वभाव असली अखण्ड भाव में वह पड़ा है। अखण्ड आनन्द और शान्ति। उसकी अन्तर्मुख होकर, जैसे समुद्र में प्रवेश करके नीचे से जैसे मोती का पता मिलता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था को-दशा को अन्तर में उन्मुख करने से जो वर्तमान दशा ज्ञान का प्रगट अंश है, वह अनादि से पुण्य-पाप, शरीर आदि परलक्षी काम करता है, वह अज्ञानभाव है। समझ में आया ? इस ज्ञान का वर्तमान प्रगट अंश, शास्त्रभाषा में उसे क्षयोपशम कहते हैं, अपने शास्त्रभाषा से सादी भाषा लेते हैं न, इस ज्ञान का वर्तमान प्रगट अंश जो है, उसे अन्तर में ज्ञेयस्वरूप भगवान पूर्णानन्द है, ऐसा ध्येय में, ध्यान में चैतन्य की अखण्डता ध्येय बनाकर, ध्यान करके जिसका फल प्रथम सम्यग्दर्शन और आत्मा के आनन्द के स्वाद का अनुभव होता है, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! इस धर्म के बिना आगे के धर्म की सिद्धि उसे नहीं हो सकती।

जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, पूर्णानन्द प्रभु अन्तर शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न और पुण्य-

पाप की वृत्तियाँ उठती हैं—दया, दान, भक्ति, काम, क्रोध की वृत्तियाँ, उन कृत्रिम क्षणिक वृत्तियों से पार अन्दर में चिदानन्द पूर्ण आनन्द का धाम है, उसमें दृष्टि को पसारने से, श्रद्धा की पर्याय को उस वस्तु में पसारने से-व्यापने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान में प्रथम आत्मज्ञान की बोधबीज कला पहली प्रगट होती है। तब से उस साधक जीव को आत्मा के पूर्ण शुद्ध स्वरूप का साधक कहा जाता है। समझ में आया? उस साधक को, अभी पूर्ण परमात्मदशा, सर्वज्ञदशा न हुई हो, तब उसे शुभराग भक्ति का, दान का, दया ऐसी वृत्ति का शुभराग आता है। उस राग से उसे पुण्य बँध जाता है।

उस पुण्य के फल में ऋषभदेव भगवान को भी उसके फल में सर्वार्थसिद्धि के देव में जाना पड़ा। पूर्व में आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्म रमणता—स्वरूप रमणता का भाव होने पर भी, स्वरूप की रमणता पूरी न हो, उस काल में उसे राग का भाग पुण्य का रह जाता है। उससे पुण्य बँधता है। उससे स्वर्ग में गये और वहाँ से आकर यहाँ नाभिराजा को... मरुदेवी माता के गर्भ में अवतरित हुए। यह इसका इतिहास है। यह इसकी मर्यादा की रीति है। उसे लक्ष्य कर आचार्य स्तुति (द्वारा) जगत को समझाते हैं।

साधक जीव... दूज उगती है, तब दूज का अमुक भाग तो प्रकाशमान दिखायी देता है। समझ में आया? और वह दूज पूर्ण चन्द्र कैसा होता है, उसे भी बतलाती है और वह दूज बीच में भाग में कितना बाकी है, उसे भी बताती है। समझ में आया? ... समझते हो? काला भाग बाकी रहता है न? ... अपनी भाषा गुजराती है न। हिन्दीवालों को... क्या कहते हैं? यह चन्द्र उगता है न ऐसे चन्द्र? तब ऐसे आकार दिखता है कि यह पूरा है। तथापि अन्दर कालिमा का भाग दूज पर उसका भाग होता है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर तो उसका स्वरूप पूर्णानन्द, ज्ञानानन्द, अखण्डानन्द उसका स्वरूप है। उसकी अनुभवदशा सम्यग्दर्शन होने से, जैसे वह दूज होती है, वैसे बोधि बीज अन्दर प्रगट होता है। वह दूज, पूर्ण स्वरूप कैसा है, उसे भी जानती है, वर्तमान मेरा कम अंश प्रगट हुआ है, उसे जानती है और अभी बीच में राग का बाकी भाग है अन्धेरा, उसे भी जानती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे जीव की साधकदशा को लक्ष्य में लेकर भक्त स्तुति करते हैं। गुणों की, हों! जो आत्मा का आनन्द खिलता है और राग बाकी है परन्तु कहीं राग की महिमा नहीं करते। आहाहा!

अन्तर शान्ति और आनन्द की वेदन दशा अन्दर में सम्यग्दृष्टि को प्रगट होती है। समझ में आया ? उसे शास्त्रभाषा में चौथा गुणस्थान कहते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि। भाषा नहीं समझ में आये, इसलिए अपने शास्त्रभाषा प्रयोग नहीं करते। समझ में आया ? ऐसी दशा प्रगट हुई और विशेषता आगे स्वरूप की रमणता, चारित्र / चरना, आनन्दमूर्ति की प्रतीति और भान में फिर रमना, चरना, रमना, जमना, आनन्द में प्रचुर स्वसंवेदन की दशा उत्कृष्ट प्रगट होना, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। व्याख्या दूसरे प्रकार की है परन्तु है इसके घर की सच्ची, हों! इसने न सुनी हो तो भी... कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह भी क्या कहते हैं, हमें समझ में नहीं आता। अरे... ! भगवान ! ऐसी सीधी बात होती है और नहीं समझ में आवे तो क्या हो ? अभ्यास नहीं होता। चैतन्य क्या है ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिकाल ज्ञानी त्रिलोकनाथ जिन्हें एक समय, एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञान के विकास में, सर्वज्ञपद में ज्ञात हुए, जानकर वाणी इच्छा बिना निकली। उस वाणी को आगमज्ञान—आगम कहा जाता है। उस आगम की रचना वाणी में से सन्तों ने की है। समझ में आया ?

यहाँ ऋषभदेव का स्तवन (चलता है)। (पद्मनन्दि आचार्य) सन्त थे, जंगल में बसते थे, आत्मध्यान में मस्त थे। उन्हें जरा भक्ति का शुभराग, पूर्ण दशा न हो उसे ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। ऐसे भक्ति के काल को लक्ष्य में लेकर ज्ञानी को अन्दर आनन्द और शान्ति जो वर्तती है, उसे ज्ञान में तरवर करके उसकी भक्ति करते हैं। समझ में आया ?

अब यहाँ तक अपने आया है कि ऋषभदेव भगवान का जीव वह जन्मता है, मेरुपर्वत पर ले गये। यहाँ होगा न ? परसों होनेवाला है न ? कब ? परसों ले जायेंगे यहाँ से मेरुपर्वत के ऊपर। यह सब इतिहास वस्तुस्थिति है। उसका दृश्य दिखायेंगे। यहाँ मेरुपर्वत बनाया है न कहीं ? वहाँ ले जायेंगे। यहाँ तो मेरुपर्वत कहाँ से लाना ? मेरु कहाँ से लाना ? इसलिए यह रूपक करके... समझ में आया ? इसका नाटक बनाते हैं। बतायेंगे, यहाँ .... बतायेंगे।

यह भगवान जब ऋषभदेवरूप से माता के गर्भ में आये, इन्द्रों ने प्रथम तो आकर नमस्कार किया। समझ में आया ? जन्म महोत्सव करने आये। परसों जन्म महोत्सव होगा। इसलिए पहले से तुम्हें... चाँदी का एक व्यापारी है बड़ा अजमेर का। कितने ही हार पहनेगा, वस्त्र पहनेगा इससे ऊँचे। उसके घर के, हों। और अन्दर हार और पैर में बाँधेगा घुंघरूँ और भगवान के समक्ष नृत्य करेगा। समझ में आया ? इस प्रकार जब भगवान का अवतार हुआ, जब माता के गर्भ में। इन्द्र आकर नाचते थे।

पहले तो यह कहा, हे माता! रत्नकूखधारिणी! ऐसे रत्न को तूने गर्भ में रखा। उसका जन्म फिर यहाँ मुनिपना चारित्र अंगीकार करेंगे आनन्दस्वरूप में। तत्पश्चात् उन्हें केवल्य, सर्वज्ञदशा, पूर्णदशा, सिद्धपद दशा इस भव में होगी। इस कारण से माता को इन्द्र नमस्कार करते हैं। नमो रयणकूखधारिणी। रत्न को गर्भ में रखनेवाली माता! तुझे पहला नमस्कार। पश्चात् भगवान को नमस्कार करते हैं। फिर हाथ में लेकर मेरुपर्वत पर ले जाते हैं।

पश्चात् कहते हैं, भगवान बड़े हुए, तब सिंहासन पर बैठे थे। अभी दीक्षित नहीं हुए थे। चारित्रस्वरूप, जो रमणता अन्तर के आनन्द की खिलावट की उग्रता ... ... यह नहीं था। आत्मज्ञान था, तदुपरान्त मति, श्रुत और अवधि ऐसी ज्ञान की तीन प्रकार अवस्था जो है, वह थी। समझ में आया? एक बार सिंहासन पर बैठे थे। उस समय का दृश्य लक्ष्य में लेकर भक्ति करते हैं। मानो कि अभी हो, ऐसी भक्ति करते हैं।

१५वाँ श्लोक है। पण्डितजी! १५वाँ है। पुस्तकें बहुत नहीं हैं। कहा था सही ... भाई को परन्तु नहीं मँगायी हो। कहाँ गये ...भाई! नहीं? यहाँ से नहीं। कहा था न सोनगढ़ से। ऐई! कहाँ गये चन्दुभाई? ... या आये नहीं? ठीक। खोज करना न... १५-२० पुस्तकें होगी। कहो, समझ में आया इसमें? धर्मी जीव को आत्मा के धर्म अर्थात् आनन्द के स्वभाव के अनुभव का वेदन होता है, तथापि वह विशेष आनन्द के धरनेवाले ऐसे अपने से साधकजीव बढ़े हुए होते हैं, उनके वे गुणग्राम करते हैं। समझ में आया? ... गुणग्राम करते हैं। भगवान सिंहासन में बैठे थे, तब कहते हैं, देखो!

विज्जुव्व घणे रंगे दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइया तइयावि तए रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

तीन ज्ञान थे। मुनि अर्थात् ज्ञान की दशायें तीन थीं। वस्तु है भगवान आत्मा, उसका ज्ञ—स्वभाव, ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है। उसमें से प्रगट हुई पाँच दशा, ज्ञान की दशायें होती हैं। उसमें मति, श्रुत और अवधि ऐसे तीन ज्ञान की कला खिली थी। चौथी कला मनःपर्याय मुनि होंगे तब होगी। और फिर केवल (ज्ञान) होगा, तब चौथी कला... खिलेगी। समझ में आया? ऐसा तो सुना नहीं होगा? तीन ज्ञान लेकर भगवान आते हैं। ऐसा तो सुना होगा यह। पूर्ण परमात्मदशा तो अभी बाद में होगी। वे आते हैं तीन ज्ञान लेकर। वे जब बैठे थे, उसमें देवियाँ आकर नाचती हैं। मृत्यु काल देवी का।

उसे कहते हैं, **हे प्रभु! जिस प्रकार मेघ में बिजली प्रकट होते ही नष्ट हो जाती है...** मूल संस्कृत है परन्तु इसकी हिन्दी अर्थ है। प्राय: गुजराती हुआ नहीं है। **उसी प्रकार आपने नृत्य करती हुई नीलांजना नाम की देवांगना को पहले देखा, पश्चात् नष्ट होते हुए भी देखा तथा उसी समय आपने राज्य-लक्ष्मी को उसके समान ही चंचल समझ लिया।** क्या कहते हैं ? वैराग्यमूर्ति होते हैं धर्मात्मा समकिती, तथापि अभी राग बाकी होता है। उस राग को स्वभाव के आश्रय से अनुभव से राग टाला जा सकता है, ऐसी दशा अभी ज्ञानी को भी बाकी होती है। तब सिंहासन पर बैठे थे। इन्द्र देव आकर... यहाँ तो साधारण राजा आवे ... पड़े, इन्द्र आते होंगे, उस पुण्य के फलरूप से महिमा कितनी, यह बैठना कठिन है। समझ में आया ? धर्मात्मा की पवित्रता की तो क्या बात करना ? परन्तु उन्हें बाकी रहा हुआ राग पुण्य, उसके फलरूप से इन्द्र जिसके मित्र होते हैं। समझ में आया ?

एक बार भगवान सिंहासन पर बैठे थे। तीन ज्ञान के धनी थे। साधु हुए नहीं थे। तब इन्द्र ऐसे देवी का ... ऊपर है। '**विज्जुव्व धणे रंगे,**' क्या कहा समझ में आया ? **मेघ में बिजली प्रकट होते ही...** एक नीलांजना नाम की देवी नृत्य में थी। देव इन्द्र ने कारण से उसमें उतारी थी। जिसका आयुष्य वहाँ नृत्य करते हुए पूरा हुआ। समझ में आया ? देव को भी आयुष्य होता है न। देव की आयुष्य की अवधि होती है। भले उसे अमर कहो। परन्तु अमर तो एक मनुष्य और पशु की आयुष्य की अपेक्षा उसका आयुष्य दीर्घ है, इसलिए अमर कहा जाता है। परन्तु अमर अर्थात् देह की स्थिति पूरी न हो और अमर कहलाता है, ऐसा नहीं है। '**अमरी**' लिखा है न ? '**अमरी**'। उस देवी को '**अमरी**' कहा है। परन्तु आयुष्य दीर्घ होता है न देव को, भाई ! असंख्य अरबों वर्ष की तो एक पल्योपम की स्थिति है। ऐसी देवी वहाँ उतरी। इन्द्र ने जानकर उतारी। भगवान को निमित्त हो और वैराग्य होकर साधु हों, इस कारण से इन्द्र ने वहाँ आकर देवी को उतारा। बहुत देवियाँ नाच रही थीं। उसमें बीच में वह नीलांजना थी। स्थिति उस काल में पूरी हुई। शरीर बिखर गया।

जिस प्रकार कपूर की गोटी और रजकण बिखर गये, अपने देह छूटे तो देह पड़ी रहती है। स्वर्ग के देव को ऐसा नहीं होता। उसे तो आत्मा गया तो यह रजकण कपूर की गोटी की भाँति बिखर जाते हैं। ऐसे नाचते-नाचते यह आयुष्य पूरा हो गया। रजकण छूट गये। ऐसे ख्याल था कि इस देवी का आयुष्य पूरा हुआ, क्यों ऐसा हुआ ? ... दूसरी ... उसके स्थान में

दूसरी व्यवस्था कर दी इन्द्र ने। परन्तु ख्याल में आया कि यह देह की स्थिति पूरी हुई। ओहो!

कहते हैं, यह **नीलांजना नाम की देवांगना को पहले देखा, पश्चात् नष्ट होते हुए भी देखा तथा उसी समय आपने राज्य लक्ष्मी को भी उसके समान ही चंचल समझ लिया।** भान तो था। ऐसा नियम है। सब कहीं एकदम बात सिद्ध नहीं की जा सकती। नहीं तो लॉजिक, न्याय, युक्ति से सिद्ध करके यह बात साबित है। समझ में आया? जब-जब परमात्मा तीर्थंकर का अवतार होता है, वे तीन ज्ञान लेकर तो आते हैं, परन्तु जब उन्हें दीक्षित होने का समय होता है, तब उन्हें जातिस्मरण होता है। जातिस्मरण अर्थात्? पूर्व के भव का स्मरण आ जाता है। समझ में आया? अभी होता है न? बहुतों को हुआ नहीं? ... बाई-लड़की का एक नहीं आया? लड़की का दृष्टान्त कहा था न! बीस वर्ष की लड़की। वजुभाई के पुत्र की पुत्री। पूर्वभव का आवे कि इस भव से पहले कहाँ था... कहाँ था... कहाँ था... यह ख्याल में आ जाये। जैसे कल की बात याद आवे वैसे ५०, दो, तीन भव की भी बात याद आवे, ऐसी आत्मा में ताकत है। अन्दर में तीन ज्ञान होने पर भी अवधिज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि उपयोग लगावे तो ज्ञात हो। तो यह जहाँ नीलांजनादेवी को ... ... ओहो! यह राज और लक्ष्मी सब ऐसी चंचल है। एक क्षण में नाश हो, ऐसी यह चीज़ है।

अरे! मैं तो इस भव में सर्वज्ञ होने का मेरा अवतार है। (कहाँ) तक इस राज में मैं रहूँगा? समझ में आया? ऐसी अन्दर वैराग्यदशा (होने पर) उदास... उदास हो गये। देवी का भी अवतार पूरा नृत्यकाल में हो गया, तो इस जगत की देह की स्थिति तो नाशवान है। राज और लक्ष्मी सब नाशवान है। ऐसे भगवान को '**जइया तइया वि तए, रायसिरी तारिसी दिट्ठा**' राजलक्ष्मी ऐसी देखी। आहाहा! यह क्षण में नाशवन्त है। समझ में आया? एकदम वैराग्य आया। वैराग्य का उफान आया।

आत्मज्ञानसहित जब जातिस्मरण अर्थात् पूर्व के भव का ज्ञान होता है, तब धर्मी को वैराग्य होता है। आत्मज्ञान बिना जातिस्मरण होता है, जाति अर्थात् पूर्व के भव का ज्ञान, यह अभी बहुतों को होता है न! समझ में आया? है न अभी? कैसे? नाम अपने भूल गये। ... . जातिस्मरण। पूर्वभव के भानवाले के सहायक कोई है। वह हमारे पास आया था। लाख रुपये की मोटर लेकर ... उसे सब क्या कहलाता है? रिपोर्ट। रिपोर्ट लेने आयी। दो हजार का वेतन है, उसका। ... होता है। इसलिए ... मरी नहीं। संसार में उसे ... उसे ऐसा कोई मिल गया।

●●●

माघ कृष्ण-१४, दिनांक - १७-०२-१९६९
श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १८ से २२, प्रवचन-८०१

यह पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। इसमें पहले तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान जो इस चौबीसी में हुए, उनका लक्ष्य करके यहाँ स्तुति और भक्ति वर्णन करते हैं। उसमें यहाँ तक अपने आया है १८वीं गाथा में। यह आत्मा—यह ऋषभदेव भगवान का आत्मा पहले तो संसारी की भाँति अनादि काल से स्वरूप के भान बिना भटकता था। पश्चात् आत्मा आनन्द और ज्ञानघन स्वरूप है, ऐसी अन्तर शोध करके अन्तर के ध्यान में आकर जिसने केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी जिसकी शक्ति थी, उसकी दशा में व्यक्त प्रगट दशा हुई। उसे परमात्मा परमेश्वर प्रभु ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

आत्मा अनन्त आत्मायें हैं। अनन्त काल से निज स्वरूप को भूलकर चौरासी के अवतार में भटकते हैं। वह भटकते-भटकते यह ऋषभदेव का भी जीव प्रथम जब शुरुआत में धर्म प्राप्त करता है, धर्म अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है, उसकी अन्तर शोध करके, एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन पाता है। पश्चात् ध्यान करके केवलज्ञान पाता है। उस गुण को लक्ष्य में लेकर भक्त स्तुति करते हैं। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा यह शक्तिवाला सत्त्ववाला ऐसा ही है। परन्तु जिसे अभी पूर्ण दशा प्रगट नहीं हुई, वह स्वयं साधक, (उसे) आत्मा का भान होता है, वे जीव पूर्ण दशा प्राप्त होने के कालक्रम में जो परमात्मदशा हुई, उसके गुणग्राम और उनकी स्तुति, स्तवन, बहुमान करते हैं, इसका नाम यह स्तवन और स्तुति कहा जाता है। अपने यह १८वाँ श्लोक आया है।

जब ऋषभदेव का आत्मा ऐसे अन्तरशोध में था। अभी केवल (ज्ञान) हुआ नहीं था। उसकी गाथा है। '**हिययत्थझाणसिहि**' हे नाथ! आप जब आत्मा के अन्तर आनन्द स्वरूप में हृदय में शोध में थे, तब मुझे तो ऐसा लगता है कि तब आत्मा की ध्यानाग्नि जगी, इससे कर्म के रजकण और अशुद्धता जली। आप जहाँ ऐसे ध्यान में स्थिर हो, मुझे तो ऐसा लगता है, अलंकार करते हैं, शरीर के ऊपर बाल ऐसे जो काले हैं, भगवान! मुझे तो ऐसा लगता है कि आप जब ध्यानाग्नि में थे, शुद्ध चैतन्य की अग्नि अन्दर जगाते थे, तब कर्म जले, उसका धुँआ होकर यह काले बाल हुए हैं। अलंकार है।

अन्तर की दशा का भान करके जब अन्तर शोधते थे... वह, श्लोक है आनन्दघनजी का जरा। कि —

खग पद गगन मीन पद जल में, जो खोजे सौ बौरा,
खग पद गगन मीन पद जल में, जो खोजे सौ बौरा,
चित्त पंकज खोजे सो चिन्हे, रमता आनन्द भौरा,
अवधू नटनागर की बाजी, क्या जाणे बामण काजी रे। नटनागर की बाजी।

क्या कहते हैं ? १८वीं गाथा है। देरी से आये। रात्रि में ... बैठो यहाँ। यह पहला यहाँ कहा था, हों! दो दिन पहले, हों! तुम्हारी बात। कहा कि एक सेठ चाँदी के व्यापारी आयेंगे, यह चाँदी के व्यापारी हैं। यह हार-बार रात्रि में पहनेंगे, यह घुँघरूँ बाँधेगे और नाटक की भाँजि नट नाटक में नाचेंगे। यह नाच नहीं, गरीब नहीं, ऐसा पहले कहा था। यह आज रात्रि में भक्ति करेंगे। कितने बजे है अपने ? पौने आठ। पौने आठ से पौने नौ। यह पगड़ीवाले हैं न, यह चाँदी के व्यापारी हैं। घुँघरूँ बाँधेंगे और... कपड़े-बपड़े इनके घर के पहनेंगे। पश्चात् भगवान के पास नाचेंगे, भक्ति करेंगे रात्रि में। पौने आठ से पौने नौ। इसलिए पहले से कह दिया कि भिखारी नहीं, कोई गरीब नहीं। ... भक्ति का रस है, इसलिए आये हैं। अब इतनी बात।

कहो, यहाँ क्या कहते हैं कि हे नाथ! यदि एक आत्मा की भक्ति पूर्णानन्द परमात्मा की किस प्रकार करते हैं। धर्मी जीव को आत्मा का भान होता है कि मैं तो आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य हूँ। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, मिट्टी है, अजीव है। अजीव है; इसलिए धूल कहते हैं। कितने ही कल कहते थे वे अखबारवाले। धूल-धूल क्या कहते हैं पैसे को यह ? धूल है, भगवान! लक्ष्मी तो धूल है और जड़ है। आत्मा में चैतन्यलक्ष्मी सहजानन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी स्वलक्ष्मी के समक्ष लक्ष्मी तो धूल है। परन्तु यह शरीर धूल है। यह तो मिट्टी है। समझ में आया ? जब ऋषभदेव इस आत्मा की शोध में थे, यहाँ आचार्य उसका लक्ष्य करके स्तुति करते हैं कि हे नाथ!

खग पद गगन मीन पद जल में, जो खोजे सौ बौरा,

हे नाथ! आकाश में पक्षी चले, उसके पैर खोजे कि इस जगह पैर पड़ा है, वह मूर्ख है। वहाँ पक्षी चलने से आकाश में पैर नहीं पड़ते। 'खग पद गगन मीन पद जल में,' और

पानी की वह मछली आती है न, इसलिए मानो उसके पैर उत्कीर्ण होंगे चलते-चलते। ऐसा होगा ? 'खग पद गगन मीन पद जल में, जो खोजे सौ बौरा,' मूर्ख है, वह खोजे वहाँ। वहाँ कहाँ चरण थे ?

चित्त पंकज खोजे सो चिन्हे, रमता आनन्द भौरा।
अवधू अनुभव कलिका जागी, मति मेरी आतम समरन लागी।
मति मेरी आतम समरन लागी, अवधू अनुभव कलिका जागी।

भगवान आत्मा पुण्य और पाप के परिणाम में क्रिया में आत्मा खोजे तो वहाँ नहीं है। जैसे आकाश में पक्षी के चरण नहीं, उसी प्रकार पानी में मच्छ के चरण नहीं। उसी प्रकार आत्मा और आनन्द इस शरीर जड़ में खोजे, वहाँ नहीं है। यह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन, धूल, बँगला और पैसे में आनन्द खोजे, वहाँ नहीं है। समझ में आया ? अरे ! शुभ और अशुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना पाप के भाव में आनन्द, आत्मा और आनन्द नहीं है। अरे ! पुण्य-परिणाम दया, दान, भक्ति आदि के विकल्प आवे शुभभाव, उसमें आत्मा और आत्मा का आनन्द नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा... यहाँ ऋषभदेव के बहाने स्तुति करते हैं परन्तु अपने आत्मा की ही यहाँ स्तुति है। समझ में आया इसमें ? '**हियय्त्थझाण**' हे परमात्मा ! **आपके मस्तक पर भौंरों के समूह समान काला, जो केशसमूह है, वह हृदय में स्थित ध्यानरूपी अग्नि से शीघ्र जलाये हुए शरीर के धुँए समान शोभित है।** जलकर ऊपर बहुत आया है। ऐसा स्वयं को भी भान है स्तुति करनेवाले और जिन्हें उग्र गुण विकसित हुए हैं, उनका लक्ष्य करते हैं।

हे नाथ ! आपने आत्मा के अन्दर में हृदय, ज्ञानानन्द हृदय में पंकज अर्थात् कमल में देखा, शोधा। 'रमता आनन्द भौरा...' आनन्दरूपी भँवरा वहाँ आत्मा में रमता है, वहाँ अन्तर में आपने खोजा। समझ में आया ? यह पुण्य और पाप के विकल्प और क्रिया में आत्मा नहीं है, उसमें धर्म नहीं है, उसमें आनन्द नहीं है। आहाहा ! जेठाभाई ! दुनिया से बहुत उल्टा, भाई ! परन्तु दुनिया उल्टी, इसलिए उल्टा ही होगा न उल्टे से। उल्टे से उल्टा और यह उल्टे से वह उल्टा।

भाई ! आत्मा अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप है, भाई ! उसे ऋषभदेव भगवान ने अन्तर

में से प्राप्त किया। प्राप्त किये की प्रशंसा करके उसकी स्तुति (करता है)। जिसे गुण प्रिय है, जिसे लक्ष्मी प्रिय है, वह लक्ष्मीवाले की महिमा करता है, लक्ष्मीवाले की वास्तव में महिमा नहीं, उसे लक्ष्मी गलगलिया बुलाती है, उसकी महिमा करता है उसके (बहाने)। लक्ष्मी की महिमा करे, वह लक्ष्मी की प्रीति है, इसलिए (करता है)। पुरुष की नहीं। लक्ष्मी उसके पास से चली जाये तो कोई भी महिमा करे? ओहो! ऐसा है और वैसा है। बड़ी-बड़ी पदवियाँ लगा देते हैं न मक्खन चुपड़कर। तुम बड़े हो और तुम ऐसे हो और धनाढ्य हो और धूल हो। मक्खन-मक्खन सब।

यहाँ कहते हैं कि जैसे पैसेवाले को पैसेवाला लक्ष्मी का जिसे प्रेम है, वह पैसेवाले की महिमा करता है। पैसे का प्रेम नहीं, इसलिए पैसेवाले की महिमा नहीं करता कि तुम बड़े हो। किसके धूल में बड़े? सुन न। अन्तर चैतन्य लक्ष्मी की जिसे प्रीति और प्रेम है, वह पैसेवाले की महिमा नहीं करता। वह तो जिसे आत्मा का आनन्द खिल गया है परमात्मा को, आत्मा की लक्ष्मी जिसे अन्दर से प्रगट हो गयी है। उनकी वह महिमा करता है, यह इसका नाम स्तुति कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि हे नाथ! आप हैया में, हृदय में ज्ञानानन्दरूप से... देखो! ऐसा करके ख्याल है भक्तिवन्त को कि उसे यह केवलज्ञान और पूर्णानन्द परमात्मदशा किस साधन से प्रगट की। इस स्तुति के लक्ष्य में लेकर ऐसा कहता है कि आत्मा आनन्दकन्द ज्ञान की मूर्ति चैतन्यबिम्ब आत्मा है। उसमें आपने एकाकार होकर शोधकर आत्मा की दशा केवलज्ञान और पूर्णानन्द की प्राप्ति आपने की है। यह मुझे ख्याल है कि आप ध्यान में आनन्द को शोधते एकाकार हुए। तब राग और पुण्य-पाप के कर्म जो थे, वे जले और धुआँ निकला बाहर शरीर के ऊपर काले बाल हैं वह। अलंकार किया है। समझ में आया?

धर्मी जीव धर्मात्मा के उत्कृष्ट बहुत गुण होते हैं, उसे जहाँ हो वहाँ गुण ही उसे दिखते हैं। वह दूसरी दशा नहीं देखता। यहाँ स्तुति में आचार्य हैं, वे गीत गाते हैं। समझ में आया? प्रभु! आपने आकाश में जैसे पक्षी के चरण पड़े नहीं, वहाँ मूर्ख हो वह खोजे; उसी प्रकार पानी में मच्छ के चरण नहीं हैं, मूर्ख हो वह खोजे। उसी प्रकार आत्मा का आनन्द और आत्मा पुण्य-पाप में नहीं है, वहाँ खोजे, वह मूर्ख है। समझ में आया? गजब बात, भाई! यह इस गाथा के स्तवन का भावार्थ है।

एक बार समयसार में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य मुनि थे। महा नग्न दिगम्बर आत्मज्ञानी-ध्यानी। उनसे एक बार शिष्य ने प्रश्न किया है, ३१वीं गाथा में। महाराज! सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण आत्मा जिन्हें प्रगट दशा हो गयी, सोलह कला से आत्मा ज्ञानानन्द जैसा स्वभाव है, वैसी प्रगट दशा हो गयी, उसकी स्तुति किसे कहना? आता है? जेठालालभाई! कितने में आता है? ३१वीं गाथा में आता है। तुम तो सब बहुत वर्ष के अभ्यासी हो। ३१वीं गाथा में ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया है।

हे नाथ! सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने आत्मा में ज्ञानस्वभाव शुद्धरूप से विज्ञानघन है, उसमें एकाकार होकर, ध्यान करके जिसने ज्ञान की अग्नि द्वारा राग को जलाया, कर्म को जलाकर केवलज्ञान प्रगट किया है। ऐसे केवली परमात्मा की स्तुति हे नाथ! कैसे की जाये? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया था। उसके उत्तर में ऐसा जवाब वहाँ दिया है... समझ में आया? आता है या नहीं?

यह आत्मा... इन्द्रियाँ हैं जड़, मिट्टी और यह इन्द्रिय के जो विषय हैं शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि और अन्दर ज्ञान का अंश जो खण्ड-खण्ड ज्ञान एक-एक शब्द, रूप को जाने ऐसा खण्ड ज्ञान, ऐसी भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उसके विषय तीन को जीतकर अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़कर ज्ञानानन्द भगवान स्वयं शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है, उसमें एकाग्र होकर ध्यान करता है, वह केवली की स्तुति करता है। समझ में आया? बापू! बात कुछ दूसरी है। यहाँ लौकिक बात नहीं है। यह तो अन्तर लोकोत्तर की चैतन्य की चीज़ है।

पूछा था शिष्य ने ऐसा। महाराज! परमात्मा की स्तुति किसे कहा जाता है? केवलज्ञानी की सच्ची स्तुति किसे कहा जाता है? केवलज्ञानी अर्थात? आत्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है, ऐसी शक्ति थी, उसे प्रगट दशा हुई है। ऐसे आत्मा को केवली और परमात्मा कहा जाता है। समझ में आया? यह अभी आयेगा बाद की गाथा में। उनकी स्तुति किसे कही? तब यह आत्मा की स्तुति, उसे उनकी स्तुति कही। समझ में आया? ....

....विषय को न लेना, ऐसा नहीं। यह जड़ मिट्टी है, उसका लक्ष्य छोड़कर उसके विषय जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श है, उसका लक्ष्य छोड़कर, ज्ञान का अंश जो खण्ड-खण्ड एक-एक को जाने, उसका लक्ष्य छोड़कर, ज्ञानानन्द चिदानन्द घन आत्मा

है, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करे, वह केवली का स्तवन और स्तुति करता है। गजब बात, भाई! पूछा भगवान का और जवाब ऐसा दिया। समझ में आया?

यह यहाँ स्तुति करते हैं। अपनी अन्दर भी स्तुति करते हैं और पूर्ण दशा ऋषभदेव परमात्मा अभी केवलज्ञान पाये नहीं थे और ध्यान में थे, उसका लक्ष्य लेकर ध्यान का स्वरूप क्या? उसका फल क्या? किसका ध्यान? ऐसा सब लक्ष्य में लेकर उसकी स्तुति करते हैं। समझ में आया?

यह ध्यान अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द की अग्नि है। ... संसार के प्रेम में विचार में मन्थन में कोई दो-पाँच लाख पैदा हो गये हों और ... लड़के का विवाह हो, एक ही हो और उसके विवाह के समय रात्रि में दो घण्टे विचार में-मन्थन में जाये। खबर नहीं पड़े कि दो घण्टे कहाँ गये। इसे ध्यान आता तो अवश्य है। समझ में आया? उस विकल्प दया, राग और पुण्य ऐसे करना... ऐसे करूँगा... ऐसे करूँगा... उसकी एकाग्रता में दूसरा विकल्प नहीं आवे, ऐसा इसे विकल्प का ध्यान करना (आता है)। आर्तध्यान और रौद्रध्यान करना इसे आता है। तो जिसे राग में एकाग्रता करना (आता है), उसे रागरहित स्वरूप में एकाग्रता करना न आवे, ऐसा कौन कहता है?

धर्मी जीव, भगवान चिदानन्द प्रभु, ऐसे '**हिययत्थझाण**' ऐसा शब्द पड़ा है। हे नाथ! आप राग में पहले ... हैं। एक अलंकार किया है। समझ में आया? ध्यान क्या? किसका? फल क्या? यह सब इसमें वर्णन किया है। यह गाथा १८ हुई। अब १९। कल १८ तो हुई थी।

अब, आत्मा अपना निज स्वरूप जब ऋषभदेव भगवान अन्दर ज्ञान में एकाग्र होकर, ज्ञानमूर्ति प्रज्ञाब्रह्म आत्मा है। (उसमें) एकाग्र होकर जब चार कर्म का नाश हुआ... आठ कर्म की जाति है। आत्मा की अशुद्धता आत्मा स्वयं करे। परन्तु उस अशुद्धता में निमित्तरूप कर्म जड़ हैं। ऐसे जड़ कर्म की आठ जातियाँ हैं। वह सब तुम्हें अभी नहीं सिद्ध की जा सकती। एक-एक लॉजिक से, न्याय, युक्ति से सिद्ध हो सकती है। एक आठ कर्म की जाति है। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र आठ हैं। आत्मा के अन्तर पर्दे आठ कर्म के जड़ के। अशुद्धता तो आत्मा स्वयं करता है। उसमें वे निमित्त हैं। तो कहते हैं कि हे प्रभु! आप जब ध्यान में, ज्ञान में एकाकार थे,

तब इतना ध्यान जमा... ऐसा हो सके, ऐसी अस्ति करते हैं और आपके हुआ, उसकी प्रशंसा करते हैं। समझ में आया? कहते हैं :

कम्मकलंकचउक्के णट्ठेणिम्मलसमाहि भूईए।
तुहणाणदप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

हे जिनेश! हे प्रभु! **निर्मल समाधि के प्रभाव से... 'समाहि'** समाधि अर्थात्? यह वे श्वास को रोकते हैं, कुम्भक और रेचक कहते हैं न? वह नहीं। वह तो धूलधाणी, उसमें कुछ नहीं होता। आत्मा के अन्तर आनन्द के ध्येय में-लक्ष्य में लेकर शान्ति का वेदन होना, उसे समाधि कहा जाता है। आता है न? लोगस्स में आता है। **'समाहिवर मुत्तं दिंतु'** कण्ठस्थ किया है न? ...भाई! लोगस्स-लोगस्स में आता है। अर्थ की किसे खबर है। क्या होगा उसमें। उसमें आता है, वह समाहिवर। समाधि।

आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प, वे उपाधि-व्याधि हैं। उनसे रहित आत्मा आनन्दकन्द में जहाँ दृष्टि देता है, तब उसे शान्ति, अनाकुलता, शान्ति का वेदन होता है, उसे भगवान समाधि कहते हैं। समझ में आया? आता है न लोगस्स में? समाहिवर उत्तम दिंतु। हे नाथ! मेरी शान्ति मुझे चाहिए है। वह तो परमात्मा को निमित्तरूप से कहता है। कहीं परमात्मा ने दोष नहीं किया कि परमात्मा तेरा दोष टालें और तुझे दें। समझ में आया? दोष तो तूने किया है और दोष तुझे टालना है। कोई टाल दे, ऐसा है? इसलिए आत्मा अन्दर आनन्द और स्वरूप शान्ति है, उसे समाहि। अन्तर में हे नाथ! शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अनाकुल आनन्द की शान्ति के वेदन से आपने चार कर्म का नाश किया। आठ कर्म में चार कर्म का नाश हो सकता है, यह पद्धति है, हुई है, उन्हें लक्ष्य में लेकर उनकी स्तुति की जाती है। समझ में आया?

कहते हैं, **चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में यह लोकालोक प्रतिबिम्बित हो रहा है।** ओहो! भगवान आत्मा आपने आत्मा में एकाकार होकर चार कर्म का नाश किया है। श्रीमद् में आता है अपूर्व अवसर में। है न? अपूर्व अवसर में यह आता है। श्रीमद् राजचन्द्र में। 'चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ,' भोगीभाई! किसमें आता है? अपूर्व अवसर में। देखो! यह व्याख्या करके भगवान की स्तुति आचार्य करते हैं। 'चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ'। देखो, केवलज्ञानी की दशा!

चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जहाँ,
भव के बीज का आत्यन्तिक नाश जो।

यह चार कर्म हैं, वह भव का बीज और भव का कारण है। हे परमात्मा! आपने चार कर्म को जो भव के बीज थे, उन्हें आत्मा के ध्यानाग्नि से आपने जला डाला। जैसे बीज बोया जला, फिर उगता नहीं। इसी प्रकार कर्म और राग के परिणाम, हे नाथ! आत्मा के ध्यान द्वारा आपने जलाये, अब आपको भव है नहीं।

'भव के जीव के आत्यन्तिक नाश जो।' ज्ञाता-दृष्टा, आता है न फिर 'सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता।' यह चार बोल लेंगे।

कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो।
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?
चार कर्म घनघाति वह व्यवच्छेद जो।

देखो! अन्दर लक्ष्य में है और मैं आत्मा हूँ। और उस आत्मा ने चार कर्म घनघाति आत्मा के ज्ञान द्वारा क्षय किया, उसकी विधि की पद्धति की मुझे प्रतीति है। समझ में आया? 'सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता।' हे नाथ! आपको तीन काल-तीन लोक के भाव एक समय की ज्ञान की पर्याय में ज्ञातारूप से जानने में सब आया और ज्ञाता अनन्त केवलज्ञान, दृष्टा अनन्त दर्शन सह शुद्धता। मोह का नाश होकर हे नाथ! आपको अनन्त दर्शन और आनन्द की शुद्धता प्रगट हुई। और 'कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जो।' और आपने चार कर्म के नाश को-टालने को आत्मा के शक्तिरूप जो अनन्त चतुष्टय थे— ज्ञान, दर्शन और आनन्द एवं बल था। अनन्त अन्दर था, हों! होवे, वह प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। न हो उसमे से आवे? आत्मा में जो अन्तर ज्ञान में, अनन्त ज्ञान दर्शन, आनन्द और बल था, उसकी आपने प्राप्त की प्राप्ति की। शुद्धता प्रगट की, प्रभु! पूर्ण शुद्ध आनन्द का कन्द आत्मा हो गये। यह उसका लक्ष्य करके स्तुति करते है। समझ में आया?

कहते हैं, हे नाथ! ज्ञानरूपी दर्पण आपको प्रगट हुआ। जैसे दर्पण होता है। सामने चीज़ होती है, वह प्रतिबिम्ब होता है। होता है या नहीं? यह दर्पण की स्वच्छता है। उस दर्पण में कोई चीज़ घुस नहीं गयी है। क्या कहा? दर्पण है, उसके सामने आम और

कोयला पड़े हों। अन्दर आम और कोयला दिखते हैं। आम और कोयला है अन्दर ? वह तो दर्पण की स्वच्छता है। सामने अग्नि और पानी का प्रपात पड़ता दिखाई दे। यहाँ पड़ता हो, वहाँ दिखाई दे। इसलिए पानी है ? अग्नि है ? हाथ लगाने से दिखती है ऐसे अग्नि ? हाथ लगाओ तो उसमें अग्नि है ? उष्णता है ? प्रवाह का प्रवाह यहाँ है, वहाँ दिखाई दे तो ठण्डा होगा ? ध्यान रखो, क्या कहा जाता है ? वह दर्पण की स्वच्छता की झलक है। वह दर्पण की दशा है। वह अग्नि और पानी की दशा नहीं है। वह आम और कोयले की वहाँ दशा घुस नहीं गयी है। समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा जब ज्ञानदर्पण में निर्मल होता है। आहाहा! धन्य घड़ी, धन्य पल, धन्य क्षण! जिस काल में आत्मा चार कर्म का नाश करके आत्मा में शक्ति का विकास करता है, तब कहते हैं कि लोक और अलोक आत्मा-ज्ञान में झलकता है। जैसे वह पानी और अग्नि झलकता नहीं, हों! उस सम्बन्धी का, अपने सम्बन्धी की ज्ञान की स्वच्छता झलकती है। यह जगत और लोक कहीं अन्दर ज्ञान में आ नहीं जाते। समझ में आया ?

आत्मा की ऐसी स्तुति है, उसकी अस्ति—श्रद्धा करके उसकी प्रशंसा करना, इसका नाम परमात्मा की स्तुति कही जाती है। समझ में आया ? कहो, भीखाभाई! क्या होगा यह सब ? बड़ी बातें होंगी, ऐसा है ? भगवान! बड़ी नहीं, नाथ! यह तो तेरे घर की इतनी बात है, भाई! तेरे स्वरूप की ऐसी वार्ता तुझे मानने में आती नहीं। कभी उसे गज करना, माप करना आता नहीं कि यह वह क्या है अन्दर यह ?

कहते हैं कि जिसके एक ही आत्मा में, आत्मा का ध्यान करने से चार कर्म का नाश हुआ, आपके ज्ञानरूपी दर्पण में लोकालोक जड़ गये, ज्ञात हो गये। यह आपकी दशा। मेरी भी ऐसी दशा मुझे होनेवाली है। अभी नहीं है, इसलिए आपकी महिमा करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! यह १९ गाथा में कहा, लो! समझ में आया ?

पश्चात् २० में कहते हैं। सर्वज्ञपद प्रगट हुआ। ज्ञान था, वह सोलह कला से पर्याय / दशा / अवस्था में खिल गया। परन्तु अभी उन्हें चार कर्म बाकी हैं। शरीर के ... और वाणी के .... चार कर्म बाकी हैं। उसे लक्ष्य कर जरा बात करते हैं। वस्तु की स्थिति है, ऐसा हुआ है, ऐसा हो सकता है—ऐसी प्रतीति और ज्ञान में श्रद्धा द्वारा भगवान की इस प्रकार स्तुति की जाती है। यह है विकल्प, है पुण्यबन्ध का कारण, परन्तु अन्दर में घोलन

है कि रागरहित मेरी चीज़ यह है, इसका नाम वास्तविक स्तुति और शुद्धता कहा जाता है।

आवरणाईणि तए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचउक्केण मुअं व णाह भीऐण सेसेण।।२०।।

हे जिनेन्द्र! हे प्रभु! **जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों का जड़ सहित सर्वथा नाश कर दिया था...** हिन्दी अर्थ है। आपने आत्मा के ज्ञान के आनन्द में एकाकार होकर चार कर्म के रजकण की ... उड़ाकर नाश किया। तब प्रभु! वे चार कर्म बाकी रहे न, **चार अघातिया कर्म भी भय के कारण आपकी आत्मा में मृतदेह के समान स्थित रहे।** उन्हें त्रास हो गया कि अब अपने... अलंकार किया है। समझ में आया? चार का नाश किया तो चार अब मुझे जलाकर राख करेगा आत्मा। उन्हें—चार कर्म बाकी रहे, वे मुर्दे जैसे होकर रहे हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा का इतिहास भी कहते हैं, उसकी दशा का वर्णन करते हैं, उसे क्या टला और क्या रहा, ऐसा कहते हैं। ऐसी स्थिति आत्मा की हो सकती है। इस प्रकार दूसरी बात सब इकट्ठी करते हैं। श्रीमद् में भी आता है न? अन्तिम इस शब्द के बाद। 'वेदनीय आदि जो चार कर्म वर्ते जहाँ।' यह शब्द है यहाँ से। 'जली सिंदरी वत् आकृतिमात्र जो।' हे परमात्मा! हे सर्वज्ञदेव! नाथ! आपको पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, चार कर्म नाश हुए, तब चार बाकी रहे।

यहाँ शब्द क्या है? **'मुअं' 'मुअं'।** मेरे हुए कर्म पड़े हैं अब। समझ में आया? भय लगा कि उन्हें टाला, अब मुझे क्षण में (टाल डालेंगे)। ऐसी आत्मा की शक्ति है, आत्मा में ताकत है। समझ में आया? पानी, अग्नि के निमित्त से चाहे जितना उष्ण हुआ हो, पानी अग्नि के निमित्त से उष्ण वर्तमान हुआ हो, तथापि उसमें शीतल स्वभाव भरा है, उस समय। यदि शीतल स्वभाव भरा न हो तो एक क्षण में उष्णता टलकर शीतल हो तो दूसरे क्षण में कहाँ से आयेगा? समझ में आया? और उस उष्णता के काल में भी शीतलता है। वह घड़ा जो पानी का हो। बेघड़ो समझे न? क्या कहते हैं? बहेड़ा या घड़ा। उसमें गर्म-गर्म हो। जिससे गर्म हुआ। ऐसा उल्टा गिरे, उसका गारा करे। उसमें ठण्डा स्वभाव पड़ा है, उसको (अग्नि को) गारा करे। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा में शीतलता अविकारी स्वभाव से भगवान भरा हुआ है।

अब वह कहाँ मापना उसे ? खबर नहीं होती मैं कहाँ कितना कैसा हूँ। समझ में आया ? भले इसकी दशा में विकार की वृत्तियों से जलता, सुलगता दिखाई दे परन्तु इसके अन्तर स्वभाव में शीतलता पूर्ण अकषाय वीतराग भरा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यशोविजयजी में आता है न ? उसमें एक लाईन ऐसी आती है। मैंने कहा था एक बार।

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की,
त्यों ही जीव स्वभाव रे
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे,
ज्यों निर्मलता रे स्फटीक की।

स्फटिक रत्न निर्मल होता है। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान जीव स्वभाव... अब इसे अपनी बात बैठती नहीं। यह उजला और यह अच्छा और यह मोटा। समझ में आया ? दूसरे को अच्छे की महिमा देनेवाला स्वयं कितना अच्छा है, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया ?

एक बार यह लालन थे न ? लालन नहीं ? पण्डित लालन। बड़ी उम्र में गुजर गये ९५ में। बहुत पण्डित थे। पूरी जिन्दगी १६ वर्ष से यह ९५ वर्ष तक अभ्यास ही किया था। दस-दस हजार पुस्तकें पढ़ी हुई। पक्का किया। परन्तु दृष्टि में ठिकाना नहीं था। परन्तु हमारे यहाँ रहते बारह-बारह महीने वहाँ। लालन नहीं जामनगर के ? क्या नाम था ? वृद्ध थे। फिर एक बार विलायत में गये। विलायत में। वहाँ वह नहीं करते इतना ? वह पाँच करोड़ का कहलाता है न, क्या कहलाता है हीरा ? कोहिनूर। कोहि अर्थात् प्रकाश का नूर, प्रकाश का नूर। प्रकाश का पत्थर। पत्थर अर्थात् कोहिनूर। है न पाँच करोड़ का वहाँ। सब उसे देखने गये थे। तो ऐसे देखा। इसलिए दूसरों ने कहा, क्यों पण्डितजी ! कैसा हीरा यह ? पाँच करोड़ का। जरा मश्करीबाज थे और जरा पढ़े हुए। पढ़ा बहुत न ! फिर यहाँ रहते थे बारह-बारह महीने। तत्त्व की खबर नहीं होती। जब तत्त्व की बात आवे, तब रोवे। अरे ! पढ़े परन्तु गुने नहीं। बात हाथ नहीं आयी।

कहा कि यह क्या चीज़ है ? पण्डितजी ! इसकी कितनी कीमत ? तब उन्होंने जरा कहा कि इसकी कीमत कहूँ या आँख की कहूँ ? तो आँख बिना इसकी कीमत आँके

कौन ? इस आँख का यह जो कोड़ा है, है न यह ? मिट्टी है और टकटकाट। वह धूल है न यह, यह कहीं आत्मा नहीं है। आत्मा तो अन्दर है। इसके चकचकाहट से तो हीरा की कीमत होती है। तो हीरा की कीमत कहूँ या आँख की कहूँ ? और आँख की कहूँ या आत्मा की कहूँ ? क्योंकि आँख को जाननेवाला चैतन्य है। समझ में आया ?

भगवान चैतन्य हीरा चमकता अन्दर अनन्त ज्ञान से भरपूर हीरा है। उसकी कीमत कहूँ या आँख की और तेरे पैसे की कहूँ ? कूका समझे न ? कूका ही है न यह पैसा-कंकर। धूल है, वहाँ क्या है ? परन्तु कितने ही ऐसा कहे, धूल बिना चले ? लो ! ऐ... भोगीभाई ! ऐसा कहने बहुत आते हैं, हों ! परन्तु धूल बिना महाराज ! सवेरे के रुपये हो तो सब्जी मिले। रुपये बिना सब्जी मिलेगी ? लड़का छोटा दो वर्ष का, तीन वर्ष का हो, उसके पास रुपया है ? सब्जी आयेगी या नहीं उसके पास ? वह तो चीज़ जहाँ आनेवाली हो, वह आती है और न आनेवाली हो, वह नहीं आती। तुझे खबर नहीं है। भाई ! तू मानता है कि रुपयों से आती है। और अपने क्यों भी कहावत नहीं कि दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। सुना है ? काठियावाड़ में ऐसी कहावत है। हिन्दुस्तान में कुछ होगी भाषा। खाने का नाम क्या है ? ऐई ! यह हिन्दुस्तानी है न, खबर नहीं ? दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। नाम कहाँ लिखा था ? इसका अर्थ यह कि जो दाने जिसके पास आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले, वे नहीं आयेंगे। आहाहा ! परन्तु जँचता नहीं, घड़ बैठती नहीं। ऐसी भ्रमणा में चढ़ गया है न ! भ्रमणा में पड़ गया है, मानो ऐसा कर दूँ, ऐसा कर दूँ। धूल भी करे नहीं, सुन न ! तू तो आत्मा, तेरी मर्यादा में राग-द्वेष करे या आत्मा का ध्यान करे, ज्ञान करे। पर में कुछ कर सके और पर का काम तुझसे हो, तीन काल में नहीं होता।

कहते हैं, हे नाथ ! आपके ज्ञानदर्पण में लोकलोक ज्ञात होते हैं। आहाहा ! जहाँ चार कर्म नाश हुए और चार कर्म बाकी रहे। अब मुर्दे की भाँति रह गये। जली हुई रस्सी, आया न इसमें ? श्रीमद् में आया न ? 'वेदनीय आदि चार कर्म वर्ते जहाँ। जली सिंदरीवत् आकृतिमात्र' रस्सी होती है, जली हुई हो, आकार लगे। बाँधने में काम आती है ? डोरी-डोरी। जली हुई हो। काथी की डोरी जली हुई हो, पड़ी हो। उसे उठाकर कहीं बाँधने में काम आवे ? इसी प्रकार हे नाथ ! आपने आत्मा के अन्तर ज्ञान का ध्यान करके जब केवलज्ञान प्रगट किया, तब चार कर्म जली हुई रस्सीवत् पड़े हैं। वे कहीं आत्मा के आनन्द

को नुकसान करे, यह काम करे आत्मा के नुकसान को, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहकर वस्तु क्या है, आत्मा क्या है, परमाणु की दशा कैसी होती है? ऐसा तत्त्व है, ऐसी सब आस्था करके, उसकी श्रद्धा कराते हैं। समझ में आया? मरे हुए जैसे पड़े हैं, कहते हैं। आया?

अब यहाँ जरा ऐसा आता है, भाई! पूर्ण दशा प्राप्त होती है और जिसे सर्वज्ञ दशा और पूर्व का पुण्य होता है, उसे इन्द्र आकर धर्मसभा रचते हैं, जिसे समवसरण कहते हैं। अभी महाविदेहक्षेत्र में है। क्षेत्र है। वहाँ तुम्हारी मोटर-बोटर नहीं जाती, हों! वे चन्द्र ... अब सुन तो सही। सब है। यह महाविदेहक्षेत्र आगे है। समझ में आया? मेरुपर्वत है और उसके आसपास एक महाविदेहक्षेत्र है, वहाँ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा जिनका नाम है, ऐसे दूसरे बीस तीर्थंकर महाविदेह में विराजते हैं। समझ में आया? कहते हैं, उन्हें वहाँ समवसरण—धर्मसभा है। धर्मसभा और समवसरण। सम और असरण। जिसमें स्वर्ग के देव, मनुष्य और पशु ... आवे, इससे उससे समवसरण कहा जाता है। जिस सभा में धर्म सुनने स्वर्ग के देव आवे, मनुष्य आवे, बाघ-सिंह जंगल में से दहाड़ मारते, शान्त होकर आवे। आहाहा! भाई! वह धर्मकथा (सुनने आते हैं)। सर्वज्ञ परमेश्वर जहाँ आत्मा की दशा (पूर्ण प्रगट हो गयी)। यहाँ तो चिल्लाहट मचाये, अर रर! लोग नहीं आते, इसका ठिकाना नहीं। ऐसे बाघ आते होंगे? अरे! भगवान! सुन न भाई! सब होता है। शान्त हो जा, भाई! यह तो उसकी स्थिति ऐसी है। समझ में आया?

परमात्मा हो, उनकी-सर्वज्ञ की ऐसी दशा होती है। ॐ ध्वनि खिरती है। ऐसी अपने जैसी भाषा उन्हें नहीं होती। क्योंकि यहाँ तो राग है न साथ में, इसलिए भाषा खण्ड-खण्ड होकर धारावाही आती है। उन्हें अखण्ड केवलज्ञान और पूर्ण दशा प्रगट हुई है, (इसलिए) निरक्षर ऐसी ध्वनि उठती है। अन्दर से पूरे शरीर में, इच्छा बिना। वह वाणी, समवसरण एक धर्मसभा होती है, उसमें वे भगवान विराजते हैं। फिर वाणी का बाद में कहेंगे। वह समवसरण होता है। धर्मसभा। जिसे धर्मसभा कहते हैं। समझ में आया? उसमें वे परमात्मा पूर्णानन्द होता है। पूर्व के पुण्य के योग से आते हैं। इन्द्र आकर समवसरण रचते हैं, ऐसा पूर्व के पुण्य उनको थे, उनका यह फल है, ऐसा विश्वास कराते

हैं। पवित्रता का फल तो अन्दर आया। अनन्त आनन्द, ज्ञानादि प्रगट हुए। परन्तु पूर्व में...

कहा था न एक बार? सौ कलशी अनाज हो वहाँ सौ गाड़ा घास तो साथ में होता है। अनाज न हो, वहाँ घास अकेला होता है। छप्पनिया में बांटा (घास-फूस) हुए थे। छप्पनिया था न जब? बहुत दुष्काल था। तब दस वर्ष की उम्र थी। तब बांटा (हुआ था)। बांटा समझ में आया? इतनी-इतनी घास हुई थी। अनाज नहीं हुआ था। छप्पन में दुष्काल पड़ा था न? ऐ! पोपटभाई! याद नहीं होगा, तुम्हारी छोटी उम्र थी। यहाँ तो उस समय दस वर्ष की उम्र थी। समझ में आया? अभी ७९ चलता है, शरीर को, हों! आत्मा को कुछ है नहीं। आत्मा का वर्ष-बर्ष होते नहीं। कहते हैं, उस समय छप्पनिया में देखा था। इतना-इतना जार था। बाजरा-बाजरा का। डुंडा नहीं होता। परन्तु डुंडा हो और घास न हो, ऐसा बने? घास हो और डुंडा न हो।

इसी प्रकार आत्मा का भान नहीं और मात्र पुण्य बाँधे, उसे घास पकता है। स्वर्ग का देव, मिले, यह पैसा-धूल मिले, घास पकती है। परन्तु जिसने आत्मा का अन्तर ज्ञान-दर्शन और आनन्द का भान समकिती को साधक का भान है, उसे जो अन्दर अभी भक्ति आदि का शुभराग (आता है), नाम स्मरण आदि, दया, दान, व्रतादि के भाव होते हैं, उस पुण्य का उसे फल मिलता है अर्थात् संयोगी चीज़ उसे मिलती है। समझ में आया? पुण्य से पवित्रता नहीं मिलती और पवित्रता से संयोग नहीं मिलते। क्या कहा? आहाहा! यह तो नव तत्त्व की भी भिन्न-भिन्न... कैसे है, उसकी श्रद्धा भी साथ में कराते हैं। समझ में आया? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, ये नव तत्त्व हैं। दो द्रव्य हैं, उनकी दूसरी पर्यायें हैं। इतना सब अभी कहीं सिद्ध करने नहीं जाया जाता। सब लॉजिक, न्याय, युक्ति से सिद्ध हो सके, ऐसा पूरा तत्त्व है। सर्वज्ञ भगवान ने कहे हुए तत्त्व सुतर्क और तर्क के द्वारा वे सिद्ध हो सकते हैं।

यहाँ आचार्य कहते हैं, हे भगवान! जब आप समवसरण में विराजते थे...

णाणामणिणिम्माणे देव ट्ठिउं सहसि समवसरणम्मि।
उवरिव्व सण्णिवट्ठो जियाण जोईण सव्वाणं।।२१।।

वह दिल्ली में नहीं? देखा है तुमने दिल्ली? उसे मेहमान राजा आवे, उन्हें सोने में बैठाया जाता है। हम तो गये थे न, देखने गये थे वहाँ। सोने के सिंहासन। वहाँ ... एक है

न। हमारे साथ एक धारासभावाले के भाई के दामाद आये थे। धारासभावाले। दिल्ली गये थे न जब (संवत्) २०१३ के वर्ष में। फिर कहे, यहाँ चलो न देखने जाते हैं। वहाँ राजा-बाजा हो न बड़े आये हों। धूल के धनी बड़े होते हैं न बाहर में। वे आवे तब सोने के सिंहासन में बैठाते हैं। चाय-पानी पिलाते हैं। वह तो ऐसा दिखाव कि यह क्या! समझ में आया? तब यह तो एक साधारण पुण्य के धनी। पामर-पामर है। पूर्व के आत्मा के पवित्रता के साधक, आराधक शुद्ध चिदानन्द का नाथ प्रभु, उसकी सेवा आराधक जीव की है, उसे जो राग भक्ति आदि का बाकी रहता है, उसका पुण्य अलौकिक होता है। समझ में आया?

कहते हैं, हे नाथ! आप जब समवसरण—धर्मसभा में... यह तो सर्वज्ञ हैं। इन्हें कहीं बैठना या कुछ है नहीं। यह तो पूर्व के प्रारब्ध के कारण समवसरण में... जाते हैं। अन्दर सर्वज्ञपद है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट है। उस समय इन्द्र आकर धर्मसभा रचते हैं। प्रभु! **जिस समवसरण की रचना, चित्र-विचित्र मणियों से की गयी थी, उस समवसरण में विद्यमान जितने भी मुनि थे, उन समस्त मुनियों के ऊपर विराजमान आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।** यह अन्तर के ध्यान करनेवाले सन्तों के झुण्ड आपकी सभा में थे, ऐसा भी सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? मुनि अर्थात् मु—जाणुं। आत्मा के आनन्द को जानकर आनन्द में रमते थे। ऐसे झुण्ड में आप ऊँचे-सर्वोपरि बैठे थे, उसके कारण सब शोभता था, ऐसा कहते हैं। आपके कारण सब शोभा थी। आहाहा! समझ में आया? समवसरण। उसमें आपके कारण मुनियों में विराजमान **आप अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे।** सभा शोभती थी। इतनी बात साधारण जीव को... जहाँ इन्द्र जहाँ तलबे चाटे घर आकर। ऐसा वह पुण्य होता है, भाई! अभी तो पवित्रता की तो खबर नहीं होती। जिसे एक समय-सेकेण्ड का असंख्यातवाँ भाग, आत्मा का अन्दर ज्ञान करके, ध्यान करके केवलज्ञान हो, एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो दर्पण की भाँति। यह आ गया पहले। परन्तु उन्हें पुण्य बाकी घास रही, घास। समझ में आया? क्या कहते हैं? घास कहते हैं? घास। वह यह समवसरण पुण्य के फल घासरूप है। समझ में आया?

कहते हैं कि आप जब वहाँ विराजमान थे, तब उन मुनियों की सभा में आपके कारण वह समवसरण शोभता था। समझ में आया? क्योंकि मुनि थे साधक, आत्मा के

आनन्द का अनुभव करनेवाले, परन्तु अभी उन्हें थोड़ा आनन्द है। मुनिपना ऐसा होता है... भाई! जरा सूक्ष्म बात है। अन्तर आनन्दस्वरूप को स्पर्श कर और अन्तर के आनन्द के झरना अन्तर में बहते हैं, उसे मुनिदशा और मुनिपना कहने में आता है। समझ में आया? कहीं बाहर के वस्त्र और नग्नपना वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! गजब बात!

अन्तर भगवान चिदानन्द का नाथ खिलकर अन्दर में से आनन्द के झरने में वेदन शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति (वेदन करते हैं)। प्रतिकूलता के परीषह और उपसर्ग का जिन्हे लक्ष्य ही नहीं। ऐसी जिन्हें आत्मा की शान्ति वर्तती है, आत्मा के आनन्द का अनुभव, ऐसे मुनियों के झुण्ड में आप पूर्णानन्द रूप से परमात्मा सभा में विराजते थे, इससे सभा की शोभा थी, ऐसा कहते हैं। उस पूर्णता की महिमा करते हैं। साधक की अपेक्षा सिद्धदशा पूर्ण हुई, उसकी महिमा करके इस प्रकार शोभा करते हैं। प्रभु! हमारे भी साध्य पूर्ण करना है। हम साधक हैं, हमारी अन्तर्दृष्टि का विकास हमें हुआ है, परन्तु अभी हम साधक हैं। पूर्ण परमात्म साध्यदशा जो हमारी अभी प्रगट नहीं हुई; इसलिए (जिन्हें) प्रगट हुई है, उसकी हम प्रशंसा और महिमा करते हैं। है विकल्प, परन्तु विकल्प के पीछे एकाग्रता शुद्धता की है, उसका आराधन जीव करता है। विकल्प में ऐसा पुण्य बँध जाता है। समझ में आया?

वे कहते हैं कि भक्ति? परन्तु भगवान! सुन तो सही! इन परमेश्वर की भक्ति पर ओर का तो विकल्प ही है। यह तो शुभराग ही है। स्वद्रव्य का आश्रय करके जो ... हो, उसे शुद्धि और धर्म कहा जाता है। परद्रव्य के आश्रय से जितनी वृत्ति उठे, वह सब पुण्यभाव है। परसन्मुख के झुकाववाली वृत्ति के कारण स्वसन्मुख का झुकाववाला भाव हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। गजब बात, भाई! समझ में आया? भाई! यह तो परमसत्य की बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ ने जैसा स्वरूप धर्म का, अधर्म का, चैतन्य का, जड़ का (देखा), उस प्रकार से साधकजीव अपने स्वरूप को जानकर उन्नति क्रम में आते हुए केवलज्ञान कैसे प्राप्त होता है, इन सबकी व्याख्या देकर स्तुति करते हैं। समझ में आया?

फिर २२वीं गाथा।

लोउत्तरा वि सा समवसरणसोहा जिणेस तुह पाये।
लहिऊण लहइ महिमं रविणो णलिणिव्व।।२२।।

हे प्रभो! जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी, सूर्य की किरणों को पाकर... कमलिनी का फल होता है न। फूल-फूल। ... होता है न कमलिनी, उसमें फूल होता है। एक सूर्य की किरण आवे, तब खिल निकलता है। खिलने की योग्यता स्वयं की है। सूर्य की किरण आवे और कहीं लकड़ी खिलेगी? समझ में आया? देखो! क्या कहते हैं? ध्यान रखो। इसका अर्थ क्या होता है? कहते हैं, हे नाथ! **जिस प्रकार पुष्प में स्थित कमलिनी, सूर्य की किरणों को पाकर और भी अधिक महिमा को प्राप्त होती है...** उस फूल में कमलिनी जो है, सूर्य की किरण निमित्त है। उपादान उसका खिल निकलता है, प्रभु!

उसी प्रकार समवसरण की शोभा, स्वभाव से ही लोकोत्तर होती है,... धर्मसभा है, भाई! बहुत अलौकिक बातें हैं। समझ में आया? ऐसी धर्मसभा होती है कि चारों ओर बड़े स्वर्ण के स्तम्भ होते हैं। समझ में आया? अपने थोड़ा नमूना किया है वहाँ सोनगढ़ में। एक ... मुम्बई में। समवसरण। मुम्बई, दादर-दादर। (संवत्) २०२० के वर्ष में किया था। क्या था पूर्व का रूप, अरिहन्त सर्वज्ञ विराजें, उनकी शोभा कैसी होती है, उसका थोड़ा नमूना। यहाँ कहाँ चँवर तीन स्वर्ण के कर सके? चिमनभाई! और सोनेवाले कहाँ सोना निकाल दे ऐसा है अन्दर से। ... इसके पिता को ... परन्तु वह निकाले तब होवे न! समझ में आया? क्योंकि किसी का निकाला कहीं निकले ऐसा है? परन्तु सोना कहाँ आत्मा का है, वह निकाले और रखे। वह तो जड़ चीज़ है। आहाहा! राग मन्द करे तो उस चीज़ का पलटा होना हो तो होता है। राग तीव्र करे तो, उस चीज़ का पलटा बाहर में जड़ में विषय भोग में आदि होना हो वह होता है। अरे रे! भारी बात, भाई!

यहाँ कहते हैं कि जब भगवान आत्मा, समवसरण में शोभा प्रभु! लोकोत्तर ही होती है। ऐसी बातें अभी साधारण प्राणी को कैसे जँचे? क्योंकि अभी आत्मा की कीमत नहीं, उसे पुण्य की कीमत में तो कुछ नहीं आत्मा के हिसाब से। आत्मवैभव की अपेक्षा से उस बाहर के वैभव की कुछ कीमत नहीं है। किन्तु फिर भी वह वैभव भी धर्मात्मा जीव को पूर्व में पुण्य किया है, उसके फलरूप से जब आता है कि जिस पुण्य की शोभायें लोगों

को नहीं बैठे, ऐसी होती है। भगवान परमेश्वर तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा का—चिदानन्द स्वरूप का सम्यग्दर्शन पुण्य-पाप के राग से भिन्न है, ऐसा भान हो, उस जीव को कहीं राग बाकी (रहे), उसका पुण्य बँधता है। वह जब स्वर्ग में जाता है... समझ में आया? इतना उसका पुण्य होता है कि स्वर्ग के देव की सभा में वह बैठा हो... मौनरूप से, देव दो-चार खड़े होकर बोले, कुछ बोलो... कुछ बोलो। आत्मा का आराधन करके गये हैं और पुण्य बाकी थे। कुछ बोलो मौन क्यों रहे? वह तो आत्मा के ज्ञान में हो, वहाँ भी। और वहाँ से निकलकर मनुष्य में अवतरित होता है।

.... शास्त्र में है, तीसरे अध्ययन में। बहुत नाम है, रत्नकरण्डश्रावकाचार में है कि जहाँ-जहाँ वह आत्मा आराधक आत्मा की सेवा करके जिसे कुछ राग बाकी रहा, उसके पुण्य में अवतरित होता है, उसके आसपास के पत्थर के... उस पत्थर के नीलम के पाट हो जाते हैं। अरेरे! कैसे जँचे यह? समझ में आया? यह पत्थर की खान होती है, खान? यह कोयला पकते हैं और हीरा? हीरा किसमें पकता है? कोयले में पकता है। उसी प्रकार पुण्यवन्त प्राणी जहाँ रहता है, वहाँ आसपास के पत्थर के दल बदल जाते हैं और माणिक और नीलमणि हो जाते हैं। आहाहा! दूसरे के पास घर टैक्स को क्या कहते हैं यह? पशु कर और यह सब करते हैं न अभी? यह राजा ऐसा नहीं होता। वह तो पापी, वह तो पापानुबन्धी पुण्यवाला है।

धर्म का आराधन करके जो पुण्य के फलरूप से महाराजा या राजा हुए हों, उनके पुण्य का भाग दूसरे से लेना नहीं पड़ता। वे जन्मे, वहाँ कुदरत के पत्थर बदल जायें और या लाखों मछलियाँ समुद्र में हों, लाखों मछलियों में मोती पके। लोग कहते आवे कि यह पुण्यवन्त प्राणी हमारे में से भाग नहीं लेता। पूर्व के पुण्य का फल आवे, वहाँ बदल गया यह सब चक्कर। सेठ! क्या होगा यह? बात-बात में अन्तर लगता है।

भगवान! तुझे खबर नहीं, नाथ! तेरे शुभभाव का भी इतना फल है। धर्म के भानवाले को, हों! भान बिना का पुण्य करे, वह तो साधारण प्राणी हो और साधारण जाता है। आत्मा का शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का आराधन, सेवन किया है, दर्शन, ज्ञान का आराधन (किया है), उसे जो राग आवे, उसे ऐसी स्थिति फल में खड़ी होती है मनुष्यरूप से। सुन्दर शरीर इत्यादि इत्यादि... दुनिया में इज्जत बहुत। उसे दुनिया से भाग

लेने जाना नहीं पड़ता।

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! आपके समवसरण की शोभा तो पूर्व के पुण्य के कारण स्वभाव से ही है। **तथापि हे जिनेन्द्र! आपके चरण-कमलों को पाकर वह और भी अत्यन्त महिमा को धारण करती है।** यह समवसरण आपका चरण पड़ा, वहाँ शोभायमान हो गया है। ऐसे पूर्व के पुण्य के पीछे पवित्रता की महिमा करते हैं। अरे रे! समझ में आया? **एक तो कमलिनी स्वभाव से ही अत्यन्त मनोहर होती है, किन्तु यदि वही कमलिनी, सूर्य की किरणों को प्राप्त हो जाये तो और अधिक महिमा को प्राप्त होती है...** क्या कहते हैं? भगवान! आपकी धर्मसभा में जो मनुष्य होते हैं, सभा में सुनने (आते हैं), उस जीव का कलेजा-हृदय आपकी वाणी पड़े, वहाँ खिल जाता है। समझ में आया? परन्तु वह खिलने की योग्यतावाला हो, वह खिलता है। सूर्य उगे (तो) कमल खिलता है, परन्तु संगमरमर की कली और संगमरमर के कमल बनाये हों, वे खिलेंगे? संगमरमर की कली बनाते हैं न? संगमरमर के बनाये थे, क्या कहलाता है? ... यह सब संगमरमर के बनते हैं, हों! वह सूर्य के किरण से खिलता होगा?

भगवान! आपकी धर्मसभा में जो मनुष्य होते हैं, सभा सुनने, उस जीव का कलेजा-हृदय आपकी वाणी पड़े, वहाँ खिल जाता है। समझ में आया? परन्तु वह खिलने की योग्यतावाला हो, वह खिलता है। सूर्य उगे, कमल खिले, परन्तु संगमरमर की कली और कमल संगमरमर का बनाया हो, वह खिलेगा? संगमरमर की कलियाँ होती हैं न? संगमरमर के सब होते हैं, क्या कहलाता है? चीभड़ा यह सब (होता है)। संगमरमर के बनते हैं, हों! वह सूर्य के किरण से खिलता होगा? ....

नाथ! आप जब समवसरण में विराजते हो, तब... तो ऐसा ही निमित्त-निमित्त योग होता है। समझ में आया? कि धर्म के समझनेवाले उनके समवसरण में ऐसी योग्यतावाले होते हैं। ... वे ... जाये तो समझ जाते हैं। आहाहा! ... वाणी का प्रपात पड़ता है। जहाँ आत्मा की बात... उसे सुनकर खिल निकलते हैं। प्रभु! आपकी कृपा हुई। आपकी शोभा है, ऐसा कहते हैं। है तो उसकी योग्यता परन्तु आपके कारण यह सब शोभता है, ऐसा कहकर... दशा में साधक जीव विकल्प द्वारा भक्ति करते हैं। उसे पुण्यबन्ध होता है। ... एकाग्रता होने पर शुद्धता होती है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - ८ से १५, प्रवचन-८०२

पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का सिद्धान्त शास्त्र है। उसमें यह स्तुति का १३वाँ अधिकार है। पद्मनन्दि आचार्य मुनि थे। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते थे। परमेश्वर पूर्ण परमात्मा, उनकी भक्ति करने का उनको विकल्प आया। भक्ति करने में भी उनकी कितनी मग्नता है और कितनी विविधता है, यह बताते हैं। धर्मीजीव को वास्तव में, यहाँ ८वीं गाथा में अपने आया है, वहाँ से ऋषभदेव भगवान की स्तुति का प्रारम्भ किया है।

प्रभु! आप जब सर्वार्थसिद्धि में थे, तब जब उसकी सिद्धि और शोभा थी, वह शोभा आपको कारण थी। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते थे और वहाँ पुण्य के कारण से संयोग था। परन्तु प्रभु! हम तो ऐसा देखते हैं, पद्मनन्दि आचार्य भक्त कहते हैं, प्रभु! आपकी आनन्द की जो शोभा थी, उस कारण से सर्वार्थसिद्धि की शोभा दिखने में आती थी। आप अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करनेवाले मुनि, देव वहाँ तो देव थे, पूर्व में मुनि था ऋषभदेव भगवान का आत्मा। मुनि अतीन्द्रिय आनन्द में बहुत मस्त थे। उसमें आयुष्य पूरा हुआ, सर्वार्थसिद्धि में गये तो प्रभु! वह सर्वार्थसिद्धि की शोभा आपको लेकर थी। आप नीचे उतर गये तो वह शोभा नष्ट हो गयी। ऐसे धर्मात्मा परमात्मा की भक्ति करते हैं।

बाद में कहा, नाथ! आप जब यहाँ आये, तब नाभिराजा के घर पन्द्रह मास तक लक्ष्मी की वृष्टि हुई। प्रभु! जमीन को वसुमति आपके आये बिना पहले नहीं कहलाती थी। आप आये तब जो पन्द्रह महीने वृष्टि हुई, उस कारण से जमीन को—पृथ्वी को वसुमति कहने में आती है। समझ में आया? वह आत्मा की लक्ष्मी के कारण, पुण्य के कारण वह लक्ष्मी आयी, इसलिए पृथ्वी को वसुमति कहते हैं। वहाँ तक तो आ गया है। ८वीं गाथा चलती है। अब माता का नाम लेते हैं।

सच्चियसुरणवियपया, मरुएवी पहु ठिऊसी जं गब्भे।
पुरउ पट्ठो बज्झइ, मज्झे से पुत्तवंत्तीणं।।८।।

क्या कहते हैं? नाथ! आप जब तीन ज्ञान और आनन्द का अनुभव लेकर यहाँ माता

के पेट में-गर्भ में आये, तब माता धन्य हो गयी। समझ में आया? वहाँ इन्द्र आकर उसको नमस्कार करते हैं। किसको? माता को। कल कहा था, आनन्द का अनुभव करते हैं, गर्भ में आने के बाद भी आनन्द का अनुभव है। आहाहा! सम्यग्दर्शन है। आत्मा शान्त अनाकुल आनन्द (स्वरूप है), ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई है। तो गृहस्थाश्रम में गर्भ में है तो भी ऋषभदेव भगवान का आत्मा वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता था। उस कारण से कहते हैं, कि परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर आप माता के उदर में आये तो माता धन्य हो गयी। और माता को... ऐसा कहा है, देखो!

हे नाथ! **हे जिनेन्द्र प्रभो! आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित हुए थे, इसलिए मरुदेवी माता, इन्द्राणी तथा देवों से नमस्कार योग्य हुई थी...** जिसके चरण में इन्द्रों ने नमस्कार किये। **अत: जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ हैं, उन सबमें मरुदेवी का ही पद सबसे प्रथम है।** भक्तामर में आता है न?

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा-
न्नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्कुकदंशुजालम्।।२२।।

सब दिशा है, परन्तु पूर्व दिशा ही सूर्य को जन्म देती है। इसी प्रकार अनेक माता हैं, परन्तु आपकी माता ने आपको प्रसव दिया, वह माता धन्य है। वह माता-पिता, दो सीप के मोती में परमात्मा आते हैं। समझ में आया? माता भी और पिता भी अल्प काल में मुक्ति पाने के लायक (होते हैं), उसमें आते हैं। वह कहते हैं, माता-पिता भी अल्प काल में मुक्ति पाने लायक हैं उसमें वे आते हैं। तो कहते हैं कि आप आये, उपादान तो उसका है, समझ में आया? लेकिन धन्य हो गये आप! और इन्द्र भी पहले नमस्कार करता है। कल कहा था। उसने कहा, माता! नमो रत्नकूखधारिणी! ऐसा चैतन्यरत्न का अनुभव लेकर आये और पूर्ण ज्ञान, इस भव में केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले, ऐसे आत्मा को आप गर्भ में रखे हैं, धन्य है! रत्नकूखधारिणी! ऐसे रतन को कूख में रखनेवाली माता! देव और इन्द्राणी कहते हैं कि आपको हमारा नमस्कार है। समझ में आया? और वहाँ तक कहा कि...

पुत्र तमारो धणी हमारो, तरण तारण जहाज रे...
माता जतन करके रखना इनको,

गुजराती भाषा है,

तम सुत हम आधार रे...

हे माता! आपका पुत्र हमारा तरणतारण है। समझ में आया? तरणतारण। तिरेगा और हमें तिरने में वह निमित्त होगा। तरणतारण है। माता! जतन करके रखना। आपका पुत्र है, हमारा धनी है। आपका सुत, लेकिन जगत का नाथ है। उसकी रक्षा करना। ऐसी भक्ति का भाव इन्द्रों को भी आता है। वह ८वीं गाथा में कहा।

वास्तव में तो ऐसी बात है, ये तो व्यवहार से निमित्त से कहाँ जन्मे थे, वह बात कहते हैं। निश्चय में तो अपनी माता, अनुभूति जो है, वह अपनी माता है। समझ में आया? प्रवचनसार में चरणानुयोग अधिकार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने लिया है और अमृतचन्द्राचार्य ने उसकी टीका-स्पष्टीकरण किया है। जब वैराग्य होता है, आत्मा को आनन्दस्वरूप की दृष्टि होती है और पूर्णानन्द साधने को दीक्षित होता है, तब माता-पिता के पास आज्ञा लेते हैं। जनक! इस शरीर के जनक! इस आत्मा के तुम जनक नहीं हो। हमारे पिता, हमारा आनन्दकन्द स्वरूप भगवान, उसके अनुभव में आनन्द में रहना, वह हमारे पिता हैं। समझ में आया? तुम तो शरीर में निमित्तरूप से जनक-पिता हो। हमारे पिता अन्तर आनन्द अनाकुल शान्त चैतन्यमूर्ति, उसमें जो निर्मल आनन्द की सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, उस पर्याय का नाथ-पिता तो हमारा आत्मा है। धन्नालालजी! और माता भी हमारी अनुभूति माता है। आहाहा! पण्डितजी! वह चरणानुयोग में (२०२ गाथा में) आया है। '**आपिच्छ बंधुवग्गं**' उस टीका में है। बन्धुवर्ग को पूछते हैं, हे बन्धुवर्ग! हमारी माता और हमारे पिता तो अन्दर आनन्दकन्द स्वरूप की दशा में हमारे माता-पिता हैं। तुम तो शरीर के जनक निमित्त कहने में आते हो।

यहाँ निमित्त से पहचान करते हैं। पहचानने में निमित्त कहा है। मरुदेवी माता, उसको बाह्य संयोग से माता कहने में आती है। अन्तर अनुभूति आत्मा, सम्यग्दर्शन हुआ तब से आत्मा अन्तर की भक्ति, अन्तर आनन्द की करता है। अन्तर के आनन्द की भक्ति

करता है, उसका नाम निश्चय-सच्ची भक्ति है। परन्तु वह उसमें रह सकता नहीं, इसलिए सर्वज्ञ परमेश्वर का जहाँ-तहाँ लक्ष्य करके (भक्ति करते हैं)। क्योंकि समकिती को मोक्ष साध्य है। क्या ? मोक्ष साध्य है। ध्येय पूर्ण आत्मा है। परन्तु साधनी है पूर्णानन्द की मोक्ष दशा। तो मोक्ष साध्य है तो सम्यग्दृष्टि को जहाँ-तहाँ मोक्ष जानेवाले प्राणी उसकी दृष्टि में आते हैं। समझ में आया ? अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा कहाँ है, कैसे है, ऐसे दृष्टि में वही प्रत्यक्ष रहते हैं, नजर में बारम्बार आते हैं। वह भक्ति यहाँ आचार्य करते हैं।

हे नाथ! आप जब माता के कोख में आये तो, आपको मोक्षदशा प्रगट करनी है, मुझे भी मोक्षदशा प्रगट करनी है। मुझे अल्पज्ञ में और राग में रहना नहीं है। सम्यग्दर्शन हुआ, अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि हुई तो अल्पज्ञ में और राग में रहना नहीं है। राग का अभाव और अल्पज्ञ का अभाव करके सर्वज्ञ और वीतराग होना है। समझ में आया ? अल्पज्ञ वर्तमान है, राग है, उसका अभाव करके सर्वज्ञ और वीतराग होना है। उस कारण से सर्वज्ञ वीतराग की स्तुति एवं प्रशंसा समकिती करते हैं। समझ में आया ? वह यहाँ भक्ति की।

वास्तविक भक्ति, समयसार में चला है। सुना है ? कुन्दकुन्दाचार्य को शिष्य ने प्रश्न किया। ३०वीं गाथा पूरी करके ३१वीं गाथा शुरु हुई। उसमें (कहा), प्रभु! केवलज्ञानी तीर्थंकर की स्तुति किसको कहते हैं ? समझ में आया ? ऐसा प्रश्न किया है। समयसार-३१ गाथा के उपोद्घात में। परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी अनन्त आनन्द सम्पन्न, ऐसे भगवान की स्तुति प्रभु! आप किसको कहते हो ?

उत्तर दिया, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने उत्तर दिया कि जो कोई प्राणी इन्द्रिय-भावेन्द्रिय—खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय जड़ और उसका विषय पर, तीनों का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा में एकाग्र होता है, वह केवली की स्तुति और भक्ति करता है। समझ में आया ? अमरचन्दभाई! ऐसा प्रश्न पूछा है। महाराज! केवलज्ञानी की स्तुति और केवलज्ञानी परमात्मा की भक्ति किसको कहते हैं ? पर केवलज्ञानी की स्तुति में तो विकल्प उठता है परन्तु निश्चय से केवलज्ञान की स्तुति उसको करते हैं, **'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं'।** जो कोई प्राणी, ये परपदार्थ, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शुभ या अशुभ, सबका लक्ष्य छोड़कर ये पाँच जड़ इन्द्रिय है, उसका लक्ष्य छोड़कर और खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, एक विषय को जाननेवाला ज्ञान का खण्ड भाग, उसकी रुचि, लक्ष्य

छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा भगवान, उसकी अन्दर रुचि करके एकाग्र होता है, वही भगवान की स्तुति करता है। समझ में आया? पूछा ऐसा तो जवाब ऐसा दिया।

पूछा कि भगवान की स्तुति कैसे करनी? कैसे होती है? सुन तो सही। भगवान अपना आत्मा अनाकुल आनन्द और पूर्ण सर्वज्ञपद से भरा पड़ा है, इन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, ऐसे अल्पज्ञ, राग और विषय से हटकर ज्ञानस्वभाव से मैं भिन्न—अधिक हूँ, ऐसी अन्तर में दृष्टि अनुभव करना, वह वास्तव में केवली की तीर्थंकर की स्तुति करता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! प्रेमचन्दजी! देखा है या नहीं? उसमें वह सब है, ३१ गाथा के पहले। सब बात बहुत बार आ गयी है। आत्मधर्म में भी आ गयी है। भाई! वास्तविक स्तुति एवं भक्ति तो यह है। परन्तु जब तक वीतराग और केवलज्ञान आत्मा को नहीं हो, तब तक वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, उनकी भक्ति करने का भाव आये बिना रहता नहीं। बहुमान करते हैं कि अहो नाथ! आपकी क्या लक्ष्मी और आपकी क्या स्वरूपस्थिति! हम तो तृणतुल्य हैं, ऐसा मानते हैं। सम्यग्दृष्टि अपना श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति को अल्प देखकर, पूर्ण सर्वज्ञ को देखकर अपने को तृण समान मानते हैं। स्वरूप में पूर्ण प्रभुता मानते हैं, पर्याय में तृण समान मानते हैं। अहो! कहाँ हमारा ज्ञान और कहाँ केवलज्ञान! कहाँ हमारी स्थिरता—अंश, और कहाँ सर्वज्ञ की पूर्ण पूर्ण स्थिरता!! ऐसे अपनी पर्याय में (तृण समान मानते हैं)।

स्वामी कार्तिकेय में ऐसा श्लोक है कि अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का नाश होकर, अपने स्वरूप का अनुभव सम्यग्दृष्टि को होता है। वह अपनी पर्याय में स्वयं को तृणतुल्य मानते हैं। यहाँ सब पुस्तक नहीं है। वह सब आत्मधर्म में आ गया है। समझ में आया? अपने को तृण (समान मानते हैं)। अरे! मैं कहाँ, कहाँ सर्वज्ञ परमेश्वर! जिनको एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक का पता है और आनन्द की परिपूर्णता का वेदन है। अकेले वीतरागभाव का वेदन है। मेरे में तो राग है, अल्पज्ञ हूँ, अल्प स्थिरता है, भगवान को पूर्ण स्थिरता है। ऐसा देखकर उनकी भक्ति और बहुमान आये बिना रहता नहीं। आचार्य महाराज वह स्तुति करते हैं। वनवासी मुनि थे। (इस) शास्त्र को वनशास्त्र कहने में आता है।

९वाँ श्लोक। पहले पिता लिये, फिर माता ली। अब, इन्द्र लेते हैं। जब इन्द्र गोद में लेते हैं न, माता के पास से ?

अंकत्थे तइ दिट्ठे, गच्छता सुरालयं सुरिंदेण।
अणिमेसत्तबहुत्तं, सयलं णयणाण पडिवण्णं।।९।।

अंकस्थे त्वयि दृष्टे, गच्छता सुरालयं सुरेन्द्रेण।
अनिमेषत्वबहुत्वं, सफलं नयनानां प्रतिपन्नम्।।

हे नाथ! **जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत की ओर चला था...** वहाँ से लेते हैं न ? सर्वार्थसिद्धि से लेकर स्तुति करते हैं। जब आत्मा को ऐसा होता है, ऐसा है ऐसा अस्तित्व सिद्ध करते हैं और उनके गुण का गुणग्राम भी करते हैं। कोई कहे कि ऐसा क्या ? जन्म हुआ बालक का, उसको मेरुपर्वत पर ले जाये और एक हजार आठ कलश से (अभिषेक करते हैं)। बड़े-बड़े होते हैं या नहीं ? कलश कैसे होते हैं ? बड़ा। आठ योजन का लम्बा और पाँच योजन का मध्य में (होता है)। यहाँ तो अभी जन्मा बालक हो, उस पर पानी का लोटा डाले तो मर जाये। जन्म का पहले दिन का हो, पानी का लोटा डाले तो मर जाये। ये तो अभी जन्म हुआ है, अभी एक दिन भी नहीं हुआ है। जन्म हुआ है।

कहते हैं कि हे नाथ! इन्द्र जब आपको हाथ में लेते हैं, माता की गोद से लेकर, देखो! आत्मा का इतिहास। तीर्थंकर होने का इतिहास कहते हैं और उनकी आस्था करके भक्ति करते हैं। **जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत की ओर चला था और जब आपको अपनी गोद में बैठे हुए देखा था...** गोद में रखा था। **उस समय उसके नेत्रों का निमेष (पलक) से रहितपना....** क्या कहते हैं ? देवों की आँख में पलकपना नहीं है। ऐसे ही रहते हैं। तो कहते हैं कि उसकी आँख वैसी की वैसी रही, उसका सफलपना कब हुआ ? कि आपको गोद में देखा, तब सफलपना हुआ। समझ में आया ? नहीं तो देव की आँखें ऐसी नहीं होती, अपने जैसी नहीं होती। वैसी की वैसी रहती है। परन्तु कहते हैं कि वैसी की वैसी रहती हैं, उसका सफलपना कब हुआ ? कि आप गोद में बैठे हो और ऐसे नजर की हजार आँख करके, (तब सफलपना हुआ)।

चैतन्यरत्न तो अन्दर है, परन्तु उसका डिब्बा, डिब्बी कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? डिब्बी। डिब्बी भी ऊँची है। समझ में आया ? हीरा करोड़ रुपये का होता है, बड़ा-बड़ा

लाखों का (होता है) तो जिस डिब्बी में रखते हैं, वह डिब्बी भी ऊँची होती है। सुना है? तुम्हारे पास से लाये थे न? राजकोट। नानालालभाई कालीदास करोड़पति झवेरी है न? एक बार हमारे पास बेचरभाई लाये थे। एक अस्सी हजार का हीरा, एक साठ हजार का हीरा। दो लाये थे। वह डिब्बी ऐसी थी, अस्सी हजार का हीरा रखने की, वह डिब्बी ही अलग जाति की थी। अन्दर मखमल, खड्डा, ऐसे उसको ढके तो दबे नहीं ऐसी। वह डिब्बी भी ऐसी होती है। प्रेमचन्दभाई! हीरा जिसमें रहे, वह डिब्बी भी अलग जाति की होती है। ऐसे जिसमें आत्मा आनन्दकन्द ऐसा चैतन्यरत्न रहता है, उसका शरीर भी अलग प्रकार का होता है। यह शरीर डिब्बी है। परन्तु परमात्मा होनेवाले हैं और तीन ज्ञान लेकर आये हैं, चैतन्यरत्न जिस शरीर में रहा है, वह शरीर की डिब्बी वज्र जैसी है।

तीर्थंकर का शरीर जन्म से परम औदारिक है। जन्म से परम औदारिक है। दूसरे को तो केवलज्ञान हो, तब परम औदारिक होता है। (ये तो) जन्म से (होता है)। उसको लेकर कहते हैं, इतना सुन्दर रूप, इन्द्र हजार करने से भी तृप्ति नहीं होती। वह पुण्य प्रकृति है। अन्तर की बात तो कहते हैं, अनिमेष का अर्थ—अन्तर में आत्मा को अनिमेष—राग का लक्ष्य छोड़कर टग... टग... टग... लगाकर आत्मा को देखते हैं, तब उसके ज्ञान की पर्याय का नेत्र का सफलपना हुआ। अन्तर में ऐसा है।

अन्तर के ज्ञाननेत्र अपने चिदानन्दस्वरूप को एकाग्र होकर सम्यग्दृष्टि अवलोकन करते हैं, तब उसकी ज्ञानपर्याय का सफलपना हुआ, ऐसा कहने में आता है। बाकी शास्त्र का पढ़ा हुआ, लिखा हुआ चाहे जो हो, परन्तु अपनी वर्तमान ज्ञानपर्याय, उसको नेत्र बनाकर अन्दर अपना ज्ञेय नहीं बनाया तो ज्ञान की पर्याय का सफलपना है नहीं। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ये तो मुनियों की, दिगम्बर सन्त मुनि वनवासी की भक्ति है। निश्चय के भानसहित भक्ति तो अलौकिक होती है।

कहते हैं, अन्तर में भगवान आत्मा,... पर को तो अनादि से देखता है। परन्तु अपनी ज्ञान की विकास शक्ति अर्थात् शास्त्र भाषा जिसको क्षयोपशम कहते हैं। उस विकास को अन्दर में लेकर चैतन्य को देखना, चैतन्य पूर्ण को ज्ञेय बनाना, अपनी ज्ञानपर्याय में पूर्ण चैतन्य को ज्ञेय बनाना, तब उस ज्ञानपर्याय की सफलता है। समझ में आया? नहीं तो उस ज्ञान का विकास लोककार्य में पर में लगा देता है, वह ज्ञान का सफलपना नहीं है, वह ज्ञान

तो बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? वह कहते हैं। दो बात कहते हैं।

अन्तर में ज्ञानचक्षु द्वारा, राग द्वारा नहीं, विकल्प द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। अन्तर ज्ञानचक्षु द्वारा भगवान अन्तर पूर्णानन्द को ज्ञेय बनाया, ज्ञान की पर्याय सफल हो गयी। और जब भगवान का शरीर देखा तो विकल्प सफल हो गया, ऐसा पुण्य बँध गया। तब इन्द्रिय सफल हुई, शरीर इन्द्रिय का जो मेषोन्मेष था, स्वर्ग का देव को ऐसा नहीं होता। भगवान! आपको देखा तब उसकी मेषोन्मेष दृष्टि सफल हुई। नहीं तो वह सफल नहीं थी। समझ में आया? वह कहा, देखो!

उसके नेत्रों का निमेष (पलक) से रहितपना और बहुतपना (सहस्रपना).... बहुतपना अर्थात् हजार नेत्र करते हैं न? एक-दो आँख से नहीं देखते। हजार नेत्र करते हैं। हजार नेत्र का और मेषोन्मेष रहितपना आपको देखा तब सफल है। आपको देखे बिना सफल है नहीं। दो शब्द है। किसी को ज्ञान का विकास बहुत हो गया। ग्यारह अंग और पर्व का बढ़ गया हो। परन्तु अन्तर में ज्ञेय बनाकर जाने नहीं तो उसके ज्ञान का सफलपना कुछ है नहीं। समझ में आया? वह ९वीं गाथा कही।

फिर आगे कहते हैं, प्रभु! पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं, प्रभु! आपको जब मेरुपर्वत पर ले गये न? तब आपको वहाँ स्नान कराया। उसके बहाने उनकी भक्ति करते हैं। देखो, क्या (कहते हैं)?

तित्थत्त णमावण्णो, मेरू तुह जम्मण्हाणजलजोए।
तत्तस्स सूरपमुहा, पयाहिणं जिण कुणंति सया।।१०।।
तीर्थत्वमापन्नो, मेरुस्तव जन्मस्नानजलयोगेन।
तत् तस्य सूरप्रमुखाः, प्रदक्षिणां जिन! कुर्वन्ति सदा।।

हे नाथ! मैं तो ऐसा देखता हूँ कि मेरुपर्वत को जब से आपके जन्मस्नान के जल का योग हुआ, तब से तीर्थ बन गया। समझ में आया? मेरुपर्वत पर आपका जन्मस्नान हुआ, तब तीर्थ हो गया। क्यों तीर्थ हुआ? कि पवित्र हो गया, जल के स्नान के कारण। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि तब से ये चन्द्र-सूर्य मेरुपर्वत के आसपास फिरते हैं, वह तीर्थ मानकर फिरते हैं। समझ में आया? देखो!

हे प्रभु! **जिस समय आपका जन्म-स्नान (जन्माभिषेक), मेरुपर्वत पर हुआ था, उस समय उस स्नान-जल के सम्बन्ध से मेरुपर्वत भी तीर्थपने को प्राप्त हुआ था अर्थात् तीर्थ बना था; इसी कारण हे जिनेन्द्र! उस मेरुपर्वत की सूर्य, चन्द्रमादि...** ज्योति समझते हो? चन्द्र सूर्य। एक चन्द्र होता है, एक सूर्य यहाँ है। वैसे तो जम्बू द्वीप में दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। ढाई द्वीप में के बाहर असंख्य चन्द्र सूर्य हैं। परन्तु आज, जो दिन में सूर्य आया, वह कल नहीं आयेगा। समझ में आया? ये सूर्य आज का है, वह कल नहीं आयेगा। कल दूसरा आयेगा। एक-एक सूर्य और चन्द्र, उसके साथ ८८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारा (होते हैं)।

कहते हैं, भगवान! ये जो ज्योतिष चक्र होता है न? मेरुपर्वत लाख योजन का है, उसका चक्कर लगाते हैं। प्रभु! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि मेरुपर्वत आपके जल स्नान से तीर्थ हो गया है। इसलिए ज्योतिष चक्र चक्कर लगाते हैं। उत्तम चीज़ को परिक्रमा देते हैं, उत्तम चीज़ को परिक्रमा देते हैं। वह उत्तम चीज़ कब बनी? कि आपके जन्मस्नान से तीर्थ हुआ तब। समझ में आया? कोई नया नहीं है, हों! परिक्रमा तो अनादि की है। परन्तु अनादि का मेरुपर्वत है, तीर्थंकर को ले जाते हैं, वह भी अनादि का है। कोई नयी चीज़ नहीं है। अनादि काल से तीर्थंकर होते हैं और तीर्थंकर का जन्मस्नान वहाँ होता है। जन्म का जलस्नान। हजार-हजार कलश से... समझ में आया? जलस्नान करे और शरीर को थोड़ा भी दु:ख नहीं हो और शरीर में कोई खेद नहीं हो, वैसा का वैसा रहे, ऐसा तीर्थंकर का शरीर होता है। दूसरे का शरीर ऐसा होता नहीं। शरीर अर्थात् पूर्वपुण्य का फल भी साथ में ले लिया। भगवान! आपने ऐसा पुण्य बाँधा (कि) जिसको जन्म से परम औदारिक शरीर मिला। ऐसा पुण्य सम्यग्दृष्टि को होता है, सम्यग्दृष्टि बिना ऐसा पुण्य होता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, निजघर को प्राप्त हुआ। जब तक वीतराग नहीं हो, जब तक उसको शुभभाव भक्ति का, दया का, दानादि का आता है। उसमें ऐसा पुण्य बन्ध जाये कि संयोगी चीज़, दूसरे से प्रतिकूल नहीं होकर बहुत अनुकूल हो जाती है। ये शरीर तो संयोगी चीज़ है। शरीर भी आपका ऐसा हो गया (कि) हजारों कलश से स्नान करने पर भी आपके शरीर में कोई दु:ख हुआ नहीं और तब से मेरुपर्वत तीर्थ हुआ, ऐसा

मुझे लगता है। आचार्य कहते हैं कि मुझे तो लगता है कि तीर्थ तब से हुआ। मेरुपर्वत को ज्योति चक्र चक्कर लगाते हैं, वह इस कारण से तीर्थ हुआ और ज्योतिषचक्र चक्कर लगाते हैं। समझ में आया?

अब, पानी की बात करते हैं।

मोरुसिरे पडणुच्छलिय,–णीरताडणपणट्ठदेवाणं।
तं वित्तं तुह ण्हाणं, तह जह णहमासियं किण्णं।।११।।

मेरुशरसि पतनोच्छलन–नीरताडनप्रनष्टदेवानाम्।
तद्वृत्तं तव स्नानं, तथा यथा नभाश्रितं कीर्णम्।।

क्या कहते हैं? उनका शरीर कितना दृढ़ है, वह बात करते हैं। हे नाथ! **मेरुपर्वत के मस्तक पर आपका स्नान होने पर,...** इतना पानी गिरा, **जल–पतन से उछलते हुए जल के ताडन से अत्यन्त दुःखी, उन देवों की ऐसी दशा हुई,...** देव पर पानी पड़ने से भागते हुए। ... देह ऐसा था, उस पर इतना पानी गिरा... उस पानी के कारण देव भाग गये। ऐसा पानी का प्रहार गिरा, लेकिन आपके ऊपर पानी का प्रहार गिरा उसमें आपको कुछ हुआ नहीं। समझ में आया? वह बात करते हैं।

आचार्य की स्तुति अभ्यन्तर सहित की महिमावाली है। तो कहते हैं, ऐसी दशा देवों की होती हुई, मानों **चारों ओर से आकाश ही व्याप्त हो गया।** पानी गिरा तो देव ऊपर चले गये, आप तो वहीं स्थिर रहे। समझ में आया? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय अनुभव में भगवान तो बैठे हैं, शरीर भिन्न है। आठ–आठ योजन का लम्बा बड़ा कलश, (ऐसे) एक हजार आठ। क्षीरोदधि से लाते हैं न? क्षीरोदधि। हार... हार (कतार)। देवों की कतार (लगती है)। नीचे नहीं रखते, एक से हाथ में हाथ लेकर (जाते हैं)। कहते हैं, इतना पानी गिरा कि देव भाग गये, ऊपर उड़े, लेकिन आप तो वहीं स्थिर रहे। इतनी आपके शरीर में भी ताकत है। आत्मा के आनन्द की ताकत तो आपके अनुभव में आ गयी है। लेकिन पुण्य के कारण शरीर ऐसा मिला कि पानी के ताड़न से देव भागे; आप स्थिर रह गये। आपको कुछ हुआ नहीं। प्रेमचन्दजी! है?

मुमुक्षु : भक्ति भी ऐसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति क्या, इन्द्र नाच उठे। घुंघरुं बाँधकर नाचने लगे। समझते हैं कि ये विकल्प है, देह की क्रिया देह से होती है। परन्तु ऐसा भाव भक्ति का, बहुमान का सम्यग्दृष्टि को परमात्मा के प्रति आये बिना रहता नहीं। गैरमौजूदगी हो, भगवान की साक्षात् गैरमौजूदगी हो तो प्रतिमा में भी भगवान है, ऐसा स्थापन करके भक्ति आती है। गैरमौजूदगी हो तो स्थापना निक्षेप में, भगवान ये हैं, ऐसा करके भी सम्यग्दृष्टि को भक्ति का भाव आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो नहीं है, भरतक्षेत्र में तो भगवान तो नहीं थे तो भगवान को नीचे उतारकर (भक्ति करते हैं)। परमात्मा! आपकी क्या स्थिति, जन्म की क्या स्थिति! आपके ऊपर पानी गिरा तो देव भाग गये और आप स्थिर रहे। उतनी आपकी शक्ति शरीर में उतनी है। आत्मा की शक्ति तो अपार-अपार है। समझ में आया? वह ११वीं गाथा में कहा। १२वीं गाथा।

णाह तुह जम्मण्हाणे, हरिणो मेरुम्मि पणच्चमाणस्स।
वेल्लिरभुवाहिभग्गा, तह अज्जवि भंगुरा मेहा।।१२।।

क्या कहते हैं? यह बादल देखते हैं न? बादल। खण्ड... खण्ड... खण्ड... दिखते हैं न? तो आचार्य ने न्याय से अलंकार किया। सुनो! यह बादल के खण्ड-खण्ड है न? भिन्न-भिन्न। भगवान! वह बादल का खण्ड-खण्ड नहीं है। अखण्ड में से खण्ड क्यों हो गया? कि जब इन्द्र आपकी भक्ति करते थे, वह बादल अखण्ड था। आपकी भक्ति करते थे, तब हाथ लम्बा हो गया तो बादल का टुकड़ा हो गया। कटका समझते हो? टुकड़ा। आपकी हिन्दी भाषा पूरी नहीं आती।

हे प्रभु! **आपके जन्म-स्नान के समय इन्द्र ने अपनी लम्बी भुजाओं को फैलाकर नृत्य किया था,...** इन्द्र ऐसा नाच करते थे, नृत्य किया। उन **लम्बी भुजाओं से जो मेघ भग्न हुए थे, वे मेघ इस समय भी क्षणभंगुर ही है।** आज भी बादल का खण्ड-खण्ड दिखता है, वह अखण्ड बादल टूट गया। भक्ति के कारण। हम तो ऐसा कहते हैं। भगवान! अखण्ड कर्म जो अनादि से था, खण्ड नहीं हुआ था, अपने आनन्दस्वरूप की अन्तर अनुभव की दृष्टि हुई, जो अखण्ड बादल था, वह अन्दर में से टूट गया। समझ में आया? ये तो निश्चयसहित व्यवहारभक्ति अलौकिक बात है।

बाहर में कहा, यह बादल दिखते हैं, वह क्या है ? वह तो अखण्ड बादल था, उसका टुकड़ा हुआ। (क्योंकि) इन्द्र ने हाथ लम्बा किया था। और अन्दर में आत्मा अन्दर में शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करके, जहाँ अन्दर में विकास हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्दर आंशिक रूप से हुआ, जो कर्म अखण्ड दर्शनमोह से बँधा था, एक अंश भी भिन्न नहीं हुआ था, दर्शन का भान हुआ तो कर्म का खण्ड-खण्ड हो गया। हमारे पास आठ कर्म है, परन्तु खण्ड-खण्ड थोड़े हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

बादल बाह्य, अन्दर में टुकड़ा, चारित्रमोह का थोड़ा टुकड़ा रह गया है। हमारी अस्थिरता है, परन्तु हमने खण्ड तो कर दिया है। अखण्ड परमात्मस्वरूप की अन्तर्दृष्टि करके अखण्ड जो बादल अथवा मिथ्यात्व कर्म था, (उसका) खण्ड कर दिया। समझ में आया ? आहा !

अब हम अमर भय न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज,
क्यों कर देह धरेंगे, अब हम अमर भये न मरेंगे।
अब हम अमर भये न मरेंगे...

क्यों ? 'या कारण मिथ्यात्व दिया तज,' मैं अखण्ड आनन्दकन्द (हूँ), ऐसी दृष्टि करके मिथ्यात्व भ्रान्ति का मैंने टुकड़ा कर दिया, उसका नाश कर दिया। समझ में आया ?

अब हम अमर भय न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज,
क्यों कर देह धरेंगे,

क्यों कर देह धरेंगे अब ? अब देह हमारा नहीं रहेगा। क्योंकि कर्म का टुकड़ा हो गया। देह एक-दो होगा (तो) उसका नाश करके हम केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। समझ में आया ? ऐसी भक्ति है, भैया ! आनन्दस्वरूप सम्यग्दर्शन के भानसहित मुनि भी परमेश्वर की भक्ति करते हैं तो निश्चय के भान सहित का ऐसा व्यवहार होता है। ऐसा व्यवहार होता है, आता है। जब तक वीतरागता नहीं हो, तब तक ऐसा निश्चय का भान हो तो भी व्यवहार आये बिना रहता नहीं। मानते हैं कि व्यवहार और निश्चय दोनों भिन्न हैं, फिर भी आये बिना रहता नहीं। समझ में आया ? वह कहते हैं।

महाराज ! प्रभु ! आपका दर्शन हुआ। अर्थात् आपका दर्शन अर्थात् अपना दर्शन। समझ में आया ? हमारे मिथ्यात्व का तो नाश हो गया है। थोड़ा चारित्रमोह है। टुकड़ा-

टुकड़ा थोड़ा। स्वरूप की स्थिरता होकर हम केवलज्ञान प्राप्त करेंगे तो उसका नाश हो जायेगा। वह हमारे आत्मा की भक्ति है।

बाद में थोड़ा ऐसा लिया, क्रम से लेते हैं। सर्वार्थसिद्धि से शुरु किया है। क्रम से केवलज्ञान तक ले जायेंगे। फिर कहते हैं, हे प्रभु! आपने जब यहाँ जन्म लिया था, तब जगत के प्राणी को कल्पवृक्ष से आजीविका थी। उस समय कल्पवृक्ष की आजीविका थी न। परन्तु कल्पवृक्ष गये तो आप ही अकेले कल्पवृक्ष रहे। समझ में आया? उसकी थोड़ी बात करते हैं, देखो!

जाण बहुएहिं वित्ती, जाया कप्पद्दुमेहिं तेहिं विणा।
एक्केणवि ताण तए, पयाण परिकप्पिया णाह।।१३।।

हे नाथ! **पूर्व में प्रजाजनों की आजीविका, बहुत से कल्पवृक्षों के माध्यम से होती थी...** पहले दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे न? दस प्रकार के। कोई इच्छा करे, वहाँ दूधपाक की इच्छा करे और दूधपाक मिले, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। वहाँ तो दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, वहाँ जाये और जो चीज़ हो वह मिले। समझ में आया? कोई कहे कि जैसी इच्छा करे, ऐसा मिल जाये। ऐसा कहाँ है? दस प्रकार का है। दूसरा कुछ वहाँ नहीं है। पुडला बन जाओ, ऐसी इच्छा हुई तो वहाँ पुडला बन जाये, ऐसी चीज़ नहीं है वहाँ। दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। उसमें जो फल है, इच्छा होती है तो फल ले लेते हैं।

कहते हैं, नाथ! जिन प्रजाजनों की आजीविका कल्पवृक्ष से थी, वह कल्पवृक्ष कम हो गये, तब **उन कल्पवृक्षों के अभाव में,...** आपने सबकी आजीविका बनायी। समझ में आया? ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। प्रभु! तेरा जीवन ऐसा रहेगा। ऐसा शुभराग था तो लोगों को आजीविका बतायी। निश्चय में आजीविका आत्मा में बतायी। जीवनशक्ति भगवान ने बतायी। भाई! प्रभु! तेरे आत्मा में एक जीवत्व नाम की शक्ति पड़ी है। समझ में आया? उस शक्ति का तुम अवलम्बन लो और तेरी पर्याय में आजीवन शान्ति मिलेगी। रागरहित तेरी आजीविका हो गयी। चैतन्य भावप्राण की तेरी पर्याय में पुष्टि होगी। ऐसी आजीविका आत्मा में बतायी। बाहर में यह आजीविका बतायी। निश्चय और व्यवहार दो आजीविका भगवान ने बतायी है। समझ में आया? गोदिकाजी! यहाँ दो साथ में चलता है। निश्चय के साथ व्यवहार चलता है। अकेला व्यवहार नहीं। जब तक वीतराग नहीं हो,

तब तक निश्चय के साथ व्यवहार आये बिना रहता नहीं।

शक्ति बनायी है। ४७ शक्ति बनायी है न समयसार में? उसमें पहली शक्ति अमृतचन्द्राचार्य ने ली है। जीवत्वशक्ति, जीवत्वशक्ति। जीव का जीवन क्या? जीव का जीवन क्या? क्या शरीर से जीवन, वह जीव का जीवन है? क्या राग से जीवन, वह शरीर का जीवन है? क्या इस दस प्राण से जीवन, वह जीव का जीवन है? नहीं। आहाहा! जीव का जीवन क्या? भगवान आत्मा जीवत्व शक्ति चैतन्य भावप्राण का आधार। आनन्द ज्ञान सत्ता शान्ति आदि भावप्राण। उसका आधार जीवत्वशक्ति अन्दर में पड़ी है। ऐसा शक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा, उसका आश्रय करने से चैतन्य की शान्ति, श्रद्धा-ज्ञान का अस्तित्व जो पर्याय में प्रतीति में भान में अनुभव में आता है, वह जीव का जीवन-जीवत्वशक्ति के कार्य को जीव का जीवन कहते हैं। बड़ी कठिन बात, भाई! समझ में आया? नहीं कहते? महावीर का सन्देश—जियो और जीने दो। जियो और जीने दो, निश्चय में यह है। व्यवहार में तो आयुष्य हो, उतना तुम जियो। और उसका भी आयुष्य होगा तब तक वह जियेगा। निश्चय में तेरा जीवनप्राण अन्दर में पड़ा है—पूर्णानन्द।

४७ शक्ति में पहली शक्ति है, समयसार में। तेरे चैतन्य और आनन्द का ज्ञानप्राण से प्रभु तेरा जीवन है। राग का जीवन, वह आत्मा का जीवन नहीं। शरीर का जीवन, वह आत्मा का जीवन नहीं। आहाहा! समझ में आया? तेरा जीवन प्रभु तेरा जीवन है। 'जीवी जाण्युं नेमिनाथे जीवन' वह आता है न? भक्ति में आता है न? नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं न? हमारे गुजराती में करते हैं, उसमें आता है। 'जीवी जाण्युं नेमिनाथे जीवन, तेरा जीवन प्रभु तेरा जीवन।' वह जीवन क्या? आत्मा अन्दर ज्ञान की मूर्ति है, उसकी दृष्टि लगाकर जीवनशक्ति का कार्य, जीवनशक्ति तो गुण है, गुण का धरनेवाला गुणी—आत्मा है। गुणी पर दृष्टि देने से जीवनशक्ति का कार्य, ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शान्ति का परिणमन हो, वह जीवनशक्ति का कार्य है, वह आत्मा का जीवन है। सच्चा जीवन वह है। 'जीवी जाण्युं नेमिनाथे जीवन।' इस प्रकार जीवन जिये, उसको जीवन कहते हैं, बाकी तो जीवन कहते हैं।

लोगों में तो ऐसा कहते हैं न? जीवन दौरान बाहर में किसी को दुःख नहीं दिया हो, मृत्यु के समय पानी नहीं माँगा हो, रात को जगाया नहीं हो, तो कहे कि इसने जीवन भी जिया और मरा भी ऐसे, ऐसा कहते हैं। कहते हैं या नहीं? धूल में भी जिया नहीं। समझ

में आया ? आत्मा अन्तर में चैतन्य परमात्मा है न वह तो ! शुद्ध आनन्दकन्द है। सुखकन्द। वह आया था न ? निज घर में न आया, उसमें आया था। सुखकन्द अनादि का आनन्द का कन्द है। भगवान ! तुझे मालूम नहीं। उसमें तो केवलज्ञान का कोला पकता है। कोला समझते हो ? क्या कहते हैं ? कोला नहीं होता ? कद्दू। इतना-इतना बड़ा पकता है। उसका पेड़ तो पतला होता है, पेड़ तो पतला होता है और पाक होता है इतना बड़ा-बड़ा कोला पकता है। जिसका नाम हमारे काठियावाड में साकरकोला कहते हैं। साकरकोणा।

वैसे आत्मा अन्दर में अनन्त आनन्दकन्द जो विराजता है, उसकी दृष्टि देने से उसमें से केवलज्ञान का कोला पकता है। केवलज्ञान और अनन्त आनन्द साकरकोला पकता है। ऐसा आत्मा का बीज और ... है। ऐसी बेल आत्मा की है। परन्तु उस आत्मा की खबर बिना पाक कहाँ से आये ? समझ में आया ?

वह कहते हैं कि हे नाथ ! कल्पवृक्ष आप ही हो। निश्चय में कल्पवृक्ष आत्मा तुम ही हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा कल्पवृक्ष। जैसी एकाग्रता करे, उतना फल शीघ्र मिले। कल्पवृक्ष के पास जाये, जो चीज़ हो वह वहाँ मिले। यहाँ भी जो हो वह मिले। यहाँ आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, शान्ति पड़ी है। उसमें जितनी एकाग्रता हो, उतना शीघ्र आत्मा के आनन्द का फल आता है। ऐसा आजीविका का जीवन करनेवाला आत्मा है, उसकी यहाँ प्रशंसा करते हैं। भगवान के नाम से ऐसी प्रशंसा करते हैं। कहो, समझ में आया ?

बाद में १४वीं ऐसा लेते हैं। भगवान का जन्म... सुना है ? आषाढ़ कृष्ण-६ का है। वहाँ अपने लिया था। आषाढ़ कृष्णा-६। (गुजराती) ज्येष्ठ कृष्णा-६ है न ? लेकिन उस समय बरसात थी। यहाँ जन्म हुआ न। आषाढ़ महीना था तो बरसात थी। उस बरसात को देखकर ऐसी उपमा करते हैं, हे नाथ ! ये बरसात आयी, तो पृथ्वी हरे रंग के अंकुर से भरी पड़ी है। पृथ्वी। नये जल में अंकुर उत्पन्न होते हैं न ? पहला अंकुर। बाद में अंकुर नहीं होता। पहले नया जल होता है। उस समय जन्म के काल में बरसात थी। बरसात में पृथ्वी में अंकुर उत्पन्न हुए। अंकुर उत्पन्न होते हुए देखा तो उसमें अलंकार लगाते हैं।

पहुणा तए सणाहा, धरा सि तीए कहं णहो वूढो।
णवघणसमयसमुल्लसिय, -सासछम्मेण रोमंचो।।१४।।

क्या कहते हैं ? आचार्य भक्ति अलौकिक करते हैं ! हे प्रभु ! **आपने ही यह पृथ्वी सनाथ की...** आपने जहाँ जन्म लिया कि पृथ्वी में रोमांच हो गया। रोमांच समझे ? अंकुर। अंकुर को यहाँ रोमांच कहते हैं। **क्योंकि यदि ऐसा न होता तो नवीन मेघ के समय होनेवाले श्वासोश्वास के बहाने इसमें रोमांच कैसे हुए होते?** श्वासोश्वास। जैसे पृथ्वी लेती है न ? रोमांच हुआ। ऐसे नजर करके कहा। दृष्टान्त क्या दिया है ? देखो !

जो स्त्री, विवाह की अत्यन्त अभिलाषिणी है, यदि उसका विवाह हो जाये अर्थात् वह सनाथ हो जाये... तो सनाथता का लक्षण क्या ? **जिस प्रकार उसके शरीर में रोमांच उद्‌गत हो जाते हैं...** शरीर में पुष्टि हो जाती है कि इसका विवाह हुआ है। समझ में आया ? रोमांच उत्पन्न हो जाता है, शरीर में पुष्टि हो जाती है। और **रोमांच के उद्‌गत से उसकी सनाथता का अनुमान कर लिया जाता है; उसी प्रकार, हे नाथ! जिस समय आप पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए, उस समय पृथ्वी में भी रोमांच हुए,...** वह रोमांच यह है। समझ में आया ? नाथ ! आप जो यहाँ आये तो पृथ्वी को रोमांच हो गये हैं। ये अंकुर उसके हैं।

इसलिए उन रोमांचों से यह बात जान ली गयी कि इस पृथ्वी को सनाथ अर्थात् नाथ सहित कर दिया है। दूसरी भाषा में लें तो, वह तो बराबर योग एकसा तो उस पर से आचार्य ने भक्ति का अलंकार किया। नाथ ! ये पृथ्वी में रोमांच क्यों हुआ ? वह आपके कारण से। आप उतरे तो वह सनाथ हो गयी। अनाथ थी, अब तक पृथ्वी अनाथ थी। आपका जन्म हुआ तो सनाथ हो गयी। उस कारण से रोमांच अथवा अंकुर दिखते हैं। अंकुर कहते हैं न ? अंकुर।

ऐसे व्यवहार में तो वह भक्ति बतायी, निश्चय में परमात्मा आप अन्दर में स्थित हो, वह अपनी पर्याय में जब भान प्रगट हुआ तो अनन्त गुण का अंशरूप अंकुर प्रगट हो गये। समझ में आया ? भगवान आत्मा बीज में शुद्ध चैतन्यमूर्ति ध्रुव पड़ा है, उसमें जहाँ दृष्टि दी, एकाकार हुआ तो आत्मा की पर्याय में अनन्त जितने गुण हैं, सब गुण का अंश अंकुर प्रगट होकर सर्वांश गुण सो समकित, ऐसा उनको समकित प्रगट हो गया। समकित होते ही अनन्त गुण का अंकुर प्रगट व्यक्त में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ये मुनि दिगम्बर सन्त है। नग्न मुनि हैं, अन्दर में नग्न हैं। राग से रुखे हैं और बाहर से शरीर में नग्न हैं। मुनि होता है तो ऐसी दशा सहज हो जाती है। अन्तर में आनन्दकन्द में झूलते हैं। बाहर में

विकल्प, वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प उसको नहीं होता। शरीर नग्न दिगम्बर हो जाता है। बाहर में दिगम्बर, अन्तर में रागरहित आत्मा के आनन्द में झूलते हैं।

कहते हैं, हे नाथ! हमारे द्रव्य स्वभाव में, वस्तु स्वभाव में जो अनन्त गुण-शक्तिरूप थे, स्वभावरूप थे, उसकी हम नजर करें, उस पर नजर की तो हमारी पर्याय में अनन्त गुण का अंकुर एक समय में उत्पन्न हुआ तो मैं सनाथ हो गया आत्मा, ऐसा हमको भान हुआ। राग को अपना मानकर मैं अनाथ था। पर को मानकर मैं अनाथ था। समझ में आया?

श्वेताम्बर में एक लेख है, श्रेणिक राजा का। श्रेणिक राजा हुआ न? भगवान का भक्त, जो क्षायिक समकिती (थे) उसमें एक ऐसा लेख लिया है श्रेणिक राजा था। एक अनाथी मुनि थे। अपने में दूसरे मुनि का नाम आता है। वह मुनि ध्यान में थे। वहाँ से श्रेणिक राजा निकले। बड़े हाथी पर बैठे थे। मुनि ध्यान में आनन्द में अन्दर झूलते थे। वहाँ राजा आया। अरे! महाराज! तुम अनाथ हो। तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है। राजा ने कहा। नग्न दिगम्बर। कोई कपड़ा नहीं, कुछ साथ में सेवा करनेवाला नहीं, ये तो अकेले बबूल के पेड़ के नीचे बैठे हों, ध्यान में आनन्द में मस्त। ऐसा देखकर राजा ने कहा, महाराज! तुम अनाथ हो। तुम्हारी सेवा करनेवाला कोई है नहीं। आओ मेरे राज में, तुमको सनाथ बना दूँ।

मुनि कहते हैं, हे राजन! अनाथ तू है। अनाथ है तू। महाराज! हमारी ऋद्धि और रानी की तुमको खबर नहीं है। मैं अकेला नहीं हूँ। क्या है? हजारों रानियाँ हैं। अरबों रुपये एक दिन के आते हैं। मेरे घर पर निधान है। मेरे महल की कोई कीमत नहीं कर सके, ऐसा महल है। सुन राजा! तू अनाथ है, ऐसा हम कहते हैं। महाराज! हमारे राज की ऋद्धि और समृद्धि को आप नहीं जानते हो। नहीं, नहीं; जानता हूँ, खबर है। मैं कहता हूँ कि तू अनाथ है। क्योंकि बाह्य चीज़ का तुझे शरण नहीं। शरण जो अन्दर आत्मा है, उसका तूने शरण लिया नहीं। तू अनाथ है। समझ में आया?

महाराज! उसकी मुझे खबर नहीं था। मैंने आपको अनाथ कहकर आपका अविनय किया। आपको अनाथ कहकर मैंने आपका अविनय किया। मुझे सनाथ मानकर मेरा भी मैंने अविनय किया। मैं सनाथ नहीं था, लक्ष्मी से, कुटुम्ब से, पैसे से मैं सनाथ मानता था। नाथ! मैं सनाथ नहीं हूँ, मैं तो अनाथ था। सच्ची बात है। आप सनाथ हैं। आपकी सामग्री सज्जन की अनन्त गुण, अनन्त गुणरूपी सज्जन जो अन्दर पड़ा है, सनाथ-गुण का सनाथ,

उसकी आपने सम्हाल लेकर पर्याय में प्रगट किये, तो आप ही सनाथ हो। समझ में आया? हम तो प्रभु अनाथ हैं। आप हमको धर्म समझाइये। हम समझे तो सनाथ होंगे। फिर धर्म समझाया। समकित पाया है। अपने में दूसरे मुनि का नाम है। कुछ नाम है न? यशोधर। हाँ, खबर है। इसकी भी खबर है, ये सब भी पहले कण्ठस्थ किया था न। श्वेताम्बर शास्त्र सब कण्ठस्थ थे न। सबका व्याख्यान भी बहुत किये थे।

कहते हैं, अनाथ उसको कहते हैं कि राग और पुण्य-पाप का विकल्प, विकार, शरीर अपना मानना, वह अनाथ जीव है। मिथ्यादृष्टि अनाथ है और सम्यग्दृष्टि सनाथ है। समझ में आया? क्योंकि अपने शुद्ध स्वरूप की दृष्टि हुई तो जितनी निर्मलता प्रगट हुई, उसकी रक्षा करते हैं और निर्मल प्रगट नहीं हुआ, उसको प्रगट करने का प्रयत्न करते हैं। नाथ उसको कहते हैं, योग क्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं। योग का अर्थ मिली चीज़ को रखे, नहीं मिली हो, उसको प्राप्त कराये। उसको नाथ कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव को अपने शुद्ध स्वरूप की दृष्टि हुई, उतनी तो रक्षा करता है और नहीं मिला-केवलज्ञान उसको प्रयत्न करके प्राप्त करता है। वही सम्यग्दृष्टि सनाथ है, बाकी सब अनाथ है। समझ में आया? ये पैसेवाले को कहते हैं न सनाथ है? हमारे राजा है, हमारे ऐसे हैं, पूँजी है। धूल भी नहीं है, सुन न। राख है। पैसा-बैसा राख है। तुझे कोई शरण है नहीं। शरीर मेरा सुन्दर है, मेरी रानी ऐसी है। धूल में भी नहीं है, सुन न। भिखारी है। ... भिखारी है। अपने स्वरूप की भावना छोड़कर पर की भावना करता है, वह भिखमंगा भिखारी है।

मुमुक्षु : व्यवहार से सनाथ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। व्यवहार से सनाथ नहीं है। रंक—भिखारी है, रांक है। गोदिकाजी! आगे कहीं पर आता है, अन्दर एक शब्द है, हाँ! ये रहा। १६वीं गाथा। देखो! '**वराई**' है। '**वराकी**' नदी को '**वराकी**' कहा है। ये १५वाँ श्लोक है न? अभी तो अपने १४वाँ चलता है, १४वाँ चलता है। फिर १५ और १६वाँ है। '**वराकी**' नदी है, उसका नाम लेते हैं। क्या? आगे कहते हैं, नाथ! आपने जब इस पृथ्वी को छोड़ दिया, प्रभु! आपने राजपाट को छोड़ दिया, आपके गाँव में सरयू नदी थी न? सरयू। अयोध्या के पास। उस नदी में बहुत प्रवाह चलता था तो कल.. कल... कल... कल... आवाज आती थी। नदी में पानी का शब्द होता है न? प्रभु! ये कल... कल... नहीं है। तो क्या है? '**वराकी**' भिखारी

नदी बेचारी आपके वियोग से रो रही है। गाथा है, हों! १६वीं।

'**वेरग्गदिणे सहसा, वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का**' हे नाथ! जब आपको वैराग्य हुआ और संसार को छोड़कर चले गये, '**देव तए सा**' हे नाथ! तब से '**अज्ज वि, विलवइ**' आज भी यह नदी आपके विरह से रोती है। रोती कहते हैं? क्या कहते हैं? रुदन करती है। आहा! अलंकार करते हैं, देखो! हम तो महाराज, आपके वियोग से, हमें भी आपके वियोग से हमें केवलज्ञान का वियोग है। हमको भी खेद है। हमारे में केवलज्ञान का अभाव है, उसका हमको खेद है। और आज आप जीर्ण तृण की भाँति पृथ्वी छोड़कर चले गये, नाथ! पानी में कल... कल... कल... कल... कल रव, कल-कल का रव अर्थात् आवाज होती है, वह आपके पीछे रुदन करती है। समझ में आया? देखो! यह भक्ति!

परमानन्द की मूर्ति के नाथ आप चले गये। पानी जल रोता है। यह नदी वरांकी है, बेचारी भिखारी है। उसका नाथ चला गया, समझ में आया? पाठ में है, हों! देखो! '**वेरग्गदिणे सहसा, वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का, अज्ज वि**' तब से यह नदी '**विलपति सरिज्जलमिषेण वराकी**' भिखारी नदी, आपके वियोग से रोती है। समझ में आया? यह तो भिखारी कहा सबको। आत्मा का—चैतन्य का जिसको विरह है और बाहर का सब संयोग है, सब भिखारी वरांक भिखारी है, ऐसा कहते हैं।

वहाँ एक बार सोनगढ़ है न? हमारे वहाँ भावनगर दरबार कृष्णकुमार थे, अब गुजर गये। उसकी करोड़ की कमाई थी, एक करोड़ की। राजा की एक वर्ष की एक करोड़। एक बार व्याख्यान में आये थे। दो भाई हैं, दूसरा लेकर (आया था)। व्याख्यान में हमें तो ऐसा आ गया, कहा, देखो! ऐसा है, एक महीने में जिसको एक पाँच हजार चाहिए, वह माँगण है, लेकिन छोटा माँगण है। माँगण कहो या भिखारी कहो। हमारे में माँगण कहते हैं। माँगनेवाला। सेठ! एक महीने में पाँच हजार माँगे वह छोटा भिखारी। पचास हजार माँगे वह बड़ा भिखारी और पाँच लाख माँगे वह बड़ा भिखारी। वैसे एक साल में करोड़ माँगे वह बड़ा भिखारी है। बहुत माँगे, बहुत भिखारी, थोड़ा माँगे वह थोड़ा भिखारी। वह तो राजा था। करोड़ की कमाईवाला। अभी चल बसा, वहाँ दो बार आये थे। सोनगढ़ नजदीक है, १९ मील। हँसता था, ये तो राजा को भिखारी कहते हैं। कैसा, राजा कहाँ से आया तुम? राजा तो राज्यते शोभते इति राजा। गाथा है न? १७-१८ गाथा में आता है। जीवराया।

जीवराया, १७वीं गाथा में है। जीवराजा, ऐसा समयसार में आया है। जीवराजा। जिसको आनन्द और ज्ञान शोभे, वह राजा है। बाहर की ऋद्धि से शोभे वह तो भिखारी है, रांक है। पाटनीजी! बड़ी कठिन बात। ऐ... गोदिकाजी! सौभागचन्दभाई! यह तो बड़ा भिखारी है। पैसेवाले करोड़पति हैं सब। लो। ये प्रभुभाई! कहाँ गये? कहाँ बैठे हैं? यहाँ बैठे हैं। देखो, ये सब हैं। सब करोड़पति कहलाते हैं। यहाँ कहते हैं, करोड़पति आत्मा है। अनन्त लक्ष्मीपति हैं। उसका विरह जिसको है, वह राग में पड़ा है। वह वरांका भिखारी में भिखारी है।

बादशाह उसको (कहें), जिसको कुछ नहीं चाहिए। हमारा आत्मा हमें चाहिए। हमारा शुद्ध भगवान आत्मा हमारी दृष्टि में आया है। वही पर्याय में प्राप्त हो, उसका नाम बादशाह और राजा कहने में आता है। बाकी सबको भिखारी और वरांका कहने में आता है। आहाहा! देखो! १४वीं गाथा में क्या कहा?

प्रभु! जिस स्त्री का विवाह हुआ, उसके शरीर में रोमांच और पुष्टि हो जाती है। प्रभु! आप आये तो पृथ्वी सनाथ हो गयी, विवाह हो गया। सनाथ हो गयी। उसको अंकुर आ गये। हरियाली होती है न? क्या (कहते हैं)। हरी... हरी... हर जगह हरियाली। मानो हरा कपड़ा पहना हो। हरा... हरा... हरा अंकुर अंकुर। भगवान! वह अंकुर नहीं है। आप जब आये तो सनाथ हुई। उसकी पुष्टि करके दिखाती है। समझ में आया? ऐसा कहकर भी परमात्मा का अन्तर आनन्द और पूर्ण केवलज्ञान की स्तुति का भक्ति का भाव कहते हैं।

बाद में कहते हैं, अब, भगवान एक बार सिंहासन पर बैठे थे। तो राज में बहुत काल हो गया। बहुत (काल हुआ तो भी) दीक्षित नहीं हुए। तो देव ने, जब भगवान बैठे थे तो एक नीलांजना नाम की देवी को उतारा। भगवान तो बैठे थे। तीन ज्ञान के धनी थे। देव बहुत देवियों को लेकर आया। देवी नाच करती थी। उसमें नीलांजना देवी को देव ने उतारा कि जिसकी स्थिति उस समय पूरी होनेवाली थी। उस समय, नाचते-नाचते।

विज्जुव्व घणे रंगे, दिट्ठपणट्ठा पणच्चिरी अमरी।
जइयातइया वि तए, रायसिरी तारिसी दिट्ठा।।१५।।

भगवान! आप जब सिंहासन पर आकर बैठे और देवियाँ नाचती थीं। उसमें नीलांजना देवी का आयुष्य पूरा हो गया। आपके ख्याल में आया, ओहो! क्या कहते हैं? तीर्थंकर है, वे तीन ज्ञान लेकर तो आते हैं। परन्तु जब वैराग्य का प्रसंग हो, तब जातिस्मरण

होता है। सुना है ? जितने तीर्थंकर हो, दीक्षित होनेयोग्य हो, तब जातिस्मरण होता है।

मुमुक्षु : हर तीर्थंकर को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हर तीर्थंकर को। उसमें विशिष्टता है। अकेला जातिस्मरण तो अज्ञानी को भी किसी को होता है। जातिस्मरण समझे ? पूर्व भव की यादगीरी। लड़की तो है, अभी आनेवाली है, सुना है। टेलीफोन आया था। अजमेर आया है। लड़की साथ में है। एक लड़की है, उसको जातिस्मरण हुआ है। आयेगी। अजमेर तो आ गयी है। आपकी राज में बेचारे कितने ही अटक गये। गाँव की प्रजा भी अटक गयी और बाहर के अटक गये। नहीं तो गोदिकाजी का भाव था, इतना पूरा भर जाता। कुदरत में राज की स्थिति में ... वह भी वहाँ आया है। टेलीफोन आया था कि... क्या कहते हैं ? कर्फ्यू। इसलिए हम नहीं आ सकते। यहाँ तो महाराज के पास कुछ नहीं है। आओ और सुनो। लड़की आयेगी। उसको जातिस्मरण है। साढ़े तीन साल से। जूनागढ़ की लड़की यहाँ आयी है।

यहाँ सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी को जब जातिस्मरण होता है तो वैराग्य बढ़ जाता है। अज्ञानी को जातिस्मरण होता है तो ये मेरे पिता, ऐसे याद करता है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी और ये तीर्थंकर तो तीन ज्ञान के धनी हैं। परन्तु वह अवधिज्ञान ऐसा है कि उपयोग लगावे, तब ख्याल में आये। उस समय नीलांजना जब नाचते-नाचते नाश हो गयी। ऐसा लक्ष्य करके, अहो! ये सब नाशवान है, खबर नहीं थी ? पहले से खबर थी। सम्यग्दृष्टि क्षायिक समकिती तो है। परन्तु जातिस्मरण में पूर्व का भव ऐसा ख्याल में आया, अरे! ऐसे ख्याल में आ गया। जैसे कल की बात याद आती है, ऐसा याद आ गयी। ये सब नाशवान है। ये देवी एक क्षण में नाशवान हो गयी, दूसरी देवी इन्द्र ने रख दी है। वह देवी नहीं, वह देवी नहीं रही, समाप्त हो गयी। ओहो! जातिस्मरण अन्दर हो गया। वह तो निमित्त हुआ है, हों! देखते तो सब हैं, परन्तु उसकी योग्यता के कारण से है। सब देखते थे। उससे वैराग्य होता तो सबको होना चाहिए।

यहाँ कहते हैं, नीलांजना नाम की देवांगना पहले देखकर फिर नष्ट हुई। **उसी समय आपने राज्य-लक्ष्मी को भी उसके समान...** देखा। अरे! छोड़ दे। यह चीज़ क्या। मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ। केवलज्ञान लेने का मेरा अवतार है। उसके निमित्त से जातिस्मरण हुआ। जातिस्मरण हुआ तो (सब) छोड़ दिया। उसके बहाने उसकी भक्ति करते हैं। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्री ऋषभजिनस्तोत्र, गाथा - १९ से २०, प्रवचन-८०३

यह एक पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। उसको करनेवाले दिगम्बर सन्त वनवासी पद्मनन्दि आचार्य मुनि थे। उन्हें, अपने स्वरूप का तो भान था। क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है कि वन्दन करनेवाला और वन्दन करनेयोग्य, दोनों कैसे हैं, ऐसा भान करके जो भक्ति, स्तुति करते हैं, उसे यथार्थ कहने में आता है। समझ में आया? पद्मनन्दि आचार्य ज्ञानी थे, सम्यग्दृष्टि थे, मुनि (थे)। आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष का भान था। परन्तु अपनी सर्वज्ञदशा नहीं है तो परमात्मा प्रति भाव विकल्प से भक्ति का आये बिना रहता नहीं। तो वनवास में भी भक्ति करते थे। १८ गाथा अपने चली है।

वन्दन करनेवाला कैसा है, वह प्रवचनसार में चला है। पहले प्रवचनसार है, तो कुन्दकुन्दाचार्य जब पंच परमेष्ठी का वन्दन करते थे, तो उसमें ऐसा शब्द पड़ा है न? '**एस**' पण्डितजी! '**एस**'। '**एस सुरासुर**'। हमारे पण्डितजी तैयार हैं। कोई भी शब्द लो, तैयार।

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिद धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।१।।

वहाँ भी कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, उसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं, हे नाथ! मैं आपको वन्दन करता हूँ। परन्तु मैं हूँ कैसा? ... प्रत्यक्ष दर्शन-ज्ञान सामान्य। वन्दन करनेवाला भक्त जो है, उसको अपनी भी खबर है कि मैं कौन हूँ, वह वास्तव में वन्दन करने लायक है। समझ में आया? तो कहते हैं, ये... '**एस**' शब्द पड़ा है, संस्कृत में भी '**एस**' शब्द पड़ा है। '**एस**' स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। मैं कैसा हूँ? कि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। जो अपने अन्तर ज्ञान से, राग का अवलम्बन बिना अपना अनुभव करने लायक कि मेरा दर्शन-ज्ञान सामान्य, मेरा दर्शन-ज्ञान त्रिकाल, ऐसा मेरा जो स्वरूप है। मैं कौन हूँ कि आपको वन्दन करता हूँ? और आप कौन हैं? दोनों की पहिचान करते हैं। समझ में आया? मैं 'यह'—ऐसा शब्द पड़ा है। स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। कोई कहते हैं कि अपने को आत्मज्ञान है तो खबर पड़ती है या नहीं? उसमें नहीं है। इसमें है। थोड़ा ध्यान रखो। उसमें नहीं है। यह तो चलता है।

'**कम्मकलंकचउक्के, णट्ठे**' समाधि से आपने कर्म का नाश किया। मैं वन्दन करता

हूँ, भक्ति करता हूँ। तो भक्ति करनेवाला कैसा है, उसकी बात चलती है। पहले से लिया था। आचार्य ने लिया है, मैं, हे परमेश्वर! आप अरिहन्त को पूर्णानन्द और सर्वज्ञपद की प्राप्ति हुई है और सिद्ध को तो पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति हुई है। और आचार्य, उपाध्याय, साधु तीन को परम शुद्धउपयोग भूमिका को प्राप्त की है। समझ में आया? अरिहन्त पूर्ण केवलज्ञान। अभी चार कर्म का नाश (हुआ) है, चार कर्म बाकी है। सिद्ध आठों कर्म का अभाव करके अशरीरी हो गये हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु उसको कहते हैं कि जिनको ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्र, तपाचार, वीर्याचार सहित परम शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त की हो। अपना आत्मा पुण्य-पाप के परिणाम से रहित ऐसा शुद्ध आत्मा, उसको अन्दर शुद्धोपयोग से आत्मा को प्राप्त कर लिया है। समझ में आया? उसको आचार्य, उपाध्याय और साधु कहते हैं।

ऐसे पहिचान करके आचार्य कहते हैं कि मैं वन्दन करता हूँ। ऐसे पहिचान करके मैं वन्दन करता हूँ। आप ऐसे हुए हो और मैं ऐसा हूँ। समझ में आया? मैं कैसा हूँ? मैं प्रत्यक्ष स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (हूँ)। मेरे ज्ञान से मेरा ज्ञाता मुझे प्रत्यक्ष हुआ है, ऐसा मैं हूँ। सुनो भाई! समझ में आया? यह तो भगवान की कोर्ट है। कहते हैं, मैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। वह शब्द रह गया। उसका अर्थ चला गया। क्या कहा, समझ में आया? मैं वन्दन करनेवाला कैसा हूँ और कैसा होने लायक है। मैं तो प्रत्यक्ष मेरा ज्ञान और दर्शन सामान्य... सामान्य त्रिकाल स्वभाव है। उसको मैं वर्तमान पर्याय में प्रत्यक्ष करनेवाला हूँ। समझ में आया? उसका नाम परमात्मा को भक्ति और वन्दन करने लाययक, उसको कहने में आता है। आहाहा! ये तो मुनि है।

किन्तु सम्यग्दृष्टि भी भगवान की भक्ति करते हैं तो उसको विकल्प आते हैं, शुभराग होता है, परन्तु अपनी पहिचान करके उसको भान हुआ शुभराग का, उससे परमात्मा की भक्ति करते हैं। हे नाथ! मैं आपका भक्त हूँ, मैं दास हूँ। परन्तु हूँ कैसा? समझ में आया? मैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हूँ, प्रभु! मेरा आत्मा, यह शब्द पड़ा है। '**एस**' शब्द पड़ा है न। पण्डितजी! '**एस**' है न? '**एस**'। इसलिए उसमें से यह.. यह। देखो! कोई कहता है कि अपना पता चले या नहीं? अपना पता चले, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। स्वयं को मालूम नहीं पड़ता। स्वयं को ज्ञान-दर्शन हुआ है या नहीं, मालूम नहीं पड़े। तो क्या अन्धा है

आत्मा ? समझ में आया ? और दूसरा सम्यग्दृष्टि है या नहीं, वह मालूम नहीं पड़ता। नहीं मालूम पड़े ? स्व-परप्रकाशक है, पर का भी मालूम पड़ता है। यहाँ तो अपनी बात ली है। धवल में पर की भी ली है।

धवल में, यह आत्मा भव्य है या अभव्य, ऐसा विचार करनेवाला सम्यग्दृष्टि के पास सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसका ख्याल करके, यह भव्य है, ऐसा निर्णय करते हैं। ऐसा धवल में लिया है। समझ में आया ? जहाँ मति का भेद लिया है। पण्डितजी ! मति का भेद। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। सर्वार्थसिद्धि में दूसरा लिया है कि ये दक्षिणी है या नहीं ? ऐसा लिया है। परन्तु वहाँ तो निश्चय से लिया है। धवला में। यह प्राणी भव्य है या अभव्य है ? ऐसा सम्यग्दृष्टि अपना भानसहित पर का विचार करता है, तो उसकी श्रद्धा-ज्ञान, शान्ति कैसी है, उसको पहिचान लेता है। और पहिचानकर निश्चित करता है कि यह भव्य है। समझ में आया ? पर का भी निर्णय करते हैं। यहाँ तो पहले से अपने निर्णय की बात है।

मैं, हे नाथ ! परमेश्वर त्रिलोक प्रभु ! आपको वन्दन करनेवाला मैं कौन हूँ ? मैं राग हूँ, ऐसा नहीं; मैं कर्मवाला हूँ, ऐसा नहीं और मैं परोक्ष ज्ञानी ऐसा भी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि पहले से वन्दन करनेयोग्य मैं कैसा हूँ, ऐसा सिद्ध करते हैं। मैं तो आत्मा हूँ। और मैं सामान्य दर्शन-ज्ञानस्वरूप हूँ। वह स्वभाव कहा, पहले आत्मा द्रव्य कहा। और उसका स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहा, वह पर्याय कही। ये स्वसंवेदन प्रत्यक्ष दर्शन-ज्ञान सामान्यरूप हूँ। यह आत्मा। देखो, भाई ! यह तो अलौकिक बात है। यह कोई साधारण बात नहीं है। अपूर्व गहरी, अनन्त काल में नहीं की वह बात है।

सम्यग्दृष्टि अपने को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष जानते हैं, राग का, विकल्प का मन की अपेक्षा बिना अन्तर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, उसके अन्तर वेदन से यह आत्मा प्रत्यक्ष हूँ। मुझे ज्ञान-दर्शन प्रत्यक्ष है। भले प्रत्यक्ष ऐसे देखते नहीं। समझ में आया ? परन्तु वेदन में प्रत्यक्ष हूँ, ऐसा कहने में आता है। जैसे अन्धा शक्कर खाता है और देखता हुआ शक्कर खाता है। तो दोनों को शक्कर का स्वाद तो प्रत्यक्ष है। समझ में आया ? शक्कर का स्वाद परोक्ष नहीं है। अन्धे को शक्कर का स्वाद आया। ... ख्याल में आता है, बराबर देखनेवाला शक्कर खाता है, ऐसा ही मुझे यह मीठा है, मीठा कहते हैं न ? मधुर। ये मीठा

है, मधुर है ऐसा स्वाद अन्धा को प्रत्यक्ष है। केवली को पूरा आत्मा प्रत्यक्ष देखकर, जैसे देखनेवाला शक्कर खाता है, तो उसको देखता है कि सफेद है, ऐसा आकार है, ऐसे पाँच रुपये का तोल है, ऐसा देखकर स्वाद लेता है। ऐसे केवलज्ञानी, आत्मा को पूर्ण देखकर अन्तर में आत्मा के असंख्य प्रदेश, पूर्ण अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, द्रव्य प्रत्यक्ष देखकर आनन्द का स्वाद लेते हैं।

नीचे सम्यग्दृष्टि जीव को देखने में ऐसा प्रत्यक्ष नहीं होता। पर मैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (हूँ), ऐसा पहला शब्द लिया है। महा टीका है। उसमें है, देखो! स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। मेरा ज्ञान से ज्ञान जानने में मुझे आया है। ये ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ, सामान्य त्रिकाल दर्शनस्वरूप हूँ, सामान्य त्रिकाल ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसा अपनी पर्याय में भान हुआ है, ऐसा मैं हूँ। भक्त भगवान की भक्ति करनेवाला ऐसा होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? और आप कैसे हो? **जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वंदित होने से तीन लोक के एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं, जिनमें घातिकर्म मल के धो डालने से जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ अनन्त शक्तिरूप परमेश्वरता है...** अब उनकी पहिचान करते हैं। समझ में आया?

ऐसे यहाँ कहते हैं, देखो! अब, १९वीं गाथा। उसके साथ मिलान किया। कल १८ गाथा तक चला था। प्रभु जब ध्यान में थे, ऋषभदेव प्रभु, ध्यान में थे, उसका लक्ष्य करके स्तुति करते हैं। हे नाथ! पुस्तक आपके काम का नहीं है अभी, किसी को दे दो। क्योंकि वहाँ ध्यान रहेगा। कहो, समझ में आता है इसमें? क्या कहते हैं, समझ में आया? कहते हैं कि हे नाथ! आप जब कायोत्सर्ग में थे, देखिये विशिष्टता, हमको आपकी ऐसी पहिचान अभी है कि उस समय आपके स्वरूप का ध्यान लगता था तो कर्म का जला हुआ जो धुँआ है, वह आपके शरीर पर काले बाल दिखते हैं। देखो, उमसें कितनी बात की? आपका ध्यान स्वरूप की दृष्टि में ऐसा था कि कर्म का नाश होता ही था। आंशिक, आंशिक। सर्वथा नाश अब कहेंगे। आंशिक नाश हुआ था। चिदानन्द ज्योति में त्राटक लगाया, त्राटक। टग-टग अन्दर में देखनेयोग्य दृष्टि हुई तो प्रभु, आप ऐसे हुए। हमें विश्वास हुआ, हमें खबर है। हमको भी आपकी खबर है। आहाहा! हमारा तो हमको खबर है, लेकिन आप जब कायोत्सर्ग में ध्यान में थे, अभी केवलज्ञान नहीं पाया था, तब आपने अन्तर में आत्मा की

ओर का शुद्ध ध्यान लगाया तो अन्तर में कर्म जलकर धुँआ निकला, उसके यह काले बाल दिखते हैं। लो, कर्म जलते हैं, यह हमें खबर हुई। आपके ध्यान में जलते थे, यह हमें भी मालूम है। समझ में आया? पर की खबर है, ऐसा कहते हैं। हमारी तो खबर है, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ऐसा कहा, आप भी कायोत्सर्ग के काल में आपका ध्यान ऐसे जमा था कि कर्म जलकर, कार्माणशरीर जलकर धुँआ हुआ और यह काले (बाल) दिखते हैं।

कर्म जलते हैं, शुद्धि होती है, ऐसा आपमें है, ऐसा हमारे ज्ञान में भी आया है। समझ में आया? ऐसा कहकर भी स्तुति की है। है शुभ विकल्प, है शुभराग, परन्तु उस राग में भी इतनी तारतम्यता उसके ख्याल में आ गयी है। अपनी और पर की। तब उसको व्यवहार भक्ति निश्चयपूर्वक हो तो कहने में आती है। आहाहा! समझ में आया? १८ गाथा तो कल चली थी। आज १९वीं है। एक पुस्तक में है। दूसरे को दो। १९। देखो! अब भगवान की स्तुति करते हैं। पद्मनन्दि आचार्य मुनि।

कम्मकलंकचउक्के, णट्ठे णिम्मलसमाहिभूईए।
तुह णाणदप्पणेच्चिय, लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

कर्मकलंकचतुष्के नष्टे निर्मलसमाधिभूत्या।
तव ज्ञानदर्पणेऽर्च्य! लोकालोकं प्रतिबिम्बितम्।।

'**भूई**' शब्द का अर्थ '**तव**' किया। पण्डितजी! '**भूई**' शब्द है न? उसका अर्थ '**तव**' किया। '**भूई**' है न? उसका संस्कृत में '**तव**' शब्द किया। '**निर्मलसमाधिभूत्या**' '**भूई**' है न? '**भूत्या**'। फिर उसमें लिया। '**भूई**' अर्थात् '**भूत्या**'। '**तव**' ऊपर से ले लिया। '**तुह**' पहला शब्द है न? दूसरे पद में पहला। '**तुह णाणदप्पणेच्चिय**' '**ज्ञानदर्पणेऽर्च्य**'। वह '**तव**' ऐसे लिया। है ऐसे, उसे ऐसे ले लिया। '**लोकालोकं प्रतिबिम्बितम्**' देखो! भक्ति करनेवाले का विवेक कितना है!

हे नाथ! हे प्रभु! पंचास्तिकाय में यह अधिकार लिया है। भक्ति का। शिष्य ने प्रश्न किया, प्रभु! भक्ति समकिती की यथार्थ होती है कि मिथ्यादृष्टि की? यथार्थ में तो भक्ति सम्यग्दृष्टि की होती है। क्योंकि उसको भान है कि मैं परमात्मा का भक्त हूँ, ऐसा विकल्प मुणे आया है, वह राग वास्तव में तो हेय है। पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय है? कहाँ है? ये? ... क्योंकि अज्ञानी का आत्मा शुद्ध चैतन्य है, ऐसा लक्ष्य दृष्टि है नहीं। तो परमात्मा

को यथार्थपने उसने जीव का विशेष .. पहिचान भी नहीं। जीव का विशेष ... बाहर से पहिचाना है। ऐसे चार घातिकर्म नाश हुए हैं, दिव्यध्वनि है, उपदेश देते हैं, ऐसा है, वैसा है। वह तो बाहर का लक्षण है। अज्ञानी को केवल भक्तिप्रधान भवति। ... कुस्थान अर्थात् अस्थान। ... धर्मीजीव को भी अशुभस्थान से राग का निषेध करने के कारण और तीव्र राग से बचने के कारण शुभराग की भक्ति ज्ञानी को भी परमात्मा के प्रति आती है। समझ में आया? उसका अर्थ इसमें ले लिया है, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक। सातवें अधिकार में ले लिया है।

वास्तव में भक्ति तो ज्ञानी की होती है। जिसको अपना विवेक है और पूर्ण परमात्मा की कैसी दशा (होती है, वह भी मालूम है)। जीव का विशेषण सहित भान है, वही वास्तव में भगवान की भक्ति करता है, ऐसा निश्चयपूर्वक व्यवहार कहने में आता है। वह यहाँ कहते हैं।

हे नाथ! **निर्मल समाधि के प्रभाव से...** यह शब्द पड़ा है। नाथ! मैंने जान लिया है आपको। आपको जो केवलज्ञान हुआ है, वह निर्मल समाधि के प्रभाव से (हुआ है)। देखो! वह भी लिया। वह कोई राग से, विकल्प से, व्यवहाररत्नत्रय से आपको केवलज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं है, ऐसा हम जानते हैं। समझ में आया? निर्मल समाधि के प्रभाव से। समाधि का अर्थ क्या? पाठ में तो ऐसा पड़ा है, समाधि है। बाबा लगाते हैं वह समाधि? लोगस्स में आता है, लेकिन आपको मालूम नहीं है। श्वेताम्बर में वह चलता है। लोगस्स है न? २४ तीर्थंकर की स्तुति। उसमें आता है, 'अेवं मखे अभिथुआ, समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' लोगस्स २४ तीर्थंकर की स्तुति में आता है। अपने में भी आता है। परन्तु सामायिक का बहुत प्रचार नहीं है। समझे? लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।' हे परमेश्वर! समकिती २४ तीर्थंकर की स्तुति करते हैं। हे नाथ! 'समाहिवर' हमको समाधि 'वरमुत्त' 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। हमें समाधि का फल दीजिये, प्रभु! वह भी निमित्त से कथन करते हैं न। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' ऐसा लोगस्स के पाठ में आता है। समाधि क्या?

समाधि का अर्थ—आधि, व्याधि, उपाधि से रहित आत्मा की शान्ति, उसको समाधि कहते हैं। समझ में आया? आधि अर्थात् संकल्प विकल्प। व्याधि अर्थात् शरीर की उपाधि—रोग। उपाधि अर्थात् संयोग की नोकर्म की (उपाधि)। नोकर्म—ये शरीर

और संकल्प, विकल्प। तीन से रहित आधि, व्याधि, उपाधि। तीन से रहित उसका नाम समाधि। भगवान आत्मा अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप में मग्न हो, तब राग का अभाव होकर, शरीर का लक्ष्य छोड़कर, कर्म का लक्ष्य छोड़कर, बाह्य उपाधि का लक्ष्य छोड़कर निरुपाधि चैतन्यमूर्ति में जब लीनता होती है, तब उसे शान्ति की प्राप्ति होती है। उस शान्ति को समाधि कहने में आया। ऐसे ही ध्यान लगा दो। अपने जैन में भी ऐसा होता है न। पीला दिखता है, लाल दिखता है। परन्तु वह तो धूल है, उसमें क्या आया? समझ में आया? ध्यान लगाते हैं न। आँख ऐसे फिरे तो लाल दिखे। वह तो जड़ है। उसमें आत्मा कहाँ है? समझ में आया? लीला-पीला दिखे, कोई चमत्कार लगे, वह तो जड़ है, उसमें आत्मा कहाँ आया? समझ में आया? ऐसे देखे तो अन्दर पीला दिखे। पीला तो जड़ की पर्याय है। लाल, हरा दिखे वह तो जड़ की पर्याय है। वह आत्मा नहीं। समझ में आया? आत्मा अखण्डानन्द शान्तस्वरूप परमात्मस्वरूप है, उसमें एकाग्र होकर कषाय का परिणामरहित अकषाय परिणाम दर्शन, ज्ञान, चारित्र का तीनों परिणाम अकषाय परिणाम है। उसका नाम यहाँ समाधि कहने में आया है। समझ में आया?

वह कहते हैं, हे नाथ! आप तो **निर्मल समाधि...** मल बिना की। '**णिम्मलसमाहि**'। '**भूत्या**' **प्रभाव से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर,...** ख्याल है, प्रभु! आपको केवलज्ञान हुआ है, हमें खबर है। परन्तु केवलज्ञान कैसे हुआ? चार कर्म का नाश हुआ। नाश तो उसके कारण से नाश होने की पर्याय हुई, हों! परन्तु यहाँ निर्मल ध्यान की स्थिरता हुई तो कर्म की पर्याय घातिरूप नहीं रहने के योग्य ही थी, उसके कारण से घातिकर्म का नाश हुआ। तो कहते हैं कि हे नाथ! आपके '**णिम्मलसमाहिभूईए, तुह णाणदप्पणेच्चिय**'। आपको प्रगट क्या हुआ? ज्ञान-दर्शन दर्पण। ज्ञानदर्पण प्रगट हुआ। प्रकाश। चैतन्य की एक समय की केवलज्ञान दशा। देखो! यह अस्तित्व की श्रद्धा, यह मोक्ष की श्रद्धा, केवलज्ञान की श्रद्धा। भगवान को एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक, दर्पण में जैसे दूसरे का प्रतिम्बिब दिखता है, ऐसा ज्ञान में दिखता है।

'**लोयालोयं पडिप्फलियं**'। भाषा ऐसी ली है कि लोकालोक प्रतिबिम्बित होते हैं। उसका शब्द से कथन है। परन्तु अपनी निर्मल पर्याय जहाँ देखी, जल को देखने से जल के ऊपर जो नक्षत्र, तारा आदि हैं, वह उसमें दिखते हैं, वैसे अपनी निर्मल पर्याय जहाँ प्रगट

हुई, उसको देखने से लोकालोक उसमें देखने में आ गया। ऐसी ज्ञान की पर्याय की पूर्ण सामर्थ्य है, ऐसा भक्तों को प्रतीति में है। समझ में आया? एक समय में केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को अपनी पर्याय में प्रगट करके पर को (जानते हैं)। पर को जानने नहीं जाता। अपनी पर्याय निर्मल हुई। पर्याय समझे? अवस्था। चार घाति का नाश हुआ, निर्मल समाधि से। समाधि अर्थात् अन्तर की वीतरागता से, अन्तर स्वभाव के अवलम्बन से वीतरागदशा हुई। वीतरागदशा के कारण कर्म का नाशह्आ। और आपको क्या दशा प्रगट हुई? **'दप्पणेच्चिय'। जैसे सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में यह लोकालोक प्रतिबिम्बित हो रहा है।** आहा! एक समय में तीन काल देखते हैं। केवलज्ञानी में अभी तकरार करते हैं। केवलज्ञानी एक समय में भविष्य की पर्याय न देखे, भूत की देखे। भविष्य में तो जब निमित्त आयेगा, ऐसा आयेगा तब देखेगा। वह केवलज्ञान है नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान वर्तमान एक समय में तीन काल-तीन लोक में जैसी पर्याय होनेवाली है, हुई और है, वर्तमान त्रिकाल पर्याय को विद्यमान जानते हैं। पण्डितजी! प्रवचनसार में है। हुई, नहीं हुई है, सबको विद्यमान की भाँति जानते हैं।

उसमें भी तकरार (करते हैं)। पर्याय प्रगट है, दूसरी प्रगट नहीं तो भगवान प्रगट है, उसको ही जानते हैं। दूसरा अप्रगट द्रव्य-गुण को जानते हैं। उसको भी जानते हैं, सुन तो सही। आहाहा! उसमें भी तकरार। एक समय में केवलज्ञान की अवस्था भूत, भविष्य और वर्तमान तीन काल की पर्याय जैसे प्रगट हो, वैसे भगवान देखते हैं। समझ में आया? तो केवलज्ञान है, नहीं तो केवलज्ञान किसको (कहे)? अभी अरिहन्त का केवलज्ञान कैसा, उसकी भी खबर नहीं, उसको अपने ज्ञान का सामर्थ्य कितना, वह प्रतीति में कैसे आवे? एक समय में भगवान का ज्ञान दिव्य ज्ञान किसको कहे? आहाहा!

प्रवचनसार में तो ऐसा लिया है कि नाथ! आपके केवलज्ञान की एक समय की पर्याय लोकालोक को ज्ञेय को जबरदस्त जोर से पकड़ लेती है। और ज्ञेय की सब त्रिकाल अवस्था ज्ञान में अर्पण हो जाती है। पण्डितजी! उसमें है। समझ में आया? आहाहा! भाई! प्रवचनसार में लिया है,

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयेत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।८०।।

जो आत्मा, अरिहन्त का द्रव्य, गुण और पर्याय जाने... द्रव्य (अर्थात्) क्या?— वस्तु गुण अर्थात् क्या? शक्ति पर्याय का अर्थ पर्याय केवलज्ञान। केवलज्ञान, केवलदर्शन एक समय में परिपूर्ण ऐसा। व्यंजनपर्याय शरीर अनुसार जो आकृति है वह। ऐसा अरिहन्त का द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् हालत। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयेत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, केवली को जिसने जाना, उसको अपने आत्मा में मिलान करते हैं। आहा! मेरा द्रव्य भी उसके जैसा है, मेरी शक्ति भी उसके जैसी है, मेरी पर्याय में वर्तमान अल्पज्ञता है। तो सर्वज्ञ हुआ तो कहाँ से हुए? अन्दर के आश्रय से हुआ। तो मैं भी अपनी पर्याय अन्तर के आश्रय करूँ। अन्तर का आश्रय करने से अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रतीति अनुभव में आयी तो कहते हैं कि अरिहन्त की पर्याय जानी। उसने अपना आत्मा जाना। अपना आत्मा जाना, उसको मोह का क्षय हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वास्तविक देव परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी, जिनको एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित हुए। प्रतिबिम्बित शब्द पड़ा है। '**पडिप्फलिय**'। प्रतिबिम्बित कहते हैं, लोगों को समझ में आये इसलिए। बाकी तो अपनी पर्याय ऐसी प्रगट हो गयी है। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसी केवली की पर्याय भविष्य की किस द्रव्य की कैसी पर्याय कहाँ होगी और कौन निमित्त (होगा), सब केवलज्ञान में आया है। वर्तमान में है, नया कुछ नहीं है। समझ में आया? भविष्य की पर्याय होगी? कैसा निमित्त मिले? कैसा होगा? ऐसा ज्ञान है केवलज्ञानी में? केवलज्ञान... ब्रह्मचारीजी! क्या है?

मुमुक्षु : वर्तमान...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान... वर्तमान समय में भूत, भविष्य और त्रिकाल की एक समय की पर्याय में सब जानने में आता है। इस समय में इस जीव की यह पर्याय होगी, उस समय यह निमित्त होगा, वह पर्याय उपादान में होगी। तीन काल-तीन लोक की पर्याय और निमित्त का ज्ञान एक समय में भगवान के ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया? वह यहाँ केवलज्ञान की पहिचान करके भक्ति करते हैं। आपने एक समय में लोकालोक (जाना)। तो लोकालोक में सब द्रव्य, गुण, पर्याय सब आ गया। इसका आपको ज्ञान

हुआ, ऐसा मैं भान करके आपका भक्त आपकी भक्ति करता है। आहाहा!

श्वेताम्बर में एक श्लोक आता है। यहाँ नहीं है। है? है। एक देवचन्दजी हुए हैं। समझे?

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवन गुरु, जाणुं तुझ गुणग्राम जी...
बीजुं कांई न मांगु स्वामी, अेही करो मुझ कामजी...

देखो! वह प्रार्थन तो देखो! 'सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवन गुरु, जाणुं तुझ गुणग्राम जी...' आपके केवलज्ञान को मैं प्रत्यक्ष जानता हूँ। (प्रत्यक्ष तो) केवलज्ञान होगा तब जानेंगे? 'बीजुं कांई न मांगु स्वामी, अेही करो मुझ कामजी...' वह दूसरी बात है। देखो! पाँचवीं गाथा है। केवलज्ञान की पहिचान करते हैं।

द्रव्य क्षेत्र ने काण भाव, राजनीति से चार जी...
त्रास विना जड चैतन्य प्रभुनी, कोई न लोपे कार जी।

कार अर्थात् आज्ञा। 'द्रव्य क्षेत्र ने काण भाव, राजनीति से चार जी...' जगत के पदार्थ द्रव्य-वस्तु, क्षेत्र—उसकी चौड़ाई। चौड़ाई कहते हैं न? काल उसकी अवस्था और भाव उसकी शक्ति। प्रत्येक पदार्थ में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एक समय में पूर्णपने विराजमान है।

द्रव्य क्षेत्र ने काण भाव, राजनीति से चार जी...
त्रास विना जड चैतन्य प्रभुनी,

जड़ और चैतन्य को त्रास दिये बिना, आपके ज्ञान में जैसा भासित हुआ, वैसा परिणमन होता है। समझ में आया? 'त्रास विना जड चैतन्य प्रभुनी, कोई न लोपे कार।' भगवान के ज्ञान में एक समय में भासित हुआ, वैसे द्रव्य-गुण-पर्याय का, वैसी ही पर्याय का वहाँ परिणमन होता है। इस कारण से नहीं, परन्तु जानने में आया। अपने पुरुषार्थ के कारण से वहाँ अपनी पर्याय अपने कारण से होती है। त्रास बिना। जड़ और चैतन्य को त्रास नहीं है कि अरे..रे..! भगवान ने ऐसा देखा, इसलिए मुझे परिणमन करना पड़ता है, ऐसा है नहीं। ये तो सब पुस्तक देखे थे न। श्वेताम्बर के एक-एक पुस्तक देखे थे। करोड़ों श्लोक सब देखे थे। उसमें भी स्थूल बात है। पूरा अर्थ करते हैं। लेकिन इतना अर्थ बराबर

है कि केवलज्ञान एक समय में... धन्नालालजी ! आहाहा !

भगवान ! एक समय की पर्याय में—अवस्था में तीन काल-तीन लोक पूर्ण एक समय में, एक समय में वर्तमान में जानने में आते हैं। ऐसा ज्ञान की पर्याय की सत्ता का स्वीकार, ऐसी ज्ञान की एक समय की पर्याय का सत्ता अर्थात् होनेवाली का स्वीकार कब होगा ? समझ में आया ? अपनी पर्याय में तो अल्पज्ञता है, राग है। तो उस अल्पज्ञता में सर्वज्ञ का स्वीकार, एक पर्याय में इतनी ताकत है, ऐसा स्वीकार जब करने जाये तो अपनी पर्याय द्रव्य में घुसती है। जहाँ सर्वज्ञपद अन्दर में पड़ा है, उसकी वर्तमान दशा सर्वज्ञपद में जाये, तब उसको सर्वज्ञ की पर्याय की यथार्थ प्रतीति आती है। आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरी भाषा से कहें, तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। उसमें भी वह है। तत्त्वार्थ कितना ? सात। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान हुआ। मोक्ष अर्थात ? केवलज्ञान। मोक्ष का लक्षण केवलज्ञान है। मोक्ष लक्षण केवलज्ञान। केवलज्ञानरूपी मोक्ष, तो तत्त्वार्थ श्रद्धान में उसकी जब श्रद्धा करते हैं, उसमें केवलज्ञान की श्रद्धा आ गयी या नहीं ? संवर, निर्जरा की श्रद्धा-साधकभाव की आयी। आस्रव, बन्ध की विभाव की श्रद्धा आयी। केवलज्ञान की श्रद्धा आयी मोक्ष में। आहाहा ! तत्त्वार्थ श्रद्धान में इतना भर दिया है।

तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। सात तत्त्व की यथार्थ श्रद्धा में एक मोक्षतत्त्व है। मोक्ष में एक समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (आता है)। इतनी पूरी पर्याय का, मोक्ष की जब श्रद्धा करते हैं तो पर्याय की श्रद्धा पर्याय के आश्रय से नहीं होती। समझ में आया ? मोक्ष की श्रद्धा करनेवाला जीव अपनी पर्याय में अल्पज्ञ दशा में अल्पज्ञ के आश्रय से नहीं होती। आहाहा ! मोक्ष की पर्याय की श्रद्धा भी, द्रव्यस्वरूप चिदानन्द भगवान ज्ञायक एकाकार ध्रुव स्वरूप है, ऐसा अन्तर अनुभव करने से दृष्टि हुई, तब मोक्ष की पर्याय की (श्रद्धा), द्रव्य की श्रद्धा में पर्याय की श्रद्धा आ गयी। समझ में आया ?

गहरी बात है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शन, वह कोई साधारण बात नहीं है। वह तो बहुत बार दस लक्षण में सुनाते हैं या नहीं ? बारम्बार। बरसों से सुनाते हैं। तत्त्वार्थ श्रद्धानं

सम्यग्दर्शनं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्वः। भगवान! उसमें मोक्ष आया या नहीं? मोक्ष का अर्थ क्या? केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द, पूर्ण पर्याय उसका नाम मोक्ष। मोक्ष की श्रद्धा करता है, तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है तब, तो कैसे होता है? पर की पर्याय पर लक्ष्य करने से मोक्ष की श्रद्धा होती है, तब अपनी पर्याय द्रव्य के अन्दर अवलम्बन करे तो तब द्रव्य की श्रद्धा होने से पर्याय की श्रद्धा होती है। आहाहा! भाई! ये तो जैनदर्शन है। जैनदर्शन अर्थात् सर्वज्ञ भगवान ने कहा दर्शन है। वह कोई कल्पित बात है नहीं। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। किसी ने बनायी नहीं है।

कहते हैं, हे नाथ! मेरे ख्याल में है, भक्त कहता है कि कर्मकलंक था। कर्म कलंक था। आहाहा! गाथा पड़ी है न? मुनि कहते हैं, देखो! १९वीं गाथा। '**कम्मकलंकचउक्के**' नाथ! कर्म कलंक चार थे। '**णट्ठे**' आपने नाश कर दिया। और किस कारण से? '**णिम्मलसमाहिभूईए**'। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को, केवलज्ञान केवली ने कैसे प्राप्त किया, उसका भान है। समझ में आया? शरीर ऐसा था, संघयण मजबूत था, मनुष्यदेह ऐसा था, इसलिए आपने केवलज्ञान प्राप्त किया? नहीं। समझ में आया? हे नाथ! आपको मैंने पहिचाना है। आपको जो केवलज्ञान हुआ है, अनन्त आनन्द हुआ है, मेरे ख्याल में है, मेरी प्रतीति में है कि आत्मा की शान्ति-समाधि, स्थिरता, स्वरूप में स्थिर शान्ति द्वारा आपके आठ कर्म का नाश होकर आपको केवलज्ञान हुआ है। मोक्षमार्ग की भी प्रतीति आयी और उस मार्ग का कार्य जो केवलज्ञान आया, उसकी भी श्रद्धा आयी। तो संवर, निर्जरा, मोक्ष की श्रद्धा आ गयी। आस्रव, बन्ध और अजीव मेरे में है नहीं, वह श्रद्धा भी उसमें आ गयी।

कहते हैं, नाथ! '**तुह णाणदप्पणेच्चिय**'। नाथ! आपके ज्ञानरूपी दर्पण में... आहाहा! लोगों को अभी केवलज्ञान क्या है, (यह खबर नहीं)। एक समय—सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। समझ में आया? एक 'क' बोले, 'क', उसमें असंख्य समय जाते हैं। बराबर है? 'क'। इसमें असंख्य समय, हों! उसका एक ससमय-काल का छोटा भाग। उसमें भगवान का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। यह कोई शक्ति है! ऐसी केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी सादि-अनन्त (रहती है)। जब से केवलज्ञान हुआ, दूसरे समय में दूसरा केवलज्ञान। क्योंकि केवलज्ञान पर्याय है। कि गुण है? प्रगट हो, वह गुण नहीं होता, गुण तो त्रिकाल रहते हैं। प्रगट होती है, वह पर्याय है। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं।

एक बार बड़ी चर्चा हुई थी। हमने सम्यग्दर्शन को पर्याय कहा था न ? तो सामने एक चर्चा हुई। आत्मधर्म से विरुद्ध। तुम क्या सम्यग्दर्शन, ज्ञान को पर्याय कहते हो ? वह तो एक गुण है। आठ गुण कहा है। भगवान को आठ गुण प्रगट हुए हैं। अरे ! गुण तो पर्याय को वहाँ गुण कहा है। गुण प्रगट होता है ? गुण तो त्रिकाल रहते हैं। अभी द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं है और हम धर्म करते हैं। कहाँ से करते हो ? समझ में आया ? आत्मधर्म में आया था कि सम्यग्दर्शन एक आत्मा के श्रद्धा नाम के गुण की अवस्था है। उसके सामने एक क्षुल्लक ने दलील की है। समझे ? तुम समझकर बोलो। वह पर्याय नहीं, वह तो गुण है। सिद्ध को भी आठ गुण प्रगट होते हैं। तो पर्याय कहाँ से आयी ? अरे.. ! तुम तो सही। आठ गुण नहीं, आठ पर्याय है। आठ पर्याय को गुण कहने में आया है।

द्रव्य जो आत्मा त्रिकाल है, उसमें अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, वह तो त्रिकाल रहती हैं। प्रगट होता है, वह पर्याय होती है, नाश होती है, वह पर्याय नाश होती है। संसाररूपी पर्याय का व्यय, केवलज्ञानरूपी पर्याय की सिद्ध की पर्याय की उत्पत्ति और गुण एवं द्रव्य त्रिकाल रहते हैं। ऐसा भानवाला प्राणी भगवान की यथार्थ भक्ति करनेयोग्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, यहाँ तो अभी एक गाथा ही चली। केवलज्ञान आया न ! केवलज्ञान। अरे ! भगवान ! केवलज्ञान की प्रतीति ! आहाहा ! दिव्य ज्ञान किसको कहे ? ऐसा प्रवचनसार में लिया है। एक समय में तीन काल-तीन लोक न जाने तो दिव्य ज्ञान कहे किसको ? समझ में आया ? आहा ! अरे ! एक गुण की एक समय की पर्याय पूर्ण केवल, ऐसी दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। सादि-अनन्त। जब से केवलज्ञान हो, तब से केवलज्ञान की पर्याय नयी... नयी... नयी... नयी उत्पन्न होती है। उत्पन्न हो, वैसी की वैसी, परन्तु वही नहीं। क्योंकि पर्याय है। ऐसी पर्याय जब से उत्पन्न हुई (तो) अनन्त काल भिन्न... भिन्न... भिन्न रहती है। सब केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड जो आत्मा अन्दर है, ज्ञानगुण है, ऐसे ज्ञानगुण का धरनेवाला भगवान आत्मा है। आहाहा ! अरे ! क्या करे ? उसे खबर नहीं। द्रव्य क्या ? मैं शक्तिवान कौन ? मेरी शक्ति कितनी ? और शक्ति की व्यक्तता हो, इतनी ताकत उसमें कितनी ? समझ में आया ?

यहाँ भगवान पद्मनन्दि आचार्य, देखो ! मुनि है तो भी भक्ति करते हैं। प्रभु !

समन्तभद्राचार्य में ऐसा एक लिया है। महाराज! मुझे आपकी स्तुति करने का व्यसन हो गया है। पण्डितजी! ऐसा शब्द आया है। स्वयंभूस्तोत्र है न? २४ स्तवन। उसमें कहा, प्रभु! मुझे तो आप सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति करने का व्यसन हो गया है। यह व्यसन होता है न, बीड़ी और तम्बाकू का।

मुमुक्षु : आदत।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत। मुझे आदत हो गयी है। दुनिया को आदत होती है न अफीम पीने की, चाय बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं, सुबह चाय चाहिए। आदत पड़ जाती है। व्यसन। महाराज! समन्तभद्राचार्य (कहते हैं), हों! जिसको इतिहासकार भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं, ऐसा इतिहास में लिखते हैं। समझ में आया?

वह महा सन्त मुनि परमेश्वर की भक्ति करते कहते थे, हे नाथ! मुझे तो आपकी स्तुति करने का व्यसन हो गया है। उसका अर्थ मेरे स्वभाव की स्तुति मेरे पास है तो पूर्णानन्द की स्तुति करने का मुझे विकल्प आता है। मुझे अब अशुभभाव नहीं आता। अशुभभाव मुझे नहीं आता, ऐसा कहते हैं। और बाद में उस शुभभाव को छेदकर मैं भी आपके (जैसा) केवलज्ञानी होनेवाला हूँ। आपने केवलज्ञान पाया, मैं भी आपके साथ आपके कुल की रीति-वट रखनेवाला मैं हूँ। समझ में आया? आपका जो कुल परमेश्वरपद है, वही परमेश्वरपद मेरा है। आपकी स्तुति करके, विकल्प का नाश करके मैं परमात्मपद पाऊँगा। निश्चय पाऊँगा, ऐसा निर्णय कोलकरार करते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, इसकी श्रद्धा होवे, उसे शंका कैसी? मुझे भव होंगे या नहीं? मुझे कितने भव करने पड़ेंगे। अरे! सुन तो सही, प्रभु! जिसको, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसी जिसको श्रद्धा हुई, उसको तो द्रव्य की श्रद्धा होती है। अपना द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी श्रद्धा होती है। तो द्रव्य और गुण में भव है नहीं। भव का भाव नहीं है और भव है नहीं। आहाहा! कहते हैं कि महाराज! हे नाथ! आपको भव नहीं और आपके भक्त—मुझे भी भव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह चर्चा (संवत्) १९७२ के वर्ष में हमारे बहुत हुई थी। ७२। कितने साल हुए? ५१-५१। संवत्-१९७२, फाल्गुन महीना था। ये फाल्गुन आ रहा है। तेरस-चौदसी थी। ७२ के वर्ष। बड़ी चर्चा सम्प्रदाय में हुई। बहुत चर्चा हुई। हमारे गुरु-सम्प्रदाय के गुरु तो

भद्रिक थे। दूसरा था वह प्रकृति का थोड़ा कड़क था। इसलिए उसने ऐसा कहा, भगवान ने देखा, तब आत्मा के भव का नाश होगा। भगवान ने देखा, तब अपना पुरुषार्थ कर सकते हैं। कहा, अरे! प्रभु! क्या कहते हो तुम? भगवान ने देखा, ऐसा भगवान की जिसको प्रतीति हुई, उसको भव है नहीं। भगवान ने ऐसा देखा है। समझ में आया? ७२ के वर्ष की बात है। ५१ वर्ष हुए, पचास और एक। दीक्षित हुए थे, १९७० की साल। दीक्षित। ७० को क्या कहते हैं? सत्तर। सात और शून्य। १९७० में सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, स्थानकवासी में। फिर दो वर्ष के बाद अन्दर से बात आयी थी। बहुत कहते थे। केवलज्ञान को माने तो केवलज्ञान ने देखा ऐसा भव (होगा), अपना पुरुषार्थ काम नहीं करे। प्रभु! ऐसा नहीं है। भगवान ऐसी बात नहीं करते। भगवान ऐसा नहीं बोलते।

भगवान तो ऐसा कहते हैं, जो कोई हमारी पूर्ण पर्याय का ज्ञान करे, उसको सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं, उसका मोह नाश हुए बिना रहे नहीं। उसका भगवान ने भव नहीं देखा है। पण्डितजी! ७२ के वर्ष में बहुत चर्चा हुई थी। ऐई! कालीदासभाई! पालियाद। पालियाद में हुई थी। पालियाद है न? वींछिया और हणवद और पालियाद। पाणियाद में बड़ी चर्चा। १९७२। दो वर्ष की दीक्षा। नहीं, वह बात मुझे मान्य नहीं है। जिसको भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे ऐसी बात जिसके हृदय में बैठी, उसका भगवान भव देखते ही नहीं। उसको भव है नहीं। भगवान के भक्त को भव? भगवान को भव नहीं, तो भगवान के भक्त को भव कैसा? कोई एक-दो हो तो हो, राग के कारण। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। अन्तर में भव है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह तो अन्दर की बात थी न। पूर्व का संस्कार था तो अन्दर से जोर करता है। भगवान के पास से अन्दर से बात आयी थी न! अन्दर से आयी थी। ७२ की साल। नहीं, हम वह बात नहीं सुनेंगे। वह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, वह वाणी नहीं चाहिए। भगवान जिसके हृदय में बैठे और ज्ञान हुआ, भगवान ने उसके अनन्त भव देखे, वह बात सच्ची है नहीं। पण्डितजी! ७२ की साल में कहा था। अरे! भगवान! भाई! केवलज्ञान की प्रतीति, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में केवलज्ञान! आहाहा! वह प्रतीति कैसे आती है? यहाँ तो अल्प बुद्धि और राग साथ में है। एक क्षण में तीन काल-तीन लोक जानने में

आये! अरे! उससे अनन्तगुना हो तो भी जानने में आये। सुन तो सही। शास्त्र में तो कहा है, इतना है, परन्तु उससे अनन्तगुना हो (तो भी जान ले)। परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त दिया है, परमात्मप्रकाश में बेल का दृष्टान्त दिया है। पण्डितजी! वह बेल होती है न? लता। लता होती है न? लता का दृष्टान्त, योगीन्द्रदेव महाराज मुनि दिगम्बर सन्त वनवासी महा धर्म के धुरन्धर अन्दर में जागे हैं। मुनि तो धर्म के स्तम्भ। अन्दर में केवलज्ञान का धर्म थामकर रखा है।

योगीन्द्रदेव मुनि सन्त भावलिंगी सन्त वनवासी थे, उन्होंने परमात्मप्रकाश बनाया, वे कहते हैं, हे नाथ! आपमें एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति है, उतनी शक्ति हम नहीं मानते। उससे अनन्तगुनी है। कैसे? जैसे लता होती है, लता-बेल। जो मण्डप होता है बाँस का, बाँस का न? बाँस का मण्डप होता है। उस मण्डप पर बेल चढ़े तो वहाँ तक जाती है। बाद में बाँस नहीं है तो आगे नहीं जाती। नहीं जाती है, परन्तु उसमें ही (रहती है)। नहीं जाती है तो बेल में जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मण्डप पर बेल करते हैं न? बेल। चढ़ती है तो जहाँ तक बाँस का अन्तिम भाग हो, वहाँ तक जाती है। फिर आगे तो है नहीं। परन्तु बेल में जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। हे नाथ! तीन काल-तीन लोकरूपी मण्डप है, ऐसा आपके ज्ञान में आया है। फिर भी आपके ज्ञान की बेल में इतना ही जानने की शक्ति है, ऐसा नहीं है। इससे अनन्तगुना लोक और अलोक हो तो भी आपकी एक समय की पर्याय जान लेती। आहाहा! समझ में आया?

अरे! भगवान! केवलज्ञान की प्रतीति! आहाहा! और निःसन्देहपना उसमें आना (अलौकिक बात है)। ये तो लथडपथड (शंकाशीलता रहनी), भगवान होंगे या नहीं? एक समय में त्रिकाल ज्ञान होगा या नहीं? होगा तो क्या हुआ? होगा वैसा होगा, हमारा पुरुषार्थ क्या करेगा? अरे! सुन तो सही। भगवान ने देखा, वैसा होगा तो फिर हमें पुरुषार्थ (क्या करना)? परन्तु भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा तुझे निर्णय हुआ तो अन्दर में स्वभाव में पुरुषार्थ घुस गया। तुझे भव है नहीं, ऐसा निर्णय कर ले। समझ में आया? आहाहा! गोदिकाजी! कहते हैं न? 'भाग्य न छुपे भभूत लगाय,' राजपूत हो और बनिये की वेल में गया हो, वेल अर्थात् शादी में, समझे? एक ऐसा बना था।

बनिये की बारात थी। तो बनिये ने राजपूत को बैठा दिया। अपने को जंगल में जाना

है और कोई चोर आये तो ? बैठा था। उसमें डाकू आया। डाकू ने कहा, अरे ! सुन। मैं राजपूत हूँ। यह बनिये ने मुझे क्यों बैठाया मुझे खबर नहीं, परन्तु मैं गाड़ी में बैठा हूँ। जब मेरी मृत्यु होगी, तब तू बारात को लूटेगा। मैं राजपूत हूँ, बनिया नहीं। वाणिया डरपोक नहीं हूँ। 'रणो चड्यो रजपूत छूपे नहीं,' रण में जानेवाले राजपूत का पुरुषार्थ छिपता नहीं। 'चंचल नारी को नैन छूपे नहीं, भाग्य छूपे नहीं भभूत लगाया।' साधु हो जाये मुनि, परन्तु उसका पुण्य हो, वह छिपा रहता है ? उसका भाग ढँका रहता है ?

ऐसे हे नाथ ! आपकी श्रद्धा और ज्ञान हमको हुआ, वह पुरुषार्थ रुकता नहीं। आप केवलज्ञानी परमात्मा के हम दास हैं। मतिज्ञान-श्रुतज्ञान में हमारा ज्ञान ऐसा स्वीकार करता है कि आप पूर्ण ज्ञानी हो। ऐसी प्रतीति हमें हुई है। अल्प काल में आपके जैसा केवलज्ञान हमको प्राप्त हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे भक्ति पद्मनन्दि आचार्य भगवान की करते हैं।

ये १९वीं गाथा है, लो। आज तो एक ही गाथा चली। अब, २०वीं। नाथ ! आपको आत्मशान्ति द्वारा, समाधि आनन्द द्वारा... क्या कहते हैं ? अरे ! कर्म का नाश करने को बहुत सहन करना पड़ता है, दुःख भोगना पड़ता है, तब आत्मा को कर्म का नाश होता है। परीषह सहन करना पड़ता है। तो दुःख है ? दुःख की दशा से केवलज्ञान होता है ? सहन करना, अरे रे ! बहुत सहना पड़ता है, परीषह सहना पड़ता है। अरे ! सुन तो सही, भगवान ! आनन्द में रहते-रहते, आनन्द में झूलते-झूलते केवलज्ञान हो जाता है। चारित्र का अर्थ शान्ति है। अन्तर आनन्द, शान्ति... शान्ति... शान्ति के झूले में झूलते-झूलते केवलज्ञान होता है। कष्ट सहना (पड़ता है), कष्ट ? अरे ! कष्ट सहन करना (पड़ता है)।

वह छहढाला में आता है, नहीं ? आपको कष्ट... संवर और वैराग्य आपको कष्ट लगे, उसमें संवर, निर्जरातत्त्व की श्रद्धा उसको खबर नहीं। वह छहढाला में आता है। अरे ! आहाहा ! सहन करना पड़े, भैया ! बहुत दुःख सहन करना पड़े। दुःख सहन करना पड़े, वह तो आर्तध्यान है। उसमें मोक्षमार्ग कहाँ से आया ? समझ में आया ? चारित्र दुःखदायक नहीं। चारित्र को दुःखदायक माना, उसको चारित्र और संवर, निर्जरा की श्रद्धा नहीं है। तत्त्वार्थश्रद्धान में उसकी विपरीत श्रद्धा है। समझ में आया ?

चारित्र आत्मा की शान्ति का दाता है। आहाहा ! परीषहजय में ऐसा आता है न ?

निर्जरा... ऐसा पाठ है। मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति में रहकर मार्ग अच्युतं वहाँ से चलना नहीं और निर्जरा हेतु परीषह सहन करने में ज्ञाता-दृष्टा रहकर सहन करते हैं। उसमें ऐसा ... है। आया या नहीं? एक-एक शब्द में बड़ा भरा है। उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र। सब शास्त्र का दोहन करके बहुत बनाया।

यहाँ आचार्य कहते हैं, नाथ! आपके चार घातिकर्म का नाश हुआ है, तो हमको खबर हुई कि आपको केवलज्ञान हुआ है। अब, जो चार बाकी रहे न? उसको भी अब त्रास हो गया। बड़े-बड़े चार का नाश किया तो हम चार तो मुर्दे जैसे हैं। समझ में आया? अघातिकर्म चार मुर्दे जैसे हैं। हमको नाश करने में देर नहीं लगेगी, बेचारे मौन पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। २०वीं गाथा है, देखो!

आवरणाईणि तए, समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचुक्केण मुअं, व णाह भीएण सेसेण।।२०।।

आवरणादीनि त्वया, समूलमुन्मूलितानि दृष्टवा।
कर्मचतुष्केण मृतवत्, नाथ! भीतेन शेषेण।।

आहाहा! देखो तो सही, भक्ति भी कैसी भक्ति! समझ में आया? हे नाथ! **जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़ सहित... 'समूलमुम्मूलियाइ'** है न? **'समूलमुम्मूलियाइ'।**

चार घातिकर्म जो व्यवच्छेद जहाँ,
भव के बीज का आत्यन्तिक नाश जो,

श्रीमद् राजचन्द्र (कहते हैं)।

'चार घातिकर्म जो व्यवच्छेद जहाँ' भगवान ने चार का नाश किया। समझ में आया? 'भव के बीज का आत्यंतिक नाश जो' भव का बीज तो वह था—अज्ञान और राग-द्वेष। (उसका) नाश कर दिया (तो) कर्म भी नाश हो गये। 'सर्व ज्ञाता-दृष्टा...' सर्व ज्ञान, सर्व दृष्टा और सर्वविशुद्धभाव, ऐसा भगवान आपको प्रगट हुआ है। ऐसा अपूर्व अवसर हमको कब आयेगा?

श्रीमद् राजचन्द्र को आत्मज्ञान हुआ था। फिर (भावना भाते हैं), 'अपूर्व अवसर

ऐसा कब आयेगा ?' हे नाथ ! आपकी दशा ऐसी हुई, मुझे कब आयेगी ? क्योंकि ज्ञानी तो अपनी शुद्ध भावना भाते हैं। राग हो और पर हो, ऐसी भावना भाते नहीं। उसको परमात्मा का भक्त और सम्यग्दृष्टि कहने में आता है।

हे नाथ ! **जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़ सहित...** मूल... मूल। समझ में आया ? **ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़सहित सर्वथा नाश कर दिया था; उस समय उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर,...** देखो ! **'दट्ठूण'।** अलंकार करते हैं न। चार का नाश हुआ तो (बाकी) चार कर्मों ने देखा, इसको तो मार डाला। फिर ? अपने आया न ? 'जली रस्सीवत् आकृति मात्र।' चार कर्म का नाश हुआ न ? फिर बाकी के चार कर्म तो जली हुई रस्सीवत् (रह गये)। सिंद्दरी होती है न ? सिंद्दरी को क्या (कहते हैं) ? रस्सी... रस्सी। जल हुई रस्सी क्या काम करे ? कोई बाँधने में काम करती है ? जली रस्सी। ऐसे चार अघाति कर्म भगवान को रहते हैं, वह ख्याल करते हैं कि हमको ख्याल है कि वह जली रस्सी के समान रहे हैं। वह कोई तुमको बाँधे ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, **उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर, शेष चार अघातिया...** 'अ' शब्द पड़ा है, उसमें सुधारा है या नहीं ? इसमें भूल रह गयी है। घातिया लिखा है ? 'अ' चाहिए। **चार अघातिया कर्म भी भय के कारण आपकी आत्मा में मृतदेह के समान स्थित रहे।** समझ में आया ? **'मुअं'** पाठ है न ? **'मुअं'** मृतदेह समान रहे हैं। प्रभु ! मुझे ख्याल है, आपके पास चार कर्म बाकी रहे थे... ये ऋषभदेव तो परमात्मा हो गये, सिद्ध हो गये। परन्तु वर्तमान में ख्याल करके (कहते हैं)। सीमन्धर भगवान आदि वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में अरिहन्तपद में विराजते हैं। वर्तमान बीस तीर्थंकर विराजते हैं। लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में हैं, हों ! है, सब है। रोकेट जाता है और ऐसा है, वैसा है, ऐसा है नहीं। इतना क्षेत्र है और इतना है, ऐसा नहीं। महाविदेहक्षेत्र है। वर्तमान बीस तीर्थंकर वर्तमान केवलज्ञानीपने मनुष्यक्षेत्र में विराजते हैं। और लाखों केवली विराजते हैं। ऐसे भगवान अरिहन्तपद में विराजते हैं। और चौबीस तीर्थंकर वर्तमान अरिहन्तपद में नहीं है, वह तो सिद्धपद हो गया। चार कर्म अघाति और घाति सबका नाश होकर णमो सिद्धाणं में आ गये। परन्तु आचार्य समवसरण में जैसे विराजमान हो, ऐसा लक्ष्यकर बात करते हैं।

हे नाथ! आपके पास जो चार कर्म रहे, वह मृत देह समान (रहे)। भय से आपके पास रहे हैं, भयभीत है कि मार डालेंगे। क्योंकि जिसको केवलज्ञान हुआ, उसको चार अघाति कर्म नाश हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, उसको चारित्रमोह का नाश हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया?

देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान,
तेथी प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये।

श्रीमद् ने बहुत बनाया है। समझ में आया?

दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपज्यो बोध जो,
देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।

हमारी गुजराती भाषा हो तो उसमें बहुत आता है, हिन्दी में बहुत स्पष्ट नहीं आता है। इसलिए कहते हैं, गुजराती में जैसी मिठास आती है, (वैसी नहीं आती)। हिन्दी हमारी भाषा नहीं है न। मुश्किल से थोड़ी-थोड़ी आती है। क्या कहते हैं उसमें? क्या कहा? देखो! 'देह भिन्न केवल चैतन्यनुं ज्ञान जो।' 'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपज्यो बोध जे'। दर्शनमोह का नाश करके आत्मा में ज्ञान हुआ हो, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। फिर (कहते हैं), 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।' देह भिन्न, अकेले ज्ञान का ज्ञान हुआ उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

इससे प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये,
वर्ते ऐसा शुद्ध स्वरूप का ध्यान जो।
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

कहते हैं, हमारी स्वरूप की दृष्टि में एकाकार होकर चारित्रमोह को प्रक्षीण अर्थात् नाश करनेयोग्य हो गया है। अब रहेगा नहीं। ऐसे केवली को चार कर्म का नाश हुआ तो अघाति नाश करने जैसा मृतदेह समान रह गये हैं। और सिद्धपद पाने की उसकी तैयारी हो गयी है। ऐसा २०वीं गाथा में गुणग्राम किया। भान सहित पहिचान करके, अपनी और पर की दोनों की पहिचान करके (भक्ति करते हैं)। उसका नाम निश्चय सहित व्यवहार यथार्थ भक्ति कहने में आती है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)